बौधायन-धर्मसूत्रम्

डॉ॰ नरेन्द्र कुमार

हर्षि बौधायन ने आज से सैकड़ों
धर्मसूत्र की रचना की थी। धर्म
संसार की कल्पना दिवास्वप्न है।
ने वेदों को धर्म का प्रमाण माना
वाङ्मय में वेद की तुलना किसी
नहीं की जा सकती। आज जबकि
नाम पर अनेक प्रकार की अनर्गल
प्रचार किया जा रहा है, ऐसे समय
बौधायन रचित धर्मसूत्र निश्चय
व जाति का मार्ग दर्शन करने में
। धर्म के मर्म को समझने के लिए
का अध्ययन परम आवश्यक है।
जीवन में क्या करना है [illegible]
मक शैली में [illegible]
किया है। [illegible]
[illegible] होते हैं।
[illegible] करने के
[illegible] एवं [illegible]
[illegible] है।
यी [illegible] करने के
[illegible]
ना चाहिए, [illegible]
र से चर्चा की है। [illegible]
मनुष्य को [illegible]
। कहते हैं—जैसा [illegible]
। इस सिद्धान्त को [illegible]
र्षि बौधायन ने भक्ष्य-अभक्ष्य विषय
तृत चर्चा की है। पाप प्रायश्चित्त
आदि के माहात्म्य को विस्तार से
र्शाया गया है। यज्ञ, महायज्ञ आदि
का जीवन खिल उठता है। संक्षेप
र्षि बौधायन ने इस धर्मसूत्र में
वन के व्यस्त क्रिया कलापों को
रने का प्रयास किया है।

महर्षि बौधायन रचित

बौधायनधर्मसूत्रम्

गोविन्दस्वामी रचित विवरण वृत्ति सहित

व्याख्याता

डॉ० नरेन्द्र कुमार आचार्य

एम.ए. साहित्याचार्य, पी-एच.डी.

भूतपूर्व प्राध्यापक

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार

विद्यानिधि प्रकाशन

दिल्ली-110094

भूमिका

वैदिक साहित्य का आदि उत्स वेद हैं। वेद चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनके व्याख्या भाग को ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण का थोड़ा सा व्याख्यान आरण्यक ग्रन्थों में हुआ है। वेद का अध्ययन करने के लिए वेदांगों का ज्ञान आवश्यक है। वेदांग छह हैं। वे हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द।

वेदांगों का समुचित ज्ञान हो जाने पर अध्येता की वेदों में गति हो जाती है। वह वेद के मर्म को समझने में समर्थ हो जाता है। प्राचीन काल में ऋषि, मुनि, साधु, महात्मा, संन्यासी, ज्ञानी, ध्यानी वेदांगों के ज्ञाता होकर मन्त्रों का साक्षात्कार करते थे। इसलिए आचार्य यास्क कहते हैं– 'ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः' अर्थात् ऋषि मन्त्रों को देखते (साक्षात्कार) हैं।

शिक्षा के द्वारा वैदिक स्वरों का ज्ञान होता है। कल्प के द्वारा यज्ञ, याग, धार्मिक अनुष्ठान, व्रत, प्रायश्चित्त का ज्ञान प्राप्त होता है। शब्दों की मीमांसा का ज्ञान व्याकरण कराता है। निर्वचन का ज्ञान निरुक्त से होता है। यज्ञ कब हो? इस बारे में तिथि, नक्षत्र आदि का ज्ञान ज्योतिष से होता है। मन्त्र का बाह्यरूप मात्रा, चरण आदि का बोध छन्द से होता है। इन समस्त अंगों का अपना-अपना महत्व है।

धर्मसूत्र साहित्य का उत्स कल्पसूत्र हैं। कल्पसूत्रों में यज्ञ, याग, धार्मिक अनुष्ठान, संस्कार, आदि का विस्तार से विवेचन हुआ है। इसलिए कुमारिल भट्ट कहते हैं–

वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः।
न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्र ब्राह्मण मात्रकात्।।

कल्पसूत्रों में उपर्युक्त विषयों को सूत्ररूप में दर्शाया गया है। जैसा कि कल्प शब्द के साथ जुड़े सूत्र शब्द से ज्ञात होता है। किसी बात को सूत्र रूप में (सूक्ष्म) कह देना किसी भी साहित्य की बहुत बड़ी विशेषता मानी जाती है। इसीलिए विण्टरनिट्ज ने इसकी प्रशंसा में लिखा है -

There is probably nothing like these sutras of the Indian in the entire literature of the world. (History of Indian Literature)

इन सूत्रों में अनेक शताब्दियों का ज्ञान भरा हुआ है। प्रो. मैक्समूलर का मानना है–

'कल्पसूत्रों का वैदिक साहित्य के इतिहास में अनेक कारणों से महत्व है। वे न केवल साहित्य के एक नए युग के परिचायक हैं और भारत के साहित्यिक एवं धार्मिक जीवन के एक नए उद्देश्य के द्योतक हैं, अपितु उन्होंने अनेक ब्राह्मणों के लोप में योग दिया, जिनका केवल अब नाम ही रह गया है। यज्ञ का सम्पादन केवल वेद कल्पसूत्र द्वारा ही हो सकता था, परंतु बिना सूत्रों की सहायता से ब्राह्मण या वेद के याज्ञिक विधान का ज्ञान पाना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव था।'

वेद अपौरुषेय हैं। पर सूत्र-साहित्य को पौरुषेय माना जाता है। महादेव ने हिरण्यकेशि की टीका में लिखा है- 'न हि सूत्राणां कर्तृ सम्बन्धि संज्ञाद्यतनी किन्तु नाना कल्प गतासु तन्नामकर्षि व्यक्तिषु नित्या तत्प्रणीत सूत्रेषु च नित्यं जातिमवलम्व्य तिष्ठति यथा पुरुषाणानामांकित शाखा सुसंज्ञा।'

कल्पसूत्र साहित्य को चार भागों में बांटा गया है- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र।

श्रौतसूत्रों में श्रुति विहित यज्ञों की चर्चा हुई है। उपलब्ध श्रौतसूत्र ये हैं- आश्वलायन, शांखायन, मषक, लाट्यायन, द्राह्यायण, कात्यायन, बौधायन, आपस्तम्ब हिरण्यकेशि, वैखानस, भारद्वाज, मानव और वैतान श्रौतसूत्र। गृह्यसूत्रों में घर की अग्नि में सम्पन्न होने वाले संस्कारों, अनुष्ठानों की चर्चा मिलती है। आश्वलायन, शांखायन, शाम्बव्य, पारस्कर, आपस्तम्ब, बौधायन, हिरण्यकेशि, भारद्वाज, मानव, वैखानस, काठक, गोभिल, खादिर, जैमिनीय और कौशिक ये प्रमुख गृह्यसूत्र हैं। धर्मसूत्रों में धर्म, वर्ण, आश्रम, संस्कार, दायभाग, न्याय, व्रत, तप, प्रायश्चित्त आदि की सूत्र रूप में सारगर्भित चर्चा हुई है। गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, वसिष्ठ, विष्णु एवं वैखानस प्रमुख धर्मसूत्र माने जाते हैं। इसके साथ ही मानव, हारीत, जाबालि और शंखलिखित धर्मसूत्रों के भी उद्धरण कुछ ग्रन्थों में मिलते हैं।

शुल्वसूत्रों में यज्ञीय कर्मकाण्डों पर प्रकाश डाला गया है। यज्ञमण्डप, कुंड आदि के निर्माण आदि की चर्चा इन सूत्रों में विस्तार से हुई है। कात्यायन, आपस्तम्ब, बौधायन, मानव, मैत्रायणीय, वराह आदि प्रमुख शुल्वसूत्र माने जाते हैं।

बौधायन धर्मसूत्र की व्याख्या से पूर्व आवश्यक है कि इसके रचनाकार के बारे में थोड़ा-वहुत जाना जाए। इसी उद्देश्य से हम सर्वप्रथम धर्मसूत्रों के रचना काल

पर चर्चा कर रहे हैं। इनके रचना काल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं।

आचार्य यास्क ने सम्पत्ति के विभाजन के संदर्भ में पुत्री के रिक्थाधिकार का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है- 'अथैतां जाम्या रिक्थप्रतिषेध उदाहरन्ति ज्येष्ठं पुत्रिकया इत्येके। इसके साथ ही वह लिखते हैं- 'तदेतादृक् श्लोकाभ्यामभ्युक्तम्। अंगादांगात्सम्भवसि सजीव शरदः शतम् अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वयम्भुवोऽब्रवीत् (निरुक्त ३/१)। इन पंक्तियों में आचार्य यास्क ने जो उद्धरण दर्शाए हैं, उन्हें वेद वचन न मानकर श्लोक कहा है। अतः यह कह सकते हैं कि धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ श्लोक रूप में भी विद्यमान थे। इसके आधार पर धर्मशास्त्र (सूत्र) को अति प्राचीन माना जाएगा।

पी.वी. काणे लिखते हैं कि गौतम, बौधायन, और आपस्तम्ब धर्मसूत्र की रचना ६०० और ३०० ई. के बीच हुई थी। गौतम ने अपने धर्मसूत्र में अन्य धर्मशास्त्रों का उल्लेख किया है- 'त्रीणि प्रथमान्यनिर्देश्यान्मनुः' (३/३/७)। इसी प्रकार बौधायन ने धर्मपाठकों की चर्चा की है-चातुर्वैद्यं विकल्पी अंग विधर्मपाठकः। आश्रमस्थास्त्रयो विप्राः पर्षदेषा दशावरा। (१/१/८) पूर्वमीमांसा और महाभाष्य में भी धर्मशास्त्र का प्रयोग हुआ है। आचार्य पतञ्जलि का विचार है कि उनके समय में धर्मसूत्र थे। उनके प्रमाण भगवान की आज्ञा के बाद महत्त्वपूर्ण माने जाते थे।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि धर्मशास्त्र आचार्य यास्क से पूर्व विद्यमान थे। कम से कम ई. पू. ६००-३०० के बीच ये मानव आचार के लिए प्रामाणिक माने जाते थे।

धर्मसूत्रों में कुछ ऐसे उद्धरण मिलते हैं जो सिद्ध करते हैं कि ये श्रौत एवं गृह्यसूत्रों से पूर्व उपलब्ध थे। परन्तु कुछ ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं जिनके आधार पर धर्मसूत्र गृह्यसूत्रों के बाद के सिद्ध होते हैं। (द्रष्टव्य-तन्त्रवार्तिक-पूर्वमीमांसा १/३/११)

धर्मसूत्रों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

गौतम धर्मसूत्र – इसे सबसे प्राचीन धर्मसूत्र माना जाता है। इसका सम्बन्ध कुमारिलभट्ट ने सामवेद से माना है। गौतम राणायनीय शाखा के नौ उपविभागों में, से एक उपविभाग के आचार्य थे। लाट्यायन, द्राह्यायण, श्रौतसूत्रों में गौतम का उल्लेख मिलता है। गोभिल ने भी गौतम की चर्चा की है।

कुछ विद्वान गौतम नाम को गोत्र रूप में स्वीकार करते हैं। क्योंकि यह नाम कठोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् में भी मिलता है। बौधायन ने भी गौतम धर्मसूत्र का उल्लेख किया है (द्रष्टव्य १/२/७)। बौधायन ने थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ गौतम

धर्मसूत्र के १८ वें अध्याय को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है। कुमारिलभट्ट, शंकराचार्य ने गौतम को याद किया है। गौतम धर्मसूत्र को बौधायन धर्मसूत्र से पूर्व की रचना माना गया है। क्योंकि बौधायन ने तो गौतम की चर्चा की है, पर गौतम ने बौधायन की चर्चा नहीं की है। वसिष्ठ धर्मसूत्र में गौतम की दो बार चर्चा मिलती है। वसिष्ठ ने अपने धर्मसूत्र में गौतम की अनेक बातों को ज्यों का त्यों रख दिया है। अतः गौतम धर्मसूत्र की रचना ४००-६०० ई. पू. मानी जाती है। गौतम धर्मसूत्र पर असहाय, हरदत्त और मस्करी नामक विद्वानों ने टीकाएं की थीं। इसमें तीन प्रश्न हैं। इसमें वर्ण, आश्रम, दण्ड, वाद-विवाद, जन्म-मरण, आशौच, अध्ययन, भक्ष्य, अभक्ष्य, प्रायश्चित्त, चान्द्रायण आदि की विशेष रूप से चर्चा हुई है।

बौधायन धर्मसूत्र–यह कल्पसूत्र का एक अंश मात्र है। बौधायन को कृष्ण यजुर्वेद का आचार्य माना जाता है। उसमें काण्व बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वाजसनेयी, याज्ञवल्क्य, आश्वलायन, शौनक, व्यास आदि के नामों की चर्चा मिलती है। इससे यह ज्ञात होता है कि बौधायन धर्मसूत्र की रचना से पूर्व काण्व बौधायन नाम का कोई आचार्य हो चुका था। पर पं. भगवत् दत्त का मत इससे भिन्न है। बौधायन ने श्रौत, गृह्य एवं धर्मसूत्रों की रचना की थी। बौधायन धर्मसूत्र में महाभारत आदि पर्व का एक पद्य आया है। इससे ज्ञात होता है कि बौधायन को महाभारत का पता था। बौधायन श्रौतसूत्र में सुरभशैव्य वर्णित है। बौधायन ने पाणिनि को याद किया है और पाणिनि महाभारत के जानकार थे। बौधायन ने धर्मसूत्र पर वृत्ति लिखी थी। उन्हें वेदान्त सूत्रों का परवर्ती माना जाता है। वेदान्त सूत्रों की रचना महाभारत के बहुत बाद मानी गई हैं। ऐसा न मानें, तो कई बौधायन मानने पड़ेंगे। (द्रष्टव्य-भारतवर्ष का बृहत् इतिहास पृ. २८३)।

बौधायन धर्मसूत्र की रचना गौतम धर्मसूत्र के बाद हुई है। क्योंकि बौधायन ने गौतम को अपने धर्मसूत्र में याद किया है। जबकि गौतम ने बौधायन की चर्चा नहीं की है। बौधायन की रचना आपस्तम्ब के बाद हुई है। कारण बौधायन ने आपस्तम्ब के वचनों को इति के साथ उद्धृत किया है। बौधायन एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अनेक समानताएं भी मिलती हैं। इन्हीं सब निष्कर्षों के आधार पर पी.वी. काणे ने बौधायन धर्मसूत्र का रचना काल २००-५०० ई. पू. के बीच माना है। (द्रष्टव्य-धर्मशास्त्र का इतिहास खण्ड-१ पृ. १६)।

बौधायन को दाक्षिणात्य माना जाता है। बौधायन धर्मसूत्र में ऐसे अनेक उद्धरण हैं, जो कि उनका दाक्षिणात्य होना सिद्ध करते हैं। (द्रष्टव्य-१/१/१/१०)। बुहलर का मानना है– बौधायनीय शाखा के दाक्षिणात्य होने का सर्वाधिक प्रमाण यही है कि आपस्तम्बीय शाखा के समान बौधायनीय शाखा भी दक्षिण भारत में मिलती है।

(द्रष्टव्य–सैक्रेड बुक आफ दी ईस्ट पृ. ४२)। इसके साथ ही बौधायन ने समुद्र यात्रा तथा उस पर लगने वाले कर की भी चर्चा की है, इससे उनका समुद्र तटीय होना सिद्ध होता है। परन्तु पी. वी. काणे इससे सहमत नहीं हैं। पं. बलदेव उपाध्याय के अनुसार बौधायन आर्यावर्त के थे। (द्रष्टव्य–वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ. ३२२)।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र–आपस्तम्ब कल्पसूत्र के दो प्रश्न आपस्तम्ब धर्मसूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसका सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा से है। आपस्तम्बीय कल्पसूत्रों के तीस प्रश्नों में से २८ एवं २६ प्रश्न आपस्तम्ब धर्मसूत्र के रूप में प्रसिद्ध है।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र का रचयिता एक ही था। ऐसा बुहलर, पी. वी. काणे आदि का मत है।

इसकी रचना पाणिनीय अष्टाध्यायी से पूर्व हुई थी। क्योंकि पाणिनि ने विदादि गणपाठ (४/१/१०६) में आपस्तम्ब का वर्णन किया है। इसकी पुष्टि ए.बी. कीथ ने भी की है। उन्होंने लिखा है– आपस्तम्ब की भाषा शैली कात्यायन श्रौतसूत्र के रचयिता कात्यायन से आपस्तम्ब का प्राचीन होना सिद्ध करती है। पी.वी. काणे ने इसकी रचना ६००-३०० ई.पू. के बीच मानी है। उनका मानना है– **We shall not be far wrong if we assign it to some period between 600-300 B.C.**

कुछ विद्वान आपस्तम्ब को दाक्षिणात्य मानते हैं। महार्णव में आपस्तम्बीय शाखा को आन्ध्रदेशीय माना जाता है। (द्रष्टव्य–आपस्तम्ब धर्मसूत्र २/७/७/१७)। आपस्तम्ब ने श्राद्ध प्रकरण में उदीच्यों की विलक्षण विधि का वर्णन किया हैं– उदीच्य वृतिस्त्वा सन गतानां हस्तेषूद पात्रानयनम्।

बुहलर ने आपस्तम्ब धर्मसूत्र में लिखित तैत्तिरीयारण्यक पाठ के आधार पर उन्हें आन्ध्रदेशीय माना है–(द्रष्टव्य–सैक्रेड बुक आफ दी ईस्ट पृ. ३४)। पी.वी. काणे भी ऐसा ही मानते हैं। मगर बलदेव उपाध्याय और डॉ. रामगोपाल उन्हें उत्तर भारत का स्वीकार करते हैं।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में दो प्रश्न हैं। इनमें २२ पटल हैं। क्रमशः पटलों में ३२ और २६ कंडिकाएं हैं। गद्य की अधिकता है और २० पद्य भी हैं। इसमें धर्म, वर्ण आश्रम व्यवस्था, ब्रह्मचर्य, संस्कार, आत्मज्ञान, प्रायश्चित्त और स्नातक के कर्तव्य, कर्म आदि की विस्तार से विवेचना है।

वसिष्ट धर्मसूत्र–इसे वसिष्ठ धर्मशास्त्र भी कहते हैं। इसकी रचना ,वसिष्ठ ने की, ऐसा कहा जाता है। इसकी रचना ३००-१०० ई.पू. के बीच मानी जाती है।

(द्रष्टव्य–धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-१, पृ. २३)। परन्तु पं. बलदेव उपाध्याय ने इसकी रचना का काल ६०० ई. पू. से १०० ई. पू. स्वीकार किया हैं। इसमें ३० अध्याय हैं। धर्म, विवाह, वर्ण, जीविका यापन, संस्कार, आशौच, दाय विभाग, प्रायश्चित्त आदि का वर्णन मिलता है।

विष्णु धर्मसूत्र–पं. बलदेव उपाध्याय ने इसे दैवी माना है। इसकी प्राचीनता और मौलिकता संदिग्ध है। कहते हैं–विष्णु धर्मसूत्रकार ने अपने पूर्ववर्ती धर्मसूत्रों से विषय सामग्री लेकर इसकी रचना की है। इसमें भगवत् गीता और मनुस्मृति के पद्य मिलते हैं। पी.वी. काणे का विचार है कि विष्णु धर्मसूत्र में मनुस्मृति से ही पद्य लिए गए हैं।

डॉ. जाली का मानना है कि याज्ञवल्क्य ने विष्णु धर्मसूत्र से शरीरांग सम्बन्धी ज्ञान ले लिया है। पर पी.वी. काणे लिखते हैं कि यह ज्ञान चरक और सुश्रुत में विद्यमान था। धर्मसूत्रकारों ने यह ज्ञान वहीं से ले लिया। (द्रष्टव्य–धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-१ पृ. २४)।

मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति को विष्णु धर्मसूत्र से पहले की रचना माना जाता है। नवम शताब्दी के प्रथमार्ध में हुए विश्वरूप ने याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका में गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब और हरीत को उद्धृत किया है। किन्तु विष्णु धर्मसूत्र का कोई उद्धरण उसमें नहीं है। अतः पी.वी. काणे ने इसका रचना काल ३००-१०० ई. पू. के बीच स्वीकार किया है।

इसमें सौ अध्याय हैं। इसका प्रथम एवं अंतिम अध्याय पद्यमय हैं। अन्य अध्याय गद्य में हैं या पद्य मिश्रित हैं। इसकी विषय वस्तु वही है जो अन्य धर्मसूत्रों की है।

हिरण्यकेशि और हरीत धर्मसूत्र पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हैं। इनके उद्धरण यत्र-तत्र कुछ ग्रन्थों में अवश्य उपलब्ध हैं। हिरण्यकेशि कल्प का २६-२७ प्रश्न हिरण्यकेशि धर्मसूत्र के नाम से जाना जाता है। इसमें अधिकतर आपस्तम्ब धर्मसूत्र को ही उद्धृत किया गया है। अतः कुछ विद्वान इसे स्वतन्त्र रचना नहीं मानते।

हारीत नामक धर्मसूत्रकार की चर्चा बौधायन, आपस्तम्ब, वसिष्ठ आदि ने की है। उनके धर्मसूत्र का उल्लेख भी किया है। पर यह पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। इसकी विषयवस्तु भी धर्मशास्त्रों से भिन्न नहीं है।

शंखलिखित धर्मसूत्र के अनुष्टुप् छन्दबद्ध पद्यों को कुमारिल भट्ट ने तन्त्रवार्तिक में दर्शाया है। महाभारत में शंख और लिखित नामक दो भाइयों की कथा मिलती है। याज्ञवल्क्य ने शंखलिखित को धर्मसूत्रकार के रूप में स्वीकार किया है (द्रष्टव्य

१/५)। इस धर्मसूत्र में वेदांग, सांख्य, योग, धर्मशास्त्र-पुराण आदि का उल्लेख मिलता है। इसमें प्रजापति, आंगिरस्, उशना, प्राचेतस्, आदि नामों की चर्चा मिलती है।

जीवानन्द के स्मृति संग्रह में इस धर्मसूत्र के १८ अध्याय एवं शंखस्मृति के २३० तथा लिखित स्मृति के ९३ पद्य मिलते हैं।

वैखानस धर्मसूत्र—गौतम धर्मसूत्र में वैखानस शब्द का प्रयोग वानप्रस्थ आश्रम के लिए हुआ है। महादेव ने सत्याषाढ श्रौतसूत्र पर लिखी वैजयन्ती टीका में वैखानस की चर्चा की है। बौधायन धर्मसूत्र में भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है। बौधायन धर्मसूत्र के रचयिता ने वैखानस धर्मसूत्र का उल्लेख किया है। वैखानस ने पाणिनि को देवता कहकर याद किया है। (द्रष्टव्य १/१/६) पं. बलदेव उपाध्याय ने इसे वैखानस धर्म कहा है। जबकि पी.वी. काणे ने इसे वैखानस धर्मशास्त्र कहा है।

वैखानस स्मृति सूत्र (केलेण्ड द्वारा सम्पादित) का आठवां, नवां और दसवां प्रश्न वैखानस धर्मसूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें तीन प्रश्न हैं। प्रश्न खंडों में विभक्त हैं। प्रथम प्रश्न में ग्यारह, दूसरे और तीसरे में क्रमशः १२, १५ खंड हैं। वर्ण, आश्रम, वानप्रस्थ, संस्कार, संन्यास, व्रत, कर्तव्य आदि पर इसमें प्रकाश डाला गया है। इन धर्मसूत्रों के अलावा मानव धर्मशास्त्र का भी उल्लेख मिलता है। प्रो. मैक्समूलर लिखते हैं-

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सभी सच्चे धर्मशास्त्र जो आज विद्यमान हैं, प्राचीन कुलधर्मों वाले धर्मसूत्रों के जो स्वयं किसी न किसी वैदिक ग्रन्थ चरण से प्रारम्भिक रूप में सम्बंधित थे, संशोधित रूप हैं। (द्रष्टव्य— History of Ancient Sanskrit Literature, पृ. १३४-१३५) बेवर, बुहलर आदि ने मानव धर्मसूत्र के अस्तित्व को स्वीकार किया है। वे इसका मूल मनुस्मृति को मानते हैं—स्वयंभुवे नमस्कृत्य ब्राह्मणेऽपिततेजसे। मनुप्रणीतान्विधान्धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् (मानव धर्मशास्त्र १/१)।

परन्तु पी.वी. काणे इन विद्वानों से असहमत हैं। उन्होंने मानव धर्मसूत्र के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है। (द्रष्टव्य—धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-१ पृ. २६)।

उपर्युक्त धर्मसूत्रीय सम्बन्धी विचार विश्लेषण के बाद प्रतिपाद्य बौधायन धर्मसूत्र पर विशेष चर्चा करेंगे।

बौधायन धर्मसूत्र बौधायन कल्पसूत्र का एक भाग है। बौधायन कृष्ण यजुर्वेद के आचार्य थे। सम्प्रति पूरा धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं है। डॉ. बर्नेल ने बौधायन के सूत्रों को छह प्रकरणों, श्रौतसूत्रों को १९ प्रश्नों में बांटा है। कर्मान्त सूत्र को २०, अध्यायों

द्वैध को ४ प्रश्नों में एवं गृह्यसूत्र को ४ प्रश्नों में और शुल्वसूत्र को ३ अध्यायों में निबद्ध किया है।

बौधायन धर्मसूत्र में चार प्रश्न हैं। प्रश्न अध्यायों में विभक्त हैं। अध्यायों को खंडों में बांटा गया है। प्रथम प्रश्न में ग्यारह अध्याय और इक्कीस खंड हैं। दूसरा प्रश्न दस अध्यायों और अठारह खंडों में विभाजित है। तीसरे में दस अध्याय और दस खंड हैं। चौथा प्रश्न आठ अध्याय और आठ खंडों में निबद्ध है। प्रथम प्रश्न में धर्म, आर्यावर्त, ब्रह्मचर्य, कमण्डलु, आचमन पात्र, यज्ञ नियम, विवाह एवं उसके भेद का वर्णन है। दूसरे प्रश्न में पातक, पतनीय कर्म और उसके प्रायश्चित्त अनुष्ठानों की विवेचना है। संध्या, उपासना, शुद्धि, अशुद्धि, श्राद्ध आदि का वर्णन है। तीसरे प्रश्न में परिव्राजक के भेद, जीवनयापन की वृत्तियां, व्रत, व्रत भंग, उसका प्रायश्चित्त आदि वर्णित है। चौथे में प्रायश्चित्त, कन्यादान, ऋतुकाल, रहस्य प्रायश्चित्त, जप, व्रत और गणहोम इत्यादि की चर्चा हुई है।

प्रस्तुत ग्रंथ में गोविन्दस्वामी की विवर्ण टीका दी गई है और सूत्रों का हिन्दी में सरल अनुवाद दिया गया है। ताकि संस्कृत को थोड़ा-बहुत जानने वाले भी लाभ उठा सकें।

मांस भक्षण, जीवित माता-पिता का श्राद्ध, तर्पण आदि प्रसंग विवादास्पद हैं। वैदिक युग के कुछ काल बाद तथाकथित पण्डितों ने ये प्रसंग इसमें प्रक्षिप्त कर दिए हैं। ऐसा अनेक वैदिक मनीषियों का मानना है।

आकर्षक छपाई, साज-सज्जा के साथ पुस्तक आप सुधीजनों के हाथों में पहुंचाने के लिए श्री बद्रीनाथ तिवारी (विद्यानिधि प्रकाशन) ने काफी परिश्रम किया है। अतः मैं उनका आभारी हूं।

ग्रन्थ लेखन में अनेक संस्कृत विद्वानों का सहयोग मिला। एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूं। अपनी पत्नी श्रीमती इन्दिरा गुप्ता के सहयोग को कैसे भुला सकता हूं। उन्होंने मुझे गृहस्थ के ताम-झाम से मुक्त रख कर इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में बहुत सहयोग दिया है। अतः उनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है। आशा है, आप महानुभाव इस रचना का लाभ उठाएंगे। अपने विचार-सुझाव एवं त्रुटियों की तरफ आप मेरा ध्यान अवश्य आकर्षित करेंगे।

भवदीय,

नरेन्द्र कुमार आचार्य

विषय सूची

प्रश्न- एक

अध्याय- एक : खण्ड- एक

धर्म : वेद एवं स्मार्त गत १
शिष्ट के लक्षण २
विद्वत् परिषद् ३
परिषद् के अयोग्य ४
ब्रह्म एवं वेदविद ५

खण्ड- दो

दाक्षिणात्य एवं औदीच्य में धर्म भेद ६
प्रामाणिक नियम ७
आर्यावर्त की सीमा ८
वर्ण-संकर ६
वैश्वानरी व्रातपती पवित्र इष्टियां १०

खण्ड- तीन

ब्रह्मचर्य की अवधि १०
वेद अध्ययन विधि ११
उपनयन : अवधि १२
वृक्ष, दण्ड १३
भिक्षाटन नियम १४
ब्रह्मचारी के कर्तव्य १५
अभिवादन नियम १६
स्वच्छता १७
प्रसाधन १८
मान-सम्मान १६

अध्याय- दो : खण्ड- चार

गुरु का कर्तव्य २०

समिदाहरण २१

ब्राह्मण : भूत २२

अध्याय- तीन : खण्ड- पांच

स्नातक के कर्तव्य २३

अर्न्तवास, दण्ड, कमण्डल २४

वृत्ति, भिक्षा २५

प्रजापति धाम २६

अध्याय- चार : खण्ड- छह

कमण्डल चर्चा २६

कमण्डल परिवर्तन २७

जल पान निषेध २८

हाथ-पैर शुद्धि २९

खण्ड- सात

कमण्डल का महत्त्व ३०

अध्याय- पांच : खण्ड- आठ

आशौच ३१

शुद्धि के साधन ३२

यज्ञोपवीत ३२

शौच के नियम ३३

आचमन विधि ३४

स्त्री : शूद्र ३५

मुख की शुद्धि ३६

कांष्ठ शुद्धि ३७

तांबा, चांदी, बांस, निर्मित पात्रों की शुद्धि ३८

वस्त्र शुद्धि ३९

मल-मूत्र जन्य अपवित्रता ४०

शुद्ध छह वस्तुएं ४१

खण्ड- नौ

भिक्षान्न की पवित्रता ४२

दूध ४३

फल, फूल, खलिहान ४४

खण्ड- दस

भूमिशुद्धि के साधन ४५
भोजनगत शुद्धि ४६
श्रद्धारहित अन्न त्याज्य ४७
फल-फूल का सेवन ४८
मल-मूत्र त्याग की विधि ४८
शारीरिक पवित्रता ४६
क्षौर कर्म ५०
अधिक व्याज ग्रहण की निन्दा ५१
ब्राह्मण का महत्त्व ५२
ब्राह्मण के कर्म ५३
आचमन ५४

खण्ड- ग्यारह

सपिण्डजन्य आशौच ५५
उदकदान ५६
अविभक्त राजा ५७
दाय एवं राजा ५८
सन्तानगत आशौच ५६
माता-पिता के लिए ६०
मृतक के असपिण्ड का आशौच ६१
आचार्य, उपाध्याय ६१
ऋत्विज, शिष्य, सतीर्थ ६१
गर्भपात : आशौच ६२
शवस्पर्श ६२
स्नान ६३
गोमूत्र दूध, दही का सेवन ६३
श्राद्ध ६३

खण्ड- बारह

अभक्ष्य ग्राम्य पशु ६४
भक्ष्य पशु ६५
अपेय दूध ६६

बासी वस्तुएं ६७

वेद अध्ययन की पूर्णता ६७

अध्याय- छह : खण्ड- तेरह

पवित्रता का महत्त्व ६८

यजमान, पत्नी-वस्त्र ६९

भिक्षाटन : वस्त्र धारण ६९

अग्न्याधान के समय वस्त्र ७०

गोबर का लेपन ७१

भूमि शोधन के उपाय ७२

कुश की शुद्धि ७२

अशुद्ध त्याज्य पात्र ७३

अपवित्र पात्र ७४

खण्ड- चौदह

मिट्टी के पात्र ७४

अपवित्र पात्र त्याज्य ७५

पात्रों की पवित्रता के उपाय ७५

पत्थर के पात्र और शुद्धि ७५

कुश निर्मित पात्र : शुद्धि ७६

कुत्ता, कौआ आदि द्वारा अपवित्र पात्र ७६

घी, मधु, दही आदि की शुद्धि ७७

अध्याय- सात : खण्ड- पन्द्रह

यज्ञाग्नि एवं आवागमन ७८

पैर से दूषित पात्रों की शुद्धि ७८

यज्ञ के अवसर पर शुद्धि ७९

यज्ञ के उपकरण : शुद्धि ७९

वेदी का रास्ता ८०

समिधा का उपयोग ८१

यजमान की पत्नी का स्थान ८२

अमेध्य पदार्थ ८३

अध्याय- आठ : खण्ड- सोलह

चार वर्ण ८३

सवर्ण पुत्र ८४

उग्र, निषाद, कुक्कुट आदि ८५

अध्याय- नौ : खण्ड- सत्रह

सवर्ण पत्नी : सवर्ण पुत्र ८६

पारशव, उग्र, रथकार, चाण्डाल, वैदेहक आदि ८६

सूत, अम्बष्ठ, क्षत्ता आदि ८७

श्वपाक, वैण, पुल्कस आदि ८७

अध्याय- दस : खण्ड- अट्ठारह

राजा का वेतन ८८

ब्राह्मण के कर्म ८८

क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के कर्म ८९

अस्त्र-शस्त्र ९०

क्रोध-निन्दा ९०

शुल्क (कर) ग्रहण ९१

अवध्य ब्राह्मण ९१

वध्य ९२

खण्ड- उन्नीस

क्षत्रिय वध : दण्ड ९३

वैश्य वध ९३

स्त्री, शूद्र, आत्रेय्या वध ९३

गाय, बैल ९४

रजस्वला ९४

हंस, भास, मोर, चकवा आदि ९४

पाप का दोष ९५

पुण्य का महत्त्व ९५

सत्यवादी साक्षी की प्रशंसा ९६

साक्षी ९७

अध्याय- ग्यारह : खण्ड- बीस

विवाह भेद ९८

ब्राह्म, प्राजापत्य, दैव, आर्ष, गान्धर्व ९८

असुर, राक्षस, पैशाच ९९

प्रारम्भ के चार विवाहों की प्रशंसा ९९

बाद के विवाहों की निन्दा ९९

गान्धर्व विवाह १००

खण्ड- इक्कीस

गुणवाला विवाह १०१

श्रेष्ठ विवाह का माहात्म्य १०१

पापी १०२

अनध्याय १०२

प्रश्न- दो

अध्याय- एक : खण्ड- एक

प्रायश्चित्त १०८

ब्राह्मण वध १०६

क्षत्रिय वध ११०

गुरुतल्प : प्रायश्चित्त १११

प्रायश्चित्त विधि ११२

त्याज्य ११३

पुनः उपनयन ११४

अवकीर्णी ११५

प्रायश्चित्त विधि ११६

ओम् का उच्चारण ११७

खण्ड- दो

पतनीय कर्म ११८

ब्राह्मण को लगने वाले दोष ११६

उपपातक १२०

अशुद्धि कारक कर्म १२०

प्रायश्चित्त १२१

हारीत का विचार १२२

पातकी के लिए प्रायश्चित्त १२३

तिल क्रय-विक्रय दोष १२४

कूष्माण्ड : यज्ञ १२५

अमेध्य प्राशन : प्रायश्चित्त १२६

अतिकृच्छ्रव्रत १२७

अध्याय- दो : खण्ड- तीन

ब्रह्मलोक प्राप्ति के उपाय १२८

दाय	१२६
ज्येष्ठ पुत्र	१३०
विभिन्न पत्नियां	१३०
गुणी पुत्र	१३१
पुत्र-भेद	१३२
अपविद्ध, कानीन, सहोढ	१३३
दाय योग्य : पुत्र	१३४
पुत्र-माहात्म्य	१३५
नावालिग : पालन-पोषण	१३६
पतित, त्याज्य	१३७
स्त्री : स्वर्गलोक	१३८
स्त्रीगत प्रायश्चित्त	१३८
व्यभिचार : दण्ड	१३६
खण्ड- चार	
व्यभिचार : दण्ड	१४०
विकार रहित स्त्रियां	१४१
विधवा की जीवनचर्या	१४१
नियोग	१४२
चाण्डाल	१४३
क्षत्रिय धर्म की कठिनता	१४४
ब्राह्मण : कृषिकर्म	१४४
ब्राह्मण के प्रमुख कर्तव्य	१४५
स्वर्ग व अनधिकारी	१४६
अध्याय- तीन : खण्ड- पांच	
तपस्या : स्नान	१४६
पितृतर्पण	१४७
देव, पितर तर्पण	१४७
तर्पण : जल	१४८
स्नातक-चर्या	१४८
अतिथि : भोजनचर्या	१४६
भोजन अंश	१५०
भोजन-याचक	१५१

भोजन ग्रहण के नियम १५२

खण्ड- छह

भोजनोपरांत शुद्धि १५२

भोजनगत नियम १५३

स्नान १५३

अधेनु १५४

वस्त्रहीन स्नान का निषेध १५५

निवास योग्य : स्थान १५७

सिद्धि १५७

मान-सम्मान १५८

अन्न : उपयुक्त हवि १५६

अध्याय- चार : खण्ड- सात

सन्ध्योपासना की विधि १६०

जल प्रोक्षण १६१

कुश आसन : गायत्री पाठ १६२

व्याहृति का जाप १६३

सावित्री का जाप १६३

सन्ध्या का समय १६४

प्रायश्चित्त का महत्त्व १६५

सन्ध्या-उपासना का माहात्म्य १६६

अध्याय- पांच : खण्ड- आठ

हाथों की शुद्धि १६७

पैरों की शुद्धि १६८

जल गिराने का नियम १६६

आचमन के लिए निषिद्ध जल १६६

जल से पवित्रता १७०

प्रणव व्याहृति : ब्रह्मयज्ञ १७१

खण्ड- नौ

तर्पण : प्रजापति, सोम आदि १७२

मित्र, इन्द्र, विश्वदेवा आदि १७२

विश्वदेव, ब्रह्मा आदि १७२

भवदेव, शर्वदेव आदि १७३

सनत्कुमार, स्कन्दकुमार आदि	१७३
यम, यमराज आदि	१७४
ऋषि, परमर्षि आदि	१७५
खण्ड- दस	
पिता–पितामह आदि : तर्पण	१७५
विधि	१७६
अध्याय- छह : खण्ड- ग्यारह	
पंच महायज्ञ : सत्र	१७६
स्वाध्याय : ब्रह्मयज्ञ	१७७
स्वाध्याय : माहात्म्य	१७८
ऐष्टिक, पशु, सोम, दार्वीहोम	१७६
आश्रम के भेद	१७६
वानप्रस्थ वैखानस	१७६
वानप्रस्थ की चर्या	१८०
परिव्राजक के नियम	१८१
त्याज्य कर्म	१८२
कपिल असुर का दृष्टान्त	१८३
पाप कर्म से मुक्ति	१८४
ब्रह्मचर्य का महत्त्व	१८६
अध्याय- सात : खण्ड- बारह	
शालीन, यायावर आत्मयाजी	१८७
भोजन चर्या	१८८
अभक्ष्य	१८६
आचमन मन्त्र	१६०
मन्त्र पाठ	१६१
खण्ड- तेरह	
पापमय अन्न	१६१
आत्मा का यज्ञ	१६१
अग्निहोत्र	१६२
किसे भोजन कराएं	१६२
भोजन ग्रास	१६३
प्रायश्चित्त : उपवास	१६४

अध्याय- आठ : खण्ड- चौदह

समृद्धि के मूल १६५

पंक्ति को शुद्ध करने वाले १६५

रहस्य विद्या १६५

श्राद्ध की महिमा १६६

श्राद्धकर्म : नियम १६७

खण्ड- पन्द्रह

पितृगण की सन्तुष्टि १६८

असुर द्वारा भक्षण १६६

ब्रह्मयज्ञ-विधि १६६

जल का दान २००

निमन्त्रण : ब्राह्मणों की संख्या २००

अध्याय- नौ : खण्ड- सोलह

पुत्र से यश २०१

स्वर्गधाम की प्राप्ति २०२

तीन ऋण २०३

श्रेष्ठ पुत्र : माहात्म्य २०३

अध्याय- दस : खण्ड- सत्रह

संन्यास आश्रम : नियम २०४

शालीन, यायावर २०५

संन्यास आश्रम २०५

दाढ़ी, मूंछ, केश कटाने का नियम २०६

कमण्डल २०६

उपवास, जलपान २०७

सायुज्य २०८

ब्रह्म हत्या से छुटकारा २०६

अग्निधूम का सेवन २१०

वाणी का संयम २११

संन्यास ग्रहण : विधि २१२

सावित्री का जाप २१३

वस्त्र त्याग २१३

खण्ड- अट्ठारह
दण्ड : संन्यासी २१३
पञ्चव्रत भैक्षचर्या २१४
पांच अग्नियों का आत्मा में वास २१५
संन्यासी का भोजन २१६
भोजन ग्रास २१६
अभक्ष्य २१७
भक्ष्य २१७
तीन व्रत २१८
प्रातः-सायं अग्निहोत्र २१८
वेद एवं मंत्रों की संख्या २१६
प्रश्न- तीन
अध्याय- एक : खण्ड- एक
वृत्ति, वृत्तिभेद २२१
चर्या २२२
यायावर : यज्ञ २२३
यज्ञीय नियम २२४
रतिकाल २२५
शारीरिक शुद्धि : उपाय २२५
अध्याय- दो : खण्ड- दो
षण्णिवर्तनी, कृषि कर्म, कौद्दाली २२६
कमण्डल २२७
सम्प्रक्षालन, समूहा, पालनी २२८
सिलोञ्छा, सिद्धेच्छा २२६
वान्या २३०
स्वर्ग प्राप्ति के उपाय २३०
अध्याय- तीन : खण्ड- तीन
वानप्रस्थ २३०
पचमानक : भेद २३०
सर्वारण्यका : भेद २३०
वैतुषिका २३२
पांच : अपचमानक २३२

प्रवृत्ताशिन २३२
मुखेनादायिन, तोयाहार, वायुभक्ष, निराहार २३३
ब्रह्म वैखानस २३३
तपस्या २३४
कषाय पदार्थ २३४
स्वर्ग प्राप्ति : लक्षण २३५
अध्याय- चार : खण्ड- चार
ब्रह्मचारी : प्रतिकूल नियम २३५
प्रायश्चित्त २३५
केश रखाव २३६
अध्याय- पांच : खण्ड- पांच
अश्वमेध, अवभृथ स्नान २३७
भोजन २३८
अघमर्षण का माहात्म्य २३८
अध्याय- छह : खण्ड- छह
यवागू भक्षण २३८
महत्त्व २४०
पाप दूर करने की प्रार्थना २४१
यवागू से लाभ २४२
अध्याय- सात : खण्ड- सात
कूष्माण्ड मन्त्रों का पाठ २४३
ब्रह्मचर्य पालन २४४
दूध सेवन २४५
अग्नि की परिचर्या २४६
अध्याय- आठ : खण्ड- आठ
महाहवि २४६
ब्राह्मण वचन २४६
चान्द्रायण व्रत २४६
विधि-विधान २५०
हवि का भक्षण २५०
यज्ञ विधि २५१
भोजन २५२

घृत की आहुतियां २५३
अपवित्रता २५४
स्थाली पाक २५५
अभिजित नक्षत्र : यज्ञ २५६
पिपीलिका, यवमध्य चान्द्रायण २५६
चान्द्रायण व्रत : लाभ २५७
सूर्य लोक की प्राप्ति २५७

अध्याय- नौ : खण्ड- नौ

अनश्नत्पारायण विधि २५७
वल्कल धारण २५८
अग्निहोत्र २५८
वेदपाठ : विस्मरण २५९
वेदाध्ययनं : बारह वार २५९
ब्रह्मभूत २६०
देवताओं तक पहुंचने की सीढ़ी २६१
ब्राह्ममुहूर्त २६१

अध्याय- दस : खण्ड- दस

पाप कर्म २६२
क्षीण-अक्षीण मतभेद २६२
पापमुक्ति : साधन २६३
वेद, जप, तपश्चर्या आदि का महत्त्व २६३
जीविका २६४
पाप दूर करने के साधन २६५
तप का काल २६५
कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, चान्द्रायण २६६

प्रश्न- चार

अध्याय- एक : खण्ड- एक

प्रायश्चित्त अनुष्ठान २६७
प्राणायाम २६७
प्राणायाम महत्त्व २६८
शूद्र का भोजन २६८
प्राणायाम : कब और कितना २६९

पातक : प्राणायाम २७०
विवाह योग्य कन्या २७०
ऋतुमती के दर्शन का दोष २७०
वेदोक्त रीति : कुमारी कन्या २७१
घोरपाप भ्रूणघ्नी २७२
प्राणायाम : जप २७२
योग का अभ्यास २७३
प्राणायाम की पूर्णता २७३
श्रेष्ठतम तप २७४

अध्याय- दो : खण्ड- दो

दोष के अनुसार प्रायश्चित्त २७४
तरत्समन्दीय ऋचा २७५
पापमुक्त होने की चर्या २७५
ब्रह्मचर्य उल्लंघन : प्रायश्चित्त २७६
उपपातकी २७६
शुद्धि : वरुणादेवता परक मन्त्र २७७
अघमर्षण-माहात्म्य २७८

अध्याय- तीन : खण्ड- तीन

कम चर्चित प्रायश्चित्त २७८
आचमन का महत्त्व २७६
पापदोष के उपाय २७६
ग्यारह अनुवाक् २८०

अध्याय- चार : खण्ड- चार

प्रायश्चित्त : विधि २८१

अध्याय- पांच : खण्ड- पांच

वेदोक्त कार्य : मनोकामनाएं २८२
इन्द्रिय दमन २८३
प्राजापत्य कृच्छ्रव्रत २८३
वालक के लिए कृच्छ्रव्रत २८४
अतिकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, सान्तपन कृच्छ्र २८५
गोमूत्र, गोवर आदि की सेवन विधि २८६
पञ्चगव्य २८६

पराक कृच्छ्र, चान्द्रायण व्रत — २८७
यतिचान्द्रायण — २८७
चन्द्रलोक की प्राप्ति — २८८
तुलापुमान व्रत — २८८
पतनीय दोष : मुक्ति के साधन — २८६
ब्रह्मकूर्च व्रत — २६०
शिक्षा किसे-किसे — २६०
वेदपारायण, महत्त्व — २६१
गायत्री मन्त्र माहात्म्य — २६१
व्रत — २६१

अध्याय- छह : खण्ड- छह

सप्तव्याहृतियां — २६२
मृगारेष्टि, पवित्रेष्टि आदि — २६२
पातक को दूर करने के उपाय — २६३
अखाद्यगत दोष दूर कैसे हों — २६३

अध्याय- सात : खण्ड- सात

पुण्यकर्मी ब्राह्मण — २६५
ब्राह्मण कैसा हो — २६५
हविकर्म — २६५
विभिन्न ऋचाओं का जाप — २६६
पाप मुक्ति के उपाय — २६७

अध्याय- आठ : खण्ड- आठ

लालच की निन्दा — २६७
किसका यज्ञ कराएं — २६८
पवित्र कर्म — २६८
प्रजापति : पापनाशक — २६८
गणहोम — २६६
महत्त्व — २६६
प्रजापति का धर्मशास्त्र — ३००
ब्रह्मलोक की प्राप्ति — ३००
घी-दूध या दही का भक्षण — ३०१
प्रारम्भिक पूजन की विधि — ३०१
[illegible] — ३०२-३०७

प्रश्न-एक

अध्याय-एक : खण्ड-एक

उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्।। १।।

उपदिष्टः प्रदर्शितः प्रतिवेदम् प्रतिशाखम्। अतीन्द्रियार्थप्रतिपादको नित्यो ग्रन्थराशिर्वेदः। तत्प्रतिपाद्यो धर्मः। यद्यप्येकैकस्यां शाखायां परिपूर्णान्यङ्गानि, तथाऽपि कल्पसूत्रान्तरैश्शाखान्तरोक्ताङ्गोपसंहारः क्रियत एव।। १।।

अनु०–वेद की हर शाखा में धर्म का उपदेश हुआ है।

तस्याऽनु व्याख्यास्यामः।।२।।

अन्विति। पश्चादित्यर्थः।। २।।

अनु०–इस ग्रन्थ में उसी के अनुसार हम धर्म की व्याख्या कर रहे हैं।

स्मार्तो द्वितीयः।।३।।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः। तदभिव्यञ्जको ग्रन्थः स्मृतिशब्देनोपचर्यते। स्मार्तः स्मृत्युपदिष्टः। अनुव्याख्याग्रहणं स्मार्तस्य धर्मस्य कल्प्यविधिमन्त्रार्थवादमूलत्व-प्रदर्शनार्थम्। तच्च 'धन्वन्निव प्रपा असि' 'तस्माच्छ्रेयासं पापीयान् पश्चादन्वेति' इत्यादि। अत एव प्रपागुर्वनुगमनादीनां कर्तव्यतामवगम्य तत्कर्तव्यता स्मृतिशास्त्रकारैरुपदिश्यते। अत एव द्वितीयः। एवं चाऽस्य श्रौतधर्म विरोधे सति दौर्बल्यं द्रष्टव्यम्। स च स्मार्तो धर्मः पञ्चविधो भवति-वर्णधर्मः, आश्रमधर्मः, वर्णाश्रमधर्मः, गुणधर्मः, निमित्तधर्मश्चेति। तत्राऽपि साधारणविशिष्टधर्मभेदेन द्वैविध्यं द्रष्टव्यम्। 'द्विजातीनामध्ययनम्' इत्यादिः साधारणधर्मो वर्णधर्मः। 'ब्राह्मणस्याऽधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः' इत्यादिर्विशिष्टः। तथा आश्रमधर्मो दयादिस्साधारणः। अग्नीन्धनादिर्विशिष्टः। तथा-वर्णाश्रमधर्मोऽप्यग्नीन्धनादिस्साधारणः। बैल्वदण्डधारणादिर्विशिष्टः। अभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञो रक्षणं गुणधर्मः। हिंसादिर्निमित्तधर्मः। उपादेयानुपादेयताकृतो गुणनिमित्तयोर्विशेषः।। ३।।

अनु०–वेदों में वर्णित धर्म के बाद स्मृति में वर्णित जो धर्म है, वह उसके बाद दूसरी श्रेणी में आता है।

विशेष–धर्म के पांच भेद बताए गए हैं–वर्ण, आश्रम, वर्णाश्रम, गुण और निमित्त धर्म। इनके भी दो-दो भेद होते हैं-साधारण और विशेष। विद्वानों का मानना है कि यदि स्मृति एवं वेद में विवाद हो, तो वेद को ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

तृतीयः शिष्टागमः।।४।।

धर्म इत्यनुषज्यते। शिष्टैरागम्यत इति शिष्टागमः। शिष्टैराचरित इत्यर्थः। तत्र प्रत्यक्षश्रुतिविहितो धर्मः प्रथमो धर्मः। विप्रकीर्णमन्त्रार्थवादमूलो द्वितीयः। तृतीयस्तु प्रलीनशाखामूलः। सर्वेषां वेदमूलत्वेऽपि दौर्बल्यमर्थविप्रकर्षाद्वेदितव्यम्।।४।।

अनु०–तीसरा धर्म है-शिष्टों द्वारा अपनाया जाने वाला आचरण।

अथशिष्टानाह

शिष्टाः खलु विगतमत्सराः निरहङ्काराः कुम्भीधान्या[1] अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः।।५।।

खल्विति वाक्यालङ्कारार्थो निपातः। मात्सर्यं परगुणाक्षमता। अहङ्कारः अभिजनविद्यानिमित्तो गर्वः। कुम्भीधान्याः दशाहं जीवनौपयिकधान्याः। अनेन च सन्तुष्टतोपलक्ष्यते। अलोलुपता वैतृष्ण्यम्। दम्भो लोकप्रत्ययाथ धर्मध्वजोच्छ्रायः। दर्पो धर्मातिरेकमूलोऽतिहर्षः। लोभः प्रसिद्धः। मोहः कृत्याकृत्यविवेकशून्यता। दम्भादिविवर्जिताः।।५।।

अनु०–जो किसी से द्वेष न करें, विनम्र हों, केवल दस दिन के लिए अन्न इकट्ठा करते हों, धन लोभी न हों, दम्भ, घमंड, लालच, मोह, क्रोध जैसे अवगुण जिनमें न हों, उन्हें शिष्ट माना जाता है।

[2]धर्मेणाऽधिगतो येषां वेदस्सपरिबृंहणः।
शिष्टास्तदनुमानज्ञाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः।।६।।

येषामिति कृद्योगे षष्ठी 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति। इतिहासपुराणाभ्यां सहितो वेदो ग्रन्थतोऽर्थतश्च यैरवगत इत्यर्थः। बृंहणग्रहणं स्मृतिसदाचारशास्त्राणामप्युपलक्षणार्थम्। श्रुतिप्रत्यक्षहेतवश्च श्रुतिरेव प्रत्यक्षं कारणमस्य धर्मस्येति येषां दर्शनमिति विग्रहः। अनेन मीमांसकाः कीर्तिताः। अत एव तदनुमानज्ञास्ते भवन्ति स्मार्तशिष्टागमयोश्श्रुत्यनुमानविद इत्यर्थः। एवं च शास्त्राधिगतो यो धर्मस्सोऽनुष्ठेय इत्यभिप्रायः।।६।।

---

१. मनु. ४/७

२. द्रष्टव्य मनु. १२/१०६

अनु०—जिसने इतिहास, पुराण, वेद का सांगोपांग अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो वेद को धर्म के प्रत्यक्ष कारण और अनुमान को जानता है, वह शिष्ट है।

तदभावे दशावरा परिषत्।।७।।

उक्तलक्षणशिष्टाभावे दशावरा परिषत्, तया यो विधीयते सोऽनुष्ठेय इत्यर्थः।।७।।

अनु०—ऐसे शिष्टविद न हों, तो उन लोगों की (विद्वान) परिषद् जो निर्णय दे, उसे धर्म का निर्णायक तत्व माना जाता है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

चातुर्वैद्यं विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः।
आश्रमस्थास्त्रयो विप्राः पर्षं देषा दशावरा।।८।।

चतस्र एव विद्याश्चातुर्वैद्यं तेन तद्विदो लक्ष्यन्ते। विकल्पी मीमांसकः। अङ्गं व्याकरणादि तज्ज्ञः। धर्मपाठकः तन्मूलिका तदर्थावगतिरिति पाठग्रहणम्। तदभिज्ञ इत्यर्थः। तान् विशिनष्टिआश्रमस्थास्त्रयो विप्राः अवानप्रस्थास्त्रयो गृह्यन्ते। वानप्रस्थानां पुनर्वनाधिवासत्वादनधिकारो धर्मोपदेशस्य। परिव्राजकोऽपि भिक्षार्थी ग्राममियादेव। तथा च गौतमः-'प्रागुपौत्तमात्त्रय आश्रमिणः' इति। विप्रा इति क्षत्रियवैश्ययोर्धर्मोपदेशान-धिकारप्रदर्शनार्थं विप्रग्रहणम्। 'ब्राह्मणो धर्मान् प्रब्रूयात्' इति वसिष्ठवचनाच्च। 'आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः' इति पाठे नैष्ठिकब्रह्मचारी गृह्यते। यथा धर्मस्कन्धब्राह्मणे ताननुक्रम्य 'सर्व एते पुण्यलोका भवति' इति। एवंगुणास्त्रय आश्रमिणो दशादवरा परिषद् भवति।।८।।

अनु०—इस प्रसंग में यह पद्य दर्शाते हैं—ऐसे दस लोग कौन हों - परिषद् में चार वेदविद् और एक-एक मीमांसक, वेदांगों का ज्ञातां, धर्मशास्त्र का पाठक और तीन आश्रमों के तीन ब्राह्मण हों। ऐसे दस लोगों की परिषद् धर्म के विवाद होने पर जो निर्णय दे, उसे माना जाए।

अथाऽनुकल्पमाह—

पञ्च वा स्युस्त्रयो वा स्युरेको वा स्यादनिन्दितः।
प्रतिवक्ता तु धर्मस्य नेतरे तु सहस्रशः।।९।।

सम्भवापेक्षो विकल्पः। अनिन्दितः पातकादिदोषरहितः। तृतीयो वा शब्दोऽपि शब्दस्याऽर्थे द्रष्टव्यः। आह च—

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्विचक्षणः। इति।।

अपिशब्दादेकेन न वाच्यम्। वक्ष्यति च 'बहुद्वारस्य धर्मस्य' इति। तु शब्दोऽवधारणार्थः।। ६।।

अनु०–परिषद् की संख्या घट भी सकती है। उसमें पांच या तीन सदस्य भी हो सकते हैं। यदि एक व्यक्ति जो पातक आदि दोषों से रहित हो, आचारवान हो, वह अकेला भी जो निर्णय दे, वह स्वीकार्य हो। परंतु दुराचारी चाहे वे हजारों की संख्या में हों, धर्म के विवाद में उनका निर्णय नहीं मानना चाहिए।

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशस्समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते।।१०।।

'नेतरे तु सहस्रशः' इति सामर्थ्ये सिद्धे सत्यारम्भादत्यन्तापद्यव्रतादीननुगृह्णाति। आह च–

जातिमात्रोपजीवी च कामं स्याद् ब्राह्मणब्रुवः।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथञ्चन।। १०।।

अनु०–व्रत रहित लोग, मन्त्र न जानने वाले, जाति का आश्रय लेकर जीविका चलाने वाले लोगों का समूह (भले ही वे हजारों में हों) परिषद् के योग्य नहीं होते।

यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणश्चाऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः।। ११।।

स्पष्टम्।। ११।।

अनु०–वेद के अध्ययन से विमुख ब्राह्मण लकड़ी के हाथी या चमड़े के वनावटी मृग की तरह होता है। ये वस्तुएं नाम मात्र ही जाति को धारण करने वाली होती हैं।

यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममजानतः।
तत्पापं शतधा भूत्वा वक्तॄन् समधिगच्छति।। १२।।

व्यवहारं प्रायश्चित्तादिकं वा यद्वदन्ति तमसा अन्धकारेणाऽऽविष्टा अजानतः अजानन्तः यस्मिन् पापकर्मणि एभिः प्रायश्चित्तं विहितमिति शेषः।। १२।।

अनु०–अज्ञान रूपी अंधकार में फंसे अधर्मी मूढ़ सौ गुना पाप का निपटारा करने के लिए जो नियम बनाते हैं, उससे वह पाप वढ़ जाता है और वह पाखंडी, ढोंगी अधर्मी के मत्थे चढ़ता है।

वहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः।
तस्मान्न वाच्यो ह्येकेन वहुज्ञेनाऽपि संशये।। १३।।

अनेकश्रुतिस्मृतिसदाचारप्रमाणकत्वाद्धर्मस्य वहुद्वारत्वम्। अत एव चाऽस्य

सूक्ष्मत्वं दुरनुगत्वं च। तथा हि–

शाखानां विप्रकीर्णत्वात् पुरुषाणां प्रमादतः।
नानाप्रकरणस्थत्वात् सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः।।
तस्मात् इत्युपसंहारः।।१३।।

अनु०–धर्म के कई दरवाजे हैं। पर वे सूक्ष्म और क्लिष्ट हैं। जब कभी धर्म पर विवाद हो तो सिर्फ एक व्यक्ति का निर्णय स्वीकार नहीं करना चाहिए। चाहे वह व्यक्ति विद्वान ही क्यों न हो।

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः।
क्रीडार्थमपि यद् ब्रूयुस्स धर्मः परमःस्मृतः।। १४।।

शिष्टानां प्राबल्यं प्रदर्शयितुं धर्मशास्त्राणि वेदाश्च रथायुधैरुपमीयन्ते।। १४।। शिष्टैर्हि वर्णाश्रमादयो व्यवस्थापिताः। तेषु पापं न लिप्यत इत्याह–

अनु०–धर्मशास्त्र रूपी रथ पर बैठने वाले, वेद रूपी तलवार को धारण करने वाले ब्राह्मण (द्विज) क्रीड़ा करते हुए भी जो कुछ निर्णय दें, उसे ही धर्म कहा जाता है। लेकिन यह केवल उन्हीं ब्राह्मणों के लिए हैं, जो ब्रह्मज्ञ और वेदविद होते हैं।

यथाऽश्मनि स्थितं तोयं मारुतोऽर्कः प्रणाशयेत्।
तद्वत्कर्तरि यत्पापं जलवत् संप्रलीयते।। १५।।

अथैनामधिनोऽप्यवस्थां परिज्ञाय प्रायश्चित्तं विधीयत इत्याह–

अनु०–हवा और सूर्य जैसे पत्थर पर गिरे पानी को सोख लेते हैं, उसका नामोनिशान मिटा देते हैं, उसी तरह आचारवान, शिष्टजन यदा-कदा भूल-चूक कर भी दें तो वह पानी के समान क्षीण हो जाता है।

शरीरं बलमायुश्च वयः कालं च कर्म च।
समीक्ष्य धर्मविद्बुद्ध्या प्रायश्चित्तानि निर्दिशेत्।। १६।।

शरीरं वातप्रकृतिकं पित्तप्रकृतिकमित्यादि। आयुः ज्ञानं अयतेर्गत्यर्थादौणादिकः उण्प्रत्ययः। वयः बाल्यादिलक्षणम्। कालः शीतोष्णादिलक्षणः। कर्म प्रायश्चित्तस्य निमित्तभूतं सानुबन्धं हिंसादि।।१६।।

अनु०–धर्मज्ञ और नीर-क्षीर विवेकी, शरीर, बल, आयु, काल और कर्म पर विचार करे, तब प्रायश्चित्त की व्यवस्था करे।

(खण्ड-एक सम्पूर्ण)

खण्ड-दो

पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरतः।।१।।

दक्षिणेन नर्मदामुत्तरेण कन्यातीर्थम्। उत्तरतस्तु दक्षिणेन हिमवन्तमुदग्विन्ध्यस्य। एतद्देशप्रसूतानां शिष्टानां परस्परं पञ्चधा विप्रतिपत्तिः विसंवादः 'यान् पदार्थान् अनुतिष्ठन्ति दाक्षिणात्याः न तानुदीच्याः। यानुदीच्या न तान् दाक्षिणात्याः' इति।।१।।

अनु०—दाक्षिणात्य एवं औदीच्य में पांच विषयों पर कुछ मतभेद हैं।

यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामः।।२।।

निगदव्याख्यातमेतत्।।२।।

अनु०—जो प्रमुख आचार-विचार दक्षिण देश में चलते हैं, यहां उन्हीं नियमों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

यथैतदनुपेतेन सह भोजनं स्त्रिया सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्वसृदुहितृगमनमिति।।३।।

मातुलदुहितृगमनं पितृष्वसृदुहितृगमनमिति सम्बन्धः। ऋज्वन्यत्।।३।।

अनु०—जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो, उसके साथ भोजन करना वर्जित है। पत्नी के साथ भोजन न करें। वासी भोजन न करें। मामा और बुआ की बेटी से विवाह वर्जित है।

अथोत्तरतः ऊर्णाविक्रयः शीधुपानमुभयतोदद्भिर्व्यवहारः आयुधीयकं समुद्रसंयानमिति।।४।।

ऊर्णायास्तद्विकारस्य च कम्बलादेर्विक्रयः। उभयतो दन्ता अश्वादयः। व्यवहारः विक्रयादिः आयुधीयकं शस्त्रधारणम् समुद्रसंयानं नावा द्वीपान्तरगमनम्।।४।।

अनु०—ऊन का कारोबार, मदिरा सेवन, जिन पशुओं के ऊपर-नीचे दाँत होते हैं, उनको बेचना, अस्त्र-शस्त्र का धंधा एवं समुद्र यात्रा करना वर्जित है। ये रीति रिवाज उत्तर में प्रचलित हैं।

इतरदितरस्मिन् कुर्वन् दुष्यतीतरदितरस्मिन्।।५।।

इतरत् अनुपेतेन सह भोजनादि, इतरस्मिन्नुत्तरापथे कुर्वन् दुष्यति तत्रत्यैश्शिष्टैः दूष्यत इत्यर्थः। एवमूर्णाविक्रयादीनि कुर्वन्नितरत्र। तस्मादनुपेतेन सह भोजनादीनि दाक्षिणात्यैश्शिष्टैराचर्यमाणत्वात् दोषाभावाच्च तैरेव कर्तव्यानि। ऊर्णाविक्रयादीनि चोदीच्यैरेव। तदेतद्भट्टकुमारिलैर्निरूपितम्

(१) स्वमातुलसुतां प्राप्य दाक्षिणात्यस्तु तुष्यति।। इति।।

तथा हि-अहिच्छत्रब्राह्मण्यस्सुरां पिबन्ति।।५।।

ननु किमिति व्यवस्था? यावता मूलश्रुतिरेषामविशेषेण कल्प्यते यथा [1]होलाकादीनाम्। यथा वा बौधायनीयं धर्मशास्त्रं कैश्चिदेव पाठ्यमानं सर्वाधिकारं भवति। गौतमीयगोभिलीये छन्दोगैरेव पठ्येते, वासिष्ठं तु बह्वचैः, अथ च सर्वाधिकाराणि। यथा वाऽन्यानि शास्त्राणि यथा वा गृह्यशास्त्राणि सर्वाधिकाराणि, तद्वदनुपनीतसहभोजनादीन्यपि समानि कस्मान्न भवन्तीत्याशङ्क्याऽऽह–

अनु०–एक प्रदेश में प्रचलित रीति, रिवाज, प्रथाएं अन्य प्रदेशों में दोष जनक हो सकती हैं।

तत्र तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यात्।।६।।

एवं व्यवस्थितविषयैव मूलश्रुतिः कल्प्यते। किन्नामाऽनुपपत्तिर्न कल्पयतीत्यभिप्रायः। तस्मात्व्द्यवस्थितविषयमेवाऽनुष्ठानं तद्वर्जनं च।।६।।

अनु०–विशेष प्रकरणों में उसी प्रदेश के नियम को प्रामाणिक मानना चाहिए।

मिथ्यैतदिति गौतमः।।७।।

गौतमग्रहणमादरार्थम्, नाऽऽत्मीयं मतं पर्युदसितुम्। स ह्येवमाह- 'देशजातिकुलधर्माश्चाऽऽम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम्'। तद्विरुद्धो देशादिधर्मो न कर्तव्यः। तद्विरुद्धश्चाऽयम्। आह च गृत्समदः-'अनुपनीतसहभोजने द्वादशरात्रमुच्छिष्टभोजने द्विगुणम्' इति। प्रायश्चित्तविधानान्निषेधः कल्प्यते। तथा 'स्त्रिया सह भोजने त्रिरात्रोपवासो घृतप्राशनं चेति'। तथा 'पर्युषितभोजने अहोरात्रोपवासः' इति संवर्तः। तथा मातुलदुहितृगमनेऽप्याह-

सखिभार्यां समारुह्य मातुलस्याऽऽत्मजां तथा।
चान्द्रायणं द्विजः कुर्याच्छ्वश्रूमपि तथैव च।।

तथा विवाहेऽपि–

पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुतः।।

आह च–

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च।
मातुश्च भ्रातुराप्तां च गत्वा चान्द्रायणं चरेत्।।

एवमूर्णाविक्रयादिष्वप्याम्नायविरोधः प्रसिद्धः। ऊर्णा तावदपण्येषु पठिता। शीधुपाने गौतमः-'नित्यं मद्यमपेयं ब्राह्मणस्य' इति। तथोभयदन्तव्यवहारे वसिष्ठः-'अश्वलवणमपण्यम्' इति प्रकृत्य 'ग्राम्यपशूनामेकशफाः केशिनश्च' इत्याह।

---

१. होलाकादयो देशविशेषेष्वनुष्ठीयमाना अपि न व्यवस्थाविषयाः। किन्तु सर्वैरप्यनुष्ठेया इति व्यवस्थापितं होलाकाधिकरणे पूर्वमीमांसायाम्। (१.३.८) होलाका नाम फाल्गुनपौर्णमास्यां क्रियमाण उत्सवविशेषः।

तथा च श्रुतिः-'य उभयादत्प्रतिगृह्णात्यश्वं वा पुरुषं वा वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्' इति प्रायश्चित्तम्। तथा आयुधीयकेऽपि 'परीक्षार्थोऽपि ब्राह्मण आयुधं नाऽऽददीत' इति। स्वयमेव पतनीयेषु समुद्रसंयान वक्ष्यति। एवमादीन्यालोच्याऽऽम्नायैर विरुद्धाः प्रमाणमित्युक्तम्। अतो 'मिथ्यैतदिति गौतमः' इत्युपपन्नं भवति।। ७।।

अनु०–मगर गौतम (धर्मसूत्रकार) इसे सत्य नहीं मानते।

उभयं चैव नाऽऽद्रियेत।। ८।।

च शब्दः पक्षव्यावृत्त्यर्थः। अनुपेतादि सहभोजनमूर्णाविक्रयादि चोभयमपि न कर्तव्यमित्यभिप्रायः।। ८।।

अनु०–दोनों ही प्रदेशों के विशेष रीति-रिवाजों का अनुकरण न करें।

शिष्टस्मृतिविरोधदर्शनात् शिष्टागमविरोधदर्शनाच्च।। ६।।

शिष्टागमविरोधस्तावत् स्वयमुदितः 'पञ्चधा विप्रतिपत्तिः' इत्यत्र। स्मृतिविरोधश्चाऽनुपनीतादिसहभोजने प्रायश्चित्तविधानात्। शिष्टस्मृतिविरोधः मनुविरोधः। शिष्टो हि मनुः। तद्विरोधश्च। तत्स्मृतिः शिष्टस्मृतिः। शिष्टस्मृतिविरोधः सोऽपि दर्शित एव। एकसूत्रतां त्वेके मन्यन्ते। यवा होलाकादयो व्यवस्थितदेशविषया अप्यव्यवस्थिताः कर्तव्याः। इत्थमिमेऽपीत्यस्य चोद्यस्य व्यवस्थितदेशश्रुत्यनुमानमुक्तं 'तत्र तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यात्' इति तत्राह-'उभयं चैव नाऽऽद्रियेत शिष्टस्मृतिविरोधदर्शनात्' इति। स च विरोध उक्तः। तस्मादविरुद्धत्वाद्धोलाकाद्यनुष्ठानं सर्वाधिकारकम्। इह विरोधादनुपनीतसहभोजनादिवर्जनं सर्वाधिकारमिति विशेषः। आहुश्च न्यायविदः 'विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्' इति।। ६।।

अनु०–ये आचार-विचार शिष्टों की स्मृतियों से विरुद्ध एवं परम्परा से विपरीत हैं।

प्रागदर्शनात् प्रत्यक्कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुदक्पारियात्रमेतदार्यावर्तं तस्मिन् य आचारस्स प्रमाणम्[1]।। १०।।

तत्राऽपि शिष्टस्मृतिविरोधेऽनपेक्ष्यमेव।। १०।।

अनु०–आर्यावर्त में जो आचरण प्रसिद्ध हैं, उन्हें प्रमाण मानना चाहिए। सरस्वती के अदृश्य स्थान से पूरब की ओर कालकवन नामक जंगल से पश्चिम हिमालय से आगे पारियात्र पर्वत से उत्तर का क्षेत्र आर्यावर्त कहा गया है।

गङ्गायमुनयोरन्तरमित्येके।। ११।।

आर्यावर्तत्वे विकल्पः।। ११।।

---

१. मनु. २/२२

अनु०—परन्तु कुछ आचार्य गंगा-यमुना के मध्य भाग को आर्यावर्त कहते हैं।

अथाऽप्यत्र भाल्लविनो गाथामुदाहरन्ति।। १२।।

आर्यावर्तान्तरप्रदर्शनार्थं भाल्लविनः छन्दोगविशेषाः। गाथा श्लोकः।।१२।।

अनु०—इस प्रकरण में भाल्लविन् शाखा के अनुयायी एक गाथा प्रकट करते हैं।

पश्चात् सिन्धुर्विसरणी सूर्यस्योदयनं पुरः।
यावत् कृष्णो विधावति तावद्धि ब्रह्मवर्चसमिति।। १३।।

कृष्णः कृष्णमृगः। ब्रह्मवर्चसं अध्ययनज्ञानानुष्ठानाभिजनसम्पत्। म्लेच्छदेशस्त्वतः परम्।। १३।।

अनु०—पश्चिम दिशा में अदृश्य होने वाली नदी और जो पूर्व में दिखाई दे जाए, इस बीच वाले स्थान तक कृष्ण मृग दिखाई देता है, वहां ब्रह्मतेज रहता है।

अवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः।
उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः।। १४।।

स्त्रीषु व्यवस्था नाऽस्तीति यावत्। अवन्त्यादिषु कल्याणाचारो नाऽस्ति।। १४।।

अनु०—अवन्ति, अंग, मगध, सुराष्ट, दक्षिणापथ, उपावृत, सिन्धु, सौवीर वर्णसंकर होते हैं।

आरट्टान् कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् बंगान् कलिङ्गान् प्रानूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वपृष्ठया वा।। १५।।

पुनस्तोमो नाम एकाहः। इष्टप्रथमसोमस्यैव प्रायश्चित्तमेकाहकाण्डोक्तं द्रष्टव्यम्। 'यदि पद्भ्यामेव विशेषं कुर्वीतैष ह वै पद्भ्यां पापं करोत्यारट्टान् कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् वा गच्छति' इति। सर्वपृष्ठेष्टिस्त्वाहिताग्निमात्रस्य। सा च 'य इन्द्रियकामो वीर्यकामस्स्या' दित्यत्र विहिता। अनाहिताग्नेस्तु वक्ष्यति-'प्रतिषिद्धदेशगमन' इति।। १५।।

अनु०—आरट्ट, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, बंग (बंगाल), कलिंग (उड़ीसा) और प्रानून की सीमा में प्रवेश करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रवेशक पुनस्तोम या सर्वपृष्ठा अनुष्ठान करें।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिङ्गान् प्रपद्यते।
ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः।। १६।।

वैश्वानारं हविः वैश्वानरेष्टिः। एषा च कलिङ्गगमने सर्वपृष्ठया सह विकल्प्यते। अथ वा-आरट्टादिषु न गमनादेव प्रायश्चित्तं किं तर्हि सम्भाषणसहासनादिभिरपि। कलिङ्गे पुनर्गमनमात्रमिति विशेषः।। १६।।

अनु०—इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि कलिंग की यात्रा करने वाला पैरों से पापकर्म करता है। वह इस पाप की निवृत्ति के लिए वैश्वानरी इष्टि करे।

बहूनामपि दोषाणां कृतानां दोषनिर्णये।
पवित्रेष्टिं प्रशंसन्ति सा हि पावनमुत्तममिति।।१७।।

निर्णये नितरां नये अपनोदने। पवित्रेष्टिश्च यज्ञप्रायश्चित्तेषु प्रसिद्धा।।१७।।

अनु०—बहुत से दोष अथवा पापकर्म हो जाने पर पवित्रेष्टि का विधान है। इसे सबसे अधिक पवित्र करने वाली इष्टि माना जाता है। इसकी बहुत महत्ता प्रकट की गई है।

वैश्वानरीं व्रातपतीं पवित्रेष्टिं तथैव च।
ऋतावृतौ प्रयुञ्जानः पापेभ्यो विप्रमुच्यते पापेभ्यो विप्रमुच्यत इति।।१८।।

पवित्रेष्ट्याः पूर्वत्र ग्रहणं प्रशंसार्थम्। इह तु ऋतावृताविति कालविधानार्थम्। आसामेकैकस्या एव प्रयोगः। द्विरुच्चारणमादरार्थं विशेषज्ञापनार्थं वा।। १८।।

अनु०—वैश्वानरी, व्रातपती और पवित्र नामक इष्टियां प्रत्येक ऋतु में करनी चाहिए। ऐसा करने से इष्टिकर्ता समस्त पापों से छूट जाता है।

(खण्ड-दो सम्पूर्ण)

खण्ड-तीन

ब्रह्मचर्यमुपायच्छेत् गुरुशुश्रूषणं तथा।
समिद्भैक्षगुरूक्तीनां प्रायश्चित्तं विधीयते।।

अथ ब्रह्मचर्यं प्रस्तूयते—तच्च समिदाधानं भिक्षाचरणमाचार्योक्तकरणं स्वाध्यायाऽध्ययनं चेति। तच्चैतत् 'ब्राह्मणो वै ब्रह्मचर्यमुपयच्छंश्चतुर्धा भूतानी' त्यत्र स्पष्टीकरिष्यति। तत्कियन्तं कालं चरितव्यमित्यत आह—

अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि पौराणं वेदब्रह्मचर्यम्।।१।।

पुरातनं पुराणं पौराणं कृतयुगपुरुषचरितम्। किं तत्? वेदस्वीकरणार्थं ब्रह्मचर्यं उपनयनात्प्रभृत्यष्टाचत्वारिंःशद्वर्षपरिमितं च। तदिदानीन्तनैरपि कर्तव्यमिति वाक्यशेषः। यद्वा-पौराणं पुराणैर्मन्वादिभिर्दृष्टमाचरितं च। अथ वा अनादित्वात् पुराणो वेदः तत्र भवं पौराणम्। यद्वा प्रसिद्धेतिहासपुराणप्रभवम्।।१।।

अनु०—पूर्वजों ने वेदों के अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम का विधान किया है। उन्होंने इस आश्रम की अवधि अड़तालीस वर्ष बताई है।

चतुर्विंशतिं द्वादश वा प्रतिवेदम्।।२।।

वर्षाणीत्यनुवर्तते। वाशब्दश्च प्रत्येकमभिसम्बध्यते।।२।।

अनु०–हर वेद के अध्ययन के लिए चौबीस अथवा बारह वर्ष की अवधि तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे।

'संवत्सरावमं वा प्रतिकाण्डम्।।३।।

प्राजापत्यादीनां पञ्चानामपि काण्डानामेकैकस्मिन् काण्डे संवत्सरावमं वा संवत्सरावधिकमित्यर्थः। प्रतिशब्दो वीप्सार्थः।।३।।

अनु०–प्रत्येक कांड (अध्याय) का अध्ययन एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर करे।

ग्रहणान्तं वा।।४।।

यावता कालेन वेदस्वीकरणं भवति तावन्तं कालम्। एते च विकल्पास्सामर्थ्यापेक्षया द्रष्टव्याः। एतदुक्तं भवति- यावद्वेदस्वीकरणं तदर्थावबोधश्च न जायते तावन्नाऽऽश्रमान्तर-प्रवेशाधिकार इति। तावदधीतवेदैराश्रमान्तरप्रवेशः कायः, स त्वधीतवेदाविप्लुतब्रह्मचर्येण च कार्यः।

आह च–
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्।। इति।।

तथा च श्रुतिः-'आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाऽभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे' इत्यादि।।४।।

अनु०–या जब तक वेदों का अध्ययन पूरा न हो जाए, तब तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करे।

जीवितस्याऽस्थिरत्वात्।।५।।

पौराणिकादिवेदब्रह्मचर्यचरणं न कार्यम्, श्रौतस्य कर्मणोऽग्निहोत्रादेर्विच्छेदप्रसङ्गात्। किमिति विच्छेदः जीवितस्याऽस्थिरत्वात्।।५।।

अनु०–यह आवश्यक है, क्योंकि जीवनकाल निश्चित नहीं है। कब क्या हो जाए? यह कौन जानता है ?

कृष्णकेशोऽग्नीनादधीतेति श्रुतिः।।६।।

अनया श्रुत्या विरोधात्स्मार्तानां पूर्वेषां पक्षाणां त्यागः।।६।।

अनु०–व्यक्ति वृद्धावस्था से पूर्व काल तक यज्ञ-यागादि करता रहे। ऐसा वेदों में बताया गया है।

नाऽस्य कर्म नियच्छन्ति किञ्चिदा मौञ्जिबन्धनात्।
वृत्त्या शूद्रसमो ह्येष यावद्वेदेषु जायत इति।।७।।

प्रायशो नियमरूपत्वाद्विधीनां नियच्छन्तीत्युक्तम्। तथा च गौतमः- 'यथोपपातमूत्रपुरीषो भवती'ति। ननु किमिति तस्य धर्मानधिकारः? यावता सोऽपि त्रैवर्णिक एव। सत्यम्, तथाऽपि वृत्त्या शूद्रसमो ह्येषः। वृत्तिर्वर्तनमाचारः। तथा च गौतमः-प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्ष' इति। वेदजननमस्योपनयनम्। ननु प्रागुपनयनाच्छूद्रसम इत्यत्राऽतिदेशान्मधुपानादिष्वप्यदोषस्स्यात्। नैतदेवम्, शूद्रसम इत्यतिदेशान्न स्वयं शूद्रः, ततश्च च स्वजात्याश्रयधर्मनिवृत्तिर्भवति। जात्याश्रयश्च मधुपानादिप्रतिषेधः 'मद्यं नित्यं ब्राह्मण' इत्यादिस्मृतेः। अत्र पूर्वेणाऽर्धेन विध्यभावमाह। उत्तरेण च प्रतिषेधाभावम्।।७।।

अनु०—धर्माचार्यों का मानना है जिस बालक का उपनयन संस्कार न हुआ हो वह यज्ञ, यागादि से कर्मों के बंधन मुक्त होता है। वह पुनः वेद के द्वारा जब तक जन्म न ले तब तक वह शूद्रवत् समझा जाता है।

गर्भादिस्सङ्ख्या वर्षाणां तदष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत्[1]।।८।।

तदष्टमेषु गर्भाष्टमेष्वित्यर्थः। 'छन्दोवत्सूत्राणी'ति व्यत्ययेन परस्मैपदम्। यद्यपि गर्भादिस्सर्वोऽप्युपनयनस्य कालः, तथाऽपि प्राक्पञ्चमादसामर्थ्यान्निवृत्तिः पञ्चम प्रभृतिरिष्यत एव 'पञ्चमे ब्रह्मवर्चसकामः' इत्यादिश्रुतितस्तदादिरेव गृह्यते।।८।।

अनु०—उपनयन संस्कार के समय वर्ष की गणना गर्भ काल से होती है। ब्राह्मण बालक का उपनयन गर्भसमय से आठवें साल में करने का विधान है।

त्र्यधिकेषु राजन्यमुपनयीत।।९।।

गर्भैकादशेष्विति यावत्।।९।।

अनु०—क्षत्रिय बालक का उपनयन संस्कार गर्भ काल से ग्यारहवें वर्ष में करें।

तस्मादेकाधिकेषु वैश्यम्।।१०।।

गर्भद्वादशेष्वित्यर्थः।।१०।।

अनु०—क्षत्रिय से एक वर्ष अधिक गर्भकाल समय में वैश्य पुत्र का उपनयन संस्कार होना चाहिए।

वसन्तो ग्रीष्मश्शरदित्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण।।११।।

उदगयनमात्रेऽपि केचिदिच्छन्ति। आह चाऽऽश्वलायनः-'उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः' इति। तस्मादुदगयनेऽपि योग्य नक्षत्रमारभेत।

---

१. मनु. २/३७

तदुपनयनं कर्तव्यम्। अथ कस्माद्वसन्तादावुपनयनोपसंहारो न भवति? उच्यते-उदगयन-शब्दानर्थक्यप्रसङ्गान्नोपसंहारो युक्तः। उदगयन एव हि वसन्तो नाऽन्यत्र। तस्माद्वसन्तेऽप्युपनयनं कर्तव्यम्। वसन्तादिश्रुतिः किमर्था? विशेषज्ञापनार्था। अतश्च शुक्रास्तमयादिविरोधे सत्यपि वसन्ते कर्तव्यमिति वाक्यार्थः।। ११।।

अनु०—इनके लिए अलग-अलग ऋतुओं का विधान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक के लिए क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म और शरद् काल उपयुक्त माना गया है।

गायत्रीत्रिष्टुब्जगतीभिर्यथाक्रमम्।। १२।।

उपनयीतेति शेषः।। १२।।

अनु०—भिन्न-भिन्न वर्णों के बालकों का भिन्न-भिन्न मन्त्रों से उपनयन संस्कार करने का विधान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती मन्त्र से संस्कार होना चाहिए।

आषोडशादाद्वाविंशादाचतुर्विंशादित्यनात्यय एषां क्रमेण।। १३।।

अनात्ययः अनतिक्रमः उपनयनकालस्य।। १३।।

अनु०—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए क्रमशः गर्भकाल से सोलहवें, बाइसवें और चौबीसवें वर्ष पर्यन्त का समय उपनयन के लिए निर्दिष्ट है। इस अवस्था तक उपनयन संस्कार हो सकता है।

मौञ्जी धनुर्ज्या शाणीति मेखलाः।। १४।।

एषां क्रमेणेत्यनुषज्यते। मौञ्जी ब्राह्मणस्य मेखलेत्यादि।। १४।।

अनु०—ब्राह्मण मूंज, क्षत्रिय धनुष की डोरी एवं वैश्य पटसन की मेखला धारण करे।

कृष्णरुरुबस्ताजिनान्यजिनानि।। १५।।

एषां क्रमेण। अजिनशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। कृष्णाजिनं ब्राह्मणस्येत्यादि। पुनरजिनग्रहणात् कुशशरजातिकं वा उत्तरीयं स्मृत्यन्तराद्वेदितव्यम्। न त्वेवाऽनुत्तरीयस्स्यादित्यभिप्रायः।। १५।।

अनु०—वर्ण के अनुसार काले मृग, चितकबरे मृग और बकरे का चर्म रूप में धारण करना चाहिए।

मूर्धललाटनासाग्रप्रमाणा याज्ञिकस्य वृक्षस्य दण्डाः।। १६।।

एषां क्रमेणेत्यनुषज्यते। याज्ञिकवृक्षविशेषाः पलाशादयो गृह्य एवोक्ताः। तेषां मध्ये प्रतिगृह्णीयादीप्सितं दण्डम्।। १६।।

अनु०—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य क्रमशः अपने-अपने सिर, ललाट एवं नाक के अग्र भाग तक ऊंचा दंड धारण करे।

भवत्पूर्वां भिक्षामध्यां याच्ञान्तां चरेत् सप्ताक्षरां क्षां च हिञ्च न वर्धयेत्।।१७।।

भिक्षामन्त्रं व्यक्तमेवोच्चरेत् भवच्छब्दपूर्वां भिक्षाशब्दमध्यां याञ्चाप्रतिपादकशब्दान्तां सप्ताक्षरां चरेत्। एवं हि 'भवति भिक्षां देहि' इति सम्पन्नो भवति। तत्र च क्षाहिशब्दौ न वर्धयेत् नोच्चैराचक्षीतेत्यर्थः। वचने अवचने कण्वनिपातः (?)। उच्चैराचक्षीतेति विधिर्गम्यते। यद्वा ओदनादिदेयद्रव्यभेदे दातृभेदे च न वर्धयेत्। द्विवचनबहुवचन प्रयोगो न कर्तव्य इत्यर्थः। एवमुच्चारणमदृष्टार्थं भवति।।१७।।

अनु०—भिक्षाटन करते समय वाक्य के आरम्भ में 'भवत्' मध्य में 'भिक्षा' एवं याचना वाचक शब्द को अंत में रखते हुए सात अक्षर वाला वाक्य बोले।

भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदन्त्यां वैश्यस्सर्वेषु वर्णेषु।।१८।।

ब्राह्मणग्रहणं वर्णान्तरार्थमनुवादः। वर्णग्रहणेनैव सार्ववर्णिकभैक्षाचरणे सिद्धे सर्वग्रहणात् प्रकृतिविषयमिति गम्यते। प्रकृताश्च त्रैवर्णिकाः ततश्च पर्युदस्तश्शूद्रः। ननु प्रतिलोमपर्युदासार्थः स किमिति न भवति? भवतु यदि शूद्रान्नभोजनप्रतिषेधपराणि वाक्यानि न स्युः, सन्ति हि तानि।।१८।।

अनु०—ब्राह्मण भिक्षाटन के समय 'भवत्' शव्द का सर्वप्रथम उच्चारण करे। क्षत्रिय और वैश्य 'भवत्' का प्रयोग क्रमशः बीच एवं अंत में करे। ब्रह्मचारी को सभी वर्ण वालों से भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

ते ब्राह्मणाद्यास्स्वकर्मस्थाः।।१९।।

स्वकर्मसु प्रसिद्धाः। तथा चाऽऽह गौतमः-'सार्ववर्णिकं भैक्षाचरणमभिशस्तपतितवर्जमि' ति। ननु 'द्विजातिषु स्वकर्मस्थेषु' इति सूत्रयितव्ये किमिति सूत्रद्वयारम्भः? सत्यम्, अयं ह्याचार्यो नातीव ग्रन्थलाघवप्रियो भवति। अथवा आरम्भसामर्थ्यादिव प्रशस्ताभावे सत्यप्रशस्तद्विजातिष्वपि न दोष इति गम्यते।

आह च मनुः—

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु।
ब्रह्मचर्याहरेद् भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्।।
सर्वं हि विचरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे।
गौतमीयेऽपि सर्ववर्णग्रहणमप्रशस्तपरिग्रहार्थमेव।।१९।।

अनु०—ब्रह्मचारी सभी जातियों से भिक्षा ग्रहण करे। लेकिन वह ध्यान रखे कि जिनसे भिक्षा ग्रहण कर रहा है, वे अपने-अपने वर्णों के अनुकूल कार्य करते हैं या नहीं।

सदाऽरण्यात्समिध आहृत्याऽऽदध्यात्।।२०।।

अग्नाविति शेषः। अरण्यग्रहणं ससमित्कदेशप्रदर्शनार्थम्।।२०।।

अनु०—ब्रह्मचारी प्रतिदिन अरण्य से यज्ञ के लिए समिधाएं लाए।

सत्यवादी ह्रीमाननहङ्कारः।।२१।।

स्यादिति शेषः।।२१।।

अनु०—ब्रह्मचारी सत्य बोले, ह्री युक्त हो, और अहंकार न करे।

पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी।।२२।।

गुरोस्स्यादिति शेषः।।२२।।

अनु०—ब्रह्मचारी प्रातःकाल गुरु से भी जल्दी उठे और रात में गुरु के सो जाने के बाद ही सोए।

सर्वत्राऽप्रतिहतगुरुवाक्योऽन्यत्र पातकात्।।२३।।

गुरोर्वाक्यप्रतिघातः तदर्थाकरणं विलम्बनं वा। सोऽत्र दृष्टादृष्टार्थेषु कर्मसु। यद्वा विद्याग्रहणात् प्रभृत्यूर्ध्वं च। अन्यत्र पातकात् पतनीयात् यस्मिन् गुरूक्तकर्माणि कृते ब्रह्महत्यादिना पतितो भवति तद्वर्जयेदित्यभिप्रायः।।२३।।

अनु०—गुरु के आदेशों को विनम्रता से स्वीकार करे। यदि गुरु कोई अनुचित कार्य करने को कहे, तो उसे न करे।

यावदर्थसम्भाषी स्त्रीभिः[1]।।२४।।

बहुभाषणादतिप्रसङ्गस्सम्भवेदिति।।२४।।

अनु०—ब्रह्मचारी स्त्रियों से कम से कम जितने में काम चल सके, उतना ही वार्तालाप करे।

नृत्तगीतवादित्रगन्धमाल्योपानच्छत्रधारणाञ्जनाभ्यञ्जनवर्जी।।२५।।

वादित्रं पटहादि, गन्धश्चन्दनादि, माल्यं पुष्पादि, गन्धादिषु च त्रिषु धारणशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते गन्धधारणमित्यादि। उपानद्ग्रहणं पादुकाया अप्युपलक्षणार्थम्। अञ्जनमिक्ष्णोः। अभ्यञ्जनं शिरसि।।२५।।

---

१. आप. ध. सू. १/३/१६

अनु०—वह नाच, गान, वादन, इत्र आदि का सेवन न करे। माला-जूते, छाते के सेवन से बचे। आंखों में काजल (अंजन-सुरमा) न लगाए और शरीर को सजाने का प्रयास न करे।

दक्षिणं दक्षिणेन सव्यं सव्येन चोपसंगृह्णीयाद्दीर्घमायुः स्वर्गं चेच्छन्।। २६।।

दक्षिणं पादं दक्षिणेन पाणिना स्पृशेत्। इतरं चेतरेण। तदभिमुख एव।

आह च—

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।।

दीर्घमायुर्ध्यायिन् स्वर्गं च।। २६।।

अनु०—ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह दाएं हाथ से गुरु के दाएं पैर को और बाएं हाथ से उनके बाएं पैर को स्पर्श करते हुए उन्हें प्रणाम करें। ऐसा करने से ब्रह्मचारी की आयु बढ़ती है, उसे स्वर्ग (सुख विशेष) मिलता है।

'असावहं भो' इति श्रोते संस्पृश्य मनस्समाधानार्थम्।। २७।।

उपसंग्रहणवेलायां च स्वश्रोत्रसंस्पर्शः कर्तव्यः चित्तसमाधानार्थम्। तत्र मन्त्रः-'असावहं भोः' इति। अस्मीति वाक्यसमाप्तिः। असावित्यात्मीयनामग्रहणम्। गोविन्दशर्मा नामाऽस्मीति प्रयोगः।।२७।।

अनु०—ब्रह्मचारी चित्त को स्थिर कर गुरु को प्रणाम करे। चित्त स्थिर रखने के लिए कानों को छूए और अपने 'असौ अहम्' (अपना नाम बोले) भोः का उच्चारण करे।

अधस्ताज्जान्वोरा पद्भ्याम्।। २८।।

उपसंगृह्णीयादिति शेषः।। २८।।

अनु०—वह घुटनों के नीचे पैरों को छूते हुए गुरु को प्रणाम करे।

नाऽऽसीनो नाऽऽसीनाय न शयानो न शयानाय नाऽप्रयतो नाऽप्रयताय।।२६।।

उपसंगृह्णीयादित्यनवर्तते। अप्रयतोऽशुचिः।। २६।।

बैठे बैठे—ब्रह्मचारी बैठे गुरु को प्रणाम न करे। स्वयं लेटा हो, तो भी लेटे हुए गुरु को प्रणाम न करे। स्वयं अशुद्ध हो और गुरु भी अपवित्र हो तो भी प्रणाम करना मना है।

काममन्यस्मै साधुवृत्ताय गुरुणाऽनुज्ञातः।। ३०।।

गुरोरन्यस्मै साधुवृत्ताय अनुष्ठानपराय विदुषे गर्वनुज्ञया तत्सन्निधावप्यु-

पसंगृह्णीयात्। कामग्रहणान्निवृत्तिरपि प्रतीयते। असन्निधौ तु विनाऽप्यनुज्ञया कुर्यादेव।।३०।।

अनु०–गुरु की अनुमति से ब्रह्मचारी अन्य विद्वानों को भी चरण छूकर प्रणाम कर सकता है।

शक्तिविषये मुहूर्तमपि नाऽप्रयतस्स्यात्[1]।।३१।।

शक्ताविति वक्तव्ये विषयग्रहणं ब्रह्मचारिणोऽन्यस्य वा प्राप्त्यर्थम्। स्नाननिमित्ते स्नायादेव, आचमननिमित्तेऽप्याचामेदिति।।३१।।

अनु०–ब्रह्मचारी को स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिए। उसे अशुचिता से दूर रहने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

समिद्धार्युदकुम्भपुष्पान्नस्तो नाऽभिवादयेद्यच्चाऽन्यदप्येवं युक्तम्।।३२।।

समिद्धारी समित्पाणिः। उदकुम्भादिषु हस्तशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। एवं युक्तं पितृदेवताग्निकार्यादिषु व्यापृतो व्यापृतमपि नाऽभिवादयेत्।।३२।।

अनु०–ब्रह्मचारी के हाथ में यदि समिधा, पानी का घड़ा, फूल अनाज हो तो वह गुरु को प्रणाम न करे। कार्य में व्यस्त हो, तो भी प्रणाम न करे। अर्थात् एकाग्र मन से गुरु का अभिवादन करे।

न समवायेऽभिवादनमत्यन्त्तशः।।३३।।

अत्यन्तशस्समवायेऽत्यन्तसमीपे स्थित्वेत्यर्थः।।३३।।

अनु०–गुरु का अभिवादन करते समय उनसे थोड़ा दूर रहे।

भ्रातृपत्नीनां युवतीनां च गुरुपत्नीनां जातवीर्यः।।३४।।

'न समवायेऽत्यन्तश' इति वर्तते। जातवीर्यो जातशुक्लः। च शब्दात्पितृव्यादि-पत्नीनामपि युवतीनाम्। स्थविराणां बालानां च न दोषः।।३४।।

अनु०–युवावस्था में वह भ्रातृपत्नी (युवती) और गुरु की युवती पत्नी को चरण छूकर प्रणाम न करे।

नौ शिलाफलककुञ्जरप्रासादकटकेषु चक्रवत्सु चाऽदोषं सहासनम्।।३५।।

चक्रवन्तो रथशकटादयः। इतरे प्रसिद्धाः। एषु गुरुणा तत्पत्नीभिर्वा सहासनं अदोषं दोषावहं न भवति। एषु सहासनाभ्युपगमादन्यत्र सदोषं सहासनमिति गम्यते।।३५।।

अनु०–गुरु, उनकी पत्नी आदि के साथ (सटकर) निकट बैठना वर्जित है।

---

१. द्रष्टव्य आप.ध.सू. १/१५/८

परन्तु नाव, पत्थर, फलक, हाथी, मकान की छत, चटाई एवं पहिया वाले वाहन पर शिष्य उनके निकट बैठ सकता है।

प्रसाधनोच्छादनस्नापनोच्छिष्टभोजनानीति गुरोः।। ३६।।

शिष्येण कार्याणीति शेषः। प्रसाधनं मण्डनम्। उच्छादनं छत्रधारणम्। स्नपनं गात्रमलापकर्षणम्। इतिकरणात् पादमर्दनपृष्ठधावनादयो गृह्यन्ते।। ३६।।

अनु०–गुरु को नहाने, तेल लगाने, छाता धारण करने जैसे कार्यों में ब्रह्मचारी उनकी सहायता करे। उनके भोजन कर लेने के बाद जो भोज्य सामग्री बचे, उसे खाकर सन्तुष्ट रहे।

उच्छिष्टवर्जं तत्पुत्रेऽनूचाने वा ।। ३७।।

उच्छिष्टभोजनवर्जं कार्यम्। अनूचाने चाऽगुरुपुत्रेऽपि। अनूचानः एकशाखायास्साङ्गध्यायी। वाशब्दोऽवधारणार्थः, अनूचान एवेति।। ३७।।

अनु०–गुरु के वेदविद् पुत्र की भी सेवा करने का विधान है। पर ब्रह्मचारी उसका बचा भोजन करने के लिए बाध्य नहीं है।

प्रसाधनोच्छादनस्नापनोच्छिष्टवर्जं च तत्पत्न्याम्।। ३८।।

युवत्यामिति शेषः। स्थविराया उच्छादनादिप्राप्त्यर्थोऽयमारम्भः।। ३८।।

अनु०–उसे प्रसाधन, उच्छादन, स्नान और जूठा भोजन छोड़कर गुरु की पत्नी की सेवा करनी चाहिए।

धावन्तमनुधावेद्गच्छन्तमनुगच्छेत्तिष्ठन्तमनुतिष्ठेत्।। ३९।।

ऋज्वेतत्।। ३९।।

अनु०–ब्रह्मचारी गुरु के साथ छायावत् रहे। गुरु दौड़े, तो वह उनके पीछे-पीछे दौड़े। वह चलें, तो उनका अनुगमन करे। वह जहां खड़े हों, वहीं खड़ा हो जाए।

नाऽप्सु श्लघमानस्स्नायात्।। ४०।।

श्लाघनं विकत्थनं तच्च क्रीडनं करताडनादिः। तथा च वसिष्ठः-'न पादेन पाणिना वा जलमभिहन्यान्न जलेन जलम्' इति।। ४०।।

अनु०–ब्रह्मचारी के लिए जलक्रीड़ा का निषेध है।

दण्ड इव प्लवेत्।। ४१।।

अप्सूद्वर्तनप्रतिषेधोऽयम्।। ४१।।

अनु०–पानी में दण्ड की तरह सीधा-सीधा तैरे।

अब्राह्मणादध्ययनमापदि।।४२।।

कुर्यादिति शेषः। आपत् ब्राह्मणाभावः। अध्ययनं श्रवणस्याऽपि प्रदर्शनार्थम्। ब्राह्मणाभावे क्षत्रियात्, तदभावे वैश्यात्। अब्राह्मणग्रहणात् त्रैवर्णिका गृह्यन्ते। ततश्च न कदाचिच्छूद्राल्लौकिक्यपि विद्या ग्रहीतव्या।।४२।।

अनु०–ब्रह्मचारी अपना गुरु ब्राह्मण (वेदविद्) को वनावे। पर ब्राह्मण न मिले तो क्षत्रिय और क्षत्रिय न मिले तो वैश्य को अपना गुरु वना सकता है। और उनसे विद्या अध्ययन कर सकता है।

शुश्रूषाऽनुव्रज्या च यावदध्ययनम्।।४३।।

तावत्। शुश्रूषा प्रसाधनादि। अनुव्रज्या अनुगमनम्।।४३।।

अनु०–जब तक शिष्य पढ़े तव तक वह गुरु की (चाहे वह किसी भी वर्ण हो) भरपूर सेवा करे।

अयुक्तभेतदिति चेत्–

तयोस्तदेव पावनम्।।४४।।

पावनं शुचिहेतुः। एवं कृतेऽपि शिष्योपाध्याययोर्वर्णधर्मव्यतिक्रमदोषो-नाऽस्तीत्यभिप्रायः।।४४।।

अनु०–ऐसा करने से गुरु और शिष्य के वर्णक्रम के व्यतिक्रम दोष उत्पन्न नहीं होते। अपितु यह क्रम दोनों में पवित्रता उत्पन्न करता है।

भ्रातृपुत्रशिष्येषु चैवम्।।४५।।

शुश्रूषाऽतिदिश्यते यावदध्ययनम्। यवीयसामित्युपरितनसूत्रात् प्रतिकर्षो द्रष्टव्यः।।४५।।

अनु०–शिष्य का जैसा गुरु के प्रति भाव है, वैसा ही उनके भाई पुत्र तथा अन्य शिष्यों के साथ होना चाहिए। शिष्य गुरुवत् ही उनको आदर-सम्मान दे।

ऋत्विक्छ्वशुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्थायाऽभिभाषणम्[1]।।४६।।

अयमपि निमोऽध्यापकानामेवर्त्विगादीनाम्। अभिभाषणं स्वागतादिशब्द-प्रयोगः।।४६।।

अनु०–अपने से उम्र में छोटे ऋत्विक्, ससुर, चाचा-मामा आदि के आने पर शिष्य उन्हें चरण प्रणाम न करे। अपितु आसन छोड़कर खड़ा हो जाए और स्वागत

---

१. आप.ध.सू. १/१४/१०

योग्य वचन कहकर उनका सम्मान करे।

प्रत्यभिवाद इति कात्यः।।४७।।

कतस्य ऋषेरपत्यं कात्यः। स एवं मन्यते स्म ऋत्विगादिभिः प्रत्यभिवादः कर्तव्य इति। एषां प्रत्यभिवादनविधानादितरैरभिवादनं कर्तव्यमिति गम्यते।। ४७।।

अनु०—आचार्य कात्य का भी यही विचार है।

शिशावाङ्गिरसे दर्शनात्।।४८।।

शिशुः किलाऽऽङ्गिरसः पितृनध्यापयामास। तान् 'पुत्रकाः' इत्यामन्त्रयामास, तच्च न्याय्यमेवेति देवा ऊचुः। अनेनाऽपि प्रकारेण ज्ञानत एव ज्यैष्ठ्यं न वयस्त इति दर्शयति।।४८।।

अनु०—यह शिशु आङ्गिरस के दृष्टान्त से सिद्ध है।

(अध्याय-एक : खण्ड-तीन सम्पूर्ण)

अध्याय-दो : खण्ड-चार

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा।
विद्यया सह मर्तव्यं न चैनामूषरे वपेत्[1]।।१।।

यथा कृषीवलश्शुभं बीजमूषरे न वपति। तथा शुश्रूषादिवर्जिते विद्या न दातव्येत्यर्थः।।१।।

अनु०—गुरु को चाहिए कि वह योग्य, सुपात्र शिष्य को ही विद्या दान करे। किसी अयोग्य, कुपात्र शिष्य को न पढ़ावे। क्योंकि न तो इससे धर्म और न ही अर्थ की प्राप्ति होती है। यदि ऐसा न हो तो मृत्यु का वरण कर ले। पर अयोग्य शिष्य को विद्या न प्रदान करे। कारण इस प्रकार अयोग्य पात्र को दी गई विद्या ऊसर खेत में बीज बोने से कम नहीं है।

अग्निरिव कक्षं दहति ब्रह्मपृष्ठमनादृतम्।
तस्माद्वै शक्यं न ब्रूयात् ब्रह्म मानमकुर्वतामिति।।२।।

शक्यं मानमिति सम्बन्धः। वैशब्दः पादपूरणः। ब्रह्म विद्या मानं पूजा।।२।।

अनु०—वेद का ज्ञान अयोग्य शिष्य को नहीं देना चाहिए। अन्यथा जैसे अग्नि घर को भस्मसात कर देती है, वैसे ही वेद ज्ञान उस वेदविद् को भस्म कर देता है, जो अयोग्य शिष्य को वेद पढ़ाता है।

---

१. मनु. २/२५०-२५४

अत्रैवाऽस्मै वचो वेदयन्ते।।३।।

एवेत्येवमित्येतस्मिन्नर्थे। एवमस्य ब्रह्मचारिण इतिहासरूपं वचो वेदयन्ते वाजसनेयिनः। तच्च वक्ष्यमाणम्।।३।।

अनु०—ब्रह्मचारी को यह उपदेश दिया जाता है।

ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत् तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत्सोऽब्रवीदस्तु मह्यमप्येतस्मिन् भाग इति यामेव रात्रिं समिधं नाऽऽहराता इति।।४।।

ब्रह्मशब्देन जगत्कारणरूपमुच्यते, वेदसम्बन्धात्। तत् मृत्यवे प्रजाः प्रददौ किमर्थम्? मारयितुम्। प्रयच्छदपि तस्म ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत् आत्मसन्निकर्षात्। अथ मृत्युराह-सोऽब्रवीदस्तु मह्यमप्येतस्मिन् भाग इति। ब्रह्मचारिण्यपि मारणाय मम प्रवेशोऽस्त्वित्यर्थः। ततो ब्रह्माऽब्रवीत्सा रात्रिस्तवाऽवसरः यामेव रात्रिं समिधं नाऽऽहराता इति। लिङ्गर्थे लेड्भवति। समिदाहरणमग्नीन्धनम्। तच्च भिक्षाचरणवेदाध्ययनगुरु-शुश्रूषादीनामपि प्रदर्शनार्थम्।।४।।

ब्रह्मा ने सृष्टि रची। प्राणियों को मृत्यु के हवाले कर दिया। मगर ब्रह्मचारी को मृत्यु से परे रखा। मृत्यु ने ब्रह्मा से प्रार्थना की- "मुझे भी ब्रह्मचारी का कुछ भाग मिले।" ब्रह्म बोले- "जिस रात ब्रह्मचारी समिधाहरण से यज्ञ, वेद अध्ययन गुरुसेवा आदि न करे, उस समय तुम ब्रह्मचारी का अंश ले सकते हो।"

तस्माद् ब्रह्मचारी यां रात्रिं समिधं नाऽऽहरति आयुष एव तामवदाय वसति।।५।।

आयुषः खण्डमिति शेषः। द्वितीयार्थे वा षष्ठी। यथा द्विरैन्द्रवायवस्य भक्षयति इति।।५।।

अनु०—अतः जिस रात ब्रह्मचारी समिधा नहीं लाता, उस रात मृत्यु उसमें से अपना अंश (आयु) ले लेती है।

तस्माद् ब्रह्मचारी समिधमाहरेन्नेदायुषोऽवदाय वसानीति।।६।।

नेत्येष इदित्येतेन सम्प्रयुज्यते परिभवे गम्यमाने। यथा-'नेन्मे वाक्प्राणैरनुषक्ता सत्' इति। आयुषोऽवदाय न वसानीति परिभवेनाऽग्नीन्धनादिचतुष्टयं कुर्यादित्यर्थः।।६।।

अनु०—अतः ब्रह्मचारी समिधा लाने में भूल न करे। अन्यथा उसकी आयु कम हो जाएगी।

दीर्घसत्रं ह वा एष उपैति यों ब्रह्मचर्यमुपैति।।७।।

दीर्घसत्रं शाक्यानामयनादि।।७।।

अनु०–ब्रह्मचर्य को धारण करना अत्यंत कठिन कार्य है। यह दीर्घ सत्र के समान कहा जाता है।

स यामुपयन् समिध आदधाति सा प्रायणीयाऽथ यां स्नास्यन् सोदयनीयाऽथ या अन्तरेण सत्र्या एवाऽस्य ताः।। ८।।

यां रात्रिमुपयन्नुपनीयमानस्समिध आदधाति 'आयुर्दा देव जरसम्' इति। यां च स्नास्यन् 'इमं स्तोममर्हते जातवेदसे' इति। तदिह प्रायणीयोदयनीयौ रात्रिप्रधानत्वात् निर्देशस्य प्रायणीयोदयनीयशब्दाभ्यां स्त्रीलिङ्गोपादानमदोषः। याश्च ते अन्तरेण रात्रयस्तासु यास्सायंप्रातस्समिध आधीयन्ते तानि सत्रियाण्यहानीत्युपमीयन्ते।। ८।।

अनु०–उपनयन संस्कार करने के बाद जब ब्रह्मचारी प्रथम बार समिधाधान करता है, उसको प्रायणीय नाम के अतिरात्र के समान माना गया है। जिस रात वह स्नान करने के समय अंतिम बार समिधाधान करता है, वह रात उदयनीय अतिरात्र के तुल्य होती है। इन रातों के मध्य जो रातें आती हैं, उन्हें सत्र की रातें कहा जाता है।

ब्राह्मणो ह वै ब्रह्मचर्यमुपयंश्चतुर्धा भूतानि प्रविशत्यग्निं पदा मृत्युं पदाऽऽचार्यं पदाऽऽत्मन्येव चतुर्थः पादः परिशिष्यते। तं स यदग्नौ समिधमादधाति य एवाऽस्याग्नौ पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति। तं संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स एनमाविशत्यथ यदात्मानं दरिद्रीकृत्याह्रीर्भूत्वा भिक्षते ब्रह्मचर्यं चरति य एवाऽस्य मृत्यौ पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तं संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स एनमाविशत्यथ यदाचार्यवचः करोति य एवाऽस्याऽऽचार्ये पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तं संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स एनमाविशत्यथ यत्स्वाध्यायमधीते य एवाऽस्याऽऽत्मनि पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तं संस्कृत्याऽऽत्मन्धत्ते स एनमाविशति न ह वै स्नात्वा भिक्षेताऽपि ह वै स्नात्वा भिक्षां चरत्यपि ज्ञातीनामशनायाऽपि पितॄणामन्याभ्यः क्रियाभ्यः स यदन्यां भिक्षितव्यां न विन्देताऽपि वा स्वामेवाऽऽचार्यजानां भिक्षेताऽथो स्वां मातरं नैनं सप्तम्यभिक्षिताऽतीयात्।।

भैक्षस्याऽचरणे दोषः पावकस्याऽसमिन्धने। सप्तरात्रमकृत्वैतदवकीर्णिव्रतं चरेत्। तमेवं विद्वांसमेव चरन्तं सर्वे वेदा आविशन्ति।। ९।।

ब्राह्मणग्रहणं त्रैवर्णिकोपलक्षणार्थम्। भूतशब्देनाग्निं मृत्युमाचार्यमात्मनं चाऽऽह। पादश्च तेजः आयुः प्रज्ञा बलमिति। तत्राद्यैस्त्रिभिः पादैरग्न्यादीन् प्रविशति। अतस्त्वात्मन्येवाऽस्य चतुर्थः पादः परिशिष्यते। एवंभूतं विप्रं सर्वे वेदा आविशन्ति।। ९।।

अनु०–ब्राह्मण बटु ब्रह्मचर्य धारण करता है। ब्राह्मण समस्त भूतों में चार तरह प्रवेश करता है। वह अपने एक चौथाई अंश से अग्नि में प्रवेश करता है। एक चौथे अंश से उसे मृत्यु में प्रवेश मिलता है। एक चौथे हिस्से से आचार्य में प्रवेश करता है। चौथाई भाग आत्मा में शेष रह जाता है।

अग्नि में समिधाधान करके वह अग्नि के उस अंश को वापस प्राप्त कर लेता है। जो अग्नि में निहित होता है। उस भाग को परिष्कृत करके स्वयं में धारण कर लेता है।

जब दरिद्र ब्रह्मचारी लज्जा छोड़े, भिक्षा मांगे और ब्रह्मचर्य व्रत धारे, तो उसे मृत्यु में निहित अपना अंश प्राप्त हो जाता है। आचार्य के आदेशों का पालन करने से वह आचार्य में गए चतुर्थ अंश को खरीद लेता है। इसके साथ ही वह उस भाग को अपने में निहित कर लेता है। और उसमें प्रवेश पा जाता है। वेदों का अध्ययन कर वह आत्मा में प्रविष्ट अपने अंश को खरीद लेता है। और उसमें प्रविष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण होने पर भिक्षा न मांगे। पुनरपि भिक्षा मांगनी पड़े तो केवल अपने आचार्य की पत्नी या अपनी मां से ही भिक्षा ग्रहण करे। भिक्षा ग्रहण किए बिना सातवीं रात्रि व्यतीत न करे।

भिक्षाचरण और समिधाधान न करने पर ब्रह्मचारी दोषी माना जाता है। सात दिन तक उपर्युक्त कर्म न करने पर उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए। वह अवकीर्णि व्रत करके प्रायश्चित्त करे। यह जानने वाला और वैसा ही आचरण करने वाला वेद का ज्ञान प्राप्त करता है।

यथा ह वा अग्निस्समिद्धो रोचत एवं ह वा एष स्नात्वा रोचत य एवं विद्वान् ब्रह्मचर्यं चरतीति ब्राह्मणमिति ब्राह्मणम्।।१०।।

'यथा ह वा' इत्यादि 'चरति' इत्येतदन्तं ब्राह्मणम्। अन्यत्राप्येवंजातीयकनिपातप्रयोगे ब्राह्मणपाठ इति द्रष्टव्यम्। रोचते दीप्यते।।१०।।

अनु०—एक ब्राह्मण ग्रन्थ में कहा गया है- जैसे अग्नि प्रकाशित होती है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी अपने व्रत को पूर्ण कर लेने पर चमकता है। उसमें अग्नि जैसी तेजस्विता आ जाती है।

(अध्याय-दो, खण्ड-चार सम्पूर्ण)

अध्याय-तीन, खण्ड-पांच

अथ स्नातकस्य।।१।।

प्राक्पाणिग्रहणाद्धर्मा वक्ष्यन्त इति शेषः। त्रयो हि स्नातका भवन्ति-वेदस्नातको व्रतस्नातको वेदव्रतस्नातक इति। ननु समावर्तनानन्तरमेव भार्यामधिगच्छेत्, न तु तूष्णीं स्थातव्यम्। तथा हि—

अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनेकमपि द्विजः।

आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते नरः।।
जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये विप्रभोजने।
नाऽसौ फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमच्युतः।। इति।।

चत्वार एवाऽऽश्रमधर्मास्सूत्रकारैस्समाम्नाताः, न च स्नातको नाम तेषां मध्ये कश्चिदाश्रमी विद्यते। आचार्येणाऽप्युक्तम्-'यत्र यत्र कामयते तदेतीत्येतत्समावर्तनम्' इति। एवं ब्रुवता समावर्तनानन्तरमाश्रमप्राप्तिरेव दर्शिता। नैष दोषः-भार्याऽधिगमने यतमानस्याऽपि कदाचिद्भार्याग्रहणं न सम्भाव्येत, परचित्ताधीनत्वात्तस्य। तस्यामवस्थायामिमे वक्ष्यमाणा धर्मा वेदितव्याः। किञ्च-यावद्वेदस्वीकरणं ब्रह्मचारिणो नियमानुपालनं, अत ऊर्ध्वं धर्मजिज्ञासाऽवस्थायां स्नातकधर्मावसरः। तस्माच्चोर्ध्वं दारसङ्ग्रही इत्यविरोधः। आहुश्च न्यायविदः-'अस्नानादिनियमपर्यवसानं वेदाध्ययनसमकालमाहुः'।।१।।

तथा—
तस्माद् गुरुकुले तिष्ठन् मधुमांसाद्यवर्जयन्।
जिज्ञासेताऽविरुद्धत्वाद्धर्ममित्यवगम्यते।।

अनु०—स्नातक के आचरण सम्बन्धी बातों की चर्चा की जा रही है।

अन्तर्वास्युत्तरीयवान्।।२।।

स्यादिति शेषः। अन्तर्वासः कटिसूत्रम्। तद्वानन्तर्वासी स चोत्तरीयवान् स्यादित्यर्थः।।२।।

अनु०—स्नातक अन्तर्वास एवं उत्तरीय वस्त्र को धारण करे।

वैणवं दण्डं धारयेत्।।३।।

अङ्गुष्ठप्रमाणा मूर्धपरिमिता यष्टिर्दण्डः।।३।।

अनु०—बांस का दंड ग्रहण करे।

सोदकं च कमण्डलुम्।।४।।

धारयेदित्यनुवर्त्तते।।४।।

अनु०—जल से भरा कमण्डलु रखे।

द्वियज्ञोपवीती।।५।।

स्यादिति शेषः। द्वे यज्ञोपवीते अस्येति विग्रहः।।५।।

अनु०—दो ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) धारण करें।

उष्णीषमजिनमुत्तरीयमुपानहौ छत्रं चौपासनं दर्शपूर्णमासौ च।।६।।

एतेऽप्यस्य भवेयुरिति शेषः। उष्णीषं शिरोवेष्टनं, अजिनमुत्तरीयं उभयमपि भवेदित्यर्थः। औपासनं एकाग्निपरिचरणं, तदेवौपासनशब्देनाऽऽह-दर्शपूर्णमासौ च स्थालीपाकविधानेन कर्तव्यौ।।६।।

अनु०–पगड़ी, अजिन का उत्तरीय, जूता और छाता रखे। अग्निहोत्र करे। दर्शमास और पूर्णमासी का स्थालीपाक (अनुष्ठान विशेष) करे।

पर्वसु च केशश्मश्रुलोमनखवापनम्।।७।।

कर्तव्यमिति शेषः। केशा मूर्धजाः। श्मश्रुमुखजम्। लोभगुह्यप्रदेशजम्। नखाः करजादयः।।७।।

अनु०–पर्व आने पर बाल, दाढ़ी, मूंछ और नाखून कटवाए।

तस्य वृत्तिः।।८।।

तस्य स्नातकस्य वृत्तिः यात्रा जीवनोपायो वक्ष्यते। प्रकृतेऽपि स्नातके तस्य ग्रहणं वृत्तिव्यतिरिक्तधर्माणां गृहस्थस्याऽपि प्रवेशार्थम्।।८।।

अनु०–उसकी जीविका का वर्णन करते हैं।

ब्राह्मणराजन्यवैश्यरथकारेष्वामं लिप्सेत।।९।।

आमग्रहणात् पक्वप्रतिषेधः। आमाभावे पक्वयाचनं चाऽनुज्ञायते। तथा च वसिष्ठः 'क्षुधा परीतस्तु किञ्चिदेव याचेत' इति प्रक्रम्य 'धान्यमन्नं वा न तु स्नातकः क्षुधाऽवसीदेदित्युपदेशः' इति। क्षुन्निवृत्तिसमर्थस्य द्रव्यस्यैव विधिः।।९।।

अनु०–स्नातक ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और रथकार से अपक्वान्न ग्रहण करे।

भैक्षं वा।।१०।।

भिक्षाणां समूहो भैक्षं, आपदि बहुभ्यो याचेतेत्यर्थः।।१०।।

अनु०–अनेक लोगों से भिक्षा मांगे।

वाग्यतस्तिष्ठेत्।।११।।

स्वस्तिवचनमपि न कुर्यादित्यभिप्रायः। 'न ह वै स्नात्वा भिक्षेत' इत्यस्यैवाऽयमनुवाद।।११।।

अनु०–मौन धारण करके भिक्षा मांगे।

सर्वाणि चाऽस्य देवपितृसंयुक्तानि पाकयज्ञसंस्थानि भूतिकर्माणि कुर्वीतेति।।१२।।

देवपितृभ्यां संयुक्तशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। ते च पञ्चमहायज्ञाः।

पाकयज्ञसंस्थानि अष्टकाहोमादयः। भूतिकर्माणि आयुष्यचरुरित्यादयः। इति शब्दः प्रकारवचनः। एवं प्रकारा अस्य भैक्षात् होमाः कर्तव्याः। अप्राणिनो हि षष्ठी पञ्चम्यर्थे भवति 'यूपस्य स्वरुं करोति' इति यथा।। १२।।

अनु०—भिक्षा से प्राप्त अन्न से देव, पितृ सम्बन्धी यज्ञ करे। इससे आयु, ऐश्वर्य आदि की वृद्धि एवं कल्याण होता है।

एतेन विधिना प्रजापतेः परमेष्ठिनः परमर्षयः परमां काष्ठां गच्छन्तीति बौधायनः।। १३।।

परमे स्थाने तिष्ठतीति परमेष्ठी प्रजापतिः। तस्य स्थानं परमा काष्ठा। परमर्षयो वसिष्ठादयः। बौधायनः काण्वायनः। आहस्मेति शेषः। आत्मानमेवाऽऽचार्य आह। आत्मनो वा आचार्यम्। यद्वा मनोः भृगुवत्तस्य शिष्यो ग्रन्थकर्ता। विचलितशाखा वा काचित्बोधायनसंज्ञिता।। १३।।

अनु०—बौधायन कहते हैं- इस विधि-विधान से ऋषि-महर्षि प्रजापति के धाम को प्राप्त करते हैं।

(अध्याय-तीन, खण्ड-पांच सम्पूर्ण)

अध्याय-चार : खण्ड-छह

अथ कमण्डलुचर्यामुपदिशन्ति ।। १।।

चर्या चरणं धारणादि। मृन्मयो हि कमण्डलुः। तत्र मृन्मयोपघातेऽभिदाहश्शुद्धिहेतुराम्नातः। अथ पुनः कमण्डलोश्शुद्ध्यन्तरविधित्सयेदमारभ्यते।। १।।

छागस्य दक्षिणे कर्णे पाणौ विप्रस्य दक्षिणे।
अप्सु चैव कुशस्तम्बे पावकः परिपठ्यते।

अनु०—स्नातक कमण्डल धारण करे।

तस्माच्छौचं कृत्वा पाणिना परिमृजीत पर्यग्निकरणं हि तत्। 'उद्दीप्यस्व जातवेद' इति पुनर्दाहाद्विशिष्यते।। २।।

अजः छागः। स्तम्बस्सङ्घातः। एतेषु चतुर्ष्वग्निः पठ्यते वेदेषु आधाने 'आग्नेयी वा एषा यदजा' इत्येवमादिषु। तस्माद् ब्राह्मणस्याऽपि दक्षिणे हस्तेऽग्निर्विद्यते। एवं च कमण्डलोरशुचिभावे प्राप्ते तं दक्षिणेन पाणिना परिमृजेत् 'उद्दीप्यस्व' इति मन्त्रेण। पर्यग्निकरणं तद्भवति। तच्च पुनर्दाहाद्विशिष्टतरं शौचमापादयतीत्यर्थः।। २।।

अनु०—वेदों में बताया गया है- बकरे के दाएं कान में, ब्राह्मण के दाहिने हाथ

में, जल में, कुश के गुच्छ में अग्नि का वास होता है। इसलिए शरीर को शुद्ध करें। फिर कमण्डल को से चारों ओर से स्वच्छ करें। उद्दीप्यस्व जातवेद का पाठ करे।

अत्राऽपि किञ्चित्संस्पृष्टं मनसि मन्यते कुशैर्वा तृणैर्वा प्रज्वाल्य प्रदक्षिणं परिदहनम्।।३।।

कमण्डलोरेवाऽशुचिसंस्पर्शाशङ्कायां कुशैर्वा विश्वामित्रतृणैर्वाऽग्नौ प्रदीप्तैः प्रदक्षिणतः परिदहनं कर्तव्यम्। परितो दहनं परिदहनम्।।३।।

अनु०—यदि पात्र की शुद्धता को लेकर मन में शंका हो जाए तो कुश या तिनकों को जलाए। दाएं हाथ को नीचे रखते हुए पात्र को सब तरफ से गरम करे।

अत ऊर्ध्वं श्ववायसप्रभृत्युपहतानामग्निवर्ण इत्युपदिशन्ति।।४।।

श्वादिभिरुपघाते पर्यग्निकरणं कृत्वा अत ऊर्ध्वं यथाऽग्निवर्णो भवति तथा दग्धव्य इत्युपदिशन्ति आचार्या इति शेषः।।४।।

अनु०—कुत्ता, कौआ अथवा अन्य अपवित्र पशु, पक्षी पात्र छू दे तो उसे अग्नि में तब तक रखे जब तक वह अग्नि के रंग जैसा न हो जाए।

मूत्रपुरीषरोहितरेतःप्रभृत्युपहतानामुत्सर्गः।।५।।

एतैरुपहतानां कमण्डलूनामुत्सर्गस्त्यागः। व्यक्त्यपेक्षया बहुवचनम्।।५।।

अनु०—मल, मूत्र, पुरीष, रक्त, वीर्य आदि से अशुद्ध हुए कमण्डल को छोड़ दे।

भग्ने कमण्डलौ व्याहृतिभिश्शतं जुहुयात्।।६।।

आज्येनेति शेषः।।६।।

अनु०—कमण्डल फूट जाए तो व्याहृतियों का उच्चारण करके सौ बार अग्निहोत्र करे।

जपेद्वा।।७।।

व्याहृतीरेव।।७।।

अनु०—अथवा व्याहृतियों को सौ बार जपे।

'भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात्। भूयास्म पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यता' मिति कपालानि संहृत्याऽप्सु प्रक्षिप्य सावित्रीं दशावरां कृत्वा पुनरेवाऽन्यं गृह्णीयात्।।८।।

भूमिर्भूमिगादिति वामदेव ऋषिः। अनुष्टप्छन्दः। भिन्नानि मृन्मयानि प्रतिपाद्यानि। भूमिविकाराणां प्रकृतिलयविज्ञानं क्रियते। प्रथमान्तो भूमिशब्दः पात्रमाह। द्वितीयान्तः

प्रकृतिम्। कपालानि स्वप्रकृतौ लीनानि। माता मातरमप्यगात्। य एवमन्तःपरिमिताकाशो मृत्पिण्डः कमण्डलुः घटादिरूपेण निर्मितोऽसावपि स्वप्रकृतिमगात्। ततः किमायातमस्माकम्? वयं तु पुत्रैः पशुभिर्भूयास्म। आशिषि लिङ्। यो नोऽस्मान् द्वेष्टि स एव हि भिद्यतामिति। अनेन मन्त्रेण कमण्डलुकपालानामप्सु प्रेक्षपणं प्रतिपत्तिः। अथाऽन्यं गृह्णन् सावित्रीं दशावरां कृत्वा जपित्वा गृह्णीयात्।। ८।।

अनु०–भूमिर्भूमिमगान्माता, मातरमप्यगात्.......भिद्यताम् इस मंत्र का पाठ करे और कमण्डलु के खंडित अंशों को जल में डाल दे। दस बार गायत्री का जाप करते हुए दूसरे कमण्डलु को धारण करे।

वरुणमाश्रित्य 'एतत्ते वरुण पुनरेव तु मामो' मित्यक्षरं ध्यायेत्।। ६।।

वरुणमाश्रित्य वरुणं प्राप्य ध्यात्वा 'एतत्ते वरुण पुनरेव तु मामोम्' इति ग्रहणमन्त्रः। तस्याऽयमर्थः-यदेतत्कपालं मयाऽप्सु संक्षिप्तं तत्तव वरुण भवतु, अपरं कमण्डलुद्रव्यं पुनर्मामेतु। भग्नस्तु कमण्डलुस्त्वाम्, इति ओमित्यक्षरं ध्यायेत्। ओमिति ब्रह्मणो नाम, तेन हि सर्वमोतं प्रोतं च भवति। अक्षरमपि तदेव न क्षरति न विनश्यतीति। ध्यायेत् अनुस्मरेत्।। ६।।

अनु०–एतत्ते वरुण....का पाठ करते हुए अक्षर (ओम्) पर विचार-विमर्श करे।

शूद्राद् गृह्य शतं कुर्याद्वैश्यादर्धशतं स्मृतम्।
क्षत्रियात्पञ्चविंशत्तु ब्राह्मणाद् दश कीर्तिताः।। १०।।

प्रणवो गायत्री वा सङ्ख्याविषया।। १०।।

अनु०–शूद्र से प्राप्त कमण्डल हो तो सौ बार गायत्री मंत्र का जाप करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से कमण्डल ग्रहण करने पर क्रमशः दस, पचीस और पचास बार गायत्री मंत्र पढ़े।

अथाऽस्तमिते आदित्य उदकं गृह्णीयान्न गृह्णीयादिति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः।। ११।।

संशयार्था प्रकृतप्लुतिः। तत्राऽग्रहणपक्षश्रेयान्, कुतः? पौराणिकवचनात्। तथाहि–

कर्मयोग्यो जनो नैव नैवाऽऽपश्शुद्धिकारणम्।
यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय भास्वते।।

श्रुतेश्च 'अपो निशि न गृह्णीयात्' इति।। ११।।

अनु०–वेदपाठी अथवा वेद के अध्येता शंका करते हैं कि सूर्य डूब जाने पर जल पिएं या न पिएं।

गृह्णीयादित्येतदपरम् ।। १२ ।।

न विद्यते परं दर्शनं यस्मात्तदपरं सिद्धान्त इत्यर्थः। अनियतकालत्वान्मूत्र-पुरीषादेरवश्यकर्तव्यत्वाच्चोदकसाध्यशौचानां 'शक्तिविषये मुहूर्तमपि नाऽप्रयतस्स्यात्' इति वचनाच्च ग्रहणमेव साधीयः।। १२।।

अनु०—रात्रि में जल का सेवन करे, यह विचार ठीक लगता है।

यावदुदकं गृह्णीयात्तावत्प्राणानायच्छेत् ।। १३ ।।

उदकग्रहणवेलायाम् ।। १३ ।।

अनु०—जल पीते समय प्राणवायु पर नियन्त्रण रखे।

अग्निर्ह वै ह्युदकं गृह्णाति ।। १४ ।।

कथं प्राणायामे सत्युदकं गृह्णात्यग्निः? कथं वा तेनाऽऽदित्यसन्निधिर्भवति? इति चेत्, उच्यते-निरोधे सति वायुर्बलवान् जायते, ततोऽग्निः। तथा च वक्ष्यति—

निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निर्हि जायते।

तापेनाऽऽपोऽधिजायन्ते ततोन्तश्शुध्यते त्रिभि।

अनुभावोऽपि तथैव दृश्यते। अग्नौ सत्यादित्यसन्निधिर्भवतीति शक्यते वक्तुम्। तथा च श्रुतिः-'आदित्योऽग्निं यन्नक्तमनुप्रविशति सोऽन्तर्धीयते' इति। तथा-'रात्रावर्चि रेवाऽग्नेर्ददृशे न धूमः' इति। दूरभूयस्त्वानभवोऽपि तथैव भवति।। १४।।

अनु०—ऐसा करने से अग्नि ही जल का सेवन करता है।

कमण्डलूदकेनाऽभिषिक्तपाणिपादो यावदार्द्रं तावदशुचिः परेषामात्मानमेव पूतं करोति नाऽन्यत्कर्म कुर्वीतेति विज्ञायते ।। १५ ।।

अन्यत्रापि विज्ञायते इत्युक्ते श्रुतिपाठ इत्यवगन्तव्यम् ।। १५ ।।

अनु०—वेदों के अनुसार-कमण्डल के जल से हाथ-पैर धोने वाले ब्रह्मचारी को तब तक अशुद्ध माना जाता है, जब तक उसके हाथ-पैर न सूख जाए। हाथ-पैर धोते समय उसे अन्य कार्य नहीं करना चाहिए।

अपि वा प्रतिशौचमामणिवन्धाच्छुद्धिरिति बौधायनः ।। १६ ।।

प्रतिशौचं जलान्तरेणाऽऽमणिबन्धात् ।। १६ ।।

अनु०—बौधायन कहते हैं-हर बार हाथ-पैर धोते समय कलाई तक ही शुद्धि होती है।

(खण्ड-छह सम्पूर्ण)

खण्ड-सात

अथाऽप्युदाहरन्ति–

कमण्डलुर्द्विजातीनां शौचार्थं विहितः पुरा।
ब्रह्मणा मुनिमुख्यैश्च तस्मात्तं धारयेत्सदा।।
ततश्शौचं ततः पानं सन्ध्योपासनमेव च।
निर्विशङ्केन कर्तव्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।।१।।

कमण्लूदकेन शौचं अपानदेशमलनिर्हरणादिकम्। पानसन्ध्योपासने दृष्टादृष्टकार्योपलक्षणार्थे।।१।।

अनु०–इस सन्दर्भ में उद्धरण दे रहे हैं-

विजातियों को स्वच्छ रहने के लिए प्राचीन काल से ही ब्रह्मा एवं अन्य प्रसिद्ध मुनियों ने कमण्डल अपने पास रखने का विधान किया है। आत्मकल्याण करना है तो निःसन्देह ब्रह्मचारी कमण्डल के जल से स्नान करे और उसको पिए। सन्ध्या, उपासना भी उसी जल से करे।

कुर्याच्छुद्धेन मनसा न चित्तं दूषयेद् बुधः।
सह कमण्डलुनोत्पन्नस्स्वयंभूस्तस्मात्कमण्डलुनाऽऽचरेत्।।२।।

शास्त्रलक्षणेष्वर्थेषु सामान्यतो दृष्ट्या भ्रान्तिर्न कार्या। विशिष्टोत्पत्त्या च कमण्डलुप्रशंसैव। आचरेत् अनुतिष्ठेत् जलकार्यम्।।२।।

अनु०–समझदार मनुष्य कमण्डल का सेवन करे। उससे कार्य करते समय मन को पवित्र रखे। कहते हैं– ब्रह्मा का अवतरण उस धरा पर कमण्डल के साथ हुआ था। अतः दैनन्दिन कार्य कमण्डल के जल से सम्पन्न करे।

मूत्रपुरीषे कुर्वन् दक्षिणे हस्ते गृह्णाति सव्ये आचमनीयम्।।३।।

मूत्रपुरीषयोराचमने च नियमः। अनुपयोगकाले यथासौकर्यं भवति तथा गृह्णीयादित्यर्थः।।३।।

अनु०–मल-मूत्र और पुरीष का त्याग करते समय कमण्डल को दाएं हाथ में रखे। आचमन करना हो तो उसे बाएं हाथ में धारण करे।

एतत्सिध्यति साधूनाम्।।४।।

एतस्मिन् कमण्डलौ ये धर्मा अभिहितास्ते साधूनां सिध्यन्ति नेतरेषाम्। साधवश्च निर्विशङ्कितशास्त्रार्थाः।।४।।

अनु०–कमण्डल धारण सम्बन्धी ये नियम विद्वानों के लिए हैं।

यथा हि सोमसंयोगाच्चमसो मेध्य उच्यते।
अपां तथैव संयोगान्नित्यो मेध्यः कमण्डलुः।।५।।

मेधो यज्ञः, तदर्हो मेध्यः।।५।।

अनु०—कमण्डल की पवित्रता जल से होती है। जैसे सोमरस से यज्ञीय पात्र चमस शुद्ध, पवित्र हो जाते हैं।

पितृदेवाग्निकार्येषु तस्मात्तं परिवर्जयेत्।।६।।

कमण्डलूदकं यस्माच्छुद्धिकारणम्—

अनु०—कमण्डल का उपयोग करते समय शुचिता-अशुचिता का ध्यान रखना चाहिए। अतः पितृ, देव एवं अग्नि के निमित्त किए जाने वाले अनुष्ठानों में कमण्डल के जल का उपयोग न करे।

तस्माद्विना कमण्डलुना नाऽध्वानं व्रजेन्न सीमान्तं न गृहाद् गृहम्।।७।।

मूत्रोत्सर्गादेरनियतकालत्वात्।।७।।

अनु०—कमण्डल को साथ रखे। कमण्डल के बिना गांव की तरफ न मुड़े। एक घर से दूसरे घर की तरफ भी न जाए।

पदमपि न गच्छेदिषुमात्रादित्येके।।८।।

अनु०—बिना कमण्डल के बाण जितनी दूरी भी तय न करे।

यदिच्छेद्धर्मसन्ततिमिति बौधायनः।।६।।

सन्ततिरविच्छेदः।।६।।

अनु०—धर्म का निरन्तर पालन करना हो, तो कहीं भी कमण्डल के बिना कदम न रखे। ऐसा बौधायन का मानना है।

ऋग्विधमृग्विधानं वाग्वदति ऋग्विधमृग्विधानं वाग्वदति।।१०।।

वागिति ब्राह्मणमुच्यते। अस्मिन्नर्थे ऋगप्यस्तीति ब्राह्मणमाहेत्यर्थः। स यथा 'तस्यैषा भवति। यत्ते शिल्पं कश्यप रोचनावत्' इति।।१०।।

अनु०—ऐसा निर्देश ब्राह्मण ग्रन्थ के साथ-साथ वेद मंत्र में भी है।

(अध्याय-चार, खण्ड-सात सम्पूर्ण)

अध्याय-पांच : खण्ड-आठ

अथाऽतश्शौचाधिष्ठानम्।।१।।

अधिष्ठानं निधानं कारणमित्यनर्थान्तरम् शोध्यद्रव्यं वा।।१।।

अनु०–शुद्धि के अन्य उपाय एवं प्रकारों की चर्चा यहां कर रहे हैं।

अद्भिश्शुद्ध्यन्ति गात्राणि बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।
अहिंसया च भूतात्मा मनस्सत्येन शुद्ध्यतीति।।२।।

अब्ग्रहणं मृदादीनामप्युपलक्षणार्थम्। गात्रग्रहणं पार्थिवद्रव्यान्तरप्रदर्शनार्थम्। बुद्धिरन्तरात्मा। सा च व्यवसायात्मिका। ज्ञानं तत्त्वावबोधः। तस्मिन् सति रागादिक्षयादन्तरात्मा शुद्धो भवति। वाङ्मनःकायैर्भूतानां दुःखस्याऽनुत्पादनं अहिंसा, तया च भूतात्मा शुध्यति। स पुनः कर्मणां कर्ता। आह च मनुः–

यः करोति कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः।

सङ्कल्पविकल्पात्मकं मन इत्युच्यते। सत्यं तु यथाभूतार्थवचनम्।।२।।

अनु०–शरीर जल से पवित्र होता है। ज्ञान से बुद्धि परिष्कृत होती है। भूतात्मा की पवित्रता अहिंसा से होती है। सत्य से मन पवित्र होता है।

मनश्शुद्धिरन्तश्शौचम्।।३।।

तत्र ज्ञानेन सत्येन या शुद्धिरुक्ता तदन्तश्शौचमिति वेदितव्यम्। अन्यद्-हिश्शौचम्।।३।।

अनु०–मन की पवित्रता का एक नाम आन्तरिक शौच भी है।

वहिश्शौचं व्याख्यास्यामः।।४।।

विविधाऽऽख्या विस्तर इत्यर्थः।।४।।

अनु०–बाह्य शुद्धि की व्याख्या करेंगे।

कौशं सौत्रं वा त्रिस्त्रिवृद्यज्ञोपवीतमानाभेर्दक्षिण बाहुमुद्धृत्य सव्यमवधाय शिरोऽवदध्यात्।।५।।

कुशविकारः कौशम्; सूत्रस्य विकारः, सौत्रम्। तच्च सूत्रं कार्पासमयम्। त्रिरिति क्रियाभ्यावृत्तिगणने सुच् भवतीति। त्रिवृदिति च त्रिगुणं भवति। एतदुक्तं भवति-नवकृत्वस्संपादयेदिति। यज्ञार्थमुपवीतं उपव्यानं विन्यास विशेषः। यज्ञग्रहणं गुरूपासनादेरपि प्रदर्शनार्थम्। तथा चाऽऽपस्तम्बः-'उपासने गुरूणां वृद्धानामतिथीनां होमे जप्यकर्मणि भोजन आचमने स्वाध्याये च यज्ञोपवीती स्यात्' इति। आनाभेः, आङ्मर्यादायाम्, ऊर्ध्वं नाभेरित्यर्थः। दक्षिणं बाहुमवधाय बाहोरधस्तात्कृत्वा शिरोऽवदध्यात् दक्षिणं बाहुं शिरश्चोपरि गृह्णीयादित्यर्थः। तथा च श्रुतिः 'दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवीतम्' इति च।।५।।

अनु०—यज्ञोपवीत कुश निर्मित हो या सूत से बनाया गया हो, उसे तीन बार (त्रिगुण) बंटे। यज्ञोपवीत नाभि के ऊपर रखे। दाईं भुजा को ऊपर करे। बाईं भुजा नीचे रखे। सिर नीचे करते हुए यज्ञोपवीत धारण करे।

विपरीतं पितृभ्यः।। ६।।

दक्षिण बाहुमधस्तात्कृत्त्वा सव्यं बाहुमुत्थाय शिरोऽवदध्यात्। श्रुतिरपि 'एतदेव विपरीतं प्राचीनावीतम्' इति। पितॄनुद्दिश्य यत्क्रियते तत्रतद्भवति।। ६।।

अनु०—पितृकर्म करते समय दाईं भुजा नीचे हो। बाईं भुजा ऊपर रखे। सिर नीचे रखे।

कण्ठेऽवसक्तं निवीतम्।। ७।।

मनुष्याणां भवति। ऋषीणामित्येवेदमुक्तं भवति।। ७।।

अनु०—यज्ञोपवीत को कंठ तक पहनें, तो उसे निवीत कहा जाता है।

अधोऽवसक्तमधोवीतम्।। ८।।

नाभेरधोऽवसक्तमधःक्षिप्तमधोवीतं भवति। एतदेव 'संवीतं मानुषम्' इति चोच्यते। मनुष्यकार्येषु कर्तव्यम्, तानि चाऽञ्जनाभ्यञ्जनोद्वर्तनादीनि।। ८।।

अनु०—यज्ञोपवीत नाभि से नीचे रखें तो उसे अधोवीत कहते हैं।

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वाऽऽसीनश्शौचमारभेत्। शुचौ देशे दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा प्रक्षाल्य पादौ पाणी चाऽऽमणिबन्धात्।। ९।।

शौचमिहोऽऽचमनमभिप्रेतम्। शुचावित्येव सिद्धे देशग्रहणं पादुकादावारूढेनाऽऽचमनं न कर्तव्यमिति बोधयितुम्। अनेकपुरुषोन्नाय्योदे। आसीनग्रहणं शयनादिनिवृत्त्यर्थम्। प्रक्षाल्य पाणी पादौ चेति चशब्दान्मूत्राद्युपहतं गात्रान्तरमपि प्रक्षाल्येति गम्यते।। ९।।

अनु०—शौच करते समय मुख पूर्व दिशा में हो या उत्तर में। स्थान पवित्र होना चाहिए। दाएं हाथ को घुटनों के बीच रखे और पैरों को धोवे। तत्पश्चात् मेखला बांधने वाली जगह तक दोनों हाथों को पानी से स्वच्छ करे।

पादप्रक्षालनोच्छेषणेन नाऽऽचामे 'द्यद्याचामेद् भूमौ स्रावयित्वाऽऽचामेत्।।१०।।

यत्पात्रस्थोदकेन पादप्रक्षालनं कृतं तदवशिष्टं पादप्रक्षालनोच्छेषणं तेनाऽऽचमनं न कार्यम्। अन्यस्याऽसंम्भवे तेनाऽपि यद्याचामेद्भूमौ स्रावयित्वाऽऽचामेत्। तस्माद्भूमौ किञ्चिदुदकं विस्राव्याऽऽचमनं कार्यम्।। १०।।

अनु०—पैर धोने के बाद जो पानी बचे, वह आचमन के योग्य नहीं होता। पुनः यदि आचमन करना ही पड़े तो थोड़ा सा पानी धरती पर डाल दे। बचे हुए

पानी से आचमन कर ले।

ब्राह्मणेन तीर्थेनाऽऽचामेत्।।११।।

अनु०—आचमन ब्राह्मतीर्थ से करे।

अङ्गुष्ठमूलं ब्राह्मं तीर्थम्।।१२।।

तस्याऽङ्गुष्ठमूलस्योत्तरतो मेखला।।१२।।

अनु०—अंगूठे के मूल भाग को ब्राह्मतीर्थ कहते हैं।

अङ्गुष्ठाग्रं पित्र्यमङ्गुल्यग्रं दैवमङ्गुलिमूलमार्षम्।।१३।।

अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्मध्यं पित्र्यम्। तथा च वसिष्ठः 'प्रदेशिन्यङ्गुल्योरन्तरे पित्र्यम्' इति। ऋज्वन्यत्।।१३।।

अनु०—अंगूठे के अगले हिस्से को पित्र्यतीर्थ कहते हैं। अंगुलियों का भाग दैवतीर्थ कहलाता है। अंगुलियों का मूल स्थान आर्षतीर्थ कहलाता है।

नाऽङ्गुलीभिर्न संबुद्बुधं सफेनाभिर्नोष्णाभिर्न क्षाराभिर्न लवणाभिर्न कटुकाभिर्न कलुषाभिर्न विवर्णाभिर्न दुर्गन्धरसाभिः।।१४।।

अङ्गुलीस्राविताभिः अद्भिर्नाऽऽचामेत् इति सम्बन्धः। बुद्बुदः स्फोटः। सफेनाः सडिण्डीराः। उष्णाभिः अग्निना, नाऽऽदित्यरश्मिभिः। क्षाराश्च द्रव्यान्तरसंक्रमणात्, न स्वभावतः कालुष्यमपि कारणान्तरेण, न वर्षादिना। विवर्णत्वमपि तथा, न तु भू गुणेन।।१४।।

अनु०—आचमन के योग्य जल कैसा हो-अंगुलियों से टपकता हुआ जल आचमन के लिए निषिद्ध है। बुलबुला वाला, फेनयुक्त और गुनगुना जल आचमन के लिए वर्जित है। क्षार युक्त जल से आचमन न करे। नमकं युक्त कड़ुवा, गन्दा, बदरंग, दुर्गन्ध वाला जल आचमन के लिए निषिद्ध है।

न हसन्न जल्पन्न तिष्ठन्न विलोकयन्न प्रह्वो न प्रणतो न मुक्तशिखो न प्रावृतकण्ठो न वेष्टितशिरा न त्वरमाणो नाऽयज्ञोपवीतो न प्रसारितपादो नाऽऽबद्धकक्ष्यो न बहिर्जानुः शब्दमकुर्वन् त्रिरपो हृदयंगमाः पिबेत्।।१५।।

प्रह्वः अधोमुखः। प्रणतो वक्रकायः। ननु 'आसीनश्शौचमारभेत' इत्युक्तम् किमिति तिष्ठतः प्रतिषेधः? उच्यते तत्र उपवीतसाहचर्यादासनयोगविधानं त्रैवर्णिकाधिकारं स्यात्। ततश्च स्त्रीशूद्राणां स्थानादियोगिनामप्याचमनं प्राप्येत, तन्माभूदिति पुनर्ग्रहणम्। अथ वा अत्यन्तापदि तत्प्रह्वताभ्यनुज्ञानाय। यद्वा हसनजल्पनादिप्रतिषेधार्थं दृष्टान्तत्वेनोपन्यासः। 'आबद्धकक्ष्यः कृतासनबन्धः' बहिर्जानुः जान्वोर्बहिर्गतदक्षिणबाहुः। यथा

च गोतमः 'दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा' इति। त्रिःपाने क्रियमाणे एकैकस्यामावृत्तौ हृदयङ्गमाभिरद्भिर्भवितव्यम्, ततश्च पाणिपूरणोदकेन पानं कार्यम्। अन्यदतिरोहितम्।।१५।।

अनु०—आचमन करते समय हंसना, बोलना मना है। बैठकर आचमन होता है। आचमन करते समय इधर-उधर न देखे। सिर अथवा शरीर को आचमन के समय सीधा रखे। आचमन करते समय शिखा बंधी हो। आचमन करते हुए सिर खुला रखे। हड़वड़ी न करे। उपनयन संस्कार रहित व्यक्ति आचमन न करे। पैरों को फैलाकर आचमन नहीं करना चाहिए। कटिप्रदेश वस्त्र से न बंधा हो, तब आचमन करे। दायां हाथ घुटनों से वाहर होने पर आचमन करना मना है। मौन रहकर तीन बार आचमन करे। आचमन में जल उतना ही ले जितना हृदय तक पहुंच सके।

त्रिः परिमृजेद् द्विरित्येके।।१६।।

आस्यात् बहिर्भूतमुदकं त्रिः परिमृजेत्, द्विरित्येके। परिमार्ज्जन एव द्विरभ्यासो न पानेऽपि। उत्तरत उभयग्रहणात्।।१६।।

अनु०—आचमन के पश्चात् मुख में लगे जल को तीन बार पोंछकर साफ करे। कुछ आचार्यों का मानना है कि दो बार पोंछें।

सकृदुभयं स्त्रियाश्शूद्रस्य च।।१७।।

उभयं पानं मार्जनं च स्त्रीशूद्रयोरसकृतसकृत्।।१७।।

अनु०—स्त्री और शूद्र एक बार आचमन करे तथा एक बार ही मुख को पोंछे।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

गताभिर्हृदयं विप्रः कण्ठ्याभिः क्षत्रियश्शुचिः[1]।
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्स्यात् स्त्रीशूद्रौ स्पृश्य चाऽन्तत इति।।१८।।

वर्णान्तरस्योदकपरिमाणान्तरविधानादेव हृदयङ्गमविधिर्विप्रस्येति प्राप्ते पुनर्विप्रग्रहणमितरवर्णार्थमनुवादः। हृदयादुपरि कण्ठः। तस्मादुपरि काकलम्। तस्मादुपर्योष्ठमिति प्रतिवर्णं स्थाननिर्देशः। स्त्रीशूद्रयोरप्यास्यप्रक्षेप उदकस्य द्रष्टव्यो न स्पर्शनमात्रम्।।१८।।

अनु०—इस प्रसंग में धर्मशास्त्रकार यह प्रमाण देते हैं-आचमन का जल हृदय तक पहुंच जाए, तो ब्राह्मण को पवित्र समझ ले। जल कंठ तक पहुंच जाए तो क्षत्रिय

---

१. हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिवस्तु भूमिपः। वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः।। (मनु. २/६२)

पवित्र हो जाता है। मुंह में जल पहुंचते ही वैश्य 'पवित्र माना जाता है। स्त्री और शूद्र आचमन के जल से जैसे ही ओंठ का स्पर्श करें तो समझना चाहिए कि वे पवित्र हो गए।

दन्तवद्दन्तसक्तेषु दन्तवत्तेषु धारणा।
स्रस्तेषु तेषु नाऽऽचामेत्तेषां संस्राववच्छुचिरिति[1] ।। १६ ।।

दन्तवद्दन्तसक्तेषु उदकबिन्दुषु। किमुक्तं भवति? दन्तवत्तेषु धारणा कार्या। बहिर्गतजलस्य परिमार्जनविधानादन्तर्गतस्य दोषाभाव इत्यभिप्रायः। संस्रावः लाला।। १६ ।।

अनु०—दांतों में लगी जल की बूंदों को दांतों की भांति ही शुद्ध, पवित्र समझे। जल की बूंदें मुख से बाहर निकलें तो आचमन करना निषिद्ध है। जल की बूंदें मुख से निकलते ही शुद्ध हो जाती हैं।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

दन्तवद्दन्तलग्नेषु यच्चाऽप्यन्तर्मुखे भवेत्।
आचान्तस्याऽवशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिरिति।। २० ।।

आचमनोत्तरकालं यदास्येऽवशिष्टमुपलभ्यते जलावशिष्टमवहार्यं द्रव्यं तन्निगिरन् प्रवेशयन्नेव तच्छुचिः, भवतीति शेषः।।२०।।

अनु०—इसकी प्रामाणिकता में पद्य है-दांतों में लिपटी हुई वस्तु पवित्र होती है, जैसे दांत पवित्र होते हैं। मुख में गई वस्तु या आचमन से बचा हुआ जलबिन्दु भी पवित्र होता है। उसे पीने से शुद्धता आ जाती है।

खान्यद्भिस्संस्पृश्य पादौ नाभिं शिरः सव्यं पाणिमन्ततः।। २१ ।।

खानि शीर्षण्यानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि। कुतः? स्मृत्यन्तरदर्शनात् 'ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्यै' इति वक्ष्यति—
अङ्गुष्ठनामिकाभ्यां तु चक्षुषी समुपस्पृशेत्।
उभाभ्यां प्रत्येकमिति शेषः। एवमुत्तरत्राऽपि योज्यम्।।
प्रदेशिन्यङ्गुष्ठाभ्यां तु नासिके समुपस्पृशेत्।।
कनिष्ठिकाङ्गुष्ठाभ्यां तु श्रवणे समुपस्पृशेत्।।
पादावभ्युक्ष्य सर्वाभिः नाभिमङ्गुष्ठकेन तु।।
दद्यात्तु मूर्ध्नि सर्वाभिस्सव्ये पाणौ ततो जलम्।।२१।।

अनु०—सिर, चक्षु, नेत्र, पैर, नाभि, सिर, बाएं हाथ और इन्द्रियों को जल से छूए।

---

१. द्रष्टव्य मनु. ५/१६

तैजसं चेदादायोच्छिष्टी स्यात्तदुदस्याऽऽचम्याऽऽदास्यन्नद्भिः प्रोक्षेत् ।। २२ ।।

तेजसा हेतुभूतेन यत्क्रियते तत्तैजसं तद्धस्तस्तु उच्छिष्टी भवति, निधाय च तद्द्रव्यमाचम्याऽऽदास्यन् तद्द्रव्यं अद्भिः प्रोक्षेत् । स च तद्द्रव्यं च प्रयतं भवति ।। २२ ।।

अनु०—धातु से बना पात्र हाथ में हो और स्नातक अशुद्ध हो जाए, ऐसे में पात्र को रख दे। फिर आचमन करे। पुनः पात्र ग्रहण करना हो, तो उस पर जल से छिड़काव करे।

अथ चेदन्नेनोच्छिष्टी स्यात् तदुदस्याऽऽचम्याऽऽदास्यन्नद्भिः प्रोक्षेत् ।। २३ ।।

पृथगारम्भस्तैजसेनाऽन्नस्य वैलक्षण्यप्रदर्शनार्थः। पूर्वत्र तैजसहस्तस्याऽप्रायत्ये संजाते शौचमुक्तम्। इह तु पात्रान्तरान्नहस्तस्य शौचमिति विशेषः।

तथा च वसिष्ठः—

चरन्नभ्यवहार्येषु उच्छिष्टं यदि संस्पृशेत्।
भूमौ निधाय तत्पात्रमाचम्य प्रचरेत्पुनः ।। २३ ।।

अनु०—हाथ में अन्न हो और स्नातक दूषित हो जाए, तो अन्न रख दे। आचमन करे। जल से अन्न पर छींटें मारकर उसे शुद्ध करे।

अथ चेदद्भिरुच्छिष्टी स्यात् तदुदस्याचम्यादास्यन्नद्भिः प्रोक्षेत् ।। २४ ।।

अनु०—हाथ में जलपात्र हो और वह अशुद्ध हो जाए तो उसे चाहिए कि वह जलपात्र रख दे। आचमन करके जलपात्र पर जल से छिड़काव करे। फिर उसे ग्रहण करे।

एतदेव विपरीतममत्रे ।। २५ ।।

अनु०—इसका अपवाद भी है-यह व्यवस्था मिट्टी से निर्मित पात्रों पर लागू नहीं होती।

अमत्रं मृन्मयपात्रमिहाऽभिप्रेतम्। तस्याऽत्यन्तोपहतस्योदसनमात्रमेव नाऽऽदानमित्यर्थः। इतरस्य पुनर्दाह एव ।। २४-२५ ।।

वानस्पत्ये विकल्पः ।। २६ ।।

वानस्पत्ये वार्क्षे पात्रेऽप्रयते सति आदानमुदसनं वा विकल्पः उपहतिविशेषापेक्षया। आचमनं तु स्थितमेव ।। २६ ।।

अनु०—काष्ठ के पात्रों के सम्बन्ध में वैकल्पिक व्यवस्था है। व्यक्ति चाहे तो ऐसे पात्रों को पुनः ग्रहण कर ले अथवा सर्वदा के लिए छोड़ दे।

तैजसानामुच्छिष्टानां गोशकृन्मृद्भस्मभिः परिमार्जनमन्यतमेन वा[1] ।। २७ ।।

उपघातापेक्षया द्रव्याणां समुच्चयविकल्पौ द्रष्टव्यौ । उदकं पुनस्सर्वत्रानुवर्तते ।। २७ ।।

अनु०—दूषित पात्रों को शुद्ध करने के लिए गोबर, मिट्टी और भस्म में किसी एक पदार्थ से साफ करे।

ताम्ररजतसुवर्णानामम्लैः ।। २८ ।।

परिमार्जनमित्यनुवर्तते । सलेपानामेतत् । निर्लेपानां तु पूर्वोक्तानामन्यतमेनैव । तथा च वसिष्ठः 'अद्भिरेव काञ्चनं पूयते तथा रजतम्' इति ।। २८ ।।

अनु०—तांबा, चांदी और स्वर्ण से बने अपवित्र पात्रों को शुद्ध करने के लिए अम्ल का सेवन करे।

अमत्राणां दहनम् ।। २९ ।।

स्पर्शमात्रादुच्छिष्टानां मृन्मयानां पुनर्दाहः शौचमाम्नातम् । अनर्हाप्रायत्ययुक्तस्पर्शे तु प्रोक्षणमेव ।। २९ ।।

अनु०—मिट्टी से बने पात्रों की शुद्धता अग्नि में जलाने से ही होती है।

दारवाणां तक्षणम् ।। ३० ।।

शौचमित्यनुवर्तते ।। ३० ।।

अनु०—काष्ठ के बने वर्तनों को शुद्ध करने के लिए उसे छील लेना चाहिए।

वैणवानां गोमयेन ।। ३१ ।।

परिमार्जनमिति शेषः । विदलादीनामशुचिस्पृष्टानामेतत् ।। ३१ ।।

अनु०—बांस निर्मित पात्रों की शुद्धता गोबर से की जाती है।

फलमयानां गोवालरज्ज्वा ।। ३२ ।।

बिल्वनालिकेरादिफलविकाराणां गोवालरज्ज्वा । परिमार्जनम् । रज्जुग्रहणं बालबहुत्वोपलक्षणार्थम् । तथा च वसिष्ठः 'गोबालैः (परिमार्जनं) फलमयानाम्' ।। ३२ ।।

अनु०—फल से बने पात्र गाय के बाल से बनी रस्सी के रगड़ने से शुद्ध होते हैं।

कृष्णाजिनानां विल्वतण्डुलैः ।। ३३ ।।

बिल्वतण्डुलान् पिष्ट्वाऽवलेपनं कार्यमित्यर्थः ।। ३३ ।।

---

१. मनु. ५/११४-१२४

अनु०–काला मृगचर्म स्वच्छ करने के लिए बिल्व और चावल के लेप का सेवन करते हैं।

कुतपानामरिष्टैः।।३४।।

कुतपानाम पार्वतीयच्छागरोमनिर्मिताः कम्बला उच्यन्ते। अरिष्टैः पूयवृक्षफलैः।।३४।।

अनु०–कुतपानाम बकरे के रोम से निर्मित वस्तुओं को रीठी से पवित्र करते हैं।

और्णानामादित्येन।।३५।।

ऊर्णा अविलोमानि। तद्विकाराणां प्रावरणादीनामादित्यातपेन शुद्धिः।।३५।।

अनु०–सूर्य की किरणों से ऊन के वस्त्रों को स्वच्छ, शुद्ध करे।

क्षौमाणां गौरसर्षपकल्केन[1]।।३६।।

क्षुमा अतसी तद्विकाराणाम्।।३६।।

अनु०–सरसों के लेपन से रेशमी कपड़े पवित्र होते हैं।

मृदा चेलानाम्।।३७।।

कार्पासमयानां मृदा शुद्धिः।।३७।।

अनु०–मिट्टी से सूती कपड़ों की शुद्धि मानी जाती है।

चेलवत् चर्मणाम्।।३८।।

कृष्णाजिनव्यतिरिक्तानामिति शेषः।।३८।।

अनु०–चमड़े से बने वस्त्रों की स्वच्छता, सफाई मिट्टी से होती है।

तैजसवदुपलमणीनाम्[2]।।३६।।

उपलानां मणीनां च गोशकृदादिभिश्शुद्धिः।।३६।।

अनु०–पत्थर एवं मणियों को पवित्र करने के लिए गोबर, मिट्टी अथवा भस्म का उपयोग करे।

दारुवदस्थ्नाम्।।४०।।

तक्षणमित्यर्थः।।४०।।

---

१. वसि. ध.सू. ३/५०

२. वसि. ध.सू. ३/४६

अनु०—हड्डी से बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि उन्हें छील कर करते हैं।

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गशुक्तिदन्तानाम् ।। ४१ ।।

गौरसर्षपकल्केन शौचं कार्यम् ।। ४१ ।।

अनु०—जैसे रेशमी वस्त्रों की शुद्धता सरसों के लेपन से होती है वैसे ही शंख, शृंग, सीप और हाथी-दांतों से बनी वस्तुओं की होती है।

पयसा वा ।। ४२ ।।

प्रक्षालनमिति शेषः ।। ४२ ।।

अनु०—इन वस्तुओं को दुग्ध से धोकर भी शुद्ध कर सकते हैं।

चक्षुर्घ्राणानुकूल्याद्वा मूत्रपुरीषासृक्शुक्लकुणपस्पृष्टानां पूर्वोक्तानामन्यतमेन त्रिस्सप्तकृत्वः परिमार्जनम् ।। ४३ ।।

मूत्रादिग्रहणं द्वादशमलप्रदर्शनार्थम्। तानि च मनुना प्रदर्शितानि—
वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट्कर्णविण्णखाः।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः।।
पूर्वोक्तानां गोशकृदादीनामन्यतमेन शौचम्। एतच्च परिमार्जनं तैजसानामुच्छिष्टमात्रदुष्टानां वेदितव्यम्। परिमार्जनमुल्लेखनं पुनः करणमिति यथोपघात कर्तव्यम्। तथा च शङ्खः कुणपरेतोऽसृङ्मूत्रपुरीषोपहतानां आवर्तनमुल्लेखनं भस्मना परिमार्जनमुत्सर्गः' ।। इति ।। अत्राऽऽवर्तनशब्देन पुनः करणमुच्यते। तत्रैवं व्यवस्था-स्पृष्टमात्राणां त्रिस्सप्तकृत्वः परिमार्जनम्। अल्पकालोपहतानामुल्लेखनम्। चिरकालोपहतानामावर्तनम्। अत्यन्तोपहतानां त्याग इति ।। ४३ ।।

अनु०—चक्षु और नासिका के अनुकूल हो तो मल, मूत्र, रक्त, रेतस् और शव से निकले दूषित अवयवों को गोबर, मिट्टी आदि में से किसी भी एक वस्तु से इक्कीस बार रगड़ कर शुद्ध कर सकते हैं।

अतैजसानामेवंभूतानामुत्सर्गः ।। ४४ ।।

एवं भूतानामित्यन्तमलिनानां त्यागः। तेषामेव 'यथासम्भवमुत्सेदनं तन्मात्रच्छेदश्च' इति शङ्खवचनात् ।। ४४ ।।

अनु०—अधातु से बनी वस्तुएं और जो मल-मूत्र आदि से अपवित्र हों, ऐसी वस्तुओं को त्याग देना ही उचित है।

वचनाद्यज्ञे चमसपात्राणाम् ।। ४५ ।।

चमसानां पात्राणामुच्छिष्टस्पर्शदोषो नाऽस्तीति शेषः। मूत्राद्युपहतानां तु त्याग

एव।।४५।।

अनु०–यज्ञ के निमित्त चमसपात्र जूठे दोष से अपवित्र नहीं होते। ऐसा वेद में बताया गया है।

न सोमेनोच्छिष्टा भवन्तीति श्रुतिः।।४६।।

सोमेनोच्छिष्टाः पुरुषास्सोमाश्चमसाश्चऽन्यानि च पात्राणि उच्छिष्टानि न भवन्तीत्यर्थः।।४६।।

अनु०–सोम के छू जाने से भी ऐसे पात्र शुद्ध माने जाते हैं।

कालोऽग्निर्मनसश्शुद्धिरुदकाद्युपलेपनम्।
अविज्ञातं च भूतानां षड्विधं शौचमुच्यत इति।।४७।।

कालश्शावाशौचादौ शुद्धिसाधनं भवति। तथाऽन्यत्राऽपि तैजसानां पात्राणां मूत्राद्युपहतानां गोमूत्रे सप्तरात्रं परिशायनमिति। अग्निरपि मृन्मयस्य शुद्धिहेतुः। मनसश्शुद्धिरनातङ्कः परितोष इत्यादि। तदपि प्रायश्चित्तादौ सहकारीति। तथा च मनुः–

यस्मिन् कर्मण्यस्य कृते मनसस्स्यादलाघवम्।
तस्मिन् तावत्ततः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत्।। इति।।

तथोदकैस्स्वर्णरजतादि शुध्यति। अन्यान्यपि यानि प्रातिस्विकानि शोधकानि कालगोवालबिल्वतण्डुलादीनि तेषामपि स्नानप्रोक्षणप्रक्षालनादिषु यथा द्रव्यं योजनीयम्। तथा भूमेरुपलेपनादि वक्ष्यते। अविज्ञातं च प्रत्यक्षादिना प्रमाणेनाऽनवगतदोषमपि शुध्यति। एवं षड्विधं शौचं भवति।।४७।।

अनु०–समय व्यतीत होना, अग्नि, मन की पवित्रता पानी और अन्य प्रकार की वस्तुएं, लेपन से पवित्र होती हैं और अपवित्रता के बारे में पता न होना ऐसे छह प्रकार से वस्तुएं शुद्ध होती हैं।

अथाऽप्युदाहरन्ति–

कालं देशं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम्।
उपपत्तिमवस्थां च विज्ञाय शौचं शौचज्ञः कुशलो धर्मेप्सुः समाचरेत्।।४८।।

कालो ग्रीष्मादिः शीतोष्णादिमल्लक्षणः। देशः कान्तारादिः। द्रव्यं शोध्यं मृन्मयादि। द्रव्यप्रयोजनमुदकाहरणादि। उपपत्तिः न्यायः। अवस्था स्थितिरातुरादिका। चशब्दात् कर्तारमपि ज्ञात्वा, शौचज्ञः मन्वाद्यनेकाविरुद्धशास्त्रार्थज्ञः। कुशलः प्रवीणः ऊहापोहसमर्थः। अस्मिन् कालेऽस्मिन् देशेऽस्य द्रव्यस्याऽस्मै प्रयोजनायाऽस्मात् कारणादस्यामवस्थायामस्य पुरुषस्यैतावच्छौचमिति यो वेद स कुशलः धर्मजिज्ञासुस्समाचरेत्

विदध्यात्। एतदन्यत्राऽपि दण्डप्रायश्चित्तादौ द्रष्टव्यम्।।४८।।

अनु०—धर्मशास्त्रकार इसकी प्रामाणिकता में यह पद्य प्रस्तुत करते हैं—

शुद्धि-पवित्रता के नियमों को अच्छी तरह जो जानता है, जो बुद्धिमान और धर्म का आचरण करता है और धर्म-कर्म करने में सदा प्रयास करता है, ऐसा व्यक्ति समय, स्थान, द्रव्य, द्रव्य के उद्देश्य और अशुद्धि के कारण तथा अशुद्ध वस्तुओं की पूरी जानकारी करके ही शौच-अशौच का व्यवहार करता है।

(खण्ड-आठ सम्पूर्ण)

खण्ड-नौ

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्यं यच्च प्रसारितम्।
ब्रह्मचारिगतं भैक्षं नित्यं मेध्यमिति श्रुतिः[1]।।१।।

हस्तादन्येन पादादिना स्पर्शने दोषः। आपणगतैः विक्रीतुं पण्यं प्रसारितम्। श्रत्युपन्यासः सामान्यतो दृष्ट्या प्रक्षालनाद्याशङ्कानिवृत्त्यर्थः।।१।।

अनु०—वेद में कहा गया है-कारीगर का हाथ हमेशा पवित्र रहता है, बेचने के लिए कोई वस्तु फैलाई जाए तो वह पवित्र होती है। ब्रह्मचारी को भिक्षा में जो अन्न मिलता है, वह सर्वदा पवित्र समझा जाता है।

वत्सः प्रस्नवने मेध्यः शकुनिः फलशातने।
स्त्रियश्च रतिसंसर्गे श्वा मृगग्रहणे शुचिः[2]।।२।।

अत्र 'पक्षिजग्धं गवाऽऽघ्रातमवधूतमवक्षुतम्'

इत्येवमाद्यालोचनया जुगुप्सा नैव कर्तव्या। दोहकालादन्यत्र वत्सालीढेऽपि दोषः। तथा शातनग्रहणात् वृक्षात्पतितस्य शकुनिजग्धस्य भक्षणे दोषः। रतिसंसर्गग्रहणात् अन्यत्र स्त्रीणां श्वासलालास्वादने दोषः। तत्राऽपि स्वभार्याया एव। तथा मृगयाया अन्यत्र श्वलीढस्य दोषः। तथा च वसिष्ठः—

श्वहताश्च मृगा वन्याः पातितं च खगैः फलम्।
बालैरनुपरिक्रान्तं स्त्रीभिराचरितं च यत्।।
प्रसारितं च यत्पण्यं यो दोषः स्त्रीमुखेषु च।
मशकैर्मक्षिकाभिश्च लीढं चेन्नाऽवहन्यते।।
क्षितिस्थाश्चैव या आपो गवां तृप्तिकराश्च याः।

१. मनु. ५/१२६
२. वसि.ध.सू. २८/८, मनु. ५/११०

परिसङ्ख्याय तान् सर्वान् शुचीनाह प्रजापतिः।।२।।

अनु०—दूध दोहते समय यदि बछड़ा थन में मुंह लगा दे तो भी दूध जूठा नहीं होता। वृक्ष से फल गिराते समय पक्षी पवित्र होता। स्त्रियां संभोग के समय भी अपवित्र नहीं होती। कुत्ता जब शिकारी की शिकार के समय मदद करे, तो वह पवित्र होता है।

आकराश्शुचयस्सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम्।
अदूष्यास्सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः।।३।।

आकरा उत्पत्तिस्थानानि। गुडक्षौद्रादीनां दुष्टदोषाणां न तत्र शङ्का कार्येत्यभिप्रायः। सुराकरं तु वर्जयेत्, स्पर्शनगन्धग्रहणादीनां प्रतिषेधात्। अदूष्यास्सन्तता एव धाराः। अशुचिस्पृष्टा अपि जलप्रस्रवणादयः अदूष्याः। विच्छिन्नास्तु दूष्याः। अत एतद्गम्यते विच्छिन्नया करकादिधारया नाऽऽचामेदिति। वायूत्थापिताश्चेदवस्करादि- देशादुत्थापिता अप्यदूष्या एव रेणवः।।३।।

अनु०—सभी वस्तुओं के उत्पत्ति स्थानों को या बनाने वाले साधनों को पवित्र समझना चाहिए। सुरा बनाने की जगह को ही अपवित्र माना गया है। बहता हुआ जल और आकाश में उड़ती हुई धूल को दूषित न समझे।

अमेध्येषु च ये वृक्षा उप्ताः पुष्पफलोपगाः।
तेषामपि न दुष्यन्ति पुष्पाणि च फलानि च।।४।।

वृक्षग्रहणं पुष्पग्रहणं चौषधिशाखादीनामप्युपलक्षणार्थम्।।४।।

अनु०—फल-फूल देने वाला पेड़ अपवित्र स्थान पर लगा हो तो भी उसे पवित्र ही मानना चाहिए।

चैत्यवृक्षं चितिं यूपं चण्डालं वेदविक्रयम्।
एतानि ब्राह्मणस्स्पृष्ट्वा सचेलो जलमाविशेत्।।५।।

ऋज्वेतत्।।५।।

अनु०—शुद्ध, स्वच्छ स्थान पर उगा पेड़, चिता, यज्ञीय यूप, चण्डाल या वेद विक्रेता का स्पर्श यदि ब्राह्मण से हो जाए, तो वह कपड़ों सहित जल में नहाए।

आत्मशय्याऽऽसनं वस्त्रं जायाऽपत्यं कमण्डलुः।
शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीनि तु।।६।।

स्पष्टमेतत्।।६।।

अनु०—शय्या, आसन, वस्त्र, पत्नी, बच्चे और कमडण्ल आदि अपने हो तो

पवित्र होते हैं, पर दूसरे के हों, तो वे अपवित्र माने जाते हैं।

आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च।
चण्डालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुध्यति।।७।।

पन्थानो भूमिविषयाः। नौः दारुमयी फलका। आन्दोलिकादीन्यपि द्रव्याणीति केचित्। एषामन्यतमानीत्यध्याहार्यम्। तत्राऽपि स्पर्शनमात्रेऽदोषः। एतदध्यासनादिषु तु यथादोषं शौचं कर्तव्यम्।।७।।

अनु०–यदि कोई चण्डाल या पतित आसन, शय्या, यान, नौका और घास को छू दे, तो उपयुक्त वस्तुएं वायु के स्पर्श से पवित्र हो जाती हैं।

खलक्षेत्रेषु यद्धान्यं कूपवापीषु यज्जलम्।
अभोज्यादपि तद्भोज्यं यच्च गोष्ठगतं पयः।।८।।

अभोज्यान्नैः पुरुषैर्निष्पादितेषु खलक्षेत्रधान्यादिषु पुनश्च साधारणत्वेन सङ्कल्पितेष्वेतद् द्रष्टव्यम्। तत्राऽपि पतितचण्डालपरिगृहीतं दुष्टमेव। गोदोहनवेलायामेव परिगृहीतं पयो भोज्यम्, गोष्ठगतत्वविधानात्।।८।।

अनु०–खलिहान में रखा अनाज और कुएं या तालाब में भरा जल पवित्र होता है। गायों के स्थान पर रखा गया दूध दूषित नहीं होता। ये वस्तुएँ उस व्यक्ति से भी ली जा सकती हैं, जिनका अन्न ग्रहण करना वर्जित है।

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन्।
अदृष्टमद्भिर्निर्णक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते[1]।।९।।

ब्राह्मणग्रहणं प्रदर्शनार्थम्, पुराकल्पप्रशंसैषा। अदृष्टं प्रत्यक्षादिभिरनवगतदोषम्, उपहतानुपहताशङ्कायामद्भिर्निर्णिक्ते प्रक्षालितम्, तथा वाचा प्रशस्तं च। आह च वसिष्ठः 'वाचा प्रशस्तमुपयुञ्जीत' इति। वाक्प्रशस्तान्याद्भिः प्रोक्ष्योपयुञ्जीतेति।।९।।

अनु०–दोष के बारें में कुछ न जानना, जल से धोना एवं सामने रखी वस्तु की वाणी से उसकी प्रशंसा करना- ये तीन ऐसे उपाय हैं, जिनसे देवता और ब्राह्मण वस्तुएँ शुद्ध कर सकते हैं।

आपः पवित्रं भूमिगताः गोतृप्तिर्यासु जायते।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः[2]।।१०।।

अमेध्येन पुरीषादिना। भू गुणव्यतिरिक्तगन्धवर्णरसान्विताः वर्ज्या इत्यर्थः।।१०।।

---

१. मनु. ५/१२७
२. मनु. ५/१२८

अनु०—जो जल पृथ्वी पर है, उसी को गायें पीती हैं और अपनी प्यास बुझाती हैं। ऐसे जल में अधिक अपवित्र पदार्थ न मिले हों या गंदला न हो, स्वाद बिगड़ा न हो, नो उसे पवित्र समझना चाहिए।

भूमेस्तु सम्मार्जनप्रोक्षणोपलेपनावस्तरणो।
ल्लेखनैर्यथास्थानं दोषविशेषात् प्रायत्यम्[1]।।११।।

भवेदिनि शेषः। सम्मार्जनं समूहन्या। प्रोक्षणं त्वद्भिः। उपलेपनं गोमयादिना। अवस्तरणं दर्भादिभिः। उल्लेखनं खनित्रैः।

आह च मनुः—

सम्मार्जनेनाऽञ्जनेन सेचनोल्लेखनेन च।

गवां च परिवासेन भूमिश्शुध्यति पञ्चभिः।। इति।।

यथास्थानं यथादेशम्, दोषविशेषात् दोषगुरुलघुतापेक्षया सम्मार्जनादीनां व्यस्तसमस्तापेक्षया प्रायत्यं शुचित्वं भवति। तत्रैकेन क्वचिच्छुद्धिः, क्वचिद् द्वाभ्याम्, क्वचित्त्रिभिः क्वचित्समस्तैरिति द्रष्टव्यम्।।११।।

तत्र क्वचित्प्रोक्षणस्यैव शुद्धिहेतुतामाह—

अनु०—झाड़ू, जल, लेपन स्थान के अनुसार भूमि की शुद्धि की जाती है। झाड़ू बुहार कर भूमि शुद्ध करते हैं। जल छिड़काव से भी भूमि शुद्ध होती है। भूमि को लेप कर शुद्ध करते हैं। मिट्टी खुरचकर भी भूमि को पवित्र कर सकते हैं। आवश्यकता के अनुसार-इनमें से एक, दो, तीन अथवा सभी साधनों से पृथ्वी को शुद्ध कर सकते हैं।

अथाऽप्युदाहरन्ति।।१२।।

अनु०—धर्मशास्त्रकार इस प्रसंग में यह पद्य दर्शाते हैं।

(खण्ड–नौ सम्पूर्ण)

खण्ड–दस

गोचर्ममात्रमब्बिन्दुः भूमेश्शुद्ध्यति पातितः।
समूढमसमूढं वा यत्राऽमेध्यं न लक्ष्यत इति।।१।।

अब्बिन्दुः जललवः पातितः शुध्यतीति अन्तर्नीतणिजर्थो द्रष्टव्यः। समूढं

---

१. खननाद्दहनाद्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि। चतुर्भिश्शुध्यते भूमिः पञ्चमाच्चीपलेपनात्।।
(वसि. ध. सू. ३/५१)

सम्मार्जन्या। असमूढं स्पर्शादिशिष्टं देशं गोचर्ममात्रप्रमाणं यत्र गोशतमावेष्ट्यति, यत्र देशे, अमेध्यं पुरीषादि न लक्ष्यते तमिति शेषः।।१।।

अनु०–वैल के चमड़े के बरावर की भूमि को जल का एक बिन्दु चाहे वह गिराया गया हो अथवा चुआया गया हो, ऐसी भूमि पर अशुद्ध पदार्थ नजर न आए, तो जलबिन्दु उस भूमि को दोष मुक्त कर देती है।

परोक्षमधिश्रितस्याऽन्नस्याऽवद्योत्याऽभ्युक्षणम्।।२।।

परोक्षं भोक्तुरसमक्षमधिश्रितस्य पक्वस्याऽन्नस्याऽवद्योत्याऽभ्युक्षणं शङ्का-पदमापन्नस्य शुद्धिर्भवति। अनाशङ्कितस्य तु 'त्रीणि देवाः पवित्राणि' इत्युक्तम्।।२।।

अनु०–भोजन कर्ता की शंका हो, तो भोजन को जो कि उसकी नजरों के सामने नहीं बनाया गया है उसे शुद्ध करना चाहिए। ऐसे भोजन को प्रज्वलित अग्नि के समक्ष ले जाए और उस पर जल का छिड़काव करे।

तथापणेयानां च भक्ष्याणाम्।।३।।

आपणं वाणिजां पण्यस्थानम्, क्रयविक्रयस्थानमित्यर्थः। तत्र भवा आपणेया भक्ष्या लड्डुकापूपसक्तुमोदकादयः उत्तरापथवासिनां प्रसिद्धाः। तेषामवद्योत्याऽभ्युक्षणम्। तथा च शङ्खः-"आकरजानामभ्युक्षितानां घृतेनाऽभिघारितानामभ्यवहरणीयानां पुनः पचनमेव स्नेहद्रव्यसमानाम् इत्यादिना।।३।।

अनु०–बाजार से खरीदे गए भोज्य पदार्थों की शुद्धि भी इसी रीति से होती है।

बीभत्सवः शुचिकामा हि देवा नाऽश्रद्दधानाय हविर्जुषन्त इति।।४।।

बीभत्सवोऽपि सन्तः अश्रद्दधानात् पुरुषाद्धविर्न जुषन्ते न सेवन्ते। तस्मान्नूनं श्रद्धाऽपि शुद्धिकारणमित्यवगम्यते।।४।।

अनु०–स्वभाव वश देवतागण अशुद्धि से डर कर भागते हैं। वे पवित्रता को पसंद करते हैं। श्रद्धा से अर्जित हवि को ही वे ग्रहण करते हैं।

शुचेरश्रद्दधानस्य श्रद्दधानस्य चाऽशुचेः।
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन्।।
प्रजापतिस्तु तानाह न समं विषमं हि तत्।
हतमश्रद्दधानस्य श्रद्धापूतं विशिष्यत इति।।५।।

दीर्घकालं मीमांसित्वा विचार्य देवैः शुचेरश्रद्दधानस्य अशुचेश्श्रद्दधानस्य च तयोस्समीकरणे कृते देवान् प्रजापतिरब्रवीत्-विषमसमीकरणमेतद्युष्माभिः कृतं तथा मा

कार्ष्टेति। किं तत्र कारणमित्याह-हतमश्रद्दधानस्य। तस्मात् श्रद्धापूतमेव विशिष्यते इति।।५।।

अनु०–एक बार देवताओं ने श्रद्धारहित आदमी और श्रद्धावान दूषित व्यक्ति की हवि के विषय मे विचार किया और उन्हें एक समान कहा। मगर प्रजापति ने इससे अलग सम्मति दी। श्रद्धारहित व्यक्ति की हवि निरर्थक होती है। श्रद्धारहित हवि ग्रहण के अयोग्य होती है।

अथाऽप्युदाहरन्ति–

अश्रद्धा परमः पाप्मा श्रद्धा हि परमं तपः।
तस्मादश्रद्धया दत्तं हविर्नाऽश्नन्ति देवताः।।६।।

श्रद्धा आदरः कौतूहलं आस्तिक्यम्। यस्मादश्रद्धैवम्भूता तस्मादश्रद्धया न दातव्यमिति शेषः। आह च कृष्णो धनञ्जयाय–

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।६।।

अनु०–और प्रमाण देते हैं–

सवसे बड़ा पाप है-श्रद्धा न होना। जबकि श्रद्धा को परम तप माना गया है। अतः श्रद्धारहित व्यक्ति द्वारा अर्पित हवि को देवता ग्रहण नहीं करते।

इष्ट्वा दत्त्वाऽपि वा मूर्खः स्वर्गं न हि स गच्छति।।७।।

स्पष्टमेतत्।।७।।

अनु०–श्रद्धारहित व्यक्ति यज्ञ करे या दान दे, उसे स्वर्ग (सुख विशेष) की प्राप्ति नहीं होती।

शङ्का पिहितचारित्रो यस्स्वाभिप्रायमाश्रितः।
शास्त्रातिगः स्मृतो मूर्खो धर्मतन्त्रोपरोधनादिति।।८।।

शङ्का कृत्याकृत्यविवेकशून्यता, श्रेयस्संशयात्। तया पिहितं चारित्रमनुष्ठानं यस्य स यथोक्तः। ततश्च शास्त्रतो निश्चित्य हेयोपादेयौ (२) चाऽवेक्ष्य विवेकाभावे स्वाभिप्रायमाश्रितः स्वेच्छाचारी भवतीत्यर्थः। एतस्मादेव शास्त्रातिगश्च भवति शास्त्रार्थमतीत्य गच्छति। तच्चाऽयुक्तम्, यतो भगवद्गीतासूक्तम्–

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।। इति।।

एवंविधो यः पुरुषः स मूर्खस्स्मृतः। को हेतुः? धर्मतन्त्रोपरोधनादिति। धर्मस्य तन्त्रमनुष्ठानं तस्योपरोधो भवति।।८।।

अनु०–मूर्ख कौन है ! कहते हैं, जो आदमी विवेक हीन आचरण करता है, मनमाने ढंग से व्यवहार करता है, शास्त्र मर्यादित वचनों का उल्लंघन करता है और धार्मिक नियम, अनुष्ठान की अवहेलना करता है, वह मूर्ख होता है।

शाकपुष्पफलमूलौषधीनां तु प्रक्षालनम्।।९।।

तुशब्दो विशेषप्रायत्यप्रदर्शनार्थः। तच्चाऽस्पृश्यप्रदर्शनार्थम्। तत्र चैतद्विधानम्। एतेषां पुनः मूत्राद्युपहतानामल्पानां त्यागः, बहूनां तन्मात्रत्यागः, शिष्टानां प्रक्षालनमभ्युक्षणं वा।।९।।

अनु०–शाक, फूल, फल, मूल, वनस्पतियों को जल से धोकर सेवन करे।

शुष्कं तृणमयाज्ञिकं काष्ठं लोष्ठं वा तिरस्कृत्याऽहोरात्रयोरुदग्दक्षिणामुखः प्रावृत्य शिर उच्चरेदवमेहेद्वा।।१०।।

अयाज्ञिकं शुष्कं तृणादि तिरस्कृत्याऽन्तधार्य भूमिम्, अहन्युदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखः प्रावृत्य शिर उच्चरेदवमेहेद्वा मूत्रपूरीषे च। तथा च वसिष्ठः 'भूमिगयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात्' इति।।१०।।

अनु०–सूखी घास जो यज्ञ में काम न आती हो, यज्ञ के निमित्त जिस लकड़ी के टुकड़े का प्रयोग न हो या माटी का ढेला धरती पर रखे, दिन हो तो उत्तर दिशा में मुख करे। रात में दक्षिण की ओर मुंह करे। सिर पर कपड़ा रखे और तब मलमूत्र त्यागे।

मूत्रे मृदाऽद्भिः प्रक्षालनम्।।११।।

लिङ्गस्य कार्यमिति शेषः। सकृदिति च।।११।।

अनु०–लघुशंका के पश्चात् मूत्रेन्द्रिय को जल तथा मिट्टी से धोए।

त्रिः पाणेः।।१२।।

मृदाऽद्भिः प्रक्षालनमित्यनुवर्तते। तत्राऽपि सव्यस्य सकृत्। 'उभयोर्द्विर्द्विरि'ति विनिर्देशः कल्प्यः।।१२।।

अनु०–तीन बार हाथ को माटी एवं जल से शुद्ध करे।

तद्वत्पुरीषे।।१३।।

मृदाऽद्भिः प्रक्षालनमतिदिश्यते। 'नवपुरीषे च' इति वक्तव्ये 'तद्वत्' इत्यतिदेशो विशेषविवक्षया।।१३।।

अनु०–शौच करने पर भी इसी तरह से सफाई करे।

पर्यायास्त्रिस्त्रः पायोः पाणेश्च।। १४।।

पायुरपानप्रदेशः। मूत्रे यदुक्तं तेन पुरीषे त्रिरावृतेन भवितव्यम्। पूर्वं पायोत्सकृत् मृद् दातव्या, सकृच्च पाणेः। एवं त्रिरावर्तते। तत्रैवं मानवम्—

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकस्मिन् करे दश।
उभयोस्सप्त दातव्या मृदश्शुद्धिमभीप्सता।। इति।।

तथाऽपरं वासिष्ठं मतम्—

एका लिङ्गे तिस्रो वामे (करे तिस्रः) उभाभ्यं द्वे च मृत्तिके।
पञ्चाऽपाने दशैकस्मिन्नुभयोस्सप्त मृत्तिकाः।। इति।।

दक्षस्तु मृत्तिकापरिमाणमुपदिशति—

अर्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता।
द्वितीया च तृतीया च तदर्धार्धा प्रकीर्तिता।।

तत्र विरुद्धेषु विकल्पः, अविरुद्धेषु समुच्चयो द्रष्टव्यः। 'मलापकर्षणेऽमेध्यस्य' इत्येतत्तु सर्वत्र सममित्युच्यते।। १४।।

अनु०—पायु और हाथों का प्रक्षालन, मूत्र त्याग सम्बन्धी सफाई के नियम से तिगुनी सफाई करे।

मूत्रवद्रेतस उत्सर्गे।। १५।।

शुक्रस्योत्सर्गेऽपि मूत्रवच्छौचमेव।। १५।।

अनु०—वीर्य त्याग करे तो मल-मूत्रवत् ही सफाई करे।

नीवीं विस्रस्य परिधायाऽप उपस्पृशेत्।। १६।।

अनु०—धोती खोलते समय अथवा कपड़े धारण करते समय नीवी में गांठ देने के बाद जल से स्पर्श करे।

आर्द्रं तृणं गोमयं भूमिं वा समुपस्पृशेत्।। १७।।

परिहितस्य वाससो बन्धो नीवी। अपामुपत्स्पर्शनं प्रक्षालनं वा सम्भवापेक्षो विकल्पः।।१६-१७।।

अनु०—अथवा भीगी हुई घास, गोबर अथवा भूमि को छूए।

नाभेरधस्स्पर्शनं कर्मयुक्तो वर्जयेत्।। १८।।

देवपितृसंयुक्तं कर्म कुर्वाण इत्यर्थः।। १८।।

अनु०—देव और पितृ विषयक धार्मिक अनुष्ठानों को करते हुए नाभि से निचले अंश को न छूए।

'ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्यै मेध्यमवाचीनममेध्यमि' ति श्रुतिः।।१६।।

पुरुषस्य नाभ्या ऊर्ध्वं मेध्यम्। अवाचीनमधस्तात्, अमेध्यम्, अयज्ञार्हमित्यर्थः।।१६।।

अनु०—वेद का वचन है- पुरुष की नाभि से ऊपर वाला भाग शुद्ध होता है, जबकि निचला भाग दूषित समझा जाता है।

शूद्राणामार्याधिष्ठितानामर्धमासि मासि वा वपनम्।।२०।।

कार्यमिति शेषः। आर्याधिष्ठिताः आर्याच्छास्रादि शुश्रूषवः।।२०।।

अनु०—जो शूद्र आर्यों की सेवा करते हों, उन्हें पन्द्रहवें अथवा महीने में एक बार क्षौर कर्म करा लेना चाहिए।

आर्यवदाचमनकल्पः।।२१।।

तेषामिति शेषः। कल्पः प्रयोगः। 'आसीनस्त्रिः पिबेत्' इत्यादि। एवं च 'स्त्रीशूद्रौ तु सकृत्' इत्येतदनार्याधिष्ठितशूद्रविषयं द्रष्टव्यम्। ननु सर्व एव शूद्रा आर्याधिष्ठिताः। तथा च वक्ष्यति-'शूद्रेषु पूर्वेषां परिचर्या' इति सत्यम्-तथाऽपि परिचर्यायामतिक्रमस्सम्भाव्यते। सन्ति हि केचिच्छूद्राः स्वतन्त्रा एव शिल्पजीविनश्च, तस्मादनवद्यम्। आर्यो ब्राह्मणोऽभिप्रेतो न क्षत्रियवैश्यौ, तत्रैत्तस्यात्। आर्यवदिति वतिप्रत्ययेनाऽऽचमनधर्माणां सर्वेषामतिदेशे सत्युपवीतादीनामपि प्राप्तिस्स्यात्। नेत्याह-त्रैवर्णिकप्रधानत्वादुपनयनस्य, तत्प्रयुक्तत्वाच्चोपवीतस्य, न शूद्रस्य प्राप्तिः। तस्मादुपवीतादिवर्जितस्याऽतिदेशोऽयम्।।२१।।

अनु०—शूद्र के लिए भी आचमन का विधान है जैसा कि द्विजातियों के लिए है।

वैश्यः कुसीदमुपजीवेत्।।२२।।

कुसीदो वृद्ध्यर्थं द्रव्यस्य प्रयोगः।।२२।।

अनु०—ब्याज पर रुपए देकर वैश्य अपनी जीविका चलाए।

पञ्चविंशतिस्त्वेव पञ्चमाषकी स्यात्।।२३।।

माषो नाम कार्षापणस्य विंशतितमो भागः। 'विंशो भागः पणस्य परिकीर्तितः' इति स्मृत्यन्तरदर्शनात्। पञ्चविंशतिसङ्ख्यानाम् कार्षापणानां प्रतिमासं पञ्च माषा वृद्धिरित्यर्थः।।२३।।

अनु०—ब्याज कैसा हो? मूलधन पचीस कार्षापण हो तो उसका बीसवां भाग (पांच पण) ब्याज ले।

अथाऽप्युदाहरन्ति-

यस्समर्घमृणं गृह्य महार्घं यः प्रयोजयेत्।
स वै वार्धुषिको नाम सर्वधर्मेषु गर्हितः।।
वृद्धिं च भ्रूणहत्यां च तुलया समतोलयत्।
अतिष्ठद् भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिस्समकम्पतेति।। २४।।

अर्घो वृद्धिः समित्ययमुपसर्गो गृह्यते। अनेन सम्पद्यते य एकस्य हस्ताल्लघीयस्या वृद्ध्या द्रव्यं गृहीत्वाऽन्यस्मै भूयस्यै प्रयच्छति स एको वार्धुषिकः। अपरस्तु परेणोपायार्जितं द्रव्यं पूर्वसूत्रोक्तात् परिमाणात् भूयस्यै प्रयच्छति। अयमर्थो द्वितीयेन यच्छब्देन लभ्यते। तत्र निन्दा-सर्वधर्मेषु गर्हित इत्यादि। यो य इति वीप्सया ब्राह्मणादन्येषां निषेधो द्रष्टव्यः।। २४।।

अनु०—प्रमाण देते हैं—

जो थोड़ा धन दे, पर उसके बदले अधिक ब्याज ले, वह सूदखोर होता है। उसकी सभी धर्मों में निंदा की गई है। कथानक है- एक बार ब्रह्मा ने ब्याज लेने वाले भ्रूण और गर्भपातजन्य पापों को तराजू में तोला, तो अधिक ब्याज लेने वाले का पलड़ा नीचे हो गया।

गोरक्षकान् वाणिजकान् तथा कारुकुशीलकान्।
प्रेष्यान् वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत्[1]।। २५।।

गोरक्षकान् विप्रानधीतवेदानपि। एतेन क्षत्रियवैश्यावपि व्याख्यातौ। शूद्रवदाचरेत्। गोरक्षकादिब्राह्मणहिंसायामपि ब्रह्महत्या भवत्येव। साक्षिशपथे तावत् विशेषः—

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः।। इति।।
तथा दिव्येऽपि 'अग्निं जलं वा शूद्रस्य' इति।। २५।।

अनु०—गाय रक्षक, व्यापारी, नट, चरण संदेश ले जाने वाले एवं सूदखोर को शूद्रवत् समझे और उसी प्रकार उनसे व्यवहार करना चाहिए।

कामं तु परिलुप्तकृत्याय कदर्याय नास्तिकाय पापीयसे पूर्वौ दद्याताम्।। २६।।

परिलुप्तकृत्यो विच्छिन्नाचारः। कदर्यः सत्यपि द्रव्ये द्रव्यार्जनस्वभावः। नास्तिको वेदब्राह्मणनिन्दकः। पापीयान् शूद्रः। एतेभ्यो यथाकामं भूयस्यै वृद्ध्यै पूर्वो वर्णौ ब्राह्मणक्षत्रियौ दद्याताम्। यः पुनस्स्मृतिषु ब्राह्मणस्य वार्धुष्यप्रतिषेधस्स कृतकृत्यविषयो द्रष्टव्यः।। २६।।

१. मनु. ८/१०२

अनु०—यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय चाहें, तो वे धार्मिक अनुष्ठान न करने वालों को अधिक ब्याज पर धन दे सकते हैं। वे कंजूस, नास्तिक, पापी को अपनी इच्छा के अनुसार ब्याज पर रुपए देने में स्वतन्त्र हैं।

अयज्ञेनाऽविवाहेन वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च।। २७।।

विवाहश्शास्त्रलक्षणभार्यापरिग्रहलाभः। वेदस्योत्सादनमनध्ययनम् अधीतवेदस्योपेक्षया वा नाशः। ब्राह्मणातिक्रमं तु शातातप आह—
प्रत्यासन्नमधीयानं ब्राह्मणं यस्त्वतिक्रमेत्।
भोजनाच्चैव दानाच्च दहत्यासप्तमं कुलम्।। इति।।
कुलान्त्युत्कृष्टान्यपि निकृष्टतां यान्तीत्यर्थः।।२७।।

अनु०—उच्च कुल के लोग भी अपवित्र हो जाते हैं, जब वे यज्ञ और शास्त्रगत विवाह नहीं करते। वेद अध्ययन में रुचि न रखना और ब्राह्मण का आदर-सत्कार न करना भी कुल के पतन का कारण होता है।

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे मन्त्रविवर्जिते।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते।। २८।।

मूर्खलक्षणमुक्तं 'शास्त्रातिगस्मृतो मूर्खः' इत्यत्र। तथा च वसिष्ठः—
यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे च स्याद् बहुश्रुतः।
बहुश्रुताय दातव्यं मूर्खे नाऽस्ति व्यतिक्रमः।।२८।।

अनु०—उस ब्राह्मण की उपेक्षा कर सकते हैं, जो ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी वेद न पढ़े, मूर्ख हो, ज्ञान रहित हो। ऐसे पापधारी ब्राह्मण की उपेक्षा करने से कोई दोष नहीं होता। कारण जलती हुई यज्ञ की अग्नि में ही हवन करते हैं न कि राख में।

गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया।
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि मन्त्रतः।।
मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि।। २९।।

अनु०—वेदमंत्रों से अनभिज्ञ जो कुल होते हैं, वे वैसे ही परेशान होते हैं जैसे गाय, घोड़ा, बैल रखने वाले व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्ति को खेती करने वाले की तरह व्यग्रता होती है। वह राजा के तेवर की भांति परेशान रहता है।

कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः।। ३०।।

गोभिरश्वैश्चेत्यत्र संव्यवहारेणेत्यध्याहार्यम्।। २९-३०।।

अनु०–जो कुल वेदमंत्रों से भिज्ञ होते हैं, उनके पास धन भले ही थोड़ा हो, पर उनकी ख्याति और प्रसिद्धि बहुत अधिक होती है।

वेदः कृषिविनाशाय कृषिर्वेदविनाशिनी।
शक्तिमानुभयं कुर्यादशक्तस्तु कृषिं त्यजेत्[1]।। ३१।।

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।। इति।।३१।।

अनु०–वेदों के पठन-पाठन से कृषि कर्म में बाधा आती है। खेती के करने से वेद का पठन-पाठन क्षीण हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति ये दोनों काम एक साथ कर सकता हो तो करे। लेकिन जो एक ही काम करने में समर्थ हो, वह खेती करना त्याग दे और वेदों के अध्ययन-अध्यापन में लग जाए।

न वै देवान् पीवरोऽसंयतात्मा रोरूयमाणः ककुदी समश्नुते।
चलत्तुन्दी रभसः कामवादी कृशास इत्यणवस्तत्र यान्ति।। ३२।।

पीवरोऽतिपीनः परमांसेन स्वमांसं वर्धयन्। आह च मनुः–
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
अनभ्यर्च्य पितॄन् देवान्न ततोऽन्योऽस्त्यपुण्यकृत्।। इति।।
प्यायतेर्वृद्धिकर्मण औणादिकः क्वरच्प्रत्ययः। असंयतात्मा असंयतबुद्धिः निषिद्धकर्माभिमुखं मनो निरोद्धुमक्षम इत्यर्थः। रोरूयमाणः रौतेश्शब्दकर्मणः क्रियासमभिव्याहारे यङ्प्रत्ययो द्रष्टव्यः। नरगानप्रियः गान्धर्वादिष्वासक्तमना इत्यर्थः। ककुदी ककुद्मान् स च बलीवर्दः, तदुपजीवीत्यर्थः। चलत्तुन्दी चलतः प्राणिनो यस्तुदति हिनस्ति तदुपजीवीत्यर्थः। प्राणिघातक इति यावत्। यद्वा चलत्तुन्दी चलदुदरः। उदरपूरणपरायणः। रभसस्तीक्ष्णो वाक्कायकर्मभिः दीर्घवैरी वा। कामवादी यथेष्टवादी निर्विशङ्कसमदस्यं च यो भाषते। कृशासः कृशान् दुर्बलानशक्तानस्यति क्षिपति बाधते इति कृशासः। इतिशब्दः प्रकारवचनः। अणवः क्षुल्लकाः क्षुद्रा इत्यर्थः। एते देवान्न समश्नुवते। किं तर्हि कुर्वन्ति? तत्र यान्ति यत्र जाताः, इहैव परिभ्रमन्तीत्यर्थः।।३२।।

अनु०–मोटा, अस्थिर मन वाला, शब्द करने अथवा गाने में रुचि रखने वाला, बैलों के सहारे जीवन यापन करने वाला, प्राणियों को चोट पहुंचाने वाला, स्वभाव में तीक्ष्ण, अंट-शंट बोलने वाला, कमजोर को पीड़ा पहुंचाने वाला, अणु के समान तुच्छ व्यक्ति कभी भी देवलोक को प्राप्त नहीं होते। वे सदा मृत्युलोक में ही भटकते रहते हैं।

यद्यौवने चरति विभ्रमेण सद्वाऽसद्वा यादृशं वा यदा वा।
उत्तरे चेद्वयसि साधुवृत्तस्तदेवाऽस्य भवति नेतराणि।। ३३।।

---

१. द्रष्टव्य मनु. १०/८३-८४

उत्तरं वयः पञ्चाशद्वर्षादुपरि एतस्योर्ध्वम्। आचार्याभिमतं 'ऊनषष्टेश्च वर्षेभ्यो ह्यष्टाभ्यश्च मासेभ्यः' एतस्मादर्वाग्यौवनम्। सद्वाऽसद्वेति विहितप्रतिषिद्धोभयाभावः। यादृशं वेति प्रकारानियमः। यदा वेति कालानियमः। अयमत्राऽर्थः-यौवनोद्धतः पुरुषो व्यामोहात्पूर्वस्मिन् वयसि साध्वसाधु वाऽत्यन्तनिकृष्टमपि कर्म यदा आचरति, स चेदुत्तरस्मिन् वयसि साधुवृत्तः कल्याणाचारो भवति प्रतिषिद्धं परिहाप्य स्वविहितमनुतिष्ठति तदेवाऽस्य फलदं भवति नेतराणि दुष्कृतानि पूर्ववयोऽनुष्ठितानि। अनेन च प्रायश्चित्ताल्पत्वं स्थापितं भवति। न पुनरकरणमेव प्रायश्चित्तस्य।। ३३।।

अनु०—मनुष्य युवा अवस्था में कोई भूल कर भी दे, परन्तु वृद्धावस्था में श्रेष्ठ आचरण करने लग जाए, अपनी भूलों को सुधार ले तो उसे श्रेष्ठ आचरण से उत्पन्न होने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है। पूर्व अवस्था में भूलवश किए गए कार्य निष्फल हो जाते हैं।

शोचेत मनसा नित्यं दुष्कृतान्यनुचिन्तयन्।
तपस्वी चाऽप्रमादी च ततः पापात्प्रमुच्यते।।३४।।

इत्थं शोचेत मनसा-अहो कष्टं मया कृतम्, धिङ्ग मां कामचारमदीर्घदर्शिनम्, का मे गतिः? का मे त्राणभूमिरिति, अत ऊर्ध्वमीदृशं कर्म न करिष्यामीति दुष्कृतान्यनुचिन्तयन् अनुस्मरन्नित्यर्थः। तपस्वी कृच्छादिकृत्। अप्रमादी पापस्य कर्मणः पुनरसेविता। तस्माद्यौवनकृतात्पापात् प्रमुच्यते नैतत्कुर्यात् पुनरिति निवृत्त्या पूयते तत इति। तथा च वसिष्ठः—

ख्यापनेनाऽनुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापाद्दानाद्वाऽपि प्रमुच्यते इति।। ३४।।

अनु०—मनुष्य को अपने बुरे कर्मों को याद करना चाहिए। वह उनके निमित्त प्रायश्चित्त कर्म करे। तपस्वी सा जीवन बिताए। धार्मिक अनुष्ठानों को करने में तनिक भी आलस्य न करे। ऐसा व्यक्ति पाप भावना से छूट जाता है।

स्पृशन्ति विन्दवः पादौ य आचामयतः परान्।
न तैरुच्छिष्टभावस्स्यात्तुल्यास्ते भूमिगैस्सहेति।। ३५।।

भूमौ पतिताः पुनरुत्थाय बिन्दवः परानाचामयतः पादौ स्पृशन्ति चेत् ते पुरुषं नोच्छिष्टं कुर्वन्ति भूमिगैस्तुल्या इत्यभिधानादन्यत्राऽपि भूमिगतजलमदोषमिति गम्यते। पादग्रहणादन्यत्रोच्छिष्टभावो भवत्येव।। ३५।।

अनु०—यदि व्यक्ति दूसरे को आचमन करने के लिए जल दे और तभी जल की बूंदें उसके पैरों पर आ पड़ें तो भी वह व्यक्ति शुद्ध रहता है। क्योंकि जल की ये बूंदें पृथ्वी पर एकत्रित जल के समान ही शुद्ध, पवित्र मानी जाती है।

(खण्ड-दस सम्पूर्ण)

खण्ड-ग्यारह

सपिण्डेष्वादशाहमाशौचमिति जननमरणयोरधिकृत्य वदन्त्यृत्विग्दीक्षित-ब्रह्मचारिवर्जम्।।१।।

समानः पिण्डो येषां ते सपिण्डाः स्मृतिशास्त्रकाराः यद्दशाहाशौचं तदेव जननं मरणं चाऽधिकृत्य वदन्ति। न सर्वं त्र्यहाद्याशौचवचनमपि। तथा च स्मृत्यन्तरे यदतिदेशवचनम् 'जननेऽप्येवमेव स्यात्' इति तद्दशाहस्यैवाऽतिदेशिकमिति मन्तव्यम्। आशौचे तु सम्प्राप्ते दानादिष्वनधिकारः।

तथा च वृद्धमनुः—
उभयत्र दशाऽहानि कुलस्याऽन्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते।।
कुमारजन्मदिवसमेकं कुर्यात्प्रतिग्रहम्।
आयान्ति-देवपितरस्तत्र तं बोधयन्ति च।।
तस्मात्तद्दिवसः पुण्यः पितृवंशविवर्धनः।। इति।।
ब्राह्मणविषयमेतद्दशाहाशौचवचनम्। क्षत्रियादीनां तु एकादशाहादि।।१।।

अनु०—सपिण्डों को जन्म एवं मृत्यु के अवसर पर उस दिन का आशौच करना चाहिए। परन्तु ऋत्विज्, सोमपात्र की दीक्षणीया इष्टि (अनुष्ठान) करने वाले यज्ञकर्ता और ब्रह्मचारी आशौच से मुक्त रहते हैं।

सपिण्डता त्वासप्तमात्सपिण्डेषु।।२।।

न निवर्तत इति शेषः। तत्त्वात्मानमधिकृत्य प्रागूर्ध्वं च षट्सु पुंस्सु भवति। तत्सन्ततिषु चोभयतोऽपि सप्तमे निवर्तते। सापिण्ड्यस्य संक्षेपोक्तिरेषा, विस्तरस्तु वक्ष्यते 'अपि च प्रपितामहः' इत्यत्र। ननु त्रिपुरुषमेव सापिण्ड्यं सम्भाव्यते, पितृपितामहप्रपितामहानां पिण्डदानवचनात्। उच्यते—पित्रादिषु त्रिषु जीवत्सु येभ्यः पिता ददाति तेभ्यः पुत्रो ददातीति परेभ्यः त्रिभ्यः पिण्डदानं सम्भाव्यते, अत उपपद्यते सप्तमे निवृत्तिरिति।।२।।

अनु०—सपिण्डों में सपिण्डता सातवीं पीढ़ी के पुरुष तक बताई गई है।

आसप्तमासादादन्तजननाद्वोदकोपस्पर्शनम्।।३।।

सप्तममासादर्वागादन्तजननाद्वा बालेषु मृतेपूदकोपस्पर्शनं स्नानमात्रमेव सपिण्डानाम्। यत्तु तस्मिन्नप्येकाहाशौचं तेन सहाऽस्य विकल्पः।।३।।

अनु०—सात मास पूरा होने अथवा पूरा न होने पर दांतों के निकालने से पूर्व वच्चों के निधन पर सपिण्ड स्नान करने से शुद्ध हो जाते हैं।

पिण्डोदकक्रिया प्रेते नाऽत्रिवर्षे विधीयते।
आदन्तजननाद्वाऽपि दहनं च न कारयेत्।।४।।

तृतीयवर्षमप्रविष्टस्याऽजातदन्तस्य वा पिण्डोदकक्रिया न कर्तव्या। दहनं च, अवध्योर्द्वयोः स्नेहापेक्षया विकल्पः।

नाऽत्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया।
जातदन्तस्य वा कुर्यान्नाम्नि वाऽपि कृते सति।।
तथा–
नाऽस्य कार्योऽग्निसंस्कारो नाऽपि कार्योदकक्रिया इति।।४।।

अनु०–तीन वर्ष की आयु पूर्ण करने से पूर्व मृत्यु को प्राप्त हुए या दांतों के निकलने से पहले मरे हुए बच्चे के लिए पिण्ड और उदकदान करने की जरूरत नहीं है। ऐसे बच्चों का दाह कर्म भी न करे।

अप्रत्तासु च कन्यासु प्रत्तास्वेके ह कुर्वते।
लोकसंग्रहणार्थं हि यदमन्त्रास्स्त्रियो मताः।।५।।

अप्रत्तास्वित्यत्र न पिण्डोदकक्रियेत्यनुवर्तते। प्रत्तास्वेके ह कुर्वत इति। पितृसपिण्डाभिप्रायमेतत्। 'तथाऽयं हेतुः–लोकसङ्ग्रहणार्थं हीति। लोकसङ्ग्रहणं महाजनवशीकारः। तस्मात्प्रत्तासु विकल्पः। आह च याज्ञवल्क्यः–

कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम्।। इति।।

भर्तृसपिण्डाः पुनरूढानां कुर्वीरन्नेव। तथा च'वसिष्ठः–'प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् ताश्च तेषाम्' इति। ऊढानां च अमन्त्रिकैवोदकक्रिया। आहः च मनुः–

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्।। इति।।५।।

अनु०–अविवाहिता कन्या की मृत्यु हो जाए तो उसका पिण्ड दान करे। कुछ विद्वानों का मानना है कि विवाहिता पुत्री की मृत्यु हो जाए, तो पिण्ड दान करने का विधान है। यह सहानुभूति दर्शाने के लिए किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि स्त्री का मन्त्र से कोई संबंध नहीं होता।

स्त्रीणां कृतविवाहानां त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति वान्धवाः।
यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्ति च सनाभयः।।६।।

द्रव्यसाध्यत्वात् पिण्डदानादेर्मृतस्य रिक्थं लब्ध्वा पिण्डदानादिकं कुर्यादिति विवेक्तुं सपिण्डसकुल्यविवेकक्रमं तावदाह–

अनु०–विवाहिता स्त्रियों के निधन हो जाने पर उनके बन्धु-बांधवों की शुद्धि तीन दिन बाद हो जाती है। किन्तु उनके भाई दस दिन के बाद ही शुद्ध होते हैं।

अपि च प्रपितामहः पितामहः पिता स्वयं सोदर्या भ्रातरः सवर्णायाः पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रस्तत्पुत्रवर्जं तेषां च पुत्रपौत्रमविभक्तदायं सपिण्डानाचक्षते।। ७।।

सापिण्ड्य एव किञ्चिद्वक्तव्यमस्तीति मत्वाऽत्रापि चेत्याह। उक्तस्यैव विस्तारोऽयं प्रपितामह इत्यादि। परिभाषा चैषा द्रष्टव्या।। ७।।

अनु०–परदादा, दादा, पिता और स्वयम् एक ही माता-पिता से पैदा हुए सहादेर भाई, सवर्णा पत्नी से उत्पन्न बेटा, पोता, परपोता सपिण्ड कहलाते हैं। परपोते का बेटा सपिण्ड नहीं होता है। इसके साथ ही बेटा और पोता पिता के साथ अविभक्त दाय वाले बताए गए हैं।

विभक्तदायानपि सकुल्यानाचक्षते।। ८।।

एषा च परिभाषा। एतदुक्तं भवति-विभक्ताविभक्तशब्दौ व्यत्यस्तौ कार्यौ। सम्बन्धविशेषज्ञाने सति सपिण्डा उच्यन्ते। संबंधमात्रज्ञाने सकुल्याः। अतश्च सकुल्या अपि सपिण्डा एव, द्रव्यपरिग्रहे तु विशेषोऽस्ति।। ८।।

अनु०–(उत्तराधिकारपत्र, वसीयत) जिनमें दाय का विभाजन हो जाए (विभक्त दाय) उन लोगों को सकुल्य कहा जाता है।

असत्स्वन्येषु तद्गामी ह्यर्थो भवति।। ६।।

अन्येष्वौरसादिषु पुत्रेषु।। ६।।

अनु०–जब कोई सगा संबंधी और पुत्र आदि न रहे, तो मृतक का धन सपिण्ड को मिलता है।

सपिण्डाभावे सकुल्यः।। १०।।

ऋज्वेतत्।। १०।।

अनु०–सपिण्डों के न रहने पर सकुल्य को धन मिलता है।

तदभावे पिताऽऽचार्योऽन्तेवास्यृत्विग्वा हरेत्।। ११।।

वाशब्दो विकल्पार्थः। स च व्यवस्थया। सा च पूर्वपूर्वाभावे उत्तरोत्तर इति। पिता-पितृस्थानीयः। अनेन पुत्रस्थानीयोऽपि लक्ष्यते। स च दाहादिसंस्कारकर्ता कथम्? तथाऽऽह वसिष्ठः 'सपिण्डाः पुत्रस्थानीया वा तस्य धनं विभजेरन्' इति। इतरथा सकुल्याभावे पिता गृह्णीयादित्युक्ते पूर्वापरविरोधस्स्यात्। तस्मात् पितृशब्देन पितृस्थानीयः पुत्रस्थानीयो ग्रहीतव्यः।।११।।

अनु०–सकुल्य न हो तो मृतक का धन पिता की तरह पालन-पोषण करने वाले आचार्य को, वह न ले तो शिष्य को, शिष्य भी न हो तो ऋत्विज् को धन

दे देना चाहिए।

तदभावे राजा सत्स्वं त्रैविद्यवृद्धेभ्यः संप्रयच्छेत्।। १२।।

सदिति ब्राह्मणं प्रति निर्दिशति। इतरवर्णस्वं तु सर्वाभावे राजैवाऽऽददीत।।१२।।

अनु०—ऋत्विज् न हो तो राजा ब्राह्मण की सम्पत्ति को तीन वेदों के विद्वानों में बांट दे।

न त्वेव कदाचित्स्वयं राजा ब्राह्मणस्वमाददीत।। १३।।

अस्मिन् पक्षे परकीयमतेन दोषमाह—

अनु०—मगर ब्राह्मण के ऐसे धन को राजा अपने पास न रखे।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रघ्नं विषमेकाकिनं हरेत्।
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।।
तस्माद्राजा ब्राह्मणस्वं नाऽऽददीत कदाचन।
परमं ह्येतद्विषं यद्ब्राह्मणस्वमिति।। १४।।

राजग्रहणमुपलक्षणार्थम्, अन्यो वा ब्राह्मणस्वं नाऽऽददीत। न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते। इयांस्तु विशेषः। ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रघ्नं विषमेकाकिनं हरेत्।। १४।।

अनु०—इस प्रसंग में पद्य है—

राजा ऐसे ब्राह्मण का धन ग्रहण करता है तो वह धन राजा, उसके वेटों और पोतों को नष्ट कर देता है। विष से केवल विषपायी की मृत्यु होती है। जव कि ब्राह्मण का धन विष से भी खतरनाक होता है। अतः राजा ब्राह्मण के धन को अपने पास न रखे। ब्राह्मण का धंन भयानक विष के समान होता है।

जननमरणयोस्सन्निपाते समानो दशरात्रः।। १५।।

सन्निपातस्समवायः। अन्तरेण निमित्तेन दशाहे वर्तमाने इतरस्याऽपि निमित्तस्य तत्राऽन्तःपातः। तथा चेत् पूर्वाशौचप्रयुक्ततन्त्रमध्यपातित्वादितरत्प्रसजति, न पृथग्दशरात्रं प्रयुङ्क्ते इत्यभिप्रायः। एवं त्र्यहादिष्वपि। तत्र भूयसा सहाऽल्पीयो गच्छति न त्वल्पीयसा भूयः। अपेक्षितप्रयुक्तिसांनिध्याभावात्। तत्र सजातीयस्यैव प्रसङ्ग इति केचित्। तथा च गौतमः-'तज्जातीयमेवाऽऽपतेत् तच्चेदन्तः पुनरापतेच्छेषेण शुद्ध्येरन्'। इत्युक्तवान्। तस्माज्जनने जननं मरणे मरणमिति निवेशस्सिद्धो भवति। आचार्यस्त्वनादृत्य तच्छब्दं जननमरणयोरिति वदन् विजातीयस्याऽपिप्रसङ्गं मन्यते।। १५।।

अनु०—जन्म-मृत्यु साथ-साथ हो तो दोनों के निमित्त केवल दस दिन-रात का

आशौच माना जाता है।

अथ यदि दशरात्रास्सन्निपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमा नवमाद्द दिवसात्।। १६।।

आङन्त्राऽभिविधौ। यदि दशरात्रे वर्तमाने दशमाद्दिवसादर्वाक् दशाहं त्रिरात्रादयो वा निपतेयुः तदा प्रक्रान्तस्य शेषेणैव शुद्धिर्भवतीत्यर्थः। दशमे चेदहनि सन्निपतेयुरन्यदाशौचं कल्प्यम्। तच्च गौतमवचनात्। स आह-'रात्रिशेषे द्वाभ्याम्, प्रभाते तिसृभिः' इति। प्रभाते प्रकर्षेण भाते दशमस्य उषःप्रभृति उदयादर्वाक् परिपात इत्यभिप्रायः। उदिते तु यथाप्राप्तमेव।। १६।।

अनु०—दस दिन-रात का आशौच काल पूरा न हुआ हो और तभी दूसरा आशौच आ जाए तो पहले वाले आशौच का काल दोनों के लिए आशौच काल हो जाता है। मगर इस अवस्था में दूसरे वाला आशौच पहले वाले आशौच काल के नवें दिन से पहले आ जाए तो दोनों के निमित्त पहले वाले आशौच अवधि के लिए पर्याप्त होता है।

जनने तावन्मातापित्रोर्दशाहमाशौचम्।। १७।।

यदि सर्वे सपिण्डा वृत्तवन्तो भवेयुः तदा मातापित्रोरेव दशाहाशौचम्।।१७।।

अनु०—सन्तान के उत्पन्न होने पर उसके माता-पिता को दस दिन तक का आशौच रखना चाहिए।

मातुरित्येके तत्परिहरणात्।। १८।।

यस्मात्प्रसूतिकां लोकः परिहरति तस्मात् तस्या एव जननाशौचं न जनकस्येति।।१८।।

अनु०—कुछ विद्वानों का मानना है-जन्म के होने पर मां के लिए ही आशौच काल का विधान है। क्योंकि वह स्पर्श आदि के लिए वर्जित होती है।

पितुरित्यपरे शुक्लप्राधान्यात्।। १६।।

न हि शुक्लमन्तरेण भवन्तीति।।१६।।

अनु०—कुछ अन्य विद्वानों का कथन है कि ऐसे अवसर पर पिता के लिए आशौच काल होता है। कारण सन्तान की उत्पत्ति में पुरुष के वीर्य की अधिकता होती है।

अयोनिजा ह्यपि पुत्राश्श्रूयन्ते।। २०।।

अगस्त्यवसिष्ठादयः। तथा हि-मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कलशे रेतो न्यपतत्। ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेतामिति। तदेतदृचाऽभ्युक्तम्—

उताऽसि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त।। इति।।२०।।

अनु०—कारण वेदों में मां के गर्भ से न पैदा होने वाले बेटों की चर्चा हुई है।

मातापित्रोरेव तु संसर्गसामान्यात्।।२१।।

संसर्गः सम्बन्धः प्रजोत्पत्त्युपायभूतः। स चोभयोस्समानो यस्मात्।।२१।।

अनु०—परन्तु मान्य यही है कि माता-पिता दोनों के लिए ही आशौच का विधान है। कारण सन्तान-उत्पत्ति दोनों के संयोग से होती है।

मरणे तु यथाबालं पुरस्कृत्य यज्ञोपवीतान्यपसव्यानि कृत्वा तीर्थमवतीर्य सकृत्सकृत् त्रिर्निमज्ज्योत्तीर्याऽऽचम्य तत्प्रत्ययमुदकमासिच्याऽत एवोत्तीर्याऽऽचम्य गृहद्वार्यङ्गारमुदकमिति संस्पृश्याऽक्षारलवणाशिनो दशाहं कटमासीरन्।।२२।।

यथाबालं यो यो बालस्तं तं पुरस्कृत्य कनिष्ठप्रथमा इति यावत्। अपसव्यानि अप्रदक्षिणानि प्राचीनावीतानि कृत्वा। कथं यज्ञोपवीतानि भवन्ति चेत्? भूतगत्येति ब्रूमः। अन्यत्राऽपि प्रेतकृत्येष्वेवमेव भवितव्यम्। सकृद्ग्रहणं प्रतिनिमज्जनोन्मज्जनं उत्तीर्योत्तीर्येत्यर्थः। तत्प्रत्ययं प्रेतप्रत्ययं प्रेतं प्रत्याय्य प्रेतस्य नामग्रहणपूर्वकं उद्देशं कृत्वेत्यर्थः। प्रत्ययमित्याभीक्ष्ण्ये णमुल्प्रत्ययो द्रष्टव्यः। गृहप्रवेशावस्थायां पुनर्गृहद्वारे अङ्गारमुदकं च संस्पृश्य बालपुरस्सराः गृहं प्रविशेयुः। इतिशब्देन प्रकारवाचिना स्मृत्यन्तरेणोक्तं समुच्चिनोति। एवं हि याज्ञवल्क्य आह—

आचम्याऽग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान्।
विदश्य निम्बपत्राणि गृहान् बालपुरस्सराः।।
प्रविशेयुस्समालभ्य कृत्वाऽश्मनि पदं शनैः।। इति।।

ततः प्रभृति दशाहमक्षारलवणाशिनो भवेयुः। यावदाशौचं कटे तृणप्रस्तरे आसीरन् उपविशेयुः। पिण्डदानमपि प्रतिदिवसं कार्यम्।।२२।।

अनु०—मृतक के सम्बन्धी उसकी (मृतक की) आयु के अनुसार कम उम्र वाले लोगों को आगे कर दें। यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे के ऊपर करें और पानी (नदी, तालाब) में प्रवेश करें। वे उसमें तीन-तीन बार डुबकी लगाएं। नहाने के बाद आचमन करें। मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए जल देते हैं। पानी से निकलकर आचमन करें। वे अपने घर आएं। वहां आग, जल या ऐसी ही किसी वस्तु को छूएं। दस दिन तक क्षार-लवण मिश्रित भोजन न करें। जमीन पर ही चटाई-दरी आदि बिछा कर सोएं।

एकादश्यां द्वादश्यां वा श्राद्धकर्म।।२३।।

कुर्वीतेति शेषः। योऽप्ययमेकोद्दिष्टादेः ज्योतिश्शास्त्रे कालो विहितः सोऽनिष्क्रान्ततत्कालस्य वेदितव्यः।। २३।।

अनु०—उसे ग्यारहवें या बारहवें दिन श्राद्ध करना चाहिए।

शेषक्रियायां लोकोऽनुरोद्धव्यः।। २४।।

अत्राऽपि प्रेतस्य शेषक्रियायाः कर्तव्यायाः लोको महाजनः अनुरोद्धव्यः। नग्नप्रच्छादनश्राद्धं दाहादिषु। अत्राऽपि न केवलं दाहक्रियायामेव। तत्र हि बहुशब्दे उदकमुक्तं, यच्चातः स्त्रिय आहुस्तत्कुर्वन्ति' इति। तथाऽन्यैरप्युक्तं 'स्त्रीभ्यस्सर्ववर्णेभ्यश्च धर्मशेषान् प्रतीयात्' इति।। २४।।

अनु०—श्राद्ध के पश्चात् होने वाली क्रियाएं कर्म जैसे समाज में प्रचलित हों, वैसे ही करें।

अत्राऽप्यसपिण्डेषु यथाऽऽसन्नं त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहमिति कुर्वीत।। २५।।

साम्प्रतं सपिण्डाशौचं कर्तव्यम्। तत्र तावत्समानोदकाशौचमुच्यते-इतिकरणात् सद्यश्शौचम्। अहोरात्रशब्देन पक्षिण्युपक्षिप्ता। वृत्तस्वाध्यायापेक्षश्चाऽयं विकल्पः। वृत्तनिमित्तानि चाऽध्ययनविज्ञानानि कर्माणीति द्व्येकगुणनिर्गुणानां व्युत्क्रमेणैते पक्षा भवन्ति।।२५।।

अनु०—मृतक के असपिण्डों की निकटता के आधार पर तीन दिन-रात, एक दिन-रात अथवा एक दिन या इससे कम काल का आशौच माना जाता है।

आचार्योपाध्यायतत्पुत्रेषु त्रिरात्रं पक्षिण्येकाहम्।। २६।।

आचार्ये प्रेते त्रिरात्रम्। उपाध्याये पक्षिणी। तयोः पुत्रेष्वेकाहम्।। २६।।

अनु०—आचार्य, उपाध्याय और उनके पुत्रों का निधन हो जाए तो क्रमशः तीन दिन पक्षिणी और एक दिन का आशौच बताया गया है।

ऋत्विजां च।। २७।।

चशब्दाद्याज्यस्य च। त्रिरात्रमृत्विजां च।। २७।।

अनु०—ऋत्विज् की मृत्यु हो जाए तो तीन दिन-रात तक आशौच रहता है।

शिष्यसतीर्थसब्रह्मचारिषु त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहमिति कुर्वीत।। २८।।

अत्राऽपि त्रिरात्रमहोरात्रं पक्षिणीति। तीर्थशब्देन गुरुरुच्यते समानो गुरुर्यस्येति विग्रहः। सब्रह्मचारी सहाध्यायी। एषु मृतेषु यथोक्तं त्रिरात्रादिर्भवति।। २८।।

अनु०—शिष्य, सतीर्थ और एक साथ ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले के निधन पर क्रमशः तीन दिन-रात, एक दिन-रात अथवा एक दिन का या फिर इससे

भी कम समय के लिए आशौच रखे।

गर्भस्रावे गर्भमाससम्मिता रात्रयः स्त्रीणाम्।।२६।।

त्रिमासे गर्भस्रुतो भवति यदि तावन्त्यहोरात्राणि। एवं चतुर्थादिष्वपि। स्त्रीग्रहणात् जननादर्वाक् वृत्ते न पुरुषस्याऽऽशौचम्।।२६।।

अनु०—गर्भपात हो जाए तो उतनी अवधि (दिन-रात) का आशौच होता है। जितनी अवधि का गर्भ होता है।

परशवोपस्पर्शनेऽभिसन्धिपूर्वं सचेलोऽपः स्पृष्ट्वा सद्यश्शुद्धो भवति।।३०।।

परशवः असपिण्डशवः। कथम्? असवर्णशवस्पर्शने वहने चोभयत्राऽऽशौच चान्तरविधानात्। अभिसन्धिः कामः, तदभावोऽनभिसन्धिः। अपांस्पर्शनमवगाहनम्। तत्सद्य एव कुर्वीत, न विलम्बयेत्।।३०।।

अनु०—न जानते हुए शव को छू दिया जाए तो उस समय धारण किए गए कपड़ों सहित स्नान कर लेना चाहिए। ऐसा करने से उसी समय आदमी की अशुद्धि दूर हो जाती है।

अभिसन्धिपूर्वं त्रिरात्रम्।।३१।।

अनन्तरोक्तविषय एव।।३१।।

अनु०—जानकर जो शव को स्पर्श करता है, उसके लिए तीन दिन-रात का आशौच समझना चाहिए।

ऋतुमत्यां च।।३२।।

ऋतुमती रजस्वला। तत्स्पर्शेऽपि अभिसन्ध्यनभिसन्धिकृतो विभागो वेदितव्यः। चशब्दस्तत्स्पृष्टिन्यायांनुकर्षणार्थः। आह च मनुः—

दिवाकीर्त्यमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा।
शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति।। इति।।

दिवाकीर्त्यश्चण्डालः। अत्राऽयं विशेषः—अबुद्धिपूर्वं संस्पर्शे द्वयोस्स्नानम्। बुद्धिपूर्वं तु त्रयाणामिति केचित्।।३२।।

अनु०—रजस्वला स्त्री को छू दिया जाए तो उपर्युक्त नियम के अनुसार ही व्यक्ति शुद्ध होता है।

'यस्ततो जायते सोऽभिशस्त' इति व्याख्यातान्यस्यै व्रतानि।।३३।।

'यस्ततः' इत्यादिना 'प्रजायै गोपीथाय' इत्येवमन्तेन ब्राह्मणवाक्येन रजस्वलांया व्रतान्युक्तानि। तानि तया परिपालनीयानीत्यर्थः। तथा च वसिष्ठः 'त्रिरात्रं रजस्वलाऽशुद्धि-

भवेत्! इत्येवमादिना प्रपञ्चितवान्।। ३३।।

अनु०—रजस्वला से पैदा हुए पुत्र को अभिशस्त कहते हैं। इसके साथ ही ऐसी स्त्री के व्रत की चर्चा की गई है।

वेदविक्रयिणं यूपं पतितं चितिमेव च।
स्पृष्ट्वा समाचरेत्स्नानं श्वानं चण्डालमेव च।। ३४।।

हिरण्यादिग्रहणपूर्वकं वेदप्रदानं विक्रयो लक्षणया। चितियूपयोस्त्वपवृत्ते प्रयोगे स्पर्शनम्। पतितग्रहणमुपपातकानामप्युपलक्षणम्। श्वग्रहणं च सृगालादीनाम्, चण्डालग्रहणं प्रतिलोमानाम्।। ३४।।

अनु०—जो वेद बेचता है या यज्ञ का यूप बेचता है, उससे स्पर्श हो जाए तो स्नान करना चाहिए। धर्मभ्रष्ट प्राणी, चिता, कुत्ता और चण्डाल को छू देने पर स्नान करे।

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे।
क्रिमिरुत्पद्यते तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।। ३५।।

अनु०—ब्राह्मण के शरीर में फोड़े-फुंसी हो जाएं, उनमें से पीप-मवाद निकलता हो और उनमें कृमि पैदा हो जाएं तो कैसे शुद्धि करें?

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च क्रिमिदष्टः शुचिर्भवेत्।। ३६।।

नैतत्क्रिमिदंशनमात्रे चोद्यते। तर्हि? स्वशरीरोत्पन्नक्रिमिदंशे। इतरथा प्रश्नोत्तरानुपपत्तेः। यद्वा-व्रणद्वारे क्रिमीणामुत्पत्तिमात्रे एतत्प्रायश्चित्तम्, न दंशने।। ३५-३६।।

अनु०—गाय का गोबर,. मूत्र, दूध, दही, घी का सेवन करे। कुश मिलाकर जल को उबाले, उस जल से तीन दिन स्नान करे। उसे पीने से शुद्ध हो जाता है।

शुनोपहतस्सचेलोऽवगाहेत।। ३७।।

शुनोपहतः शुना स्पृष्टः नाभेरूर्ध्वमिति शेषः।। ३७।।

कुत्ते का स्पर्श हो जाए तो उस समय धारण किए कपड़ों के साथ स्नान करे। इससे वह शुद्ध हो जाता है।

प्रक्षाल्य वा तं देशमग्निना संस्पृश्य पुनः प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य प्रयतो भवति।। ३८।।

कुत्रचिदिदं प्रायश्चित्तं भवति? स्नानाशक्तौ वा पादौ प्रक्षाल्य पुनराचामेदिति सम्बन्धः।। ३८।।

अनु०—व्यक्ति के जिस अंग को कुत्ता स्पर्श करे, वह उसे धोए। उसे अग्नि से स्पर्श कराए। पैर धोए और आचमन करे तो शुद्ध हो जाता है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

शुना दष्टस्तु यो विप्रो नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति।।
सुवर्णरजताभ्यां वा गवां शृङ्गोदकेन वा।
नवैश्च कलशैस्स्नात्वा सद्य एव शुचिर्भवेत्।।३६।।

श्वाधिकारेपुनः श्वग्रहणं श्वापदादीनां प्रदर्शनार्थम्। नदीं गत्वा स्नात्वा चेति शेषः। सुवर्णरजतेति। इदमपि शुना दष्टस्यैव। कनकरजतनिर्मितेन पात्रेण नवैश्च मृन्मयैर्वा कलशैः स्नानमेकः कल्पः। गवां शृङ्गोदकेन नवैश्च कलशैरित्यपरः।।३६।।

अनु०—यदि कुत्ता किसी ब्राह्मण को काट ले, तो वह उस नदी में स्नान करे जो समुद्र में मिलती हो। सौ प्राणायाम करे। घी का सेवन करे। ऐसा करने से वह शुद्ध हो जाता है। या सोने-चांदी या गाय के सींग से बने पात्रों में रखे जल से स्नान करे अथवा नए घड़े वाले जल से नहाए, तो वह शुद्ध हो जाएगा।

(खण्ड-ग्यारह सम्पूर्ण)

खण्ड-बारह

अभक्ष्याः पशवो ग्राम्याः।।१।।

सप्त ग्राम्याः पशवः गोश्वाजाविकं पुरुषश्च गर्दभश्च उष्ट्रस्सप्तमोऽश्वमुहैके ब्रुवते।।१।।

अनु०—ग्राम्य पशुओं को न खाए।

क्रव्यादाश्शकुनयश्च।।२।।

क्रव्यं मांसं तददन्तीति क्रव्यादाः। शकुनयः काकाः शकुन्ता वा ग्राम्यानुकर्षणार्थश्चकारः। एतेषां भक्ष्यत्वेन कामतः प्राप्तानां प्रतिषेधः। तथा च श्रुतिः 'स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति' इति मुख्यप्राणेन पृष्टे ऊचुः 'यत्किञ्चिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुः' इति आह च मनुः—
प्राणस्याऽन्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।। इति।।
अतस्सर्वमिदं भक्ष्यत्वेन प्राप्तं तन्निवारणार्थे प्रकरणारम्भः।।२।।

अनु०—मांसभक्षी पशु और पक्षी खाने योग्य नहीं होते।

तथा कुक्कुटसूकरम्।।३।।

तथाशब्दोऽपि ग्राम्यानुकरणार्थ एव। कुक्कुटसूकरमिति द्वन्द्वैकवद्भावः।।३।।

अनु०–मुर्गा और सूअर अभक्ष्य कहे गए हैं।

अन्यत्रा जाविकेभ्यः।।४।।

प्रत्येकं बहुवचनं जात्याख्यायामन्यतरस्यां भवति। अजाविकौ भक्ष्यौ।।४।।

अनु०–बकरे और भेड़ को छोड़ किसी भी ग्राम्य पशु को न खाए।

भक्ष्याः श्वाविड्गोधाशशशल्यककच्छपखड्गाः खड्गवर्जाः पञ्च पञ्चनखाः।।५।।

परिसङ्ख्यैषा। कामत एवैतेषामपि भक्ष्यत्वे प्राप्ते भक्ष्येतरनिषेधार्थम्। पञ्चपञ्चनखग्रहणाच्च सजातीयपरिसंख्यैषा गम्यते। श्वाविडादीन् षडनुक्रम्य पञ्चग्रहणात् षष्ठस्य परिसङ्ख्यायां विकल्पः। तच्च स्पष्टीकृतम्-खड्गवर्जा इति। तथा च वसिष्ठः 'खड्गे तु विवदन्ते' इति। आचार्येणाऽप्युक्तं 'खड्गश्श्राद्धे पवित्रम्' इति। एवमुत्तरेष्वपि खड्गवत् यथासम्भवं योजना। श्वाविडः श्वसदृशमृगाः। शल्यकाः वराहविशेषाः। ऋज्वन्यत्।।५।।

अनु०–श्वाविट्, गोह, खरगोश, शल्यक, कच्छप भक्ष्य बताए गए हैं। इसके साथ ही खड्ग को छोड़ अन्य पांच नाखून वाले पशु का भक्षण कर सकते हैं।

तथर्श्यहरिणपृषतमहिषवराह कुलुङ्गाः कुलुङ्गवर्जाः पञ्च द्विखुरिणः।।६।।

भक्ष्या इत्यनुवर्तते। पूर्ववत्परिसंख्या।।६।।

अनु०–सफेद खुर वाला हिरण, साधारण हिरण, धारी युक्त चमड़े वाला हिरण, भैंसा, बनैला सूअर अभक्ष्य हैं। काले हिरण को छोड़ बाकी दो खुर वाले पशु भक्ष्य माने गंए हैं।

पक्षिणस्तित्तिरिकपोतकपिञ्जलवार्ध्राणसमयूरवारणा वारणवर्जाः पञ्च विविष्किराः।।७।।

अस्मिन्नपि षट्के वारणे विकल्पः। विकीर्य विकीर्य भक्षयन्तीति विविष्किराः। अन्यत्पूर्ववत्।।७।।

अनु०–तित्तिर, कबूतर, कपिंजल, वार्ध्रणस, मोर भक्ष्य कहे जाते हैं। वारण को छोड़ शेष पक्षी जो भोज्य को तोड़कर खाते हैं, वे भक्ष्य हैं।

मत्स्यास्सहस्रदंष्ट्रचिलिचिमो वर्मी बृहच्छिरोरोमशकरिरोहितराजीवाः।।८।।

भक्ष्या इत्यनुवर्तते। उक्तेषु पशुमृगपक्षिमनुष्येषु अप्रसिद्धनामकाः निषादेभ्योऽवगन्तव्याः।।८।।

अनु०—सहस्रदंष्ट्र, चिलिचिम, वर्मी, बृहत् शिरस्, रोमशकरि, रोहित और राजीव नामक मत्स्य भक्ष्य हैं।

अनिर्दशाहसन्धिनीक्षीरमपेयम्।। ९।।

गोमहिष्यजानामिति शेषः। प्रसवादारभ्य नातिक्रान्तदशाहमनिर्दशाहं क्षीरम्। सन्धिनी पुनः या गर्भिणी दुह्यते या वा सायमदुग्धा प्रातर्दुह्यते प्रातरदुग्धा वा सायम्।। ९।।

अनु०—दस दिन की ब्याही गाय, भैंस, बकरी आदि का दूध न पिए। गर्भस्थ पशुओं का दूध पीना वर्जित है।

विवत्साऽन्यवत्सयोश्च।। १०।।

क्षीरमपेयमित्यनुवर्तते। विवत्सा विगतवत्सा। विवत्सान्यवत्सासन्धिनीनां क्षीरमपेयम्, न पुनस्तद्विकारं दध्याद्यपि। कुत एतत्? वसिष्ठवचनात्। यदाह सः—'सन्धिनीक्षीरमवत्साक्षीरम्' इत्यभक्ष्यप्रकरणे। कथमनेन दध्याद्यनुग्रहो भवति? अयं तावत् न्यायः सर्वत्र निषेधे द्रव्यशुद्धौ वेदितव्यः-प्रकृतिग्रहणे विकारस्याऽपि ग्रहणं विकारग्रहणं न प्रकृतेरिति। यत्पुनरपण्यप्रकरणे 'क्षीरं च सविकारम्' इति विकारग्रहणं कृतं तत्राऽयमभिप्रायः विकाराणां दधिघृतादीनां क्षीरजातेर्जात्यन्तरत्वात् पायसादिशब्दव्यापादेन दधिघृतनवनीतादिशब्दान्तरत्वाच्च विकारग्रहणमन्तरेण तद्बुद्धिर्न जायत इति। अन्यत्र त्वन्यतरग्रहणेऽन्यतरग्रहणं भवत्येव। इह तु वसिष्ठवचने क्षीराधिकारे सत्येव पुनः क्षीरग्रहणं तद्विकाराभ्यनुज्ञानार्थम्।। १०।।

अनु०—जिस गाय का अपना बछड़ा न हो या जो किसी और गाय के बछड़े को दूध पिलाए, उसका दूध न पिए।

आविकमौष्ट्रिकमैकशफम्।। ११।।

क्षीरमपेयमित्यनुवर्तते। एकशफा एकखुरा अश्वादयस्तेषां पयं ऐकशफम्।। ११।।

अनु०—भेड़, ऊंटनी और एक खुरवाले पशुओं के दूध का सेवन निषिद्ध है।

अपेयपयःपाने कृच्छ्रोऽन्यत्र गव्यात्।। १२।।

अविशेषितः कृच्छ्रशब्दः प्राजापत्ये वर्तते।। १२।।

अनु०—गाय के दूध को छोड़ यदि कोई वर्जित दूध का सेवन कर ले तो उसे कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

गव्ये त्रिरात्रमुपवासः।। १३।।

द्वयमेतद्बुद्धिपूर्वविषयम्। अबुद्धिपूर्वे तु पूर्वस्मिन् त्रिरात्रं गव्ये तूपवासः। आह च मनुः 'शेषेषूपवसेदहः' इति।। १३।।

अनु०—जिस गाय का दूध अपेय है फिर भी उसे पी ले तो, उसे तीन दिन का उपवास करना चाहिए।

पर्युषितं शाकयूषमाससर्पिश्शृतधानागुडदधिमधुसक्तुवर्जम्।।१४।।

पर्युषितमुषःकालान्तरितम्। शाकयूषादिवर्जं पक्वं पर्युषितमभक्ष्यमिति सम्बन्धः।।१४।।

अनु०—शाक, यूष, मांस, उड़द, घी, भुना हुआ अन्न, गुड़, दही और सत्तू बासी भी हों तो भी उनका सेवन कर सकते हैं।

शुक्तानि।।१५।।

शुक्तानि च दधिवर्जम्। आह च मनुः—
दधि भक्ष्य तु शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवम्।
यानि चैवाऽभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैश्शुभैः।। इति।।१५।।

अनु०—परन्तु बासी खट्टा भोजन और पेय सामग्री का प्रयोग न करे।

तथाजातो गुडः।।१६।।

तथाजातश्शुक्तत्वेन जात इत्यर्थः। गुडस्य पृथक्करणं अपक्वस्याऽपीक्षुरसस्य शुक्तस्य प्रतिषेधार्थम्।।१६।।

अनु०—खट्टा गुड़ नहीं खाना चाहिए।

श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य तैष्यां माघ्यां वोत्सृजेयुरुत्सृजेयुः।।१७।।

श्रवणेन नक्षत्रेण श्रविष्ठया वा युक्ता पौर्णमासी श्रावणी। श्रावणशब्दोऽत्र नक्षत्रद्वयप्रदर्शनार्थः। तथाऽऽह—
चित्रादितारकाद्वन्द्वैः पूर्णपर्वेन्दुसङ्गतः।
मासाश्चैत्रादिका ज्ञेयाः त्रिस्त्रिष्षष्ठान्त्यसप्तमैः।।
इति। एवमेव द्वादश पौर्णमास्यो द्रष्टव्याः। उपाकर्मोत्सर्जनं च गृह्य एवोक्तम्।।१७।।

अनु०—श्रावण या आषाढ़ महीने की पूर्णमासी को वेद का अध्ययन करने के लिए वेदारम्भ संस्कार करे और तिष्य नक्षत्र या माघ महीने की पूर्णमासी को वेद का अध्ययन पूर्ण करे।

विशेष—मांसभषण अवैदिक होने से अमान्य है। ये अंश प्रक्षिप्त लगते हैं।

(अध्याय-पांच, खण्ड-बारह सम्पूर्ण)

अध्याय-छह : खण्ड-तेरह

शुचिमध्वरं देवा जुषन्ते।।१।।

अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरः हिंसाकर्म तत्प्रतिषेधोऽध्वरः। जुषन्ते सेवन्ते। देवग्रहणं पितृणामप्युपलक्षणार्थम्।।१।।

अनु०—शुचिपूर्ण यज्ञ ही देवताओं द्वारा ग्रहण होते हैं।

शुचिकामा हि देवाश्शुचयश्च।।२।।

हि शब्दो हेतौ शुचिकामत्वात् शुचित्वाच्चेत्यर्थः।।२।।

अनु०—क्योंकि देवता स्वभाव से पवित्र होते हैं और पवित्रता की कामना करते हैं।

शुची वो हव्या मरुतश्शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयंश्छुचिजन्मानश्शुचयः पावका इति[1]।।३।।

ऋगेषा देवानां शुचित्वमभिवदतीति विव्रियते। वसिष्ठस्यार्ष त्रिष्टुप्छन्दः। मरुतो देवताः। हे मरुतः! वो युष्माकं शुचीनां सतां हव्यान्यपि शुचीनि योग्यानि भवन्ति। तस्मात् शुचिभ्यो युष्मभ्यं शुचिमेवाऽध्वरं यज्ञं प्रहिणोमि प्रतनोमि। यस्मादेवं वयं मरुतां कृतवन्तस्तस्मात्तेऽपि मरुतः ऋतेन यज्ञेन सत्यं परं पुरुषार्थममृतस्वरूपं स्वर्गापवर्गाख्यं आयन् प्राप्नुयुः। किंविशिष्टास्ते? ऋतसापः शुचिजन्मानश्शुचयः पावकाश्च; ऋतसापः यज्ञसेविनः। उक्तं च 'शुचिं हिनोम्यध्वरम्' इति। शुचि जन्म येषां ते शुचिजन्मानः स्वयं शुचयः पावनहेतवश्च द्रव्याणाम्। तथा चोक्तम्-'चण्डालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुध्यति' इति।।३।।

अनु०—मरुतो, आपके लिए पवित्र द्रव्य है। मैं आपके निमित्त यज्ञ में आहुतियां देता हूं। पवित्र यज्ञ करने वाले पवित्र जन्म से युक्त दूसरों को भी पवित्र बनाने वाले मरुतों या देवताओं ने ऋत के द्वारा सत्य को पाया।

अहतं वाससां शुचि तस्माद्यत्किञ्चेज्यासंयुक्तं स्यात्सर्वं तदहतेन वाससा कुर्यात्।।४।।

अहतमनुपभुक्तं अभिनवं शुचि स्यादित्यध्याहारः। इज्या यागः यत्किञ्चिदिति वीप्सावचनात् इष्टिपशुचातुर्मास्यादीनाम्।।४।।

अनु०—नए वस्त्र पहनकर यज्ञ किया जाए तो यज्ञ करने वाला पवित्र होता है। इसलिए यज्ञ-अनुष्ठान आदि करते समय नए वस्त्र पहनने चाहिए।

---

१. ऋ. सं. ५/४/२४/२

प्रक्षालितोपवातान्यक्लिष्टानि वासांसि पत्नीयजमानावृत्विजश्च परिदधीरन्।।५।।

तत्र संस्कारेणाऽनहतवाससोऽपि करणत्वमित्यभिप्रायः। उपवातानि शोषितानीत्यर्थः। अक्लिष्टानि अच्छिन्नानि अच्छिद्राणि वा। तानि च शुक्लानि भवन्ति, उत्तरत्र लोहितवास इति विशेषश्रवणात्। चशब्दादुपद्रष्ट्रादयोऽप्येवंभूतानि वासांसि परिदधीरन्निति गम्यते।।५।।

अनु०–यजमान, उसकी पत्नी, ऋत्विज् धोए हुए साफ-सुथरे वस्त्र पहनें। फटे वस्त्र न धारण करें।

एवं प्रक्रमादूर्ध्वम्।।६।।

आपवर्गादिति शेषः। प्रक्रम उपक्रमः। उपक्रमादारभ्याऽऽपवर्गादेवंभूतैर्वासोभिर्भवितव्यमित्यभिप्रायः।।६।।

अनु०–प्रक्रम क्रियाएं करने के बाद ऐसा करते हैं।

दीर्घसोमेषु सत्रेषु चैवम्।।७।।

दीर्घसोमास्सत्राणि च प्रसिद्धानि। चशब्द एकाहाहीनोपसङ्ग्रहार्थः। एवमित्यतिदेशः। 'यत्किञ्चेज्यासंयुक्तम्' इत्यस्य विस्तरोऽयम्।।७।।

अनु०–ऐसा ही विधान दीर्घ कालिक सोमयज्ञों और सत्रों हेतु निर्दिष्ट है।

यथा समाम्नातं च।।८।।

शुक्लाद्वाससोऽन्यदपि यद्यथा समाम्नातं तथा कर्तव्यमिति।।८।।

अनु०–भिक्षाटन अवसरों पर भिन्न-भिन्न वस्त्र पहनने चाहिए। वे वैसे ही हों, जैसे बताए गए हैं।

यथैतदभिचरणीयेष्विष्टिपशुसोमेषु लोहितोष्णीषा लोहितवाससश्चर्त्विजः प्रचरेयुः चित्रवाससश्चित्रासङ्गाः वृषाकपाविति च।।६।।

अभिचरणीयेषु अभिचारसाधनेषु उष्णीषं शिरोवेष्टनं वासः परिधानं चित्रं नानावर्णं आसङ्ग उत्तरीयम्। अभिचरणीया इष्टयः-'आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन्' इत्याद्याः। पशवः 'ब्राह्मणस्पत्यं तूपरमालभेत' इत्याद्याः। सोमाः श्येनादयः। वृषाकपिः 'विहि सोतोरसृक्षत' इति सूक्तम्। इतिशब्दचशब्दौ 'अभिचरन् दशहोतारं जुहुयात्' इत्येवमादीनामुपसङ्ग्रहणार्थौ।।६।।

अनु०–ऋत्विज् आभिचारिक इष्टि पशुयज्ञ और सोमयज्ञों में लाल रंग की पगड़ी पहने। तब अनुष्ठान कराए। यदि वृषाकपि मन्त्रों का पाठ करना हो तो रंग-बिरंगा

उत्तरीय पहने।

अग्न्याधाने क्षौमाणि वासांसि तेषामलाभे कार्पासिकान्यौर्णानि वा भवन्ति।। १०।।

पत्नीयजमानयोरेतद्विधानम्।। १०।।

अनु०–अग्नि आधान करते समय यजमान और उसकी पत्नी रेशमी कपड़े पहनें। रेशमी न हों तो कपास या ऊन के कपड़े पहनें।

मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानां मृदाऽद्भिरिति प्रक्षालनम्।। ११।।

इतिशब्दः प्रकारवचनो गोशकृदादीन्यपि प्रदर्शयति। पुरुषार्थेषु वासस्स्वेतत् यथासम्भवं द्रष्टव्यम्।। ११।।

अनु०–यदि कोई वस्त्र, मल, मूत्र, रक्त, रेतस् आदि से दूषित हो जाए तो उसे मिट्टी, जल आदि से स्वच्छ कर ले।

वासोवत्तार्प्यवृकलानाम्।। १२।।

तृपानाम वृक्षास्सन्ति तेषां त्वचा निर्मितमाच्छादनं तार्प्यमित्युच्यते। वृकलाश्शककाः (वृक्षविशेषाः)। एतेषामपि मृदाऽद्भिरिति प्रक्षालनम्।। १२।।

अनु०–तृपा नामक पेड़ की छाल से और वृकल से बने कपड़े मिट्टी और जल से धोए।

वल्कलवत्कृष्णाजिनानाम्।। १३।।

वल्कलशब्देनाऽप्याच्छादनविशेष उच्यते, 'चीरवल्कलधारिणाम्' इत्येवमादिषु दर्शनात्। तद्वत्कृष्णाजिनानामपि यथाशौचं वेदितव्यम्। ननु वल्कानां शौचं नोक्तम्, अतः कथं तद्वदित्यतिदेशः? उच्यते-इदं 'वल्कलवत्कृष्णाजिनानाम्' इत्युपमिते सति कृष्णाजिनवद्वल्कलानामित्ययमर्थ उपमानोक्त्याऽत्र विधित्सितः। अत एव तद्वदिति वतिप्रत्ययस्य षष्ठ्या सह व्यत्ययः कृष्णाजिनवद्वल्कलानामिति। यथा 'सह शाखया प्रस्तरं प्रहरति' इत्यत्र द्वितीयातृतीययोः। एवं च वल्कलानामपि बिल्वतडुण्लैरेव शुद्धिः।। १३।।

अनु०–काला मृग चर्म वल्कल वस्त्र की भांति शुद्ध होता है।

न परिहितमधिरूढमप्रक्षालितं प्रावरणम्।। १४।।

भवेदिति शेषः। परिहितं कौपीनप्रदेशे। अधिरूढ तल्पास्तरणार्थे। एतदुभयमप्रक्षालितं प्रावरणमुत्तरीयं न कुर्यात्।। १४।।

अनु०–यदि उत्तरीय वस्त्र कटि के नीचे धारण किया गया हो तो उसे बिना

धुले न पहने और न ओढ़े। सोने-लेटने के लिए जिस वस्त्र का प्रयोग हो चुका हो उसे विना धोए न पहने और न ओढ़े।

नाऽपल्पूलितं मनुष्यसंभुक्तं देवत्रा युञ्ज्यात्।।१५।।

पल्पूलितं हस्तेन शिलायां ताडितम्। अपल्पूलितमनेवंभूतं वासश्चर्मादि मनुष्यैरुपयुक्तं देवत्रा देवेषु न कुर्यात्। देवतार्थेषु कर्मस्विति यावत्। यथाऽधिषवणचर्मादि। तत्र ह्यहतं चर्म इत्यवचनात् मनुष्यैरुपयुक्तमपि पल्पूलितं चेदुपस्तीर्यमित्येव।।१५।।

अनु०—देवता विषयक कार्यों को करते समय यदि मनुष्य को किसी मनुष्य द्वारा प्रयोग की गई वस्तु का उपयोग करना पड़े तो उस वस्तु को पत्थर पर रखे। हाथ से पीटकर साफ करे फिर उसका प्रयोग करे।

घनाया भूमेरुपघात उपलेपनम्।।१६।।

महावेदिनिर्माणावस्थायामिति शेषः। तत्र हि 'वेदिकारा वेदिं कल्पयन्ते' इति शौचं नोक्तम्। शिलातलतया घनायाः मूत्राद्युपघाते गोमयेनोपलेपनं शौचम्।।१६।।

अनु०—कठोर भूमि अपवित्र हो जाए, तो उसे शुद्ध करने के लिए गोबर का लेप करे।

सुषिरायाः कर्षणम्।।१७।।

तस्मिन्नेव विषये सुषिरायाः सच्छिद्राया मृद्वया उपघाते कर्षणाच्छुद्धिः।।१७।।

अनु०—भुरभुरी मिट्टी वाली धरती की शुद्धि हल जोतने से होती है।

क्लिन्नायाः मेध्यमाहृत्य प्रच्छादनम्।।१८।।

क्लिन्ना आर्द्रा। तस्या उपघाते तृणादिना मृदा च प्रच्छादनं कार्यम्। किमर्थम्? दग्धुम्। एवं हि कृते सत्यादौ भूसंस्कारो भवति।।१८।।

अनु०—गीली मिट्टी अपवित्र हो जाए तो उस पर शुद्ध जगह से लाई गई सूखी मिट्टी डाल दे, इससे शुद्धि हो जाती है।

चतुर्भिश्शुद्ध्यते भूमिर्गोभिराक्रमणात्खननाद्दहनादभिवर्षणाच्च।।१९।।

अत्यन्तोपहताया भूमेरेतच्छौचम्। तत्र वेदिविमानकाले सन्निकर्षविप्रकर्षापेक्षयोपघातविशेषापेक्षया चाऽभिवर्षणादीनां व्यस्तसमस्तकल्पना।।१९।।

अनु०—गाय के कदम रखने से, खोदने से, आग प्रज्जवलित होने से एवं वर्षा हो जाने से भूमि शुद्ध हो जाती है।

पञ्चमाच्चोपलेपनात् षष्ठात्कालात्।।२०।।

उपलेपनमुक्तम्। सोमसूर्यांशुमारुतैर्या शुद्धिः सा कालात् शुद्धिः।।२०।।

अनु०—पांचवां तरीका है—गाय के गोबर से भूमि को लीप दिया जाए। समय बीतने से भूमि शुद्ध हो जाती है। यह भूमि शोधन का छठां उपाय है।

असंस्कृतायां भूमौ न्यस्तानां तृणानां प्रक्षालनम्।। २१।।

प्रोक्षणादिसंस्कारविहीनायां भूमौ न्यस्तानामत्यन्ताल्पानां तृणानां वर्हिरादीनां प्रक्षालनं कार्यम्।।२१।।

अनु०—अशुद्ध भूमि पर यदि कुश आदि रख दिया गया हो, तो उसे धो देना चाहिए।

परोक्षोपहतानामभ्युक्षणम्।। २२।।

तृणानामेव यज्ञार्थं समुपहतानामेतत्।।२२।।

अनु०—अनजाने में अपवित्र हुए कुश आदि को जल छिड़क कर शुद्ध कर सकते हैं।

एवं क्षुद्रसमिधाम्।। २३।।

क्षुद्रसमिधोऽङ्गुलिपरिमिताः अनिध्मा इति यावत्।।२३।।

अनु०—छोटी-छोटी लकड़ियों को जल छिड़ककर शुद्ध करते हैं।

महतां काष्ठानापमुपघाते प्रक्षाल्याऽवशोषणम्।। २४।।

याज्ञिकानामेव काष्ठानां 'अथाऽभ्यादधातीध्मं प्रणयनीम्, औदुम्बरान् महापरिधीन्' इत्येवमादावुपयोक्तव्यानां पादादिभिरुपहतानामेतत्।।२४।।

अनु०—बड़ी लकड़ियों के टुकड़ों को दूषित हो जाने पर उन्हें धोएं और सुखाएं, इस प्रकार लकड़ियों की शुद्धि होती है।

बहूनां तु प्रोक्षणम्।। २५।।

इध्मादिव्यतिरिक्तानां पूर्वस्मिन् विषये प्रोक्षणं तद्गतबहुत्वे। तेषामेव मूत्राद्युपघाते त्याग एव।।२५।।

अनु०—लकड़ी के टुकड़ियों के ढेर को शुद्ध करने के लिए उस पर जल छिड़क दे।

दारुमयानां पात्राणामुच्छिष्टसमन्वारब्धानामवलेखनम्।। २६।।

जुह्वादीनामुच्छिष्टपुरुषस्पृष्टानां दार्वादीनामवलेखनं घर्षणम्। अशुचिभिः समन्वारम्भः स्पर्शः। 'चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च' इति मानवमपूव वेदितव्यम्।।२६।।

अनु०–अशुद्ध, अपवित्र आदमी काष्ठ निर्मित पात्रों को स्पर्श कर दे तो बर्तनों को रगड़कर एवं घिसकर साफ करे।

उच्छिष्टलेपोपहतानामवतक्षणम्।। २७।।

तेषामेवाऽस्मिन्निमित्ते अवतक्षणं वाश्यादिनाऽयस्मयेनाऽनुकर्षणं तस्मिन् कृतेऽपि तत्पात्रं यदि स्वकार्यक्षमं भवति। अक्षमस्य तु श्रौतेनोपायेन त्याग एव।। २७।।

अनु०–यदि लकड़ी का पात्र उच्छिष्ट हो जाए तो उसे बसुला आदि से खुरचें और रगड़े तो वह शुद्ध हो जाता है।

मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानामुत्सर्गः।। २८।।

इध्माबर्हिरादीनामप्ययं विधिर्द्रष्टव्यः। प्रभृतिशब्देनाऽत्र निर्दिष्टानां द्वादशमलानां ग्रहणं कृतम्।। २८।।

अनु०–काष्ठ से बना पात्र मूत्र, मल, रक्त, रेतस् आदि से अशुद्ध हो जाए तो उसे त्याग ही देना चाहिए।

तदेतदन्यत्र निर्देशात्।। २९।।

तदेतदवलेखनादिविधानं निर्देशात् अन्यत्राऽऽहत्य विधानादृते न भवतीत्यर्थः। न्यायसिद्धेऽर्थे सूत्रारम्भः किमर्थ इति चेत्-समुच्चयशङ्कानिवृत्त्यर्थ इति ब्रूमः। कथं पुनर्विशेषविहिते सामान्यविहितस्याऽवलेखनादेः समुच्चयशङ्का? शौचभूयस्तयाऽपेक्षितत्वात्। तद्वा कथमिति चेत्? 'शुचिमध्वरं देवा जुषन्ते' इति सूत्रद्वयस्थऋग्दर्शनस्य प्रयोजकत्वादिति।। २९।।

अनु०–जिस स्थान पर कोई विशेष नियम न बताया गया हो, वहां ये नियम लागू होते हैं।

यथैतदग्निहोत्रे घर्मोच्छिष्टे च दधिधर्मे च कुण्डपायिनामयने चोत्सर्गिणामयने च दाक्षायणयज्ञे चैडादधे च चतुश्चक्रे च ब्रह्मौदनेषु च तेषु सर्वेषु दर्भैरद्भिः प्रक्षालनम्[1]।। ३०।।

शौचमित्यनुवर्तते। चतुश्चक्रो नाम 'इष्टकोष्ठमध्ये वसन्ते यजन्ते। तथैडादधः। अन्यत् प्रसिद्धम्। यथैतदिति निपातावुदाहरणसूचनार्थौ। तेषु कर्मस्वग्निहोत्रहवण्या-

---

१. अथोदङ् पर्यावृत्य प्राचीनदण्डया स्रुचा भक्षयति' (बौ. श्रौ. ३६)
यावन्तः प्रवर्ग्यर्त्विजस्तेपूपह्वमिष्ट्वा यजमान एव प्रत्यक्षं भक्षयति (बौ. श्रौ. ९. ११.)
अत्रैन्द्रं सान्नाय्यं समुपहूय भक्षयन्ति (बौ. श्रौ. १६-२१, २२,।
दाक्षायणयज्ञो नाम दर्शपूर्णमासविकृति विशेषः। आत्रैन्द्रं सान्नाय्यं समुपहूय भक्षयन्ति। (बौ. श्रौ. १७.५१)

दीनामुच्छिष्टसमन्वारब्धे लेपोपघाते च दर्भैरद्भिः प्रक्षालनमेव शौचं नावलखनादि। ब्रह्मौदनेष्विति बहुवचनमाश्वमेधिकानामुपसङ्ग्रहणार्थम्। तत्र यद्यपि ब्रह्मौदनभोजनपात्रस्य सकृद्भोजने कृते पुनः क्रतौ नोपयोगः। तथाऽपि दर्भैरद्भिः प्रक्षालनं शौचम्, नेतरत्, अद्भिः प्रक्षालनमेवेत्यभिप्रायः।। ३०।।

अनु०—जैसे होम में घर्मोच्छिष्ट, दधिधर्म, कुण्डपायिनायन, उत्सर्गिणामयन दाक्षायण यज्ञ, ऐडादध चतुश्चक्र और ब्रह्मौदन अनुष्ठानों में वस्तुएं कुश और जल से धोकर शुद्ध कर सकते हैं।

सर्वेष्वेव सोमभक्षेष्वद्भिरेव मार्जालीये प्रक्षालनम्।। ३१।।

ग्रहचमससोमभक्षेषु 'मार्जालीयेऽद्भिः प्रक्षालनं न दर्भैरिति।। ३१।।

अनु०—सोमयज्ञों में चमस् आदि पात्रों को मार्जलीय जल से धो देना चाहिए।

मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युत्सर्गः।। ३२।।

उपहतानामित्यध्याहारः। प्रभृतीत्यनेन श्लेष्मादिसङ्ग्रहः। ननु ग्रहचमसानामप्येवंभूतानां जुह्वादिवदुत्सर्गे प्राप्ते किमर्थं प्रयत्नः? उच्यते-'यथाहिसोमसंयोगाच्चमसो मध्ये उच्यते' इति दृष्टान्तबलात्। ग्रहचमसानां मूत्रादिसंसर्गेऽपि सोमसंयोग एव शुद्धिकारणमित्याशङ्कानिराकरणार्थो यत्नः।। ३२।।

अनु०—मल, मूत्र, रक्त, रेतस् आदि से अपवित्र चमसों या यज्ञ के पात्रों का प्रयोग न करे, उन्हें त्याग दे।

(खण्ड-तेरह सम्पूर्ण)

खण्ड-चौदह

मृन्मयानां पात्राणामुच्छिष्टसमन्वारब्धानामवकूलनम्।। १।।

आज्यस्थाल्यादीनामुच्छिष्टसमन्वारब्धानाम् अवकूलनं कुशाग्निना स्पर्शः।। १।।

अनु०—मिट्टी के बर्तन दूषित व्यक्तियों के छू जाने से अपवित्र हो जाएं तो उन्हें कुश की अग्नि दिखा दे। ऐसा करने से वे शुद्ध हो जाते हैं।

उच्छिष्टलेपोपहतानां पुनर्दहनम्।। २।।

अनु०—उच्छिष्ट का लेप लग जाए तो अशुद्ध पात्रों को (मिट्टी के पात्रों को) आग में जलाए।

मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानामुत्सर्गः।। ३।।

अतिरोहितमेव।। २-३।।

अनु०–मल, मूत्र, पुरीष, रक्त, रेतस् आदि से अशुद्ध मिट्टी के बर्तनों का उपयोग निषिद्ध है। उन्हें त्याग देना चाहिए।

तैजसानां पात्राणां पूर्ववत्परिमृष्टानां प्रक्षालनम्।।४।।

अनु०–धातु निर्मित पात्रों को अपवित्र व्यक्ति द्वारा छू लेने पर उन्हें रगड़कर स्वच्छ करे।

परिमार्जनद्रव्याणि गोशकृन्मृद्भस्मेति।।५।।

तैजसानां हिरण्मयादीनां उच्छिष्टसमन्वारब्धानां गोशकृन्मृद्भस्मभिः परिमृज्य प्रक्षालनम्।।४-५।।

अनु०–गाय के गोबर, मिट्टी और भस्म से मिट्टी के वर्तनों को रगड़कर स्वच्छ-पवित्र करते हैं।

मूत्रपुरीषलोहितरेतःप्रभृत्युपहतानां पुनः करणम्।।६।।

रुक्महिरण्मयादीनां मूत्राद्युपहतानामेतत्।।६।।

अनु०–मूत्र, पुरीष, रक्त, रेतस् आदि से अशुद्ध धातु के पात्रों को पुनः ढाले अथवा उन्हें बनाएं, तभी वे शुद्ध हो सकते हैं।

गोमूत्रे वा सप्तरात्रं परिशायनम्।।७।।

अगूढार्थमिदम्।।७।।

अनु०–या फिर ऐसे पात्रों को गोमूत्र में डुबाकर रख दे।

महानद्यां वैवम्।।८।।

सप्तरात्रं परिशायनमित्येव। याः स्वनाम्नैव समुद्रं गच्छन्ति ता महानद्यः। एते विकल्पाः सन्निकर्षविप्रकर्षापेक्षया व्यवस्थाप्याः।।८।।

अनु०–अथवा उन्हें किसी नदी में सात दिन-रात भर डुबाकर रख दे।

एवमश्ममयानाम्।।९।।

दृषदादिष्वश्ममयेषु परिशायनं द्वितीयम्। एवमिति निर्देशेन पुनः करणमपि। यद्वा-मृन्मयशौचस्यैतदनुकर्षणम्।।९।।

अनु०–पत्थर के पात्रों की शुद्धि उपर्युक्त उपाय से होती है।

अलाबुबिल्वविनालानां गोवालैः परिमार्जनम्।।१०।।

अलाबुः तुम्बी भाजनम्। बिल्वं यवमतीषु प्रोक्षणीषु यूपावटादिषु चोपयोक्तव्यानां

यवानाम्। विनालं वेणुविदलमयादिकं दीर्घभाजनमुच्यते। तच्च प्रणीताप्रणयनादीनाम्। उच्छिष्टसमन्वारब्धानां चैतत्।। १०।।

अनु०–लौकी, बिल्व, बांस के विनाल पात्र यदि अपवित्र हो जाएं, तो गाय के केशों से रगड़ कर पवित्र करे।

नलवेणुशरकुशव्यूतानां गोमयेनाऽद्भिरिति प्रक्षालनम्।। ११।।

इदं पुनरुच्छिष्टलेपोपहतानाम्। नलशब्दो वेत्रे भाष्यते। शेषाः प्रसिद्धाः। एतैः व्यूता ओतप्रोतभावेन समं तता इतिशब्दस्तु गोमूत्रोपलक्षणार्थः।। ११।।

अनु०–गाय के गोबर अथवा जल से नरकुल, बांस, शर और कुश से बने पात्रों की शुद्धि होती है।

व्रीहीणामुपघाते प्रक्षाल्याऽवशोषणम्।। १२।।

सतुषोपलक्षणमेतत्। उपघातश्चण्डालादिस्पर्शः द्रोणादल्पतरस्येदमुक्तम्। बहूनां तु प्रोक्षणं तथाविधानामेव।। १२।।

अनु०–बिना कूटा हुआ धान अपवित्र हो जाए, तो उसे धोना चाहिए और फिर सुखाना चाहिए।

तण्डुलानामुत्सर्गः।। १३।।

मूत्राद्युपहतानामल्पानामिति शेषः। बहूनां तावन्मात्रत्याग इति वक्ष्यति।। १३।।

अनु०–मल, मूत्र, आदि से अपवित्र चावल को प्रयोग में न लाएं, उन्हें फेंक दें।

एवं सिद्धहविषाम्।। १४।।

एवं चरुपुरोडाशादीनामुपघाते त्याग एवाऽर्थः। स एव च हविर्दोषो भवति।। १४।।

अनु०–हवि दूषित हो जाए, तो फेंक दे।

महतां श्ववायसप्रभृत्युपहतानां तं देशं पुरुषान्नमुद्धृत्य 'पवमानस्सुवर्जन' इत्येतेनाऽनुवाकेनाऽभ्युक्षणम्।। १५।।

अवशिष्टानामिति शेषः। प्रभृतिशब्दः पतितादिसंग्रहार्थः।। १५।।

अनु०–कुत्ता, कौआ आदि यदि अन्न के ढेर या पदार्थ को छू दे तो उतने भाग को फेंक दे। शेष पदार्थ पर जल छिड़के और पवमानस्सुवर्जन.... का पाठ करे।

मधूदके पयोविकारे पात्रात् पात्रान्तरानयने शौचम्।। १६।।

दधि मधु घृतमापो धानाः इत्यत्र मधूदके। पयोविकारः आमिक्षा। एतेषां

पुरुषदोषमात्रदुष्टानाम्। तच्चोच्छिष्टस्पर्शमात्रम्। अत्र तु विकारग्रहणात् पयसश्शौचान्तरं कल्प्यम्।। १६।।

अनु०—घी, मधु, दही, जल, धान या लावा से बने पदार्थ अशुद्ध व्यक्ति द्वारा स्पर्श कर लिया जाए तो उसे एक पात्र से बदलकर दूसरे पात्र में रख दे।

एवं तैलसर्पिषी उच्छिष्टसमन्वारब्धे उदकेऽवधायोपयोजयेत्।। १७।।

तैलं दधि पयस्सोमो यवागूरोदनं घृतम्।
तण्डुला मांसमापश्च दशद्रव्याण्यकामतः।।
इत्यभियुक्तापदेशान्मुख्य एवेति।
पात्रान्तरानयनमिति निर्दिश्यते। उदकेऽवधानं विशेषः। स च तैलसर्पिषोर्यथाऽऽत्मविनाशो भवति तथा कार्यः।। १७।।

अनु०—यदि तेल और घी को अपवित्र व्यक्ति छू दे तो उन्हें जल में रख दें। इससे उनकी शुद्धि हो जाती है।

अमेध्याभ्याधाने समारोप्याऽग्निं मथित्वा पवमानेष्टिं कुर्यात्।। १८।।

अमेध्यं मूत्रपुरीषादि तस्याऽग्निषु प्रक्षेपोऽभ्याधानम्। तस्मिन् सति अरण्योस्समारोप्य मथित्वाऽग्नीन् विहृत्य पवमानेष्टौ कृतायां तावद्दोषः परिहृतो भवति। एकाग्नौ चैतद्द्रष्टव्यम्। तत्र च पुरोडाशस्थाने चरुर्भवेत्।। १८।।

अनु०—संयोग वश अग्नि में मूत्र, पुरीष आदि आ पड़े तो अरणियों से अग्नि उत्पन्न करे और फिर उसमें यज्ञ करे।

शौचदेशमन्त्रावृदर्थद्रव्यसंस्कारकालभेदेषु पूर्वपूर्वप्राधान्यं पूर्वपूर्वप्राधान्यम्।। १६।।

एतेषु भेदेषु विरोधेषु पूर्वस्य पूर्वस्य प्राबल्यं परस्य दौर्बल्यं चार्थविप्रकर्षाद्विदितव्यम्। यथाऽग्निष्टोमे प्रागुदक्प्रवणो देशो मूत्रोपहतो लभ्यते अनेवंभूतश्च गोभिराक्रान्तोऽग्निदग्धश्च विद्यते, तयोरन्यतरस्मिन्नेव प्राचीनवंशादौ कर्तव्ये दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणोऽपि गोभिराक्रान्तोऽग्निदग्धश्च कर्तव्यः। कस्मात्? शौचप्राधान्यात्। तद्धि पूर्वेण सन्निकृष्टतरम्, अदुष्टत्वात्। प्रागुदक्प्रवणं पुनर्दुष्टत्वात् विप्रकृष्टम्। दिङ्मात्रमेतदुदाहरणे प्रदर्शितम्। एवं 'देशयोर्मन्त्रावृतोः' इत्यादि द्वन्द्वशो द्रष्टव्यम्। आवृत् प्रयोग प्राशुभावः।। १६।।

अनु०—पवित्रता, स्थान, मंत्र, क्रिया का क्रम, वस्तु, द्रव्य उसका परिष्कार और काल इनमें भेद उत्पन्न हो जाए तो पहले-पहले वाले को प्रमुख समझना चाहिए।

(अध्याय-छह, खण्ड-चौदह सम्पूर्ण)

अध्याय-सात : खण्ड-पन्द्रह

उत्तरत उपचारो विहारः।।१।।

उपचारस्सञ्चारः ऋत्विग्यजमानानाम्। विहृता अग्नयो यस्मिन् देशे स विहारः, यस्य विहारस्योत्तरत उपचारो भवति स तथोक्तः। ऋत्विग्यजमाना उत्तरतोऽग्नीनां सञ्चरेयुरिति यावत्।।१।।

अनु०—जिस जगह यज्ञ की अग्नि हो, वहां जाना पड़े तो उत्तर दिशा से जाए।

तथाऽपवर्गः।।२।।

अयमपि बहुव्रीहिरेव। उत्तरतो निर्गम इत्यर्थः।।२।।

अनु०—वहां से निकलना पड़े तो भी उत्तर से निकले।

विपरीतं पित्र्येषु।।३।।

कर्मस्विति शेषः। उपचारापवर्गो दक्षिणतः कुर्यादित्युक्तं भवति।।३।।

अनु०—पितृ विषयक कर्म, अनुष्ठान में दक्षिण से जाने और निकलने का निर्देश है।

पादोपहतं प्रक्षालयेत्।।४।।

पात्रादि।।४।।

अनु०—पैरों से कोई पात्र दूषित (छू) हो जाए तो उसे धोकर शुद्ध करे।

अङ्गमुपस्पृश्य सिचं वाऽप उपस्पृशेत्।।५।।

अङ्गं शरीरम्, सिक् परिहितं वासः अत्रोपस्पर्शः स्पर्शमात्रमेव नाऽऽचमनादि।।५।।

अनु०—शरीर का अंग या वस्त्र का छोर किसी पात्र से सट जाए (छू जाए) तो जल से पवित्र करना चाहिए।

एवं छेदनभेदनखनन[1]निरसन[2]पित्र्य[3]राक्षस[4]नैर्ऋतरौद्रा[5]भिचरणीयेषु।।६।।

---

१. अग्नीषोमीयादिषु पशुयागेषु पशुबन्धनार्थमपेक्षितस्य यूपस्य निखननं कर्तव्यम्। तदर्थमभिकांक्षितस्य गर्तस्य खननमनेन विधीयते। तमवटमध्वर्युः स्वयं वा खनेदाग्नीध्रेणर्त्विजा वा खानयेत्। (बौ. श्रौ. ४/२)

२. दर्शपूर्णमासयोः पुरोडाशार्थं शकटे आहृतानां व्रीहीणां यवानां वाऽऽवरणमपादाय तत्रस्थस्य तृणादेर्धान्यशूकस्य वाऽपादानमनेन विधीयते। किंशारु धान्यशूकम्। (बौ. श्रौ. १/४)

३. अतिशिष्टाः प्रोक्षणीर्निनयति दक्षिणायै श्रोणोरोत्तरोत्तरायै श्रोणेः स्वधा पितृभ्य ऊर्ग्भव बर्हिषद्भ्य ऊर्जा पृथिवीं गच्छतेति। (बौ. श्रौ. १/२२)

४. दर्शपूर्णमासयोरेव पुरोडाशार्थमवहतानां व्रीहीणां तुषान् तण्डुलेभ्यः पृथक्कृत्य तान् निरस्यति। तदेतत् विहितम्—इमां दिशं निरस्यति रक्षसां भागोऽसीति। तदिदंराक्षसम्। (बौ. श्रौ. १/६.)

५. अत्रैतान् पांसूनञ्चरे प्रयवपत्यत्र यं यजमानो द्वेष्टि तं मनसा ध्यायति। बौ. श्रौ. ६/२८

एतेष्वपि कृतेषु अपामुपस्पर्शनमिति। छेदनं 'आच्छिनत्याच्छेत्ता ते मारिषमिति' इत्यादि। भेदनम् 'तस्मिन् रफ्येन प्रहरति इत्यादिष्वदृष्टसंस्कारेषु खननं तं स खनति वा खानयति वा इत्यादि। निरसनं 'तृणं वा निरस्यति' इत्यादि। तत्र पुनर्वचनम निरूपितदशहोत्रा (?) यौगपद्यनिवृत्त्यर्थम्। पित्र्यं 'स्वधा पितृभ्य ऊर्ग्भव' इत्यादि। राक्षसं 'रक्षसां भागोऽसि' इत्यादि। नैर्ऋतं 'नैर्ऋतेन पूर्वेण प्रचरति' इत्यादि। रौद्रं मन्थिसंस्रावहोमादि। अभिचरणीयानि 'यं यजमानो द्वेष्टि' इत्येवं चोदितानि।।६।।

अनु०—यज्ञ के अवसर पर किसी पदार्थ, वस्तु को काटना, तोड़ना, खोदना या हटाना पड़े अथवा पितर, राक्षस, निर्ऋति, रुद्र को आहुति देनी पड़े और आभिचारिक क्रियाएं करनी हों तो उसके बाद जल से स्पर्श करें।

न मन्त्रवता यज्ञाङ्गेनाऽऽत्मानमभिपरिहरेत्।।७।।

मन्त्रवद्यज्ञाङ्गं स्रुक्स्रुवादि। तेनाऽऽत्मानं नाऽभिपरिहरेत् आत्मनो बर्हिर्न कुर्यादग्नेः पात्रस्य चान्तरतस्स्वयं न भवेदिति यावत्।।७।।

अनु०—यज्ञ के पात्रों को जिनका मन्त्र पूर्वक उपयोग होता है, उन्हें अपने को मध्य में रखकर अग्नि से दूर न ले जाए।

अभ्यन्तराणि यज्ञाङ्गानि।।८।।

ऋत्विगपेक्षयेति शेषः।।८।।

अनु०—क्योंकि यज्ञ के पात्रों का यज्ञ से बहुत निकट (यहां तक कि यज्ञकर्ता से भी अधिक निकट) का सम्बन्ध होता है।

बाह्या ऋत्विजः।।९।।

प्रयोगाङ्गत्वात् यज्ञाङ्गापेक्षयेति शेषः।।९।।

अनु०—ऋत्विज् अग्नि से दूर होते हैं।

पत्नीयजमानावृत्विग्भ्योऽन्तरतमौ।।१०।।

फलप्रतिग्रहीतृत्वादनयोः। उदाहरणानि वैसर्जनानि दाक्षिणानि च।।१०।।

अनु०—यजमान दम्पति ऋत्विज् की अपेक्षा अग्नि के अधिक निकट होता है।

यज्ञाङ्गेभ्य आज्यमाज्याद्धवींषि हविर्भ्यः पशुः पशोस्सोमस्सोमादग्नयः।।११।।

उत्तरवेद्यादिषु देशसङ्कटे उपस्थिते अग्नेरनन्तरं सोमस्साद्यते। तदनन्तरं मांसादि। तदनन्तरं धानाः पुरोडाशाः। तेभ्यश्चाऽऽज्यमनन्तरं स्रुवश्च स्रुक्च। ततो जुहूरिति। एवं तावत् चित्रतुरसन्निपाते च योज्यम्।।११।।

अनु०—यज्ञ के उपकरणों की निकटता के बाद आज्य, हवि, पशु, सोम और

यज्ञ की अग्नियां निकट होती हैं।

यथा कर्मर्त्विजो न विहारादभिपर्यावर्तेरन्।। १२।।

आवश्यकादृते विहारादव्यावृत्तिश्च, तत्र चैतत् कर्मेत्यनेन कथ्यते।। १२।।

अनु०—ऋत्विज् यज्ञ की अग्नि से मुंह न फेरे जब तक कि समस्त क्रियाएं सम्पन्न न हो जाएं।

प्राङ्मुखश्चेद्दक्षिणमसमभिपर्यावर्तेत।। १३।।

अग्निभिस्सह गमने सत्ययं विधिः। अग्नीनां पृष्ठतः करणं मा भूदित्युपदेशः कर्तव्यः।। १३।।

अनु०—अग्नि को लेकर चलते समय यदि ऋत्विज् का मुंह पूर्व दिशा में है तो दाएं कंधे की ओर मुंह रखे।

प्रत्यङ्मुखस्सव्यम्।। १४।।

अयमपि तथैव। यद्वा द्वाभ्यामपि सूत्राभ्यां यथास्थितानामेव पुरुषाणां प्रदक्षिणीकृत्य निर्गमनं विधीयते।। १४।।

अनु०—पश्चिम में मुंह हो तो बाएं कंधे की ओर मुंह करे।

अन्तरेण चात्वालोत्करौ यज्ञस्य तीर्थम्।। १५।।

उत्तरवेदिपुरीषावटं चात्वालः। वेदिपुरीषनिधानदेश उत्करः। तयोर्मध्यं तीर्थं द्वारान्तरेण योगाद्वर्त्मेति। आह च मन्त्रः—'आप्नानं तीर्थं क इह प्रवोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य' इति।। १५।।

अनु०—वेदी का रास्ता चात्वाल और उत्कर के बीच से होकर जाता है।

अचात्वाल आहवनीयोत्करौ।। १६।।

अन्तरेण तीर्थमित्यनुषज्यते। अचात्वाले चात्वालरहिते दर्शपूर्णमासादौ।। १६।।

अनु०—चात्वाल के अभाव में आहवनीय और उत्कर के मध्य को यज्ञतीर्थ माना जाता है।

ततः कर्तारः पत्नीयजमानौ च प्रपद्येरन्।। १७।।

अनेन मार्गेण प्रपद्येरन् प्रविशेयुः। चशब्दादुपद्रष्टारो द्रष्टारश्च।। १७।।

अनु०—उसी रास्ते से यज्ञकर्ता, ऋत्विज् और यजमान दम्पति जाएं।

विसंस्थिते।। १८।।

असमाप्ते यज्ञे एतद्विधानम्।। १८।।

अनु०—यज्ञ सम्पन्न न होने तक यह निर्देश मान्य है।

संस्थिते च सञ्चरोऽनूत्करदेशात् ।। १६ ।।

संस्थिते समाप्ते च यज्ञकर्मणि सञ्चरः प्रवेशो निर्गमश्चाऽनूत्करदेशात् उत्करात् पश्चादित्यर्थः। एतदुक्तं भवति—प्रतते यज्ञे पुरस्तात् निर्गमनप्रवेशो, अप्रतते पश्चादिति। आग्न्याधेयिके च विहारे इदं विधानम्। इतरत्र 'तस्माद्यज्ञवास्तु नाऽभ्यवेत्यम्' इति निषेधात् ।। १६ ।।

अनु०—यज्ञ पूर्ण हो जाए तो उत्कर को छोड़कर वहां आए और जाए।

नाऽप्रोक्षितमप्रपन्नं क्लिन्नं काष्ठं समिधं वाऽभ्यादध्यात्[1] ।। २० ।।

अग्नाविति शेषः। क्लिन्नमार्द्रम् ।। २० ।।

अनु०—जिस लकड़ी पर जल का छिड़काव न हुआ हो, जो तैयार न हो और गीली हो ऐसी लकड़ी का उपयोग यज्ञ में न करे।

अग्रेणाऽऽहवनीयं ब्रह्मयजमानौ प्रपद्येते ।। २१ ।।

दक्षिणत आसितुम्। अग्रेणेति 'एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः, 'एनपा द्वितीया' इति चाऽनुशासनात् ।। २१ ।।

अनु०—यज्ञ के ब्रह्मा और यजमान को चाहिए कि वे आहवनीय अंग्नि के सामने वेदी में प्रवेश करें।

जघनेनाऽऽहवनीयमित्येके ।। २२ ।।

एके आचार्या मन्यन्ते वेदिमतिलङ्घ्याऽपि ।। २२ ।।

अनु०—कुछ विद्वानों का मानना है- वे आहवनीय अग्नि के पीछे से वहां आएं।

दक्षिणेनाऽऽहवनीयं ब्रह्मा यतनमपरेण यजमानस्य ।। २३ ।।

समान्येतानि कुर्यात्। 'प्रणीताहवनीयं ब्रह्मायतनम्' इति सिद्धे यजमानायतन-विधानार्थ आरम्भः। अतश्च 'यजमानयतन उपविश्य, यजमानायतने तिष्ठन्' इत्येवमादिषु संव्यवहारेषु अस्मिन्नेव देशसंप्रत्ययस्सिद्धो भवति ।। २३ ।।

अनु०—ब्रह्मा का स्थान आहवनीय अग्नि के दक्षिण में और पश्चिम में यजमान का स्थान नियत है।

उत्तरां श्रोणिमुत्तरेण होतुः ।। २४ ।।

आयतनमिति शेषः। वेदेरुत्तरापरदेश इत्यर्थः ।। २४ ।।

---

१. आप. ध. सू. १/१५/१२

अनु०–यज्ञवेदी की उत्तर दिशा की श्रेणी से उत्तर की ओर होता का स्थान निर्दिष्ट है।

उत्कर आग्नीध्रस्य।। २५।।

आयतनमित्येव।। २५।।

अनु०–उत्कर के निकट आग्नीध्र का स्थान बताया गया है।

जघनेन गार्हपत्यं पत्न्याः।। २६।।

ब्रह्मादिभिर्जोषमासीनैरप्येतेष्वेव देशेषु, आसितव्यमित्यायतनप्रपञ्चः। उक्तञ्च 'यथा कर्मर्त्विजो न विहारादभिपर्यावर्तेरन्' इति। अत एव चाध्वर्योरायतनानामवचनम्, तद्व्यापाराधीनत्वात् प्रयोगसदसत्तायाः। २६।।

अनु०–गार्हपत्य अग्नि के पीछे यजमान की पत्नी का स्थान होता है।

तेषु काले काल एव दर्भान् संस्तृणाति।। २७।।

तेषु ब्रह्माद्यायतनेषु। यज्ञोपक्रमकालानां बहुत्वाद्वीप्सा। दर्भास्तरणमासनार्थम्। एवं च होतृषदनमप्यध्वर्युणैव कर्तव्यमिति भवति।। २७।।

अनु०–जब यज्ञ करना हो तो ब्रह्मा आदि के निमित्त निर्दिष्ट जगह पर कुश बिछाएं।

एकैकस्य चोदकमण्डलुरुपात्तस्यादाचमनार्थः।। २८।।

प्रतिपुरुषं अपां पूर्णाभिरित्यभिप्रायः।। २८।।

अनु०–ब्रह्मा, होता, उद्गाता आदि सबके लिए आचरण हेतु जल से भरा कमण्डल होना चाहिए।

व्रतोपेतो दीक्षितस्स्यात्।। २९।।

कतमेन व्रतेनोपेतः?–

अनु०–यज्ञ निमित्त दीक्षित पुरुष इस व्रत को करे।

न परपापं वदेन्न क्रुध्येन्न रोदेन्मूत्रपुरीषे नाऽवेक्षेत।। ३०।।

परस्याऽप्रयतस्य। यद्यप्युपनीतमात्रस्य पुरुषार्थतयैवंजातीयकानां प्रतिषेधस्सिद्धः, तथाऽपि क्रत्वर्थतया प्रतिषेधः संयोगपृथक्त्वात्। प्रायश्चित्तान्तरमस्याऽनृतवदनादिवदेव 'यदि यजुष्टो भुवस्स्वाहा' इत्यादि। तथा–'दीक्षितश्चेदनृतं वदेदिमं मे वरुण' इत्यादि।। ३०।।

अनु०–वह दूसरों के पापों को न कहे, क्रोध से बचे। रोए नहीं। मल-मूत्र

की ओर न देखे।

अमेध्यं दृष्ट्वा जपति-'अवद्धं मनो दरिद्रं चक्षुस्सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हासी' रिति।।३१।।

अमेध्यदर्शने प्रायश्चित्तमिदमनिष्टदर्शने वा। कुतः 'अमेध्यमनिष्टं वा दृष्ट्वा जपतीप्येतदुक्तं भवति' इति यज्ञप्रायश्चित्तेषु द्वयोरप्यनुभाषणाद्। मन्त्रस्तु विव्रियते—वामदेवस्यार्षम्, गायत्रं छन्दः, सूर्यो देवता। अबद्धं अवोद्धव्यं अनिरोध्यं अनिवार्यं मनः पापमपि सङ्कल्पयतीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'तस्मात्तेनोभयं सङ्कल्पयन्ते सङ्कल्पनीयं चाऽसङ्कल्पनीयञ्च' इति। चक्षुरपि दरिद्रमेव। द्रा गतिकुत्सनयोरिति। गतिकुत्सतगतिरिति। श्रुतिरपि—'तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चाऽदर्शनीयं च' इति। किमेभिरनिरोध्यैः करणैः? भगवानेव हि सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठः श्रेयान् सम्यक्पश्यति, तस्मादहं दीक्षे एव, न नियमाननुपालयितुं स त्वं मा मा हासीः मा त्याक्षीरिति।।३१।।

अनु०–यदि अमेध्य पदार्थ पर निगाह पड़ जाए तो 'अबद्धं मनो दरिद्रं...' को जपे।

(अध्याय-सात, खण्ड-पन्द्रह सम्पूर्ण)

अध्याय-आठ : खण्ड-सोलह

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रिय विट्शूद्राः[1]।।१।।

चतुस्सङ्ख्या प्रतिलोमानुलोमानां वर्णसंज्ञानिवृत्त्यर्था।।१।।

अनु०–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार प्रकार के वर्ण होते हैं।

तेषां वर्णानुपूर्व्येण चतस्रो भार्या ब्राह्मणस्य।।२।।

तेषां मध्ये ब्राह्मणस्येति सम्बन्धः। आनुपूर्व्यग्रहणात् प्रथमं ब्राह्मणी, ततः क्षत्रिया इत्येवं द्रष्टव्यम्। अस्वजातीयापरिणयनम् (?) 'इतरथाऽसदृशीम्' इत्यविशेषकं स्यात्। आह च मनुः—

सवर्णाऽग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोवराः।। इति।।२।।

अनु०–इन वर्णों के क्रम से ब्राह्मण की चार पत्नियां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो सकती हैं।

तिस्रो राजन्यस्य।।३।।

---

१. आप. ध. सू. १/१/४, वसि.ध.सू. २/१.

अनु०—क्षत्रिय वर्ण वाले के लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीन पत्नियां हो सकती हैं।

द्वे वैश्यस्य।।४।।

आनुपूर्व्येण कामत इति चाऽनुसन्धेयम्।।३-४।।

अनु०—वैश्य की वैश्य तथा शूद्र वर्ण की दो पत्नियां हो सकती हैं।

एका शूद्रस्य।।५।।

कामप्रवृत्तस्याऽपि शूद्रस्य शूद्रैव भार्या।।५।।

अनु०—शूद्र के लिए एक ही पत्नी (शूद्र) का विधान है।

तासु पुत्रास्सवर्णानान्तरासु सवर्णाः।।६।।

संव्यवहारार्थं संज्ञाकरणम्। सवर्णास्वनन्तरासु चेति विग्रहः। सवर्णास्समानजातीयाः। अनन्तरा इतराः। ब्राह्मणस्य क्षत्रिया वाऽनन्तरेत्यादि योज्यम्। तत्र सवर्णायां जातः पुत्रस्स एव वर्ण इति व्युत्पत्त्या सवर्णः। अनन्तरायां तु सवर्णसदृश इति।। आह च मनुः—

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विरुजैत्पादितान् सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्।। इति।।६।।

अनु०—इन पत्नियों में सवर्ण की या अपने से निम्न वर्ण की पत्नियों से उत्पन्न पुत्र को सवर्ण पुत्र कहते हैं।

एकान्तरद्व्यन्तरास्वम्बष्ठोग्रनिषादाः।।७।।

ब्राह्मणस्य वैश्या एकान्तरा। स तस्यामम्बष्ठं जनयति। तस्यैव शूद्रा द्व्यन्तरा। तस्यां निषादम्। क्षत्रियस्य पुनस्सैवैकान्तरा। सोऽपि तस्यामेवोग्रं नाम पुत्रं जनयति। एते त्रयः पूर्वैरनुलोमैस्सह षडनुलोमा अनुक्रान्ताः। तत्र बीजोत्कर्षे क्षेत्रापकर्षे च सत्यानुलोम्यं भवति। विपर्यये तु प्रातिलोम्यं भवति।।७।।

अनु०—एक वर्ण को छोड़कर अपने से तीसरे वर्ण की पत्नी से क्रमशः अम्बष्ठ तथा उग्र नामक और अपने वर्ण से दो वर्ण के अन्तर वाले वर्ण की पत्नी से निषाद पुत्र की उत्पत्ति होती है।

प्रतिलोमास्त्वायोगवमागधवैणक्षत्तृपुल्कसकुक्कुटवैदेहकचण्डालाः।।८।।

अनु०—अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ विवाहिता स्त्रियों से जो पुत्र पैदा होते हैं, वे हैं-आयोगव, मागध, वैण, क्षत्तृ, पुल्कस, कुक्कुट, वैदेहक और चण्डाल।

अम्बष्ठात् प्रथमायां श्वपाकः।।९।।

अनु०–अम्बष्ठ और प्रथम वर्ण की स्त्री से श्वपाक पुत्र पैदा होता है।

उग्रात् द्वितीयायां वैणः।।१०।।

अनु०–उग्र और द्वितीय वर्ण की स्त्री से वैण का जन्म होता है।

निषादात् तृतीयायां पुल्कसः।।११।।

अनु०–निषाद एवं तृतीय वर्ण की पत्नी से पुल्कस पुत्र की उत्पत्ति होती हैं।

विपर्यये कुक्कुटः।।१२।।

पुल्कसान्निपाद्यां जातस्य कुक्कुटसंज्ञेत्यर्थः। अनेनैतद्विज्ञातं भवति–प्रतिलोमानुलोमेन स्त्रियां जातोऽपि प्रतिलोम एवेति। अन्यथा कथमेवमवक्ष्यत्।। ८-१२।।

अनु०–इससे उल्टा पुल्कस पुरुष निषाद वर्ण वाली स्त्री से कुक्कुट पुत्र उत्पन्न करता है।

निषादेन निषाद्यामा पञ्चमाज्जातोऽपहन्ति शूद्रताम्।।१३।।

अत्र गौतमीयम्–'वर्णान्तरगमनमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमेन। पञ्चमेनाऽऽचार्याः' इति। आङ्त्त्राऽभिविधौ। निषादो वैश्याच्छूद्रायां जात इति कृत्वोच्यते।।१३।।

अनु०–निषाद पुरुष निषाद स्त्री से विवाह करे तो उसके वंश की पांचवीं पीढ़ी में शूद्रत्व की समाप्ति हो जाती है।

तमुपनयेत्षष्ठं याजयेत्सप्तमोऽविकृतो भवति।।१४।।

आवेकृतः नैजमेव वर्णं प्रतिपद्यत इत्यर्थः। एवं तावच्छूद्रायां वैश्याज्जातस्याऽऽसप्तमाद्वैश्यत्वापत्तिरुक्ता। एवमेव वैश्यायां जातस्य क्षत्रियत्वापत्तिः। तथा क्षत्रियायां जातस्य ब्राह्मण्यापत्तिरुच्यते–सवर्णत्यागादपि वर्णसङ्करो जायत इतीदं प्रदर्शयितुम्। आह च मनुः–

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायते वर्णसङ्करः।। इति।।

स्वकर्मणां त्याग उपनयनादिसंस्कारहानिरधिकृते। अतो वर्णसङ्करप्रदर्शनार्थत्वादुपपन्नमिहाभिधानम्।।१४।।

अनु०–पांचवीं पीढ़ी से उत्पन्न पुरुष का उपनयन करना चाहिए। छठी पीढ़ी वाले से यज्ञ कराने पर सातवां दोष मुक्त हो जाता है।

(अध्याय-आठ, खण्ड-सोलह सम्पूर्ण)

अध्याय-नौ : खण्ड-सत्रह

तत्र सवर्णासु सवर्णाः ।। १ ।।

अनुलोमविषयमिदम्। वर्णानन्तरजसवर्णासु सवर्णैरुत्पादिता अपि सवर्णा भवन्तीत्यर्थः ।। १ ।।

अनु०–इन पुत्रों में सवर्णा पत्नियों से सवर्ण पुत्रों की उत्पत्ति होती है।

ब्राह्मणात्क्षत्रियायां ब्राह्मणो वैश्यायामम्बष्ठः शूद्रायां निषादः ।। २ ।।

ब्राह्मणात्क्षत्रियायां जातायां तस्यां ब्राह्मणेनोत्पादितः। अत्र पूर्वसूत्रे आदिस्सवर्ण-शब्दस्सदृशवर्ण इत्यनया व्युत्पत्त्या वर्तते। सूत्रारम्भस्तु तेषामपि वर्णधर्मप्राप्त्यर्थः ।। २ ।।

अनु०–ब्राह्मण पुरुष हो क्षत्रिय पत्नी हो, तो ब्राह्मण, वैश्य स्त्री से अम्बष्ठ, शूद्र से निषाद का जन्म होता है।

पारशव इत्येके ।। ३ ।।

सोऽयं संज्ञाव्यतिरेकः ।। ३ ।।

अनु०–ब्राह्मण पुरुष हो और शूद्रा पत्नी हो तो पारशव नामक पुत्र का जन्म होता है। ऐसा कुछ विद्वानों का मानना है।

क्षत्रियाद्वैश्यायां क्षत्रियश्शूद्रायामुग्रः ।। ४ ।।

अयमप्येकीयमतेन संज्ञाव्यतिरेकप्रकारः ।। ४ ।।

अनु०–क्षत्रिय पुरुष हो और वैश्या स्त्री हो तो क्षत्रिय की उत्पत्ति होती है। क्षत्रिय की शूद्रा पत्नी से उग्र का जन्म होता है।

वैश्याच्छूद्रायां रथकारः ।। ५ ।।

अस्य त्वाधानेऽधिकारो 'वर्षासु रथकारः' इति। एते अनुक्रान्ता अनुलोमाः ।। ५ ।।

अनु०–वैश्य पुरुष हो और वह शूद्रा पत्नी से पुत्र उत्पन्न करे, तो उसे रथकार कहते हैं।

शूद्राद्वैश्यायां मागधः क्षत्रियायां क्षत्ता ब्राह्मण्यां चण्डालः ।। ६ ।।

अनु०–यदि शूद्र पुरुष वैश्या स्त्री से सन्तान उत्पन्न करे तो उसे मागध कहते हैं, और क्षत्रिया, ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र को क्रमशः क्षत्ता और चण्डाल कहते हैं।

वैश्यात्क्षत्रियायामायोगवो ब्राह्मण्यां वैदेहकः ।। ७ ।।

अनु०–वैश्य पुरुष और क्षत्रिया पत्नी से उत्पन्न पुत्र का नाम आयोगव होता है। वैश्य और ब्राह्मणी से पैदा हुए पुत्र को वैदेहक कहते हैं।

क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां सूतः।।८।।

अनु०—क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मणी पत्नी के संयोग से सूत की उत्पत्ति होती है।

अत्राऽम्बष्ठोग्रसंयोगो भवत्यनुलोमः।।६।।

उत्कृष्टबीजप्रभवायामनुलोमायां जाता अप्यनुलोमा एव भवन्तीत्यभिप्रायः।।६।।

अनु०—अम्बष्ठ पुरुष और उग्र वर्ण की स्त्री का संयोग हो जाए, तो अनुलोम पुत्र पैदा होता है।

क्षत्तृवैदेहकयोः प्रतिलोमः।।१०।।

शूद्रक्षत्रियापत्यभवात् प्रतिलोमाद्वैश्यब्राह्मणीप्रभवायां प्रतिलोमायामुत्पन्नोऽपि प्रतिलोमो भवतीत्यर्थः। एवमन्यत्राऽपि प्रयोजकानुसन्धानेन वेदनीयम्।।१०।।

अनु०—पुरुष क्षत्ता हो, स्त्री वैदहक हो तो प्रतिलोम पुत्र का जन्म होता है।

उग्राज्जातः क्षत्तायां श्वपाकः।।११।।

अनु०—उग्र पुरुष और क्षत्ता स्त्री से श्वपाक का जन्म माना जाता है।

वैदेहकादम्बष्ठायां वैणः।।१२।।

अनु०—वैदेहक पुरुष और अम्बष्ठा स्त्री से वैण की उत्पत्ति होती है।

निषादाच्छूद्रायां पुल्कसः।।१३।।

अनु०—निषाद पुरुष और शूद्रा स्त्री से पुल्कस की उत्पत्ति होती है।

शूद्रान्निषाद्यां कुक्कुटः।।१४।।

इदमपि प्रयोजकग्रहणार्थं, नोदाहरणावधिकमेव कथ्यते। एवं एकार्था अनेकशब्दाः अनेकार्थश्चैकशब्दः शब्दान्तरेषु तत्र संव्यवहारभेदप्रदर्शनार्थाः। एवं च तेन कर्मणा तरतमभावं विजानीयादित्युक्तं भवति। तथा च वसिष्ठः—

छन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः।
गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान् विजानीयुरिति।।
तद्विशेषावगतिश्च तत्परिहरणार्थम्।।११-१४।।

अनु०—पुरुष शूद्र हो और स्त्री निषाद हो तो कुक्कुट का जन्म होता है।

वर्णसंकरादुत्पन्नान्व्रात्यानाहुर्मनीषिणो व्रात्यानाहुर्मनीषिण इति।।१५।।

वर्णग्रहणात्सङ्करजा व्रात्या भवन्ति। यद्वा प्रतिलोमजा वर्णसङ्करादुत्पन्ना इति वर्णसंस्कारहीना इति कृत्वा प्रतिलोमा धर्महीना इत्येतदेव कल्पनीयम्। तत्श्च व्रात्या

ज्ञापितं भवति।।१५।।

अनु०–ऐसे वर्णों के संकर से उत्पन्न को व्रात्य कहा जाता है, विद्वानों का ऐसा मानना है।

(अध्याय-नौ, खण्ड-सत्रह सम्पूर्ण)

अध्याय-दस : खण्ड-अट्ठारह

षड्भागभृतो राजा रक्षेत्प्रजाम्।।१।।

षट्छब्दोऽत्र लुप्तपूरणप्रत्ययो द्रष्टव्यः। भृतिर्वेतनं तद्ग्राही भृतः। राजा चाऽत्राऽभिषिक्तः। स चाऽपि तासां प्रजानां षष्ठ भागभाग्भवति। ब्राह्मणस्याऽनु रक्षितस्य धर्मषड्भागभाग्भवति। तथा च वसिष्ठः–'राजा तु धर्मेणाऽनुशासन् षष्ठं धनस्य हरेदन्यत्र ब्राह्मणात्। इष्टापूतर्स्य तु षष्ठमशं भजति' इति। इष्टं वर्णसामान्याधिकारावष्टम्भेन विहितो ज्योतिष्टोमादिः। पूर्तं तु साधारणो धर्मः सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननमित्यादि। अभिषिक्तस्य प्रजापरिपालनं धर्मः। गौतमश्च तदेवाधिकृत्य वदति–'चलतश्चैनान् स्वधर्मे स्थापयेत्। धर्मस्य ह्यंशभाग्भवति' इति। वसिष्ठश्च–'स्वधर्मो राज्ञः परिपालनं भूतानाम्' इति।

आचार्यश्च स्वधर्मेषु स्थापनमेव रक्षणमिति मत्वाऽस्येमे स्वधर्मा इत्याह।।१।।

अनु०–राजा प्रजा की सुरक्षा करे। बदले में वह प्रजा की आमदनी का छठां भाग वेतन के रूप में ग्रहण करे।

ब्रह्म वै स्वं महिमानं ब्राह्मणेष्वदधादध्ययनाध्यापनयजनयाजनदानप्रतिग्रहसंयुक्तं वेदानां गुप्त्यै।।२।।

एष हि षट्कर्मयुक्तो ब्राह्मणः स्वो महिमा। किमर्थमेवं कृतवत् ब्रह्मेत्याह–वेदानां गुप्त्यै। गुप्तिः रक्षणम्।।२।।

अनु०–ब्रह्म ने अपनी महिमा ब्राह्मणों में निहित कर दी। वेदों का अध्ययन कर उनकी रक्षा करना, उनको पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान लेना, दान देना ब्राह्मणों का कर्म निर्धारित कर दिया।

क्षत्त्रे बलमध्ययनयजनदानशस्त्रकोशभूतरक्षणसंयुक्तं क्षत्रस्य वृद्ध्यै।।३।।

अदधादित्यनुवर्तते। किं तत्? बलं शक्तिः वेदाध्ययनादिसंयुक्तम्। शस्त्र मायुधम्। तथा च वसिष्ठः-'शस्त्रेण च प्रजापालनं स्वधर्मः' इति। भूतग्रहणं चतुर्विधस्याऽपि भूतस्य ग्रहणार्थम्। तथा च गौतमः–'चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्याऽन्तस्संज्ञानां चलनपतनसर्पणानामायत्तं जीवनं प्रसूतिरक्षणम्' इति। क्षत्रस्य वृद्धिरभ्युदयः।।३।।

अनु०–ब्रह्मा ने क्षत्रियों को बल से संयुक्त कर दिया। उन्हें राज्य की रक्षा का भार सौंपा। वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, अस्त्र-शस्त्र धारण करना, धन तथा प्राणियों के जीवन को बचाना ये कर्म ब्रह्मा ने क्षत्रियों के लिए निहित कर दिए।

विट्स्वध्ययनयजनदानकृषिवाणिज्यपशुपालनसंयुक्तं कर्मणां वृद्ध्यै।।४।।

अध्ययनादिसंयुक्तं अध्ययनादिनिष्पादितमित्यर्थः। कृषिः भूविलेखनम्। वाणिज्य क्रयविक्रयव्यवहारः। कर्माणि यागादीनि। तेषां साधने सति वृद्धिर्भवति।।४।।

अनु०–ब्रह्मा ने वैश्यों में कर्म का आधान किया। उन्होंने अध्ययन, यज्ञ करना, दान देना, कृषि, व्यापार और पशुपालन जैसे कर्म वैश्यों के लिए बताए हैं।

शूद्रेषु पूर्वेषां परिचर्या।।५।।

अदधादित्येव। पूर्वेषां ब्राह्मणादीनाम्। परिचर्या शुश्रूषा। आह चाऽऽपस्तम्बः– 'शुश्रूषा शूद्रस्येतरेषां वर्णानाम्' इति।।५।।

अनु०–अपने से पूर्व वर्णों की सेवा करने का काम शूद्रों का है।

पत्तो ह्यसृज्यन्तेति।।६।।

हिशब्दो हेतौ। यस्मात्प्रजापतेः पादात्सृष्टः तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः। अतो द्विजानां शुश्रूषैव शूद्रस्य धर्मः।।६।।

अनु०–वेद कहता है–शूद्र का जन्म प्रजापति के पैरों से हुआ है।

सर्वतोधुरं पुरोहितं वृणुयात्।।७।।

सर्वत्र धूर्यस्य सर्वतोधूः। धूश्च व्यापारः विषयज्ञानमिहाऽभिप्रेतम्। सर्वज्ञ इति यावत्। पुरो धीयत इति पुरोहितः। तं वृणुयात् वृणीत।।७।।

अनु०–जो अनेक विद्याओं में निपुण है ऐसे विद्वान को राजा अपना पुरोहित बनाए।

तस्य शासने वर्तेत।।८।।

तत्प्रयुक्तः कर्माणि कुर्यात्। स च ब्राह्मणः विद्याभिजनवांश्च गौतमवचनात्। स ह्याह–'ब्राह्मणं पुरोदधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयस्सम्पन्नं न्यायावृत्तं तपस्विनम्। तत्प्रसूतः कर्म कुर्वीत। ब्रह्मप्रसूतं हि क्षत्रमृध्यते' इत्यादि।।८।।

अनु०–पुरोहित शास्त्रोक्त विधि से राजा से राजपाट चलवाएं, शासन चलाने के लिए प्रेरित करे।

सङ्ग्रामे न निवर्तेत।।९।।

युद्धे उपस्थिते पलायनपरायणेन न भवितव्यमित्यर्थः ।। ६ ।।

अनु०—युद्ध के मैदान से पीठ न मोड़े।

न कर्णिभिर्न दिग्धैः प्रहरेत् ।। १० ।।

कर्णवन्त्यस्त्राणि कर्णीनि शूलादीनि । विषेण लिप्तानि दिग्धानि । असमासः प्रत्येकं प्रतिषेधप्राप्त्यर्थः ।। १० ।।

अनु०—बरछी वाले अस्त्रों का प्रयोग न करे और न ही विष बुझे अस्त्रों से शत्रु पर वार करे।

भीतमत्तोन्मत्तप्रमत्तविसन्नाहस्त्रीवालवृद्धब्राह्मणैर्न युध्येताऽन्यत्राऽऽततायिनः ।। ११ ।।

भीतः त्रस्तः । मत्तस्सुरादिपानी । उन्मत्तो विरुद्धचेष्टः । प्रमत्तो विगतचेताः । विसन्नाहो विगलितकवचादिबन्धः विगतव्यापारो वा । शेषाः प्रसिद्धाः । तैर्न युध्येत तान् न हिंस्यादित्यर्थः । तथा च गौतमः—'न दोषो हिंसायामाहवे । अन्यत्र व्यश्वसारथ्यनायुधकृताञ्जलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षारूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः' इति । व्यश्वसारथीत्यत्र व्यश्वौ विसारथिरिति योजना । व्यश्वादिशब्दो दूतादिभिः प्रत्येकं सम्बन्धनीयः । अदूतोऽपि दूतोऽहमिति यो वदति गौरहं ब्राह्मणोऽहमिति । पूर्वोक्तान्विशिनष्टि अन्यत्राऽऽततायिन इति । आततायी साहसकारी ।। ११ ।।

अनु०—डरे हुए, सुरापायी, पागल, बेहोश, कवच आदि जिनके शिथिल हो गए हों, स्त्री, बालक, वृद्ध, और ब्राह्मण से युद्ध करना निषिद्ध है। यदि भीड़ आततायी हो तो उस पर आक्रमण करे।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

अध्यापकं कुले जातं यो हन्यादाततायिनम् ।
न तेन भ्रूणहा भवति मन्युस्तं मन्युमृच्छतीति[1] ।। १२ ।।

भ्रूणहा यज्ञसाधनवधकारी । भ्रूणो यज्ञः बिभर्ति सर्वमिति । एवं ब्रुवतैतदभिप्रेतम्—आततायिविषयेऽपि ब्राह्मणवधे दोषोऽस्तीति । इतरथा 'न तेन भ्रूणहा भवति' इति नाऽवक्ष्यत् ।। १२ ।।

अनु०—धर्मज्ञ विद्वान प्रमाण देते हैं—

यदि राजा वेद पढ़ने वाले, उच्चकुल में जन्म लेने वाले दुष्ट, दुराचारी का वध भी कर दे तो उसे विद्वान ब्राह्मण की हत्या से उत्पन्न दोष नहीं लगता। क्योंकि क्रोध ही क्रोध के ऊपर हो जाता है।

१. मनु. ८/१५०-१५१

सामुद्रशुल्कः।।१३।।

राज्ञो भवतीति शेषः। द्वीपान्तरादाहृतं सामुद्रं वस्तु तत्सम्बन्धी सामुद्रशुल्कः पणद्रव्यम्।।१३।।

अनु०—कोई वस्तु दूसरे द्वीप से लाकर बेची जाए, तो उस पर इस तरह से कर लगाए।

वरं रूपमुद्धृत्य दशपणं शतम्।।१४।।

गृह्णीयाद्राजेति शेषः। वरमुत्कृष्टद्रव्यरूपं रत्नादिद्रव्यं स्वामिने प्रदाय शेषं शतधा विभज्य दशपणं गृह्णीयात्। अनेन सामुद्रे दशभागश्शुल्क इत्युक्तं भवति।।१४।।

अनु०—राजा लाई हुई वस्तुओं में उत्कृष्ट द्रव्य या वस्तु को ले ले। और जो वच जाए उनमें से सौ में से दस पण ले ले।

अन्येषामपि सारानुरूप्येणाऽनुपहत्य धर्मं प्रकल्पयेत्।।१५।।

असामुद्राणामपि द्रव्याणां सारफल्गुत्वापेक्षया वरं रूपमनुपहत्यैव धर्मं प्रकल्पयेदात्मार्थम्। तत्र सारफल्गुविभागो गौतमेनोक्तः 'विंशतिभागश्शुल्कः पण्ये। मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणेन्धनानां षाष्ठ्यम्' इति षष्ठतमं षाष्ठ्यम्।।१५।।

अनु०—अन्य व्यापार के लिए लाई गई वस्तुओं में से भी उनके मूल्य के अनुसार उत्कृष्ट वस्तु को ले ले और व्यापारी को सताए बिना कर ले।

अब्राह्मणस्य प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं संवत्सरं परिपाल्य राजा हरेत्।।१६।।

असावस्य द्रव्यस्य प्रभुरित्यज्ञानमात्रे प्रणष्टशब्दः। ब्रह्मस्वमिति तु विज्ञाते ब्राह्मण एवाऽऽददीत। उक्तं चैतच्छौचाधिष्ठानाध्याये 'न तु कदाचिद्राजा ब्राह्मणस्य स्वमाददीत' इति। आह च मनुः—

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्वब्दं निधापयेत्।
अर्वागब्दाद्धरेत् स्वामी परेण नृपतिर्हरेत्।। इति।।

गौतमोऽपि 'प्रणष्टस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुः। विख्याप्य संवत्सरं राज्ञा रक्ष्यम्। ऊर्ध्वमधिगन्तुश्चतुर्थं राज्ञश्शेष' इति।।१६।।

अनु०—ऐसी सम्पत्ति जिसका स्वामी ब्राह्मण को छोड़ किसी अन्य वर्ण का हो और उसका अता-पता न हो तो राजा उस धन के स्वामी के लौटने की एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे। फिर भी स्वामी न आए तो वह उस धन को अपने पास रख ले।

अवध्यो व ब्राह्मणस्सर्वापराधेषु।।१७।।

वैशब्दः श्रुतिसंसूचनार्थः। तथा च गौतमः-'षड्भिः परिहार्यो राज्ञाऽवध्यश्चाऽदण्ड्यश्चाऽबहिष्कार्यश्चाऽपरिवाद्यश्चाऽपरिहार्यश्चेति' इति। सर्वापराधेषु ब्रह्महत्यादिष्वपि।। १७।।

अनु०—ब्राह्मण को बड़े से बड़े अपराध के लिए भी मृत्यु वध की सजा नहीं देनी चाहिए।

ब्राह्मणस्य ब्रह्महत्यागुरुतल्पगमनस्वर्णस्तेयसुरापानेषु कुसिन्धभगसृगालसुराध्वजांस्तप्तेनाऽयसा ललाटेऽङ्कयित्वा विषयान्निर्धमनम्।। १८।।

कृत्वा प्रवासयेदिति शेषः। कुसिन्धः कबन्धः। भगः स्त्रीव्यञ्जनम्। सृगाली गोमायुः। स च शुनोऽपि प्रदर्शनार्थः। सुराध्वजः सुराभाण्डम्। आह च मनुः—

स्तेनस्य श्वापदः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः।
गुरुतल्पे भगः कार्यो ब्रह्महण्यशिराः पुमान्।। इति।।

कबन्धाद्याकृतिकेन कृष्णायसेन ललाटेऽङ्कयति। उत्तरीयवाससां चौर्ये विषयान्तरं निर्वासयेत्। यस्स्वयमेव प्रायश्चित्तं न करोति तस्याऽयं दण्डः।। १८।।

अनु०—यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मण का वध कर दे, गुरु की पत्नी से संभोग करे, सोना चुराए, मदिरा पान करे, तो राजा उस दोषी ब्राह्मण के धड़, स्त्री की योनि, गीदड़ और सुरापात्र की आकृति तपते हुए लोहे से चिह्नित करा दे और राज्य से बाहर भगा दे।

क्षत्रियादीनां ब्राह्मणवधे वधस्सर्वस्वहरणं च।। १९।।

सर्वत्र निकृष्टजातीयेनोत्कृष्टजातीयवधे वधस्सर्वस्वहरणं च दण्डो द्रष्टव्यः।। १९।।

अनु०—क्षत्रिय, ब्राह्मण अथवा शूद्र द्वारा ब्राह्मण की हत्या हो जाए तो हत्यारे का वध कर दे और उसका धन अपने पास रख ले।

तेषामेव तुल्यापकृष्टवधे यथाबलमनुरूपान् दण्डान् प्रकल्पयेत्।। २०।।

तुल्यापकृष्टता चाऽत्र जातितोऽभिजनधनवर्तनादिभिः। यथाबलं यथास्वशक्ति। तथा स्मृत्यन्तरम्—

देशकालवयश्शक्तिबलं सञ्चिन्त्य कर्मणि।
तथाऽपराधं वाऽवेक्ष्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्।। २०।।

अनु०—क्षत्रिय, ब्राह्मण अथवा शूद्र यदि अपने वर्ण या धन आदि में समान व्यक्ति का वध कर दे तो राजा हत्यारे को उसकी सामर्थ्य के अनुसार दंड दे।

(खण्ड-अट्ठारह सम्पूर्ण)

खण्ड-उन्नीस

क्षत्रियवधे गोसहस्रमृषभैकाधिकं राज्ञ उत्सृजेद्वैरनिर्यातनाम्।।१।।

दण्डः प्रायश्चित्तं चैतत्। यथा 'श्वभिः खादयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशम्' इति। राजे पालयित्रे त्यजेत्। एवं च वैरनिर्यातनमपि कृतं भवति। वैरस्य पापस्य निर्यातनमपयातनं नाश इत्यनर्थान्तरम्। यद्वा- स्वजातीयनिमित्तकापप्रशमनम्। यथा—

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिम्...।। इति।।१।।

अनु०—यदि कोई व्यक्ति क्षत्रिय का वध कर दे तो वह राजा एक हजार गायें और एक सांड में दे।

शतं वैश्ये दश शूद्र ऋषभश्चाऽत्राधिकः।।२।।

सर्वत्र प्रायश्चित्तार्थ इति शेषः। एषोऽपि राज्ञे त्यागः।।२।।

अनु०—वैश्य का वध करने पर सौ गाय और एक सांड राजा को दे। शूद्र का वध कर दे तो वह दस गाय और एक सांड प्रायश्चित्त के फल स्वरूप राजा को दे।

शूद्रवधेन स्त्रीवधो गोवधश्च व्याख्यातः।।३।।

ऋषभैकादशगोत्यजनमत्राऽतिदिश्यते। इह चान्द्रायणस्याऽभ्युपचयो द्रष्टव्यः। आह च मनुः—

स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम्।
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान् पिबेत्।। इति।।
इति प्रस्तुत्य
एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः।
अवकीर्णवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा।। इति।।३।।

अनु०—जिस प्रकार शूद्र के वध का प्रायश्चित्त किया जाता है, उसी प्रकार स्त्री और गोवध के लिए भी करे।

अन्यत्राऽऽत्रेय्या वधात्।।४।।

तस्या वधे वक्ष्यति-'आत्रेय्या वधः क्षत्रियवधेन व्याख्यातः' इति। अनात्रेयीस्त्रीवधे ऋषभैकादशदानमित्यर्थः।।४।।

अनु०—आत्रेयी स्त्री को छोड़ अन्य प्रकार की स्त्री के वध के लिए इसी

प्रायश्चित्त का विधान है।

धेन्वनडुहोश्च।।५।।

वध इति शेषः। धेनुः पयस्विनी। अनड्वान् अनोवहनक्षमः पुङ्गवः। अयमपि ऋषभैकादशगोदानातिदेशः।।५।।

गाय या बैल का वध करने पर भी यही प्रायश्चित्त करना चाहिए।

वधे धेन्वनडुहोरन्ते चान्द्रायणं चरेत्।।६।।

ऋषभैकादशगोदानस्याऽन्ते तु नाऽत्र दानतपसोस्समुच्चयः। अत एवैतत् ज्ञापितं भवति-धेन्वनडुहावत्र विशिष्टपुरुषसम्बन्धिनावग्निहोत्रादिविशिष्टोपयोगार्थौ। दुर्भिक्षादिषु च बहुदोग्धृत्वेन बहुवोढत्वेन प्रजासंरक्षणार्थौ वेति। अन्यथा शूद्रहत्यातः तस्य प्रायश्चित्तं गुरुतरं न स्यादिति।।६।।

अनु०—गाय, बैल का वध हो जाए तो दोषी उपर्युक्त तरह प्रायश्चित्त तो करे ही उसके साथ चान्द्रायण व्रत का भी पालन करे।

आत्रेय्या वधः क्षत्रियवधेन व्याख्यातः।।७।।

'रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुरत्र ह्येष्यदपत्यं भवति' इति। गोवध इत्यन्ते। क्षत्रियवधदण्डप्रायश्चित्तयोरुभयोरयमति देशः।।७।।

अनु०—रजस्वला या ऋतुस्नातास्त्री का वध करने पर जो क्षत्रिय वध के लिए प्रायश्चित्त निर्दिष्ट है, उसे पूरा करे।

हंसभासबर्हिणचक्रवाकप्रचलाककाकोलूककण्टकडिड्डिकमण्डूकडेरिकाश्वबभ्रुनकुलादीनां वधे शूद्रवत्।।८।।

शूद्रं हत्वा यत्प्रायश्चित्तं तत्प्रायश्चित्तमेतेषां वधे भवति। सर्वत्र चातिदेशे मानाधीनता। इह मण्डूकग्रहणं मार्जारादीनामपि प्रदर्शनार्थम्। आह च मनुः—

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।।

प्रचलाको डिम्बः। डिड्डिकः चुचुन्दरी। आदिग्रहणात् क्रुञ्चक्रौञ्चादेरपिग्रहणम्। 'क्रुञ्चक्रौञ्चौ शूद्रहत्यावत् प्रायश्चित्तम्' इति स्मृत्यन्तरात्। एवं तावत् 'शास्ता राजा दुरात्मनाम्' इति मत्वा प्रायश्चित्तान्यपि राज्ञा कारयितव्यानीत्यर्थः। तानि दिङ्मात्रेण दर्शितानि।।८।।

अनु०—हंस, भास, मोर, चकवा, प्रचलाक, कौआ, उल्लू, कण्टक, छूछून्दर, मेंढक, डेरिका, कुत्ता, बभ्रु, नेवला आदि की हत्या करने पर अपराधी शूद्र का वध करने पर निर्दिष्ट प्रायश्चित्त व्रत करे।

लोकसङ्ग्रहणार्थं यथादृष्टं यथाश्रुतं साक्षी ब्रूयात्।। ६।।

द्वयोः परस्परविप्रतिपत्तौ ज्ञातमर्थं साक्षिभिर्भावयेत्। महाजनपरिग्रहार्थं तत्र साक्षी यथादृष्टं निरपेक्षप्रमाणेनाऽवगतं यथाश्रुतमाप्तवाक्यादवगतं तथैव ब्रूयात्।। ६।।

अनु०—संसार में आदर-सम्मान पाने के लिए साक्षी ने जैसा देखा हो, सुना हो, वैसा ही बता दे।

पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादो गच्छति साक्षिणम्।
पादस्सभासदस्सर्वान् पादो राजानमृच्छति।।
राजा भवत्यनेनाश्च मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्तारं यत्र निन्द्यो ह निन्द्यते।। १०।।

राज्ञा सम्यक्परीक्षा कर्तव्येति श्लोकद्वयस्य तात्पर्यार्थः। इतरथा अधर्मस्य कृतस्य पाद एव तत्कर्तारं गच्छेत्। इतरे त्रयः पादाः साक्षिसभासद्राजगा इत्युक्तम्। सम्यक्परीक्ष्य दुष्टनिग्रहः परीक्षकाणां पापप्रमोचनार्थ इति द्वितीयश्लोकार्थः।। १०।।

अनु०—निर्णायक कोई निर्णय में गड़बड़ी न करे। क्योंकि अधर्म का एक भाग अपराधी के मत्थे पर पड़ता है। दूसरा चौथाई भाग निर्णायकों के हिस्से आता है। तीसरा चौथाई भाग राजा के पल्ले आता है। परन्तु जहां निन्दनीय की ही निंदा हो, वहां राजा को पाप नहीं लगता। सभासद निर्दोष माने जाते हैं। सारा पाप दोषी के मत्थे चढ़ जाता है।

साक्षिणं त्वेवमुद्दिष्टं यत्नात्पृच्छेद्विचक्षणः।। ११।।

अर्थिना निर्दिष्टान् साक्षिण एवं पृच्छेदिति पदान्वयः।। ११।।

अनु०—अतः विद्वान न्यायाधीश साक्षियों से इस प्रकार पूछे।

यां रात्रिमजनिष्ठास्त्वं यां च रात्रिं मरिष्यसि।
एतयोरन्तरा यत्ते सुकृतं सुकृतं भवेत्।।
तत्सर्वं राजगामि स्यादनृतं ब्रुवतस्तव।।१२।।

सुकृतं धर्मः। स च सुष्ठु कृतो यथाविध्यनुष्ठितः। यमनृतेन पराजयसि तद्गामी त्वदीयो धर्म इति याज्ञवल्क्योऽभिप्रैति—

सुकृतं यत्त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैः कृतम्।
तत्सर्वं तस्य जानीहि पराजयसि यं मृषा।।
इत्यवदत्।। १२।।

अनु०—जिस रात तुमने जन्म लिया था और जिस रात में निधन को प्राप्त होगे उस काल के बीच जो तुमने धर्माचरण किया है, वही पुण्य तुम्हारा अपना होगा।

लेकिन तुमने इस सन्दर्भ में झूठ बोला, तो तुम्हारा सारा पुण्य फल राजा को मिल जाएगा।

त्रीनेव च पितॄन् हन्ति त्रीनेव च पितामहान्।।१३।।

अनृतवदनमात्रे एष दोषः।।१३।।

अनु०–झूठा साक्षी अपने ही पिता और तीन पितामह को मार डालता है।

सप्त जातानजातांश्च साक्षी साक्ष्यं मृषा वदन्।।१४।।

स आत्मनः पूर्वापरान् सप्तसप्त हन्तीत्यर्थः। अधर्मप्रवणचित्तानां मत्याऽऽत्मीयवंश्यहननोपाये वैराग्यं भवतीत्येवं सान्त्वनम्।।१४।।

अनु०–और अपने से पहले की तथा अपने से बाद की सात-पीढ़ियों के पुरुषों को भी झूठा गवाह अपनी गवाही से मार देता है।

**हिरण्यार्थेऽनृते हन्ति त्रीनेव च पितामहान्।
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्र पुरुषानृते।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति साक्षी साक्ष्यं मृषा वदन्।।१५।।**

*अत्र हिरण्यशब्दो रजतादिवचनः।
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।।
इति सुवर्णविषये मानवदर्शनात्।।१५।।*

अनु०–यदि कोई साक्षी सोने के लालच में झूठी गवाही देता है तो उसके तीन पूर्वजों का निधन हो जाता है। पशु के लिए झूठ बोले, तो पांच लोगों का वध करता है। गाय के संबंध में झूठी गवाही देने से साक्षी दस लोगों को मारता है। घोड़े के लिए झूठ बोले तो सौ आदमियों का वध करता है। पुरुष के बारे में झूठी गवाही दे तो वह सब लोगों का वध कर देता है।

चत्वारो वर्णाः पुत्रिणः साक्षिणस्स्युरन्यत्र श्रोत्रियराजन्यप्रव्रजितमानुष्यहीनेभ्यः।।१६।।

*मानुष्यहीनो बन्धुहीनः। एते श्रोत्रियराजन्यप्रव्रजिताः वचनादसाक्षिणः। बन्धुहीनस्तु दृष्टदोषात्। तथा च नारदः–
वचनाद्दोषतो भेदाः स्वयमुक्तिर्मृतान्तरः।
श्रोत्रियाद्या अवचनात्ते न स्युर्दोषदर्शनात्।। इत्यादि।।१६।।*

अनु०–क्षत्रिय, राजा, संन्यासी, और बंधु-बांधव को साक्षी नहीं बनाना चाहिए। इनके अतिरिक्त चारों वर्णों से उत्पन्न सन्तानवान लोगों को साक्षी बनाया जा सकता है।

स्मृतौ प्रधानतः प्रतिपत्तिः।।१७।।

प्राधान्यं तपोनिर्दिष्टविद्यादिभिः, तद्वचनात् प्रतिपत्तिः निश्चयः। कार्य इत्यध्याहारः। किमुक्तं भवति–

द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा।
गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तराः।।
इत्येतदुक्तं भवति।।१७।।

अनु०–विवाद में शंका हो जाए तो दो साक्षियों में से प्रधान साक्षी के वचन को प्रमुखता दी जाए।

अतोऽन्यथा कर्तपत्यम्।।१८।।

उक्तोपायादुपायान्तरेण निर्णये सति कर्तपत्यं नाम दोषो भवति। कर्तं नरकं तस्मिन् निपातः कर्तपत्यम्।।१८।।

अनु०–इससे विपरीत निर्णय देने पर वह नरक में जाता है।

द्वादशरात्रं तप्तं पयः पिबन् कूष्माण्डैर्वा जुहुयात् कूष्माण्डैर्वा जुहुयादिति।।१९।।

घृतमिति शेषः। अस्मार्तत्वादाहवनीय एवाऽयं होमो राज्ञो राजपुरुषाणां च। कूष्माण्डानि 'यद्देवा देवहेलनम्' इत्यारभ्य 'पुनर्मनः पुनरायुर्म आगा' दित्यन्तान्यारण्यके प्रसिद्धानि। प्रतिमन्त्रं च होमभेदः। प्रत्यहं होमावृत्तिरिति केचित्। अपरे द्वादशरात्रस्याऽन्ते सकृदेवेत्याहुः।।१९।।

अनु०–इसके लिए वह बारह दिन-रात तक गर्म दुग्ध का सेवन करे अथवा कूष्माण्ड मन्त्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञ करे।

(अध्याय-दस, खण्ड-उन्नीस सम्पूर्ण)

अध्याय-ग्यारह : खण्ड-बीस

अष्टौ विवाहः[1]।।१।।

उच्यन्त इति शेषः। नियमार्थमष्टग्रहणम्। ततश्च वक्ष्यमाणब्राह्मादिनियम-धर्मलङ्घननिमित्तवर्णसङ्करो भवतीत्येतदर्थात्सूचितं भवतीति।।१।।

अनु०–विवाह के आठ भेद होते हैं।

श्रुतिशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने कन्या दीयते स ब्राह्मः।।२।।

१. आप. ध. सू. २/१२-१७

अयमाद्यो धर्मविवाहः। श्रुतं वेदार्थज्ञानं, शीलं सर्वसहिष्णुता। ब्रह्मचारी उपकुर्वाणोऽस्कन्नरेताश्च। कन्या अक्षतयोनिः। आह च मनुः–

आच्छाद्य चाऽऽर्चयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्यायाः ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।। २।।

अनु०–वेद का विद्वान हो और उसके अनुसार आचरण करता हो, ब्रह्मचर्य व्रती हो, ऐसा व्यक्ति विवाह की याचना करे और उसे कन्या दी जाए तो वह विवाह ब्राह्म विवाह जाना जाता है।

आच्छाद्याऽलङ्कृत्यै 'षा सहधर्मं चर्यता' मिति प्राजापत्यः।। ३।।

आच्छादनालङ्करणे कन्याया एव। वरस्याऽप्येके। 'एषा' इत्यादिमन्त्रः। एषा ते भार्या। त्वदीयो द्रव्यसाध्यो धर्मोऽनया सहचर्यतामिति मन्त्रार्थः। एष प्राजापत्यो नाम द्वितीयः।। ३।।

अनु०–जब पिता अपनी बेटी को अलंकृत एवं सुसज्जित कर वर को दे और कहे-'यह तुम्हारी पत्नी है, इसके संग रहो, धर्मपूर्वक जीवन बिताओ' तो ऐसे विवाह को प्राजापत्य विवाह कहते हैं।

पूर्वां लाजाहुतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दत्त्वा ग्रहणमार्षः।। ४।।

वैवाहिकीनां लाजाहुतीनां प्रथमाहुत्यनन्तरं कन्यास्वामिने गोमिथुनं वरं प्रदाय तस्या एव पुनर्ग्रहणमार्षो नाम विवाहः।। ४।।

अनु०–वर लाजा होम करे और कन्या के पिता को गाय और सांड दे। कन्या का पिता अपनी बेटी वर को सौंप दे, तो वह आर्ष विवाह होता है।

दक्षिणासु नीयमानास्वन्तर्वेदि ऋत्विजे स दैवः।। ५।।

ऋत्विग्वरणवेलायामेव कश्चिद्वरसम्पद्भिर्युक्तमृत्विक्त्वेन वृत्वा दक्षिणाकाले तदीयभागेन सह कन्यां तस्मै दद्यात्। स च तां प्रतिगृह्य समाप्ते यज्ञे 'प्रजापतिस्त्रियां यशः' इति षड्भिर्मन्त्रैः पुनः प्रतिगृह्य शुभे नक्षत्रे विवाहहोमं कुर्यात्। स दैवो नाम।। ५।।

अनु०–यज्ञ करते समय दक्षिणा दी जाए और वहीं पर कन्या का पिता अपनी बेटी ऋत्विज् को सौंप दे तो वह दैव विवाह कहलाता है।

सकामेन सकामायां मिथस्संयोगो गान्धर्वः।। ६।।

संयोगस्समवायः। विवाहहोमस्तु यथाविध्येव। एवं लक्षणको गान्धर्वो नाम पञ्चमः।। ६।।

अनु०—प्रेमी-प्रेमिका का संयोग हो जाए, तो गान्धर्व विवाह होता है।

धनेनोपतोष्याऽऽसुरः।।७।।

कन्यावन्तमुपतोष्य। यथाविध्येव होमः।।७।।

अनु०—वर पक्ष कन्या पक्ष को प्रभूत मात्रा में धन दे और तव पिता अपनी कन्या वर को सौंपे तो असुर विवाह होता है।

प्रसह्य हरणाद्राक्षसः।।८।।

अत्राऽपि तथैव विवाहः। यथा रुक्मिणीहरणं तथैष राक्षसः।।८।।

अनु०—कन्या का हठात् अपहरण कर विवाह कर लिया जाए तो राक्षस विवाह होता है।

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः।।९।।

मदनीयेन द्रव्येण मत्ताम्। प्रमत्ता भयादिना प्रणष्टचेताः। उपयमनं चाऽर्थान्मैथुनमेव। आह च मनुः—

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः।।९।।

अनु०—सुप्त कन्या या मादक पदार्थ खिलाकर मूर्च्छित कन्या से बलात्कार करना पैशाच विवाह बताया गया है।

तेषां चत्वारः पूर्वे ब्राह्मणस्य तेष्वपि पूर्वः पूर्वश्श्रेयान्।।१०।।

ब्राह्मप्राजापत्यार्षदैवाश्चत्वारः प्रशस्ताः। तत्राऽपि पूर्वपूर्वविवाह उत्तरोत्तरस्मात् श्रेयान् वेदितव्यः।।१०।।

अनु०—इनमें प्रारम्भ के चार विवाह ब्राह्मण के लिए उचित बताए हैं। और उनमें पूर्व से बाद वाले श्रेष्ठ होते हैं।

उत्तरेषामुत्तरोत्तरः पापीयान्।।११।।

उत्तरेषां वर्णानामुत्तरे गान्धर्वासुरराक्षसपैशाचाश्चत्वारो विवाहाः। अत्राऽपि पूर्वपूर्वश्श्रेयानिति वक्तव्ये उत्तरोत्तरः पापीयानिति वचनं पुनरन्त्यस्याऽत्यन्त-पापिष्ठत्वख्यापनार्थम्। उदाहृतं चाऽत्र मानवम्—'स पापिष्ठो विवाहानाम्' इति।।११।।

अनु०—वाद के चार विवाह अन्य वर्णों के लिए उचित बताए गए हैं। इनमें प्रत्येक अपने से पहले वाले अधिक निकृष्ट होता है।

अत्राऽपि षष्ठसप्तमौ क्षत्त्रधर्मानुगतौ तत्प्रत्ययत्वात् क्षत्त्रस्येति।।१२।।

तत्प्रत्ययत्वं तत्प्रधानत्वम्। बलं हि राज्ञां प्रधानम्। चोक्तम्–'क्षत्रियस्य बलान्वितम्' इति। आसुरेऽपि धनं बलहेतुतयाऽभिप्रेतम्।। १२।।

अनु०–इन विवाहों में छठा और सातवां विवाह क्षत्रिय धर्म के उपयुक्त बताया गया है। क्योंकि क्षत्रिय में बल अधिक होता है।

पञ्चमाष्टमौ वैश्यशूद्राणाम्।। १३।।

पञ्चमो गान्धर्वः स वैश्यानां भवति। अष्टमः पैशाचः स शूद्राणाम्।। १३।।

अनु०–पांचवां और आठवां विवाह क्रमशः वैश्य और शूद्र के लिए उचित है।

अयन्त्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति।। १४।।

अयन्त्रितं अनियतं कलत्रं भार्या येषां ते भवन्ति अयन्त्रितकलत्राः। दारेष्वत्यन्तनियमस्तेषां न भवतीत्यर्थः।। १४।।

अनु०–क्योंकि वैश्य और शूद्र पत्नियों के संदर्भ में नियमों पर विशेष ध्यान नहीं देते।

कर्षणशुश्रूषाधिकृतत्वात्।। १५।।

कर्षणं वाणिज्यादीनामप्युपलक्षणार्थम्। निकृष्टकर्माधिकृतत्वात्तयोर्विवाहा अपि तादृशा एवेत्यभिप्रायः।। १५।।

अनु०–एक कारण यह भी है कि वे कृषि और दूसरों की सेवा में लगे रहते हैं।

गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात्।। १६।।

एतद्धि गन्धर्वस्य लक्षणम्–'सकामेन सकामायाम्' इति। तत्र स्नेह मनश्चक्षुषोर्निबन्धः। तदन्वयगतं विहितविवाहकर्म। तथा चाऽऽपस्तम्ब–'यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिर्नेतरदाद्रियेत' इति।। १६।।

अनु०–कुछ विद्वानों का विचार है कि सभीं वर्ण वाले गान्धर्व विवाह के उपयुक्त है। क्योंकि इस विवाह में प्रेम की अधिकता होती है। और प्रेम सबमें पाया जाता है।

(खण्ड-बीस सम्पूर्ण)

खण्ड-इक्कीस

यथायुक्तो विवाहस्तथायुक्ता प्रजा भवती विज्ञायते।। १।।

प्रशस्ते विवाहे यत्न आस्थेय इत्यभिप्रायः। तथा च सति तत्रोत्पन्नाः पुत्रा अपि साधवो भविष्यन्ति।। १।।

अनु०–वेद में कहा गया है–जिस तरह के गुणवाला विवाह होता है, उसी प्रकार का गुणवाला पुत्र भी पैदा होता है।

अथाऽप्युदाहरन्ति–

साधवस्त्रिपुरुषमार्षाद् दश दैवाद् दश प्राजापत्याद् दश पूर्वान् दशाऽपरानात्मानं च ब्राह्मीपुत्र इति विज्ञायते।: २।।

तेनाऽस्मिन्नर्थे ब्राह्मणमपि भवतीत्येतदाह।। २।।

अनु०–इस सन्दर्भ में यह पद्य है–

आर्ष विवाह से पैदा हुआ पुत्र तीन पुरुषों को पवित्र करता है। दैव विवाह से उत्पन्न पुत्र से दस पुरुष शुद्ध होते हैं। प्राजापत्य और ब्राह्म से क्रमशः दस पूर्ववर्ती और दस ही उत्तरवर्ती पुरुष पवित्र होते हैं और विवाहकर्ता भी स्वयं पवित्र हो जाता है।

वेदस्वीकरणशक्तिरप्येवं विधानामेव पुत्राणां भवतीति।।३।।

ऋज्वेतत्।।३।।

अनु०–आर्ष, दैव, प्राजापत्य और ब्राह्म विवाह से उत्पन्न हुए पुत्रों में ही वेदों को पढ़ने एवं समझने की योग्यता होती है।

क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते।
सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां कश्यपोऽब्रवीत्।।४।।

क्रीताया वेदोक्तकर्मण्यधिकारो नास्तीत्यर्थः।।४।।

अनु०–उसे पत्नी नहीं कह सकते जिसे धन देकर खरीदा जाता है। क्योंकि वह देव, पितृ विषयक और धार्मिक अनुष्ठानों में भाग नहीं ले सकती। कश्यप के अनुसार ऐसी स्त्री को दासी की श्रेणी में रखा जाता है।

शुल्केन ये प्रयच्छन्ति स्वसुतां लोभमोहिताः।
आत्मविक्रयिणः पापाः महाकिल्बिषकारकः।।
पतन्ति नरके घोरे घ्नन्ति चाऽऽसप्तमं कुलम्।
गमनागमनं चैव सर्वं शुल्को विधीयते।।५।।

कन्याविक्रयी कुत्सितजन्मभाग्भवति, अधःपाती च। तस्मात्कन्याविक्रयो न कर्तव्य इत्यर्थः।।५।।

अनु०–जो मनुष्य धन प्राप्त करने के चक्कर में लालची बनते जाते हैं और अपनी पुत्री के लिए अधिक से अधिक धन लेकर उसे वर को देना चाहते हैं, वे पापी होते

हैं, वह स्वयं को बेच रहे होते हैं। ऐसे व्यक्ति नरक में जाते हैं। वे अपने साथ-साथ अपनी सातवीं पीढ़ी तक को भी नष्ट कर देते हैं। वे जन्म-मरण में ही फंसे रहते हैं। ऐसा तब होता है जब कन्या का पिता अपनी बेटी का सौदा कर वर को सौंपता है।

पौर्णमास्यष्टकामावास्याग्न्युत्पातभूमिकम्पश्मशान देशपतिश्रोत्रियैकतीर्थ-प्रायणेष्वहोरात्रमनध्यायः ।। ६ ।।

पौर्णमासी तिथिः यस्यां चन्द्रमाः पूर्ण उत्सर्पेत् । अष्टका पौर्णमास्या उपरिष्टादष्टमी। अमावास्या अमा सह सूर्येण यस्यां तिथौ चन्द्रमा भवति सा। अग्न्युत्पातः यस्मिन् ग्रामे गृहदाहस्तस्मिन् ग्रामे। भूमिकम्पो भुवश्चलनम्। श्मशानं शवशयनम्, शरीरस्य दहनभूमिः निक्षेपभूमिर्वा। तत्र गमनदिवसेऽपि प्रायणं मरणम्। तच्च देशपत्यादिभिः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। देशपती राजा तस्य राष्ट्रे वसन् तन्मरणदिवसेऽपि। एकः तीर्थः गुरुः ययोरिति विग्रहः। एतेष्वहोरात्रं नाऽधीयीतेति।। ६ ।।

अनु०–पूर्णिमा, अष्टमी, अमावस्या को अनध्याय होता है, गांव में अग्निदाह हुआ हो, भूकम्प आया हो, श्मशान में जाना हुआ हो, तो वेद का अध्ययन न करे। राजा, वेदविद् ब्राह्मण, अपने सहपाठी का निधन हो जाए तो एक दिन और एक रात वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए।

वाते पूतिगन्धे नीहारे नृत्तगीतवादित्ररुदितसामशब्देषु तावन्तं कालम् ।। ७ ।।

वातो वायुः दिवा चेत्पांसुगन्धहरः। नक्तं चेत् कर्णश्रावी। पूतिगन्धो दुर्गन्धः। नीहारो हिमप्रावरणम्। (तच्च हिमानी) तत्राऽऽहिमात् तावदनध्यायः। वादित्रं वीणावादनम्। यावदेतानि निवर्तन्ते तावदनध्यायः।। ७ ।।

अनु०–तेज हवा चल रही हो, दुर्गन्ध आ रही हो, ओस गिर रही हो, नृत्य हो रहा हो, गीत और वाद्ययन्त्र बज रहा हो, कोई रो रहा हो या साम का गान होता हो, तो जब तक ध्वनि आए तब तक के लिए अध्ययन रोक दे।

स्तनयित्नुवर्षविद्युत्सन्निपाते त्र्यहमनध्यायोऽन्यत्र वर्षाकालात्[1] ।। ८ ।।

स्तनयित्नुर्मेघगर्जितम्। विद्युत्तटित्। अप्रमुष्टमन्यत्।। ८ ।।

अनु०–बादलों की गड़गड़ाहट होती हो, बिजली चमकी और वर्षा के समय तीन दिन तक अध्ययन न करे।

वर्षाकालेऽपि वर्षवर्जमहोरात्रयोश्च तत्कालम् ।। ९ ।।

वर्षाकालेऽपि विद्युत्स्तनयित्नुसन्निपातेऽहनि चेदास्तमयादनध्यायः। रात्रौ

१. आप. ध. सू. १/११/२३

चेदोषसः ।। ९ ।।

अनु०—वर्षा ऋतु में वादलों की गड़गड़ाहट से बिजली चमकती हो तो दूसरे दिन या रात में उसी समय तक अध्ययन बंद रखे।

पित्र्यप्रतिग्रहभोजनयोश्च तद्दिवसशेषम्[1] ।। १० ।।

पितरो देवता यस्य कर्मणस्तत्पित्र्यं, तस्मिन् आमश्राद्धार्थे वा भोजनार्थे वा निमन्त्रणप्रभृत्यनध्यायः ।। १० ।।

अनु०—पितृ विषयक अनुष्ठानों को करते समय दान लेने या भोजन करने पर दिन के अवशिष्ट समय में अनध्याय होता है।

भोजनेष्वाजरणम् ।। ११ ।।

अनध्याय इत्येव। भोजनपक्षे निमन्त्रणप्रभृत्याजरणमित्यर्थः ।। ११ ।।

अनु०—श्राद्ध भोजन जब तक न पचे, तब तक अध्ययन करना मना है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

पाणिमुखो हि ब्राह्मणः ।। १२ ।।

आमश्राद्धस्याऽप्येतदेव लिङ्गम् ।। १२ ।।

अनु०—क्योंकि ब्राह्मण के हाथ को उसका मुख कहा जाता है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

भुक्तं प्रतिगृहीतं च निर्विशेषमिति श्रुतिः ।। १३ ।।

अनध्याय एवाऽयमविशेषः। प्रायश्चित्तं तु प्रतिगृहीतेऽर्धमेव 'आमश्चेदर्धमेव' इति स्मरणात्। भोजनप्रायश्चित्तं च स्मृत्यन्तरादवगन्तव्यम्—

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा।
पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात् षाण्मासे कृच्छ्रमेव तु।।
सपिण्डे तु त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं तथाऽब्दिके।।
दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या चाऽभिमन्त्रिताः।
मासि श्राद्धे च तामेव नित्यश्राद्धे जपेच्छतम् ।। १३ ।।

अनु०—यह पद्य प्रस्तुत हैं—

श्राद्ध के समय भोजन करे या दान ले तो दोनों एक समान माने जाते हैं।

पितुर्युपरते त्रिरात्रम् ।। १४ ।।

---

१. आप. ध. सू. १/११/२२

उपरते मृते। अनध्याय इत्यनुवर्तते। असमावृत्तस्याऽयम्। समावृत्तस्य त्वशुचिभावादेवाऽनध्यायः प्राप्तः। अत्रोपाध्यायमेव वेदप्रदानात् पितेत्याह। साक्षात्पितरि द्वादशाहविधानात्—'मातरि पितर्याचार्य इति द्वादशाहाः'।। इति।। १४।।

अनु०—पिता के निधन हो जाने पर तीन दिन तक अनध्याय रहता है।

द्वयमु ह वै सुश्रवसोऽनूचानस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्वं नाभेरधस्तादन्यत् स यदूर्ध्वं नाभेस्तेन हैतत् प्रजायते यद्ब्राह्मणानुपनयति यदध्यापयति यद्याजयति यत्साधु करोति सर्वाऽस्यैषा प्रजा भवति। अथ यदवाचीनं नाभेस्तेन हास्यौरसी प्रजा भवति तस्माच्छ्रोत्रियमनूचानमप्रजोऽसीति न वदन्ति[1]।। १५।।

उह वै इति पदद्वयं त्रयं वा शब्दशोभार्थम्। सुश्रवस इति शृणोतेरौणादिकोऽसुन् प्रत्ययः। श्रमेण श्रुतवत इत्यर्थः। अनूचानो वेदतदर्थाङ्गाध्यायी। ईदृशस्य ब्राह्मणस्य द्वयं रेतः प्रजननहेतुर्विद्यते। तत्र ऊर्ध्वं नाभेरेकम्। स च प्राणवायुः नाभेरुत्थितो वक्त्रे विचरन् विविधानां शब्दानामभिव्यञ्जकः। अवाचीनो न्यक। स च नाभेरवाचीनाग्रे उत्पन्नः शुक्लविसर्गे हेतुः वायुः। तत्र ऊर्ध्वाग्रेण रेतसा चतस्रः प्रजा उत्पादयति—उपनयनाध्यापनयाजनसाधुकृत्याभिः। अस्यैव हीत्थं प्रजा उत्पादयितुं शक्तिरस्ति। एतद्धि प्रजानां श्रेष्ठतरं जन्म। शरीरान्तरेऽप्यनुग्राहकत्वात्। तथा चाऽऽपस्तम्बः—'तच्छ्रेष्ठं जन्म। शरीरमेव मातापितरौ जनयतः' इति। पशुवदेवेत्यभिप्रायः। उक्तं च-'कामं मातापितरौ चैनमुत्पादयतो मिथः' इति। अथ यदवाचीनं नाभेस्तेन हाऽस्यौरसी प्रजा भवति। यस्मादेवंविधस्य पुरुषस्य चतस्रः प्रजास्सन्ततिः केवलं श्रोत्रियस्याऽध्यापननिमित्ताऽस्ति तस्मादौरस्यभावेऽप्यमुमप्रजोसीति विद्वांसो न वदन्ति। तस्माद्वेदप्रदानपितरि मृते त्र्यहमनध्यायो युक्तः।। १५।।

अनु०—निष्ठा से वेद को पढ़ने वाले ब्राह्मण का वीर्य दो तरह का बताया गया है। एक तो वह होता है, जो नाभि से ऊपर वाले हिस्से में रहता है। दूसरा है-जो नाभि से नीचे रहता है। नाभि से ऊपर वाले वीर्य से जो सन्तान पैदा होती है, वह उन पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार करता है। उन्हें पढ़ाता है, यज्ञ करता है, उन सबको उसकी संतान समझा जाता है। नाभि के नीचे रहने वाले वीर्य से जो उत्पन्न होता है, उससे शरीर से उत्पन्न होने वाले पुत्र पैदा होते हैं। अतः उन्हें वेद का विद्वान नहीं कहा जा सकता।

तस्माद् द्विनामा द्विमुखो विप्रो द्विरेता द्विजन्मा चेति।। १६।।

द्वे नामनी यस्य स द्विनामा 'तस्माद् द्विनामा ब्राह्मणोऽर्धुकः' इति

---

१. वसि. ध. सू. २/७-१०

श्रुतिअर्धुकस्समृद्धः। द्वे चास्य मुखे पाणिरास्यमिति द्विमुखः। द्वे रेतसी शुक्लमेकं, द्वितीयं ब्रह्म। जन्मनी अपि द्वे माता ब्राह्मणश्च।। १६।।

अनु०—अतः ब्राह्मण के दो नाम होते हैं। उसके दो मुख, दो तरह के वीर्य होते हैं और उसके दो जन्म भी होते हैं।

शूद्रापपात्रश्रवणसंदर्शनगोश्च तावन्तं कालम्।। १७।।

समुच्चितयोरप्यपपात्रनिषेधः। ततश्च कुर्यादतिरोहिते अपपात्रे अनध्यायम्।। १७।।

अनु०—शूद्र अथवा जल भरने से आवाज उत्पन्न हो और वह नजर आ जाए तो उतने समय तक अध्ययन बंद रहता है जब तक वह दिखाई दे या ध्वनि सुनाई दे।

नक्तं शिवाविरावे नाऽधीयीत स्वप्नान्तम्।। १८।।

रात्रौ शिवाविरावे वृद्धगोमायुरुते। तच्च विशिष्टरुतम्। तस्मिन् सति सुप्त्वा बुद्ध्वाऽध्येतव्यम्।। १८।।

अनु०—यदि कभी रात में गीदड़ की विशेष रुलाई सुनाई दे तो तब तक अनध्याय रखे जब तक उसका रुदन बंद न हो जाए।

अहोरात्रयोस्सन्ध्ययोः पर्वसु च नाऽधीयीत।। १६।।

तत्रैका सन्ध्याऽरुणप्रभातमारभ्य आ सूर्योदयदर्शनात्। अपराऽस्तमयादारभ्य आ नक्षत्रोदयात्। पर्वस्विति बहुवचनात् बह्व्यस्तिथयो गृह्यन्ते। एका तावत्पर्वद्वयमध्यगता अष्टमी। उभयोरपि पर्वणोरभितस्तिथिद्वयं चतुर्दशी प्रतिपच्चेति। अतोऽष्टमीद्वयं चतुर्दशीद्वयं प्रतिपद्द्वयं च गृहीतं भवति। चशब्दाद्यस्यां तिथावादित्योऽस्तमेति साऽभिप्रेता। तथा हि–

यां तिथिं समनुप्राप्य अस्तं याति दिवाकरः।
सा तिथिर्मुनिभिः प्रोक्ता दानाध्ययनकर्मसु।।
तावन्तं कालं सा सा तिथिरित्यर्थः।। १६।।

अनु०—दिन और रात की सन्धियों में (प्रातःकाल और गोधूलि) तथा दोनों अष्टमी और चतुर्दशी (कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष) को अनध्याय माना गया है।

न मांसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयात्।। २०।।

एतदतिक्रमेऽप्यध्ययनविघ्न एव भवतीति कल्प्यते।। २०।।

अनु०—इन दिनों में मांस न खाए और पत्नी से संभोग भी न करे।

पर्वसु हि रक्षःपिशाचा व्यभिचारवन्तो भवन्तीति विज्ञायते।।२१।।

श्रुतिरेषेत्यभिमानिना विज्ञायत इति गमयति। पर्वसु रक्षांसि पिशाचाश्च व्यभिचारवन्तः। वि वैविध्ये, अभीत्याभिमुख्ये, चरतिः गमने भक्षणे च वर्तते। पर्वसु विविधं गच्छन्ति विविधं भक्षयन्ति च। पर्वसु स्त्र्यभिगमनमांसाशनवन्तीत्यर्थः। तद्यदि मनुष्या अपि कुर्युः तान् रक्षःपिशाचाः बाधन्ते। अतोऽस्मादेव भयान्निवर्तितव्यम्।। २१।।

अनु०—श्रुति में बताया गया है—इन दिनों में राक्षस और पिशाच इधर-उधर घूमकर मनुष्यों को हानि पहुंचाते हैं।

अन्येषु चाद्भुतोत्पातेष्वहोरात्रमनध्यायोऽन्यत्र मानसात्।। २२।।

अद्भुतमाश्चर्यम्। यथा अम्बुनि मज्जन्त्यलावूनि, ग्रावाणः प्लवन्ते, जले चाऽग्न्युद्भवोऽग्नौ पत्रोद्भवः इत्याद्युत्पातः। परार्थं विपर्ययप्रदर्शनम्। यथा स्थावरस्य देशान्तरगमनं प्रतिमारोदनरुधिरस्त्रवणादि। यद्वा-षष्ठीतत्पुरुषोऽयमद्भुतोत्पातेष्विति। अन्येषु चाद्भुतोत्पातेष्विति। एतेष्वहोरात्रमनध्यायोऽन्यत्र मानसादध्ययनात्। मानसाध्ययनविशिष्ट एव सर्वानध्यायविशेषो द्रष्टव्यः। क्वचिन्मानसेऽपि निषेधदर्शनात्। यथा—

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रे च विसर्जयन्।
उच्छिष्टश्राद्धभुक चैव मनसाऽपि न चिन्तयेत्।। २२।।

अनु०—और भी इसी प्रकार की विपत्तियां आ जाने पर भी रात-दिन का अनध्याय रहता है। पर मनु कहते हैं कि उनमें वेद का अध्ययन कर सकते हैं।

मानसेऽपि जननमरणयोरनध्यायः।। २३।।

अपिशब्दाद्वाचिकेऽपि। जननमरणग्रहणं सर्वेषामात्माशुचिभावानामुपलक्षणम्। तथा च स्वाध्यायब्राह्मणम्-'तस्य वा एतस्य यज्ञस्य द्वावनध्यायौ यदात्माऽशुचिर्यद्देशः' इति।। २३।।

अनु०—जन्म और मृत्यु के समय मानस वेद का अध्ययन न करें।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

हन्त्यष्टमी ह्युपाध्यायं हन्ति शिष्यं चतुर्दशी।
हन्ति पञ्चदशी विद्यां तस्मात्पर्वाणि वर्जयेत्।। २४।।

उपाध्यायहनने तदलाभकृतो विघ्नो लक्ष्यते। एवं शिष्यहननेनाऽपि तदध्येत्रभावकृतः। विद्याहननेनाऽपि पुरुषान्तरनैरपेक्ष्याभावो लक्ष्यते। अन्योऽप्यध्ययनविघ्नसद्भावो द्रष्टव्यः। अत्यन्तनिश्श्रेयसत्वादध्ययनस्य विघ्नसन्ततिरवश्यम्भाविनी। सा च तद्वर्जनेनैव परिहरणीया तथा चोक्तम्—'श्रेयांसि वहुविघ्नानि' इति।। २४।।

अनु०—इसमें प्रमाण है जो अष्टमी को अध्ययन करता है, वह उपाध्याय का नाश करता है। चतुर्दशी के दिन अध्ययन करने से शिष्य नष्ट हो जाता है। पंचदशी के दिन विद्या का नाश होता है। अतः इन अवसरों पर अध्ययन न करे।

(प्रश्न एक, अध्याय-ग्यारह, खण्ड-इक्कीस सम्पूर्ण)

●●

प्रश्न-दो

अध्याय-एक : खण्ड-एक

अथाऽतः प्रायश्चित्तानि।।१।।

वक्ष्याम इति शेषः। विहिताकरणप्रतिषिद्धसेवानिमित्तदोषफलं यैः कर्मभिः नाऽनुभुङ्क्ते तानि प्रायश्चित्तानि। तन्नाऽपराधिनोऽननुतापिनो बलादानीतस्य दण्डप्रायश्चित्तयोस्समुच्चयः। स्वयमेवाऽऽगत्य राज्ञे निवेदयमानस्य दण्ड एव। यः पुनरनुतापेन प्रायश्चित्तमनुतिष्ठति तस्य तेनैव भवितव्यम्। एनोभूयस्तैव क्रमनियमे हेतुः।।१।।

अनु०–अब प्रायश्चित्तों का विधान करेंगे।

भ्रूणहा द्वादश समाः।।२।।

भ्रूणं यज्ञं बिभर्ति पाति नयतीति तत्साधनवधकारी भ्रूणहा ब्रह्महेति यावत्। समाः संवत्सरान्। वक्ष्यमाणव्रतं चरेत्।।२।।

अनु०–यदि कोई व्यक्ति वेदविद् विद्वान ब्राह्मण का वध कर दे तो उसे बारह साल तक यह प्रायश्चित्त करना चाहिए।

कपाली खट्वाङ्गी गर्दभचर्मवासा अरण्यनिकेतनः श्मशाने ध्वजं शवशिरः कृत्वा कुटीं कारयेत्तामावसेत् सप्ताऽगाराणि भैक्षं चरेत् स्वकर्माऽऽचक्षाणस्तेन प्राणान्धारयेदलब्धोपवासः।।३।।

खट्वाया अङ्गं पादादि तद्दण्डार्थं भवति। गर्दभस्य चर्म वासो यस्य स तथोक्तः। अरण्यमस्य निकेतनं विहरणदेशः, चङ्क्रमणदेश इति यावत्। श्मशानं निरुक्तम्। तत्र कुटीं कारयेदिति सम्बन्धः। शवस्य शिरो ध्वजं चिह्नं कुर्यात् भिक्षाकाले-यं हत्वा एतच्चरति तस्य शिर इति। यस्य कस्य चिदित्यन्ये। तथा च सति शवग्रहणमकिञ्चित्करं स्यात्। स्वकर्माऽऽचक्षणः-'ब्रह्महाऽहमस्मीति' 'ब्रह्मघ्ने भिक्षां देही' ति ब्रुवन् भिक्षां चरन्नपि यदि भिक्षां सप्तागारेष्वपि न लभेत तदोपवासः कार्यः। तामेव कुटीमधिवसेत्। एवं द्वादश समाश्चरन् पूतो भवति। ब्राह्मणाधिकारिकमिदं प्रायश्चित्तम्। यतस्सुमन्तुराह-'ब्राह्मणो ब्राह्मणं हत्वा' इति।।३।।

अनु०—दोषी (हत्यारा) कपाल ले। चारपाई का एक पाया रखे। गधे का चमड़ा पहने। वन में रहे। श्मशान में जाए। वह मनुष्य की खोपड़ी को पताका की भांति धारण करे। कुटी बनाए, वहीं रहे। भिक्षा मांगे। इसके साथ-साथ अपने पाप कर्म को भी वताता जाए। भिक्षा में जो मिले, उसे खाए और समय बिताए। किसी दिन भिक्षा में भोजन सामग्री न मिले तो उस दिन निराहार ही रहे।

अश्वमेधेन गोसवेनाऽग्निष्टुता वा यजेत।।४।।

आहिताग्नेरिष्टप्रथमसोमस्य एतयोः प्रायश्चित्तसमाधानं कार्यम्। अश्वमेधस्तु राजयज्ञत्वात् 'राजा विजितसार्वभौमः' इत्येवं विशिष्टस्य राज्ञो भवति।।४।।

अनु०—या दोषी अश्वमेध, गोसव और अग्निष्टुत नामक यज्ञ का अनुष्ठान करे।

अश्वमेधावभृथे वाऽऽत्मानं प्लावयेत्।।५।।

अन्यस्याऽप्यश्वमेधावभृथे वा आत्मानं स्नापयेत्। एतानि प्रायश्चित्तानि हन्तृगुणापेक्षया हन्यमानगुणापेक्षया वा विकल्प्यन्ते।।५।।

अनु०—अश्वमेध पूरा हो जाए तो स्वयं को जल में डुवा दे।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

अमत्या ब्राह्मणं हत्वा दुष्टो भवति धर्मतः।
ऋषयो निष्कृतिं तस्य वदन्त्यमतिपूर्वके।
मतिपूर्वं घ्नतस्तस्य निष्कृतिर्नोपलभ्यते।।६।।

अमत्या ब्राह्मणमिति ब्राह्मणोऽयमित्यविज्ञाय हननमुच्यते। अमतिपूर्वक इत्यनेन च ब्राह्मणोऽयमिति निश्चितेऽपि प्रमादकृतं हननम्।।

आह च मनुः—
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते।। इति।।
तथा—
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदशनात्।।६।।

अनु०—इस प्रसंग में यह पद्य आता है-

अज्ञान में ब्राह्मण की हत्या हो जाए तो उसे धर्म के अनुसार पाप लगता है। ऋषि-मुनियों ने ऐसे हत्यारों के लिए भी प्रायश्चित्त कर्म का विधान किया है। किन्तु यदि कोई जान बूझकर ब्राहमण का वध करता है तो उसे पाप से मुक्ति नहीं मिलती।

अपगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव लोहितस्य प्रवर्तने।।
तस्मान्नैवाऽपगुरेत न च कुर्वीत शोणितमिति।। ७।।

कथं पुनरवगम्यते-ब्राह्मणापगोरणादिष्वेवैतानि प्रायश्चित्तानीति? उच्यते-निषेधस्तावद्ब्राह्मणविषय एवोपलभ्यते-'तस्माद्ब्राह्मणाय नाऽपगुरेत न निहन्यान्न लोहितं कुर्यात्' इति। यत्र च निषेधः, प्रायश्चित्तेनाऽपि तत्रस्थेन भवितव्यम्। अपगूरणं नाम हिंसार्थमुद्यमः। अप्रमुष्टमन्यत्।। ७।।

अनु०–यदि कोई ब्राह्मण को मारने के निमित्त हाथ उठाए तो उसे कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। प्रहार करे, तो अतिकृच्छ्र व्रत करे। उसका वध कर खून निकाल दे तो कृच्छ्र और चान्द्रायण दोनों व्रतों का अनुष्ठान करे। इसलिए ब्राह्मण पर न तो हाथ उठावे और न ही उस पर प्रहार करे।

नव समा राजन्यस्य।। ८।।

वध इति शेषः। नव संवत्सरान् राजन्यस्य वधे प्रागुक्तं ब्रह्महत्याव्रतं चरेदिति।। ८।।

अनु०–क्षत्रिय का वध करे तो नौ साल का प्रायश्चित्त अनुष्ठान करे।

तिस्रो वैश्यस्य।। ९।।

संवत्सरत्रयं प्रागुक्तं ब्रह्मचर्यचरणम्।। ९।।

अनु०–वैश्य को मारे तो तीन साल का प्रायश्चित्त करे।

संवत्सरं शूद्रस्य स्त्रियाश्च।। १०।।

शूद्रं हत्वा संवत्सरं प्रायश्चित्तमित्यनुवर्तते। चशब्दः क्षत्रियवैश्ययोरपि निर्गुणयोर्हनने एतदेव प्रायश्चित्तमिति दर्शयितुम्।। १०।।

अनु०–शूद्र और स्त्री को मारे तो साल भर तक का प्रायश्चित्त करे।

ब्राह्मणवदात्रेय्याः।। ११।।

आत्रेयी आपन्नगर्भा। तथा वसिष्ठो निर्ब्रूते-'रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुः। अत्र ह्येष्यदपत्यं भवति' इति। ब्राह्मणग्रहणं च प्रदर्शनार्थम्। स्वजातीयात्रेय्या वधे स्वजातीयपुंवधवत् प्रायश्चित्तमित्यतिदेशः। विगुणसगुणाविभागोऽपि द्रष्टव्यः। सगुणहननप्रायश्चित्तं सगुणाहनन एवाऽतिदिश्यते एवमिति। आत्रेय्या अपि दण्डप्रकरणे पुनर्ब्रह्महत्यादिषु यदभिहितं तेन एतेषां विकल्पव्यवस्थासमुच्चया हन्तृहन्यमानगुणापेक्षया वेदितव्याः।। ११।।

अनु०—ऋतुस्नान की हुई स्त्री के वध की तरह ही प्रायश्चित्त व्रत का निर्देश है।

गुरुतल्पगस्तप्ते लोहशयने शयीत।। १२।।

अत्र तल्पशब्देन शयनवाचिना भार्या लक्ष्यते। तया यो मैथुनमाचरति स गुरुतल्पगः। मरणान्तिकं चैतत्प्रायश्चित्तम्। एवं कृतवतो ह्यस्मिन् लोके प्रत्यापत्तिर्न विद्यते। मरणात्तु पूतो भवति। अतीतस्यौर्ध्वदैहिकमपि ज्ञातिभिरस्य कर्तव्यम्। अन्यत्राऽपि मरणान्तिके दण्डे प्रायश्चित्ते चैतद् द्रष्टव्यम्।। १२।।

अनु०—कोई गुरु की पत्नी से सहवास करे, तो वह तपते हुए लोहे के पलंग पर सो जाए और आत्महत्या कर ले।

सूर्मिं ज्वलन्तीं वा श्लिष्येत्।। १३।।

सूर्मिशब्देनाऽयस्मयी स्त्रीप्रतिकृतिरुच्यते। इदमपि मरणान्तिकमेव।। १३।।

अनु०—या तप्त लोहे की स्त्री प्रतिमा का गाढ़ालिंगन कर अपने प्राण त्याग दे।

लिङ्गं वा सवृषणं परिवास्याऽञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीच्योर्दिशोरन्तरेण गच्छेदा निपतनात्।। १४।।

रूपाण्यपरिहरन्नित्यभिप्रायः। परिवास्य छित्त्वा। एतत्प्रायश्चित्तत्रयं बुद्धिपूर्वविषयम्। सम्भवापेक्षश्च विकल्पः।। १४।।

अनु०—या अण्डकोष के साथ-साथ लिंग को काट ले उसे अंजलि में रखे। दक्षिण और पश्चिम दिशा के नैऋत्य कोण की ओर तब तक बढ़ता जाए जब तक गिरकर वह मर न जाए।

स्तेनः प्रकीर्य केशान् सैध्रकं मुसलमादाय स्कन्धेन राजानं गच्छेदनेन मां जहीति तेनैनं हन्यात् वधे मोक्षो भवति।। १५।।

ब्राह्मणस्वर्णं हरति बलेन वञ्चनया चौर्येण वा यो ब्राह्मणःस स्तेन इति गीयते। तस्यैतत्प्रायश्चित्तम्-प्रकीर्य केशानित्यादि। सैध्रको दृढदारुनिर्मितः। सैध्रकं मुसलं स्कन्धेनाऽऽदाय राजानं गच्छेदिति सम्बन्धः।। १५।।

अनु०—ब्राह्मण के धन को चुराने वाला चोर अपने सिर के बाल बिखराए। कंधे पर सैध्रक काष्ठ का मूसल ले और राजा के निकट जाए। उससे कहे- "राजन्! आप मुझे मूसल से मारिए।" यह सुन राजा उसे मूसल से मारे। मार खाकर मृत्यु को प्राप्त हुए दोषी की मुक्ति हो जाती है।

अथाऽप्युदाहरन्ति-

स्कन्धेनाऽऽदाय मुसलं स्तेनो राजानमन्वियात्।
अनेन शाधि मां राजन् क्षत्रधर्ममनुस्मरन्।।
शासने वा विसर्गे वा स्तेनो मुच्येत किल्विषात्।
अशासनात्तु तद्राजा स्तेनादाप्नोति किल्विषमिति।।१६।।

शासनं वधः। विसर्गो मोक्षः। किल्बिषं पापम्।। १६।।

अनु०–धर्मशास्त्रकार इस संदर्भ में पद्यों का उदाहरण देते हैं–

चोर कंधे पर मूसल रखे। राजा के पास जाए। कहे- "महाराज! आप क्षत्रिय धर्म को याद करते हुए मुझे दंड दें।"

राजा दण्ड दे या न दे। उसकी इच्छानुसार दोषी पाप से मुक्त हो जाता है। लेकिन दण्ड न देने पर दोषी का पाप राजा के माथे चढ़ जाता है।

सुरां पीत्वोष्णया कायं दहेत्।।१७।।

यज्जातीयस्य या सुरा प्रतिषिद्धा तयैवोष्णया अग्निवर्णया पीतया कायं दहेत्। ब्राह्मणस्य सर्वा प्रतिषिद्धा। अत एव हि सर्वां सुरां समतयैवैकत्वेन निदर्शयति–
सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।। इति।।
मरणान्तिकमेतन्मतिपूर्वके।। १७।।

अनु०–सुरापान करने पर सुरापायी उवलती हुई सुरा को पिए और शरीर को जला दे।

अमत्या पाने कृच्छ्राब्दपादं चरेत्पुनरुपनयनं च।।१८।।

कृच्छ्राब्दपादः संवत्सरप्राजापत्यचतुर्भागः। ब्रह्महत्यादिषूक्तैः प्रायश्चित्तैः ब्राह्मण एवाऽधिक्रियते नाऽन्यः। कुत एतत्? ब्रह्महत्यादिभिः पतति यः। तद्वा कथमिति चेत्? पञ्चाग्निविद्यायां दर्शनात् तत्र ह्युक्तं 'यथैव न प्राक्त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति' इति प्रक्रम्य 'तदेव श्लोकः-स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा च। एते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाऽऽचरंस्तैरिति।। अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह तैरप्याचरन् पाप्मना लिप्यते' इत्यादि।।

आह च मनुः–
अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रस्समाहितः।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया।। इति।।
तथा सुरायामपि
अथवैका न पातव्या तथा सर्वा द्विजोत्तमैः।। इति।।

तथा-सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानम्।। इति।।

एवमन्यान्यपि स्मृतिलिङ्गानि 'ब्राह्मणो ब्राह्मणं घातयित्वा' इत्यादीनि द्रष्टव्यानि।। १८।।

अनु०—अनजाने में सुरा का सेवन करने पर तीन मास के कृच्छ्र व्रत का विधान है।

वपनव्रतनियमलोपश्च पूर्वानुष्ठितत्वात्।। १६।।

व्रतं सावित्रव्रतम्। नियमो भिक्षाचरणम्। चशब्दात् मेखलादण्डधारणमपि गृह्यते। तत्र हेतुः-पूर्वानुष्ठितत्वात् कृतस्य करणासम्भवादित्यर्थः।। १६।।

अनु०—दूसरे उपनयन संस्कार में पहले किए गए संस्कार के सिर के बाल आदि मुड़ाना, सावित्री व्रत, भिक्षाटन आदि नियमों को छोड़ भी सकते हैं।

अथाऽप्युदाहरन्ति-

अमत्या वारुणीं पीत्वा प्राश्य मूत्रपुरीषयोः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः पुनस्संस्कारमर्हति।। २०।।

मूत्रपुरीषयोरिति द्वितीयार्थे षष्ठी 'सुपां सुपो भवन्ति' इति। अयं पुनस्संस्कारश्चान्द्रायणसहितो द्रष्टव्यः विड्वराहश्लोके दर्शनात्।। २०।।

अनु०—इसके प्रमाण स्वरूप पद्य है-

अनजाने में वारुणी सुरापान कर ले या मल-मूत्र आदि खा ले, तो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य पुनः उपनयन संस्कार कराएं।

सुराधाने तु यो भाण्डे अपः पर्युषिताः पिबेत्।
शङ्खपुष्पीविपक्वेन षडहं क्षीरेण वर्तयेत्।। २१।।

सुरां यस्मिन् भाण्डे धयन्ति पिबन्ति तत्सुराधानम्। अत्र पर्युषिताः उषसाऽन्तरिते काले निहिताः। शङ्खपुष्पी नाम समुद्रतीरे लताविशेषः। पर्युषितासु वसिष्ठ आह—
मद्यभाण्डस्थिता आपो यदि कश्चिद् द्विजः पिबेत्।
पद्मोदुम्बुरबिल्वपलाशकुशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति।। इति।। २१।।

अनु०—व्यक्ति मदिरा पात्र में रखे हुए जल को पी ले तो वह दूध में शंख पुष्पी डाले, उसे उबाले और छह दिन तक केवल उसी दूध को पिए।

गुरुप्रयुक्तश्चेन्म्रियेत गुरुस्त्रीन् कृच्छ्रांश्चरेत्।। २२।।

मरणसन्देहास्पदीभूतेषु गुरुणा चोदितश्शिष्यो यदि म्रियेत सोऽस्य विषयः। शास्त्राविरुद्धोदकुम्भाहरणादिविषये प्रेषणमिदम्। दूरदेशगमनादिषु विषयेषु ब्रह्महत्या

स्यादेव। गुरोश्शासननिमित्तमृत्युविषयं चैतत्। स्वापराधनिमित्ते तु मरणे नेदं युक्तमिति। अगुरोः पुनश्चोदयितुर्हननप्रायश्चित्तमेव।। २२।।

अनु०–गुरु किसी कार्य के लिए शिष्य को निर्देश दे और यदि उस काम को करते हुए शिष्य की मृत्यु हो जाए तो गुरु को चाहिए कि वह तीन कृच्छ्र व्रत करे।

एतदेवाऽसंस्कृते।। २३।।

संस्कारः संस्कृतं शौचाचारादिलक्षणानुशासनं तदभावोऽसंस्कृतम्। तस्मिन्नप्येतदेव कृच्छ्रत्रयम्। एतदुक्तं भवति शिष्यशासनाकर्तुर्गुरोः प्राजापत्यत्रयमिति।। २३।।

अनु०–यदि कोई गुरु शिष्य का अध्यापन पूरा न करे तो तीन कृच्छ्र व्रत करे।

ब्रह्मचारिणश्शवकर्मणा व्रतावृत्तिरन्यत्र मातापित्रोराचार्याच्च।। २४।।

शवकर्म अलङ्करणवहनदहनादि। तेन कृतेन व्रतावृत्तिरुपनयनावृत्तिः, पुनरुपनयनम्। तदेतदन्यत्र मातापित्रोराचार्याच्च। तेषां शवकर्मण्यपि दोषाभावः। आह च मनुः–

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम्।
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते।। २४।।

अनु०–यदि ब्रह्मचारी अपने माता-पिता और आचार्य को छोड़ किसी अन्य का शव उठाए या उसका दाह कर्म करे तो उसे पुनः उपनयन कराना पड़ेगा।

स चेद् व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भैषज्यार्थं सर्वं प्राश्नीयात्।। २५।।

स यदि ब्रह्मचारी रोगेणाऽभिभूयेत कामं तथा भैषज्यार्थं सर्वं मधु मांसाद्यपि प्राश्नीयादिति सम्बन्धः। तत्र व्रतावृत्तिर्नाऽस्ति गुरोरुच्छिष्टभोजनेऽपि। गुरुराचार्योऽभिप्रेतः। यदि व्याधेरपगमनं चेत् विरुद्धभोजने भवति, तत आचार्योच्छिष्टं भक्षयेत्। नोपभोगार्थं तृप्त्यर्थं वा। सर्वं मधुमांसादि प्रतिषेधलङ्घनेनापीत्यर्थः। अथ प्राशितेऽपि व्याधेरनपगमस्ततो निवर्तेत। व्याधीयीत डुधाञ् इत्यस्य धातोर्व्याङ्पूर्वात् लिङात्मनेपदयक्सीयुड्गुणादौ कृते कर्मकर्तरि व्याधीयीतेति भवति व्याधिमान् भवतीत्यर्थः।। २५।।

अनु०–ब्रह्मचारी अस्वस्थ है तो गुरु की उच्छिष्ट औषधियों का सेवन कर सकता है।

येनेच्छेत्तेन चिकित्सेत।। २६।।

गुरोरपि यत्प्रतिषिद्धं लशुनगृञ्जनादि तेनाऽपि चिकित्सा कार्येत्यभिप्रायः। सर्वत

एवाऽऽत्मानं गोपायेत्' इति स्मृतेः।। २६।।

अनु०—रुग्ण ब्रह्मचारी औषधि के निमित्त सभी वस्तुओं का उपभोग कर सकता है।

स यदा गदी स्यात्तदुत्थायाऽऽदित्यमुपतिष्ठते 'हंसश्शुचिष' दित्येतया।। २७।।

गदी व्याधितः। ब्रह्मचारिणो व्याधितस्य सन्ध्योपासनादिनियमानुष्ठानाशक्तौ प्रायश्चित्तमेतत्। इतरेषां चैतदेवाऽविरोधित्वात्।। २७।।

अनु०—रोगी ब्रह्मचारी को प्रातःकाल उठकर 'हंसश्शुचिष'...... इत्यादि मंत्रों द्वारा सूर्य की उपासना करनी चाहिए।

दिवा रेतस्सिक्त्वा त्रिरपो हृदयङ्गमाः पिबेद्रेतस्याभिः।। २८।।

स्वभार्यायामेवैतत्प्रायश्चित्तम्। रेतस्या ऋचः रेतश्शब्दवत्यः ताश्च 'पुनर्मामैत्विन्द्रियम्' इत्यनुवाकः। तासु च भूम्ना शब्दप्रवृत्तिः। 'सृष्टीरुपदधाति' इतिवत्। दिवागमनप्रतिषेधः परिभाषायां द्रष्टव्यः 'परस्त्रीषु च दिवा च यावज्जीवम्' इत्यत्र।। २८।।

अनु०—दिन में वीर्य निकल जाए तो 'रेतस्' शब्द वाले मंत्र पढ़े। हृदय तक पहुंचने वाले जल से तीन बार आचमन करे।

यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपेयात्सोऽवकीर्णी।। २६।।

संज्ञाकरणं व्यवहारार्थम्। तस्य च प्रयोजनम्-'सप्तरात्रं कृत्वैतदवकीर्णिव्रतं चरेत्'। 'प्राणाग्निहोत्रलोपेनाऽवकीर्णी' इति च।। २६।।

अनु०—ब्रह्मचारी किसी स्त्री से संभोग कर ले तो उसे अवकीर्णी कहते हैं।

स गर्दभं पशुमालभेत।। ३०।।

पशुग्रहणं सकलविषयेतिकर्तव्यताप्राप्त्यर्थम्। अन्यथा हि तदनर्थकं स्यात्।। ३०।।

अनु०—उसे प्रायश्चित्त के लिए गधे की बलि देनी चाहिए।

नैर्ऋतः पशुः पुरोडाशश्च रक्षोदैवतो यमदैवतो वा।। ३१।।

पुरोडाशदेवताभिधान 'यद्देवत्यः पशुस्तद्देवत्यः पुरोडाशः' इति परिभाषासिद्धस्याऽनुवादः।।निर्ऋतिरक्षोयमानां च विकल्पः। पुराडाशे वोत्तरयोः।। ३१।।

अनु०—पशु के मांस से बनाए गए पुरोडाश का प्रयोग निर्ऋति, रक्षादेवता या यम देवता के लिए होता है।

शिश्नात्प्राशित्रमप्स्ववदानैश्चरन्तीति विज्ञायते।। ३२।।

सान्नाय्यविकारस्याऽपि पशोः प्राशित्रवचनाच्च शिश्नावयवादवदातव्यम्।

हृदयाद्यवयवमप्सु प्रचरितव्यम्। अन्यत् लौकिकेऽग्नौ कर्तव्यम्।।३२।।

अनु०—प्रायश्चित्त कर्ता प्राशित्र पशु के शिश्न से भोजन स्पर्श कराकर ग्रहण करते हैं। शेष अवयवों को जल में प्रवाहित करते हैं।

अपि वाऽमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय दार्विहोमिकीं परिचेष्टां कृत्वा द्वे आज्याहुती जुहोति 'कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा। कामाभिद्रुधोऽस्म्यभि द्रुग्धोस्मि कामकामाय स्वाहे' ति।। ३३।।

परिचेष्टा आज्यसंस्कारादिना। आग्निहोत्रिकप्रयोग इत्यन्ये। पूर्वस्याऽसम्भव एतत्प्रायश्चित्तम्। यद्वा-स्वपरप्रेरणसकृदसकृच्छक्तिसदसद्भाववर्णव्रतोत्सर्गाद्यपेक्षया द्रष्टव्यम्। अत्र स्मृत्यन्तरोक्तम् 'तस्याऽजिनमूर्ध्ववालं परिधाय लोहितपात्रस्सप्त गृहान् भैक्षं चरेत् कर्माऽऽचक्षाणः संवत्सरम्' इत्यादि द्रष्टव्यम्।।३३।।

अनु०—या अमावस्या की रात में अग्नि प्रज्जवलित करे। दर्विहोम के प्रारम्भिक अंश आज्य संस्कार जैसी क्रियांएं करे। कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा और कामाभिद्रुग्धोऽस्म्यभिद्रुग्धोऽस्मि काम कामाय स्वाहा का उच्चारण करते हुए घृत की आहुतियां दे।

हुत्वा प्रयताञ्जलिः कवातिर्यङ्ङग्निमुपतिष्ठेत- 'सं मा सिञ्चन्तु मरुतस्समिन्द्रस्सं बृहस्पतिः। सं माऽयमग्निस्सिञ्चन्त्वायुषा च बलेन चाऽऽयुष्मन्तं करोतु मे' ति।। ३४।।

हुत्वेत्युत्तरत्र निवृत्त्यर्थम्। प्रयताञ्जलिः शुद्धाञ्जलिः। अञ्जलिश्च द्विहस्तसंयोगः। कवातिर्यङ्नाऽत्यन्ताग्न्यभिमुखता नाऽत्यन्तपराङ्मुखता। तद्विधानं नित्याग्न्युपस्थाने 'कवातिर्यङ्ङिवोपतिष्ठेत नैनं प्रत्यङ् न पराङ्' इति।।३४।।

अनु०—हवन समाप्त हो जाए तो हाथों से अंजुलि बनाए। अग्नि से थोड़ा पीछे हट जाए। 'सं मा सिञ्चन्तु मरुतस्समिन्द्रसं बृहस्पतिः। सं माऽयमग्निस्सिञ्चन्त्वायुषा च बलेन चाऽऽयुष्मन्तं करोतु मे' मन्त्रों को बोलते हुए भगवान से प्रार्थना करे।

अथ यस्य ज्ञातयः परिषद्युदपात्रं निनयेयुरसावहमित्थंभूत इति। चरित्वाऽपः पयो घृतं मधु लवणमित्यारब्धवन्तं ब्राह्मणा ब्रूयुश्चरितं त्वयेति।। ३५।।

उदपात्रनिनयनेन स्मृत्यन्तरप्रसिद्धस्याऽङ्गस्य विधिरुक्तः। सोऽयं प्रदर्श्यते-विप्राणां गुरूणां ज्ञातीनां च परिषदि सन्निधौ किं कृतवानसीति पृष्ठे असावहमित्थम्भूत इति प्रतिब्रूयात्। इत्थम्भूत इदं पापं कृतवानस्मीति। एवं तं सम्भाष्य उदपात्रं निनयेयुरिति सम्बन्धः। अवस्करादमेध्यपात्रमपां पूर्णमानीय दासेन कर्मकरेण वा विप्रा नाययेयुः। स यद्येवं कृते चीर्णव्रतः अचरमहं प्रायश्चित्तमिति ब्रूयात्। तमबादिपञ्चतयमारब्धवन्तं

स्पृष्टवन्तं ब्राह्मण ब्रूयुः पृच्छेयुः-चरितं त्वया यथाविधि प्रायश्चित्तमिति।।३५।।

अनु०—महापातक जैसे पापों से मुक्त होने का उपाय बताते हैं-

महापातकी के बन्धु-बान्धव, परिवार वाले उसके लिए जल का खाली पात्र रखे। स्वयं महापातकी उपस्थित लोगों के सम्मुख अपने पाप कर्म की घोषणा करे। इसके बाद वह जल, दूध, घी, मधु और नमक को छूए। ब्राह्मण उससे पूछे- 'क्या तुमने प्रायश्चित्त कर्म पूरा कर लिया है?'

ओमितीतरः प्रत्याह।।३६।।

अभ्यनुज्ञावचनमेतत्। एवं तस्मिन् विच्छन्दना?।।३६।।

अनु०—प्रायश्चित्त कर्ता 'ओम्' का उच्चारण करे।

चरितनिर्वेशं सवनीयं कुर्युः।।३७।।

चरितनिर्वेशं चरितप्रायश्चित्तं सवनीयं सवनयोग्यं सवनशब्देन क्रतुरभिप्रेतः। तेन याज्ययाजकभावमापादयेयुरित्यर्थः। यद्वा-सूतेः प्राणिप्रसवकर्मणस्सवनं तत्र भवं सवनीयं जातकर्मादि तस्य कुर्युरिति यावत्। तथा च वसिष्ठः-'प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मना व्याख्यातः' इति। तदेतत् स पितृत्यागप्रत्युद्धारसम्बन्धं गौतमीये 'त्यजेत्पितरम्' इत्यस्मिन्नध्याये विवृतम्। तदपि प्रतीक्ष्यम्।।३७।।

अनु०—इस प्रकार विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करने के पश्चात् प्रायश्चित्त कर्ता यज्ञ अनुष्ठान करने योग्य हो जाता है।

सगोत्रां चेदमत्यार्पयच्छेन्मातृवदेनां विभृयात्। प्रजाता चेत्कृच्छ्राब्दपादं चरित्वा यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूत्पुनरग्निश्चक्षुरदादित्येताभ्यां जुहुयात्।।३८।।

अप्रजाता चेच्चान्द्रायणम्। तच्च महाप्रवरेषु स्वयमेवोक्तम्-सर्वेषां 'सगोत्रां गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात्। व्रते परिनिष्ठिते ब्राह्मणीं न संत्यजेन्मातृवद्भगिनीवत्' इति। बिभृयादिति शेषः। स्वयमेव ब्रवीति-'गर्भो न दुष्यति कश्यप इति विज्ञायते' इति। मिन्दाहुती पुनः सर्वत्राऽविशिष्टे। अनिर्दिष्टद्रव्यकत्वादाज्यद्रव्यं प्रतीयात्।।३८।।

अनु०—यदि भूल से (अनजाने में) कोई अपनी गोत्रवाली कन्या से विवाह कर ले, तो उस कन्या को मातृवत् मानकर व्यवहार करे। इससे सन्तान उत्पन्न हो, तो तीन महीने का कृच्छ्रव्रत का अनुष्ठान करे। यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूत् पुनः अग्नि चक्षुरदादित्य' आदि मंत्र से आहुतियां अर्पित करे।

परिवित्तः परिवेत्ता दाता यश्चाऽपि याजकः।
कृच्छ्रद्वादशरात्रेण स्त्री त्रिरात्रेण शुद्ध्यतीति।।३९।।

अकृतदाराग्निहोत्रसंयोगे अग्रजे तिष्ठति यः कनीयान् दारसंयोगमग्निहोत्रसंयोगं वा करोति स परिवेत्ता। इतरः परिवित्तः। परिवेत्तुर्यः कन्यां प्रयच्छति स दाता। तमेव यो याजयति स याजकः। एतेषां चतुर्णां कृच्छ्रेण शुद्धिः। ययाऽसौ परिवेत्ताऽभूत् तस्याः त्रिरात्रोपवासेन शुद्धिः।।३६।।

अनु०–यदि छोटा भाई अपने बड़े भाई के विवाह न करने पर भी अपना विवाह कर ले, वह आदमी और उसकी विवाहिता स्त्री, उस विवाह में जो दान दे, तथा जो विवाह कराए (यजमान) ये सब लोग नरक को प्राप्त होते हैं। इन सभी दोषियों को बारह दिन कृच्छ्रव्रत करना चाहिए। ऐसी विवाहित स्त्री तीन दिन का उपवास करे तो वह पवित्र हो जाती है।

(खण्ड-एक सम्पूर्ण)

खण्ड-दो

अथ पतनीयानि।।१।।

वक्ष्याम इति वाक्यसमाप्तिः। पतनीयानि पतनार्हाणि कर्माणि महापातकेभ्य ईषन्न्यूनानि।।१।।

अनु०–यहां पतनीय कर्मों की चर्चा करेंगे।

समुद्रसंयानम्। ब्रह्मस्वन्यासापहरणम्। भूम्यनृतम्। सर्वपण्यैर्व्यवहरणम्। शूद्रसेवनम्। शूद्राभिजननम्। तदपत्यत्वं च। [1]एषामन्यतमत्कृत्वा चतुर्थकालामितभोजिनस्स्युस्सवनानुकल्पम्। स्थानासनाभ्यां विहरन्त एते त्रिभिर्वर्षैस्तदपहन्ति पापम्।।२।।

समुद्रसंयानं नावा द्वीपान्तरगमनम्। ब्राह्मणस्वन्यासापहरणं निक्षेपहरणम्। भूम्यनृतं साक्ष्ये भूमिविषयानृतवादः। सर्वैः पण्यैरव्यवहरणीयैरप्युभयतोदद्भिर्व्यवहरणम्। शूद्रप्रेष्यता तत्सेवनमुच्यते। शूद्रायां गर्भस्थापनं शूद्राभिजननम्। शूद्रायां स्वभार्यायामपि जातत्वं तदपत्यत्वम्। शूद्रस्य वा पुत्रभावस्तवाऽहं पुत्रोऽस्मीत्युपजीवनम्। एषामन्यतमस्मिन् कृते प्रायश्चित्तम्-चतुर्थकालाः चतुर्थे काले येषां भोजनं ते तथोक्ताः। मितभोजिनः अल्पभुजः। अपोऽभ्यवेयुस्सवनानुकल्पं त्रिषवणस्नानिनः स्थानासनाभ्यामहोरात्रयोर्यथासङ्ख्यं विहरन्त एवमाचरन्तः एते तत्पापं त्रिभिः संवत्सरैरपहन्ति अपघ्नन्तीत्यर्थः।।२।।

अनु०–सामुद्रिक यात्रा, ब्राह्मण के धन को जबरन ले लेना, भूमि के वाद-विवाद में झूठी साक्षी देना, सभी वस्तुओं को खरीदना-बेचना, शूद्र की परिचर्या करना, शूद्रा से सहवास करना, इस तरह के संभोग से पुत्र के रूप में पैदा होना ये सब पतनीय

---

१. आप. ध. सू. १।२९।११

कर्म माने जाते हैं।

इनमें से किसी भी पतनीय कर्म का प्रायश्चित्त अनुष्ठान करना हो तो चौथे प्रहर में भोजन के समय थोड़ा-सा भोजन करे। सुबह, दोपहर और शाम को नहाए। दिन में बैठे नहीं। पर रात में बैठा ही रहे। इसकी अवधि तीन वर्ष की होती है। इस अनुष्ठान के करने से पतनीय कर्म से उत्पन्न दोषों से मुक्ति मिल जाती है।

यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्णं ब्राह्मणस्सेवमानः। चतुर्थकाल उदकाभ्यवायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपहन्ति पापमिति[1]।।३।।

कृष्णो वर्णः चण्डालीत्येके। वर्णशब्दानुपपत्तेः शूद्रैवेत्यपरे। तत्सेवनं तद्गमनम्। व्याख्यातं चतुर्थकालत्वमनन्तरसूत्रेऽपि। उदकाभ्यवायी त्रिषवणस्नायी एकरात्रेण सकृदन्मनमाह। अभ्यासे च तदभ्यासः कर्मणः पुनः प्रयोगात् विदुषो बुद्धिपूर्वगमन इदम्।।३।।

अनु०—यदि कोई ब्राह्मण एक दिन-रात पर्यंत किसी काले रंग के व्यक्ति की सेवा कर ले, तो उसे पाप लगता है। इस पाप के प्रायश्चित्त की अवधि तीन वर्ष की होती है। इस अवधि में चौथे प्रहर में भोजन करते हैं तथा सुबह-दोपहर और शाम को स्नान करते हैं।

अथोपपातकानि।।४।।

वक्ष्यन्त इति शेषः। एतान्यपि पतनीयेभ्यो न्यूनानि।।४।।

अनु०—अब उपपातकों की चर्चा हो रही है।

अगम्यागमनं गुर्वीसखीं गुरुसखीमपपात्रां पतितां च गत्वा भेषजकरणं ग्रामयाजनं रङ्गोपजीवनं नाट्याचार्यता गोमहिषीरक्षणं यच्चाऽन्यदप्येवंयुक्तं कन्यादूषण-मिति।।५।।

अगम्याः मातृष्वसृपितृष्वस्राद्याः। ताश्च नारदो जगाद—

माता मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा।
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भार्या पुत्रस्य या भवेत्।।
दुहिताऽऽचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता।
राज्ञी प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या।।
आसामन्यतमां गत्वा गुरुतल्पव्रतं चरेत्।
शिश्नस्योत्कर्तनं दण्डः नाऽन्यो दण्डो विधीयते।।

अत्र माता स्तन्यप्रदा। गर्वी माता गुरुः पिता तयोस्सखी च। अपपात्रा कन्या।

---

१. आप. ध. सू. १/२७/११

उपपात्रेति पाठे पण्यस्त्री। पतिता ब्रह्महत्यादिभिः यैः पुरुषः पतति, स्वकीयैश्च। तथा च वसिष्ठः—

त्रीणि स्त्रियाः पातकानि लोके धर्मविदो विदुः।
भर्तुर्वधो भ्रूणहत्या स्वस्य गर्भस्य पातनमिति।।

भेषजकरणं उपजीवनाय। ग्रामयाजनं बहूनां याजनम्। रङ्गोपजीवनं रङ्गो नर्तनं तेनोपजीवनम्। नाट्याचार्यता नर्तकेभ्यो नटशास्त्रस्य भरतविशाखिलादेः प्रतिपादनम्। गोमहिषीरक्षणमप्युपजीवनाय। एवं युक्तम्, वेदनिन्दा, विप्रापवादः, शस्त्रपाणित्वं, अग्निगोब्राह्मणेभ्यो दानप्रतिषेधः। अयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रय इत्यादि। कन्यादूषणं तद्गमनं तद्दूषणं वा रोगिणी काणा विरूपा बहुभुगाकुला मन्दगतिर्मन्दप्रज्ञा बहुभाषिणी दुर्गन्ध गात्रेत्यादि।।५।।

अनु०—जो स्त्रियां संभोग के योग्य नहीं हैं, उनसे संभोग करने पर उपपातक का दोष लगता है। अपनी मां की सहेली से सहवास करने वाला उपपातकी होता है। गुरु (पिता) की स्त्री, मित्र, अपपात्र स्त्री और गिरी हुई स्त्रियों से सहवास करने वाला उपपातक से दूषित होता है। जो जीविका (सिर्फ रुपए कमाने वाला) के लिए ही निमित्त कर्म करे, घर-घर जाकर यज्ञ करे, अभिनय-कला के द्वारा रोजी-रोटी चलाना, नृत्य संगीत की शिक्षा देकर जीविका जीवन यापन करना, गाय-भैंस को सिर्फ रोजी रोटी के लिए पालना, किसी की भी कन्या से सहवास करना, ये सभी अच्छे कर्म नहीं हैं। अतः इन्हें उपपातक कर्म माना जाता है।

तेषां तु निर्वेशः पतितवृत्तिर्द्वौ संवत्सरौ।।६।।

निर्वेशः प्रायश्चित्तं पतितानां वृत्तिः जीवनं भैक्ष्यवृत्तिरित्यर्थः। अथ वा ब्रह्महणो व्रतं द्वौ संवत्सरौ चरेत्।।६।।

अनु०—इन दोषों से दूषित उपपातकी को दो वर्ष तक भिक्षा मांग कर जीवन यापन करना चाहिए।

अथाऽशुचिकराणि।।७।।

वक्ष्यमाणानि वेदितव्यानि। तान्युपपातकेभ्यो न्यूनानि।।७।।

अनु०—अब अशुद्धि कारक कर्मों की चर्चा करेंगे।

द्यूतमभिचारोऽनाहिताग्नेरुञ्छवृत्तिता समावृत्तस्य भैक्षचर्या तस्य चैव गुरुकुले वास ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यस्तस्य चाऽध्यापनं नक्षत्रनिर्देशश्चेति।।८।।

द्यूतमक्षादिभिर्देवनम्। अभिचारः श्येनाद्यनुष्ठानम्। उञ्छः पथि क्षेत्रे वाऽनावृते देशे एकैककणिशोद्धरणं तेन वर्तनमुञ्छवृत्तिता। सा चाऽनाहिताग्नेरशुचिकरा। आहिताग्नेस्तु

विहिता। तथा हि—

वर्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः।
इष्टीः पार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा।। इति।।

समावृत्तो गृहस्थस्तस्य भिक्षाचर्या। तस्य चैव समावर्तनप्रभृति मासचतुष्टयादूर्ध्वं गुरुकुले वासः। अतस्तस्य मासद्वयं मासचतुष्टयं वा गुरुकुलवास इष्यत एव। तथा चाऽपस्तम्बः-'द्वौ द्वौ मासौ समाहित आचार्यकुले वसेत् भूयश्श्रुतमिच्छन्'। इति। तस्यैवोक्तलक्षणात् कालादूर्ध्वं यद्ध्यापनं तदप्यशुचिकरम्। अतश्चैतत् ज्ञापितं यावन्मरणं विद्यासङ्ग्रहः कार्य इति। तदुक्तम्—

वलीपलितकालेऽपि कर्तव्यश्श्रुतिसङ्ग्रहः।। इति।।

नक्षत्रनिर्देशो ज्योतिःशास्त्रोपजीवनम्। चशब्दात् प्रतिमालेखनगृहस्थ-परपाकोपजीवनानि गृह्यन्ते।। ८।।

अनु०—द्यूत क्रीड़ा, आभिचारिक कर्म करना, अशुचिकारक कर्म हैं। जो व्यक्ति अग्निहोत्र न करने वाले खेत से अनाज ग्रहण कर जीविका चलाता है, समावर्तन संस्कार के बाद भी जो भिक्षाटन करे और समावर्तित होकर भी गुरु के निकट चार महीने से अधिक रहना ये सब अशुद्धि कारक कार्य हैं। समावर्तन के बाद गुरुकुल में रहकर पढ़ाना और नक्षत्र आदि के बारे में बतलाना ये कर्म अशुद्धि पैदा करने वाले होते हैं।

तेषां तु निर्वेशो द्वादश मासान् द्वाद्वशाऽर्धमासान् द्वादश द्वादशाहान् द्वादश षडहान् द्वादश त्र्यहान् द्वादशाहं षडहं त्र्यहमहोरात्रमेकाहमिति यथाकर्माभ्यासः।। ६।।

अत्र षडहात् प्राग्ये काला निर्दिष्टाः तान् प्राजापत्येन याजयेत्। षडहादींस्त्वनशनेन। यथा पापस्य कर्मणोऽभ्यासस्तथा सेवा। तत्र गुर्वभ्यासे गुरुकल्पः। मध्यमे मध्यमः। लघौ लघुः।। ६।।

अनु०—इस प्रकार के अशुद्धि जनक कर्मों को करने वाले के लिए अलग-अगल अवधि वाले प्रायश्चित्त व्रत का निर्देश है। जिसका जैसा कर्म हो, उसी के अनुकूल बारह महीने, बारह पक्ष, बारह-बारह दिनों की अवधि, बारह-छः दिनों का काल बारह तीन दिनों की अवधि, बारह, छह, तीन दिन-रात अथवा एक दिन का प्रायश्चित्त व्रत होता है।

अथ पतितास्समवसाय धर्मांश्चरेयुरितरेतरयाजका इतरेतराध्यापका मिथो विवहमानाः पुत्रान् सन्निष्पाद्य ब्रूयुर्विप्रव्रजताऽस्मत्त एवमार्यान् सम्प्रतिपत्स्यथेति।। अथापि न सेन्द्रियः पतति। तदेतेन वेदितव्यमङ्गहीनोऽपि हि साङ्गं जनयतीति।। १०।।

समवसाय सम्भूय परस्परं पतिता धर्मांश्चरेयुः। किं लक्षणान्। यजनयाजनाध्य-

यनाध्यापनदानप्रतिग्रहलक्षणान् अत्र परस्परं विवहमानेषु यदि पुत्रा निष्पन्ना भवेयुः तान्निष्पादितानुपनीयैव पितरो ब्रूयुः-विप्रव्रजत निर्गच्छत अस्मत्तः अस्मान् त्यक्त्वा निर्गच्छत निर्गता आर्यान् प्रतिपत्स्यथ यूयमार्यान् प्रतिपत्स्यथ, अपिशब्दस्सम्भावनावचनः। आर्यैः किल यूयं सम्प्रयोगं प्राप्स्यथेति आर्या एव युष्माकमुपनेतारो भविष्यन्तीति। पतितपुत्रा अपि तैस्संसर्गाभावं शुचयो भवन्ति। संसर्गे हि संसर्गपतनमिति।।

ननु पतितपुत्रत्वादपि तद्भवतीत्याशङ्कयाऽऽह-अथाऽपि न सेन्द्रियः पतति यद्यपि च पिता पतति तथाऽपि सेन्द्रियः इन्द्रियैस्सह न पतति। कस्मात्? न हि पतनीयकारणम्। न चेन्द्रियाणि करणानि पतितानि। कर्तृकरणयोश्च पृथक्त्वं प्रसिद्धम्, उपस्थेन्द्रियं च कर्मेन्द्रियम्।

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता।। इति।।

पुत्राश्चेन्द्रियनिष्पादिताः। तथा च मन्त्रः—'अङ्गादङ्गात्सम्भवसि' इति। अतः करणसमवायिनः।

अथोच्यते सर्वैरेव पितृगुणैः पुत्रस्थैर्भवितव्यम्। अपि पतितत्वेनेति। तदपि न। कस्मात्—तदेतेन वेदितव्यम् ह्ययमर्थोऽङ्गहीनोऽपि साङ्गं जनयति, साङ्गोऽप्यङ्गहीनम्। अतो नाऽवश्यं पतितपुत्रेणाऽपि पतितेन भवितव्यम्।। १०।।

अनु०—ऐसे अपवित्र लोग प्रायश्चित्त फलस्वरूप एक साथ एक जगह पर रहें। परस्पर धर्म के नियमों का पालन करे। एक-दूसरे के लिए यज्ञ करे-करावें। आपस में पढ़ाएं, परस्पर विवाह कर्म करे। पुत्र उत्पन्न हो जाए, तो उससे कहे-'हमें छोड़कर जाओ। इस तरह तुम लोग फिर से आर्य लोगों के साथ रह सकोगे।'

मिथ्यैतदिति हारीतो दधिधानीसधर्माः स्त्रियस्स्युर्यो हि दधिधान्यामप्रयतं पय आतच्य मन्थति न तच्छिष्टा धर्मकृत्येषूपयोजयन्ति। एवमशुचि शुक्लं यन्निर्वर्तते न तेन सह सम्प्रयोगो विद्यते।। ११।।

अपतितायामपि जनन्यां पतितादुत्पन्नश्चेत् पतित एव भवतीत्येतदनेन कथ्यते। कस्य हेतोः? यावता जनन्या अपि स उत्पन्नः। मिथ्यैतदिति हारीतः। हारीतग्रहणं पूजार्थम्, नाऽऽत्मीयं मतं पर्युदसितुम्। अत्र दधिधानीसाधर्म्यात् स्त्रीणां बीजप्राधान्यं दर्शयति। तथा द्रव्यान्तरनिष्पत्त्यायतनत्वं दधिधान्या एव। आसामप्यशुचिशुक्लाधारत्वम्। यथा च दधिधान्यां प्रयतायामातञ्चितादप्रयताद्दध्नो मथननिष्पन्नं नवनीतं कृतं न धर्मकार्येष्विष्ट्यादिषु उपयुज्यते, एवमशुचिशुक्लनिष्पादितेन पुंसा न धर्मसम्बन्धो विधीयते। अथ यदुक्तं 'न सेन्द्रियः पतति इति तत् मिथ्यैव'। कथं? द्वौ हि पुरुषौ भवतः—सोपाधिको निरुपाधिकश्च। यो निरुपाधिकः परमात्मा तस्याऽकर्तृत्वम्। सोपाधिकस्तु पुण्यापुण्ये करोति, तत्फलं चाऽनुभवति। उपाधिश्च बुद्ध्यादिर्देहपर्यन्तः।

स हि क्षेत्रज्ञः। तस्मिंश्चाऽहम्प्रत्ययः। स च भूतात्मा स देहोऽहङ्कारं मनः।।

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते।

यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः।। इति।।

ततो देहोऽपि कर्तृत्वादेव पतति। एवं च कृत्वा मृतेष्वपि पतितेषु तत्सपिण्डानां तद्देहस्पर्शनादिः शिष्टैर्नाऽभ्युपगम्यते। तस्मादशुचिशुक्लोत्पन्नानामशुचित्वमेव। तथा च स्मृतिः—'पतितोत्पन्नः पतितो भवतीत्याहुः' इति। यदप्युक्तम् 'अङ्गहीनोऽपि साङ्गम्' इति, तदपि ग्रहस्थितिवशात् आहारविशेषवशाच्च युक्तम्। इह तु सेन्द्रिय एव पततीत्युक्तम्। किञ्च—स्त्रीपुंसाभ्यां हि पुत्रो जन्यते। यद्यत्राऽपि पुमानङ्गहीनः स्त्री तु साङ्गा भवत्येव। ततोऽस्याऽङ्गानिप्रवर्तन्ते।। मनुः—

पितुर्वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा।। इति।।

इदं चाऽन्यत्-भूयांसो धर्माः कारणगताः कार्ये भवन्ति। तत्र शुक्लादयो गुणाः पुत्रे न भवन्तीति प्रमाणशून्यं वचः। अत एव तदपि मिथ्यैव। तस्मान्न तेन सह सम्प्रयोगो विद्युत इति स्थितम्।। ११।।

अनु०—हारीत का कहना है कि यह सच नहीं है। उनका विचार है कि स्त्रियां यज्ञ की दधिधानी पात्र की तरह होती हैं, जैसे उक्त पात्र में दूषित दूध को मथे तो दही दूषित हो जाता है। इस प्रकार की दही का सेवन धार्मिक अनुष्ठानों में वर्जित है। इसी तरह जो दूषित वीर्य से उत्पन्न होता है। उससे कोई भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

अशुचिशुक्लोत्पन्नानां तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तिः।
पतनीयानां तृतीयांऽशस्त्रीणामंशस्तृतीयः।। १२।।

पतनीयप्रायश्चित्तं यत्तूक्तं 'चतुर्थकाला मितभोजिनस्स्युः' इति तस्य तृतीयो भागः पतितोत्पन्नानां प्रायश्चित्तम्। स्त्रीणां तदुत्पन्नानां तस्याऽपि तृतीयो भागः, नवमभाग इति यावत्। तत्र तौल्येऽपि तद्बीजत्वे स्त्रीणां दोषलाघवमवगम्यम्। तथा च वसिष्ठो युक्तिमेवाऽऽह—

'पतितोत्पन्नः पतितो भवतीत्याहुरन्यत्र स्त्रियाः, सा हि परगामिनी, तामरिक्थामुपेया' दिति।। १२।।

अनु०—ऐसे पातकी पुरुष प्रायश्चित्त अनुष्ठान करने को लालायित हों तो, पतनीय कर्मों के लिए निर्दिष्ट व्रत के तीसरे भाग का पालन करे। दूषित वीर्य से उत्पन्न स्त्रियों को भी यही प्रायश्चित्त करना चाहिए।

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः।
श्वविष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह मज्जतीति।। १३।।

नाऽत्र तिरोहितं किञ्चिदस्ति।। १३।।

अनु०—तिल का प्रयोग करते समय सावधानी बरते। तिल का सेवन भोजन, मालिश और दान में ही करे। इनके अलावा अन्य कर्मों में तिल का उपयोग करने वाला कृमि बन जाता है। वह अपने पितरों के साथ ही कुत्ते के मल में रहता है। यह उद्धरण मिलता है।

पितॄन्वा एष विक्रीणीते यस्तिलान् विक्रीणीते।
प्राणान् वा एष विक्रीणीते यस्तण्डुलान् विक्रीणीते।। १४।।

निन्दैषा तिलतण्डुलयोर्विक्रयस्य।। १४।।

अनु०—तिल को बेचने वाला मानो अपने पितरों को ही बेचता है। चावल बेचने वाला अपने प्राणों को बेचता है।

सुकृतांशान्वा एष विक्रीणीते यः पणमानो दुहितरं ददाति।। १५।।

सुकृतं पुण्यं तदंशाः सुकृतांशाः। पणमानो योऽन्यस्माद् द्रव्यं गृहीत्वाऽन्यस्मै द्रव्यान्तरप्राप्त्यर्थं प्रयच्छति।।१५।।

अनु०—सौदे बाजी करके पुत्री का विवाह करने वाला मानो वह अपने पुण्यों को बेचता है।

तृणं काष्ठमविकृतं विक्रेयम्।। १६।।

तृणविकाराः रज्ज्वासनकटादयः। काष्ठविकाराः स्रुक्स्रुवप्रतिमादयः। तद्वर्जं तृणं काष्ठं ब्राह्मणैरप्यापदि विक्रेयम्।। १६।।

अनु०—घास और लकड़ी बिना विचार किए हुए बेचे जाते हैं।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

पशवश्चैकतोदन्ता अश्मा च लवणोद्धृतः।
एतद् ब्राह्मण ते पण्यं तन्तुश्चा रजनीकृत इति।। १७।।

ब्रह्मा ब्राह्मणमाह-हे ब्राह्मण ! तवैतत्पण्यं यदेकतोदन्ताः। पशवः शृङ्गिणस्तेष्वेकतोदन्ताः, अश्मा पाषाणश्च लवणोद्धृतो लवणवर्जितः। तन्तुश्चारजनीकृतः कुसुम्भकुङ्कुमहरिद्राद्यरञ्जित इत्यर्थः।। १७।।

अनु०—इस प्रसंग में एक पद्य प्रकट करते हैं-'ब्राह्मणो! तुम उन पशुओं को बेच सकते हो, जिनके एक जबड़े के ही दांत होते हैं। नमक को छोड़ अन्य दूसरे खनिज पदार्थ और बिना रंगा धागा बेच सकते हैं।

पातकवर्जं वा बभ्रुं पिङ्गलां गां रोमशां सर्पिषाऽवसिच्य कृष्णैस्तिलैरव-

कीर्याऽनूचानाय दद्यात्।।१८।।

वाशब्दो वक्ष्यमाणेन प्रायश्चित्तेन विकल्पार्थः। बभ्रुपिङ्गलयोर्विकल्पार्थो वा। रोमशाम् एवंभूतां गां घृतेनाऽभ्यज्य तामेव कृष्णतिलैरवकीर्य बहुश्रुताय ब्राह्मणाय दद्यात्।।१८।।

अनु०–पातक कर्म को छोड़ अन्य पाप कर्म का प्रायश्चित्त करना हो तो उसे दोषी व्यक्ति वेद विद्वान ब्राह्मण को भूरे या पिंगल रंग की और अधिक रोम वाली गो का दान करे, तिल भी दे। गाय को दान में देने से पहले जल छिड़कर शुद्ध करे। तिल को बिखेर कर दान करे।

कूष्माण्डैर्वा द्वादशाहम्।।१९।।

जुहुयादिति शेषः।।१९।।

अनु०–या बारह दिन तक कूष्माण्ड के मंत्रों का पाठ करते हुए अग्निहोत्र करे।

यदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यते इति।।२०।।

अर्वाचीनमर्वाक्तनम्। फलविधिः फलार्थवादो वाऽयम्।।२०।।

अनु०–यदि उपर्युक्त प्रायश्चित्त किया जाए तो विद्वान ब्राह्मण का वध करने पर जो पाप लगता है, उसे छोड़ अन्य दुष्कर्मों के पापों से मुक्ति मिल जाती है।

पातकाभिशंसने कृच्छ्रः।।२१।।

पातक्ययमित्युक्तिमात्रे प्राजापत्योऽयं प्रायश्चित्तम्। कस्य? अनृतेन पातकेनाऽभिशस्तस्य।।२१।।

अनु०–यदि कोई किसी पर पातक का दोष ही लगा दे, तो आरोपी को प्रायश्चित्त करने हेतु कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

तदशब्दोऽभिशंसितुः।।२२।।

तदिति कृच्छ्रं प्रतिनिर्दिशति। ब्राह्मणमनृतेन पातकेनाभिशंस्य संवत्सरं प्राजापत्यव्रतं चरेत्। अत्र गौतमः–'ब्राह्मणाभिशंसने दोषस्तावान्। द्विरनेनसि' इति।।२२।।

अनु०–पातक के मिथ्या आरोपी के लिए भी एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करने का निर्देश है।

संवत्सरेण पततिं पतितेन समाचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनादिति।।२३।।

यानासनाशनैस्संवत्सरेण पतति। न तु याजनादिभिस्संवत्सरेण। किं तर्हि?

सम्बन्धमात्रेण, सद्य एवेत्यर्थः। अन्तरङ्गत्वात्। याजनादीनां बहिरङ्गत्वाच्च यानादीनाम्। तस्माद्युक्ता योजना। याजनं नाम ऋत्विग्यजमानसम्बन्धः। शिष्योपाध्याय-सम्बन्धोऽध्यापनम्। कन्यादानप्रतिग्रहलक्षणसम्बन्धो यौनम्। यानाद्येकस्यां शालायामेकस्मिन् कुञ्जरे खट्वायां वा।। २३।।

अनु०—कोई भला आदमी यदि साल भर किसी पतित के साथ सम्पर्क रख ले, तो वह भी पतित हो जाता है। यदि पुरोहित पतित का यज्ञ करा दे तो उसे भी पतित का दोष लगता है। उसे जो पढ़ाता है, वह भी दूषित हो जाता है। पतित से विवाह सम्बन्ध भी दूषित होने का कारण है। यहां तक कि यदि कोई पातकी के साथ बैठ जाए या भोजन कर ले तो भी वह पतित हो जाता है।

अमेध्यप्राशने प्रायश्चित्तं नैष्पुरीष्यं तत्सप्तरात्रेणाऽवाप्यते। अपः पयो घृतं पराक इति प्रतित्र्यहमुष्णानि स तप्तकृच्छ्रः।। २४।।

अमेध्यशब्देन श्वापदोष्ट्रखरादीनां मांसं लशुनगृञ्जनपलाण्डुकवकादयश्च गृह्यन्ते। अबादीनि त्रीण्युष्णानि। पराक उपवासः प्रतित्र्यहम्। एवमेकैकस्मिन् कृते सति द्वादश सम्पद्यन्ते। तस्यैतस्य तप्तकृच्छ्र इति संज्ञा।। २४।।

अनु०—अमेध्य का भक्षण करने पर तब तक प्रायश्चित्त काल समझना चाहिए जब तक पेट का मल शरीर से बाहर न निकल जाए। इस अवधि में वह निराहार ही रहे। सात दिन—और सात रात ऐसा करने से सारा दूषित मल शरीर से बाहर निकल जाता है। जल, दूध और घी को गरम करे। तीन-तीन दिन उसका सेवन करे। फिर तीन दिन निराहर रहे। इसे तप्तकृच्छ्र व्रत कहते हैं।

त्र्यहं प्रातस्तथा सायं त्र्यहमन्यदयाचितम्।
त्र्यहं परं तु नाऽश्नीयात् पराक इति कृच्छ्रः।। २५।।

अयमपि द्वादशाह एव।। २५।।

अनु०—तीन दिन तक सिर्फ सुबह भोजन करे। आने वाले तीन दिन में केवल शाम को भोजन करे। फिर इसके तीन दिन बाद बिना मांगे ही जो कुछ भोजन मिले, उसे करे। फिर उसके अगले तीन दिन निराहार रहे। ऐसा व्रत कृच्छ्र व्रत होता है।

प्रातस्सायमयाचितं पराक इति त्र्युश्चतूरात्राः स एषः स्त्रीबालवृद्धानां कृच्छ्रः।। २६।।

एकैकमेकाहः परं तु नाऽश्नीयात् अतश्चतुरहोऽयम्। बालादिग्रहणम-शक्तोपलक्षणम्।। २६।।

अनु०—स्त्री, बालक और बूढ़े के लिए कृच्छ्र व्रत कुछ भिन्न होता है। सुबह

को भोजन करे, शाम को विना मांगे प्राप्त अन्न का भोजन करे तथा भोजन के अभाव में निराहार रहे। चार-चार दिनों के तीन भागों में बारह दिनों का समय बांटे। यह अनुष्ठान स्त्री, बालक और बूढ़े के लिए कृच्छ्र कहलाता है।

यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयात्पूर्ववत्सोऽतिकृच्छ्रः।। २७।।

पूर्ववदित्येतेन सर्वातिदेशे प्राप्ते ग्रासनियमार्थं सकृद्ग्रहणम्। ग्रासस्तु शिख्यण्डपरिमितो पाणिपूरणान्नो वा।। २७।।

अनु०—एक बार जितना भोजन किया जा सके, केवल उतना ही खाए और ऊपर बताए गए विधान के अनुसार व्रत का पालन करे। इसे अतिकृच्छ्र व्रत कहते हैं।

अब्भक्षस्तृतीयः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः।। २८।।

कृत्स्नोऽपि द्वादशाहोऽब्भक्षो भवेत्। तृतीयग्रहणं समुच्चितानामेषां सर्वप्रायश्चित्तत्वप्रदर्शनार्थम्। यथाऽयं तृतीयो भवति तथा कुर्यादित्यर्थः। यद्वा—चतुर्षु त्र्यहेषु तृतीयस्त्र्यहोऽब्भक्षो भवति। प्रथमद्वितीयौ चोदनभक्षौ। चतुर्थः पराक इति। स एष कृच्छ्रातिकृच्छ्रः।। २८।।

अनु०—बारह दिन तक जल पीकर उपर्युक्त व्रत का पालन किया जाए, तो वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत कहलाता है।

कृच्छ्रे त्रिषवणमुदकोपस्पर्शनम्।। २९।।

त्रीणि सवनानि प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति। उपस्पर्शनं स्नानम्।। २९।।

अनु०—कृच्छ्रव्रत की अवधि में सुबह, दोपहर और शाम को स्नान भी करे।

अधश्शयनम्।। ३०।।

उपरि खट्वादिषु शयननिषेधः। अनुपस्तीर्णे देशे शयनमधश्शयनमित्यपरे।। ३०।।

अनु०—उसे भूमि पर सोना चाहिए।

एकवस्त्रता केशश्मश्रुलोमनखवापनम्।। ३१।।

अत्रोत्तरीयं प्रतिषिध्यते।। ३१।।

अनु०—एक कपड़ा पहने। दाढ़ी-मूंछ कटवाए और शरीर के बाल एवं नाखूनों को कटवाए।

एतदेव स्त्रियाः केशवपनवर्जं केशवपनवर्जनम्।। ३२।।

यो यावान्नियमः कृच्छ्रेषु पुरुषस्योक्तः स एव स्त्रीणाम्। कृच्छ्रचरणे केशवपनं

तु वर्ज्यते। द्विरुक्तिरुक्तप्रयोजना।।३२।।

अनु०–स्त्रियों के लिए ऐसा व्रत करने का विधान है। पर उन्हें केश नहीं कटवाने चाहिए।

(अध्याय-एक, खण्ड-दो सम्पूर्ण)

अध्याय-दो : खण्ड-तीन

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी वृषलान्नवर्जी।
ऋतौ च गच्छन् विधिवच्च जुह्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्।।१।।

नित्योदकी उदकमण्डलुहस्तः। नित्ययज्ञोपवीती निवीतिप्राचीनावीतिभ्यामन्यत्र। नित्यस्वाध्यायी नित्याध्ययनः अन्यत्रानध्यायात्। वृषलश्शूद्रः। अन्नग्रहणादामं प्राणसंशये तत्स्थित्यर्थमभ्यनुज्ञातमेव। यतुः आर्तवः अर्तेर्गतिकर्मणो गर्भाधानक्षमकालः। न वसन्तादिः। तत्र गच्छन् मैथुनमाचरन् आह–

ऋतुस्स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयष्षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैस्सार्धमहोभिस्सद्विगर्हितैः।।
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः।।

एतच्च स्वभार्यायामेव। विधिवच्च जुह्वत् श्रुतिस्मृतिचोदितेन मार्गेण ब्रह्मलोकान्न च्यवते। ब्रह्म च तल्लोकश्च ब्रह्मलोकः। तस्मान्न च्यवते न भेदं प्रतिपद्यत इत्यर्थः। अनेन प्रकारेण गृहस्थस्याऽपि स्वाश्रमविहितकर्मणा मुक्तिमनुमन्यते। आह च याज्ञवल्क्यः–

न्यायार्जितधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते।। इति।।

तथा च धर्मस्कन्धब्राह्मणम्-'सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति। ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमे' ति इति।।१।।

अनु०–जो हमेशा कमण्डल में जल रखे, उसे अपने साथ रखे। नित्य यज्ञोपवीत पहने। प्रतिदिन वेद पढ़े। शूद्र का भोजन न खाए। ऋतु काल में ही पत्नी से सहवास करे। वेद के अनुसार यज्ञ कर्म करे, ऐसा ब्राह्मण मृत्यु के बाद निश्चय ही ब्रह्म लोक को जाता है।

'मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभज' दिति श्रुतिः।।२।।

पुत्रग्रहणात् पुंस एव विभजेत्, न दुहितुः। तथा च श्रुतिः-'तस्मात्स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायादीः' इति। स्मृतिरपि–

विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्।। इति।।

तत्र दायो दातव्यं द्रव्यम्, तस्य विभागो दायविभागः, इदानीं कर्तव्य इति विधिकल्पना।।२।।

अनु०–वेद में कहा गया है कि मनु ने अपने बेटों के धन का बंटवारा किया।

समशस्सर्वेषामविशेषात्।।३।।

न विशेषः कश्चिच्छ्रयते-विषमो विभाग इति। अयं तु समो विभागः सवर्णापुत्राणामौरसानां समानगुणानां च। न त्वसवर्णापुत्राणामनौरसानाम-समानगुणानाम्।।३।।

अनु०–पिता अपनी सम्पत्ति को बेटों में बराबर-बराबर बांटे। किसी को अधिक भाग न दे।

वरं वा रूपमुद्धरेज्ज्येष्ठः।।४।।

वरमुत्कृष्टरूपं द्रव्यमुद्धरेत् गृह्णीयात्।।४।।

अनु०–या बड़ा बेटा पिता के धन में से जो बढ़िया-बढ़िया सामान हैं, उन्हें विशेष रूप से ग्रहण करे।

तस्माज्ज्येष्ठं पुत्रं धनेन निरवसाययन्तीति श्रुतिः।।५।।

निरवसायनं पृथक्करणम्। धनेनोपतोष्य पृथक्कुर्वन्तीत्यर्थः। अनया श्रुत्याऽविशेषादिति हेतुरपसारितो भवति।।५।।

अनु०–श्रुति में कहा गया है-बड़े बेटे को धन का विशेष भाग देकर अलग करना चाहिए।

दशानां वैकमुद्धरेज्ज्येष्ठः।।६।।

सर्वं धनजातं दशधा विभज्य ज्येष्ठस्यैको भाग उद्धारः कार्यः। दशसङ्ख्याधिकेषु सत्स्वेष विभागो लाभाय भवति, न तु दशसंख्यान्यूनेषु। एतावुद्धारौ गुणवज्ज्येष्ठविषयौ वेदितव्यौ।।६।।

अनु०–या बड़ा बेटा सम्पूर्ण सम्पत्ति के दस भाग में से एक भाग विशेष धन के रूप में ले।

सममितरे विभजेरन्।।७।।

सर्वं धनजातं दशधा विभज्य ज्येष्ठस्यैको भाग उद्धारः कार्यः। अवशिष्ट-नवभागानितरे पुत्रास्समं विभजेरन्।।७।।

अनु०–जो धन बचे, उसे अन्य बेटों में बराबर-बराबर बांटे।

पितुरनुमत्या दायविभागस्सति पितरि।।८।।

तदनिच्छया विभागो दोषो भवति।।८।।

अनु०–पिता के जीवन काल में सम्पत्ति का बंटवारा करना हो, तो उसके कहे अनुसार ही बंटवारा सम्पन्न करना चाहिए।

चतुर्णां वर्णानां गोश्वाजावयो ज्येष्ठांशः।।६।।

अंशनियमेनोद्धारः। मृते जीवति वा पितरि सत्सु गोश्वाजाविष्वेतत्। इतरे समं विभजेरन्। गवादीनां ज्येष्ठभागद्वयावशिष्टस्याऽप्याधिक्ये सति विज्ञयेम्।।६।।

अनु०–ज्येष्ठ बेटे को अतिरिक्त अंश मिलता है। इसलिए उसे वर्ण के अनुसार-गाय, घोड़ा, बकरा और भेड़ देने चाहिए।

नानावर्णस्त्रीपुत्रसमवाये दायं दशांशान् कृत्वा चतुरस्त्रीन् द्वावेकमिति यथाक्रमं विभजेरन्।।१०।।

नानावर्णस्त्रियो ब्राह्मणदिस्त्रियः। तत्पुत्रसमवाये सति सर्वं दशधा विभज्य चतुरोंऽशान् ब्राह्मणीपुत्रो हरेत्। इतरेषु षट्सु त्रीनंशान् क्षत्रियासुतः। तत्परिशिष्टेषु त्रिषु द्वौ वैश्यासुतः। तस्यैतदविशिष्टांश शूद्रासुतः। एवं क्षत्रियोऽपि सुतस्य वर्णक्रमात् षोढा कृतानां त्रीन् द्वावेकमिति यथाक्रमं प्रकल्पयेत्। तथा वैश्योऽपि स्वपुत्रयोः द्वावेकमिति विभजेत्।।१०।।

अनु०–यदि कई वर्णों की पत्नियां हों और उनसे कई पुत्र हों, ऐसे में धन को दस हिस्सों में बांटे। पत्नियों के वर्ण के अनुसार ही बेटों को क्रमशः धन का चार, तीन, दो और एक भाग दे।

औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः।।११।।

औरसं सवर्णापुत्रं वक्ष्यति-'सवर्णायां संस्कृतायाम्' इति। तस्मिन्नुत्पन्नेऽसवर्णास्तृतीयांशहरा भवेयुः। सर्व धनजातं त्रेधा विभज्य तेषामेकं षोढा सम्पाद्य त्रीन् द्वावेकमिति कल्पयेत्।।११।।

अनु०–औरस पुत्र पैदा हो जाए तो दूसरे सवर्ण पुत्रों को धन का तीसरा अंश देना चाहिए।

सवर्णापुत्रानन्तरापुत्रयोरनन्तरापुत्रश्चेद्गुणवान् स ज्येष्ठांशं हरेत्।।१२।।

गुणवत्ता हि श्रुतशीलादिः।।१२।।

अनु०–सवर्ण स्त्री से पैदा हुए बेटे और उसके बाद के नीचे वर्ण की स्त्री के पैदा हुए पुत्र में नीचे के वर्ण वाला पत्नी का बेटा गुणी हो, तो उसे ही बड़ा

बेटा मान कर धन का विशेष भाग दे।

गुणवान् हि शेषाणां भर्ता भवति।। १३।।

आहारदानादिगुणवत्त्वे समर्थ एव। अतो ज्यैष्ठ्यं गुणवयः कृतम्।। १३।।

अनु०—गुणी बेटा दूसरे बेटों का (भाइयों) भरण-पोषण करने में समर्थ होता है।

सवर्णायां संस्कृतायां स्वयमुत्पादितमौरसं पुत्रं विद्यात्।। १४।।

पाणिग्रहणेन शास्त्रलक्षणेन तस्यां स्वयमुत्पादित औरसो न क्षेत्रजादिः।। १४।।

अनु०—सवर्ण पत्नी जो कि विवाह संस्कार के पश्चात् पत्नी बनी हो, उससे जो बेटा पैदा होता है, उसे औरस पुत्र कहते हैं।

अभ्युपगम्य दुहितरि जातं पुत्रिकापुत्रमन्यं दौहित्रम्।। १५।।

विद्यादित्यनुवर्तते। अभ्युपगम्य संवाद्याऽस्मदर्थमपत्यमिति या दुहिता दीयते तस्यां जातं दौहित्रं पुत्रिकापुत्रं विद्यात्। अन्यत्वमौरसापेक्षया। तस्याऽस्य गौणत्वप्रदर्शनार्थम्। अन्यं दौहित्रमित्यस्याऽपरा व्याख्या-अन्यः असंवादपूर्वकं दत्तायां जातः तं दौहित्रमेव विद्यात्।। १५।।

अनु०—पुत्री से उत्पन्न पुत्र पुत्रिकापुत्र कहलाता है, उसे छोड़ पुत्री के पुत्र को दौहित्र कहा जाता है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

आदिशेत्प्रथमे पिण्डे मातरं पुत्रिकासुतः।
द्वितीये पितरं तस्यास्तृतीये च पितामहमिति।। १६।।

पिण्डपितृयज्ञे क्रियमाणे प्रथमं पिण्डं मातरमुद्दिश्य दद्यात्। स्त्रियाः पिण्डदानं वचनप्रामाण्याद्भवति। पितृस्थानीया हि सा। द्वितीये मातुः पितरमात्मनो मातामहम्। तृतीये तस्याः पितामहमात्मनो मातामहपितरम्। यद्वामातरं परिहाप्यैव पिण्डदानम्। कुत एतत्? कर्मान्ते प्रदर्शनात्। तत्र ह्युक्तम् कथं खलु पुत्रिकापुत्रस्य पिण्डदानं भवतीति पृष्टा एतत्तेऽमुष्यै पितामह मम प्रपितामह ये च त्वामनु, एतत्तेऽमुष्यै प्रपितामह मम प्रपितामह ये च त्वामन्विति अमुष्यै अमुष्या इति स्वमातरं निर्दिशति।। १६।।

अनु०—इस प्रसंग में यह पद्य उद्धृत करते हैं-

पुत्रिकापुत्र श्राद्ध के समय पहला पिण्ड अपनी मां को दान करता है। दूसरा और तीसरा क्रमशः वह उसके पिता (नाना) और उसके पितामह (परनाना) को दे।

मृतस्य प्रसूतो यः क्लीवव्याधितयोर्वाऽन्येनाऽनुमतेन स्वे क्षेत्रे स क्षेत्रजः।। १७।।

मृतस्य स्वे क्षेत्रे प्रसूत इति सम्बन्धः। स्वक्षेत्रे स्वपाणिग्रहणादिना संस्कृते। कार्यानभिज्ञः क्लीबः तृतीया प्रकृतिः। व्याधितस्तीव्ररोगेण प्रजोत्पादनासमर्थो गृह्यते। एषां त्रयाणां भार्यायामन्येन भ्रात्रा पित्रा वाऽनुमतेन देवरेणोत्पादितः क्षेत्रजो भवति।। १७।।

अनु०—मृत व्यक्ति, नपुंसक, रोगी, की अनुमति से दूसरे व्यक्ति द्वारा पत्नी से पुत्र पैदा हो, तो उसे क्षेत्रज कहते हैं।

स एष द्विपिता द्विगोत्रश्च द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति।। १८।।

स एष क्षेत्रजः द्विपिता द्वौ पितरो यो जनकः क्षेत्रवांश्च। द्विगोत्रत्वमप्यस्य तद्गोत्राभ्यामेव। गोत्रभेदे सत्यस्य प्रयोजनम्—स्वधा पिण्डोदकादि। रिक्थं मृतस्य यदातिरिच्यते द्रव्यम्।। १८।।

अनु०—क्षेत्रज के दो पिता कहे गए हैं-उसके गोत्र भी दो होते हैं। वह दोनों पिताओं को पिण्ड दान करता है। अतः उसे दोनों पिताओं की सम्पत्ति मिलनी चाहिए।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

द्विपितुः पिण्डदानं स्यात्पिण्डे पिण्डे च नामनी।
त्रयश्च पिण्डाष्षण्णां स्युरेवं कुर्वन्न मुह्यतीति।। १९।।

नामनी उत्पादयितुः क्षेत्रिणश्च। तयोस्सह पिण्डदाने सति त्रय एव पिण्डाष्षण्णां दद्युः। 'पित्रे पितामहाय' इति च वचनात्।। १९।।

अनु०—इस संदर्भ में यह प्रमाण है-

दो पिताओं वाला पुत्र पिण्ड दान के समय दोनों पिताओं का नाम ले। तीन पिण्ड से छह पिण्ड का दान होता है। इस तरह जो पिण्ड का दान करता है, उसे भ्रान्ति का दोष नहीं लगता।

मातापितृभ्यां दत्तोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते स दत्तः।। २०।।

यो मातापितृभ्यां मात्रा पित्रा वा दत्तः।। २०।।

अनु०—वह दत्त पुत्र है- जो मां-बाप द्वारा प्रदत्त होने पर भी उनमें से सिर्फ एक के द्वारा ही प्रदत्त होने पर पुत्र का स्थान लेता है।

सदृशं यं सकामं स्वयं कुर्यात्स कृत्रिमः।। २१।।

सादृश्यं जात्यादिना। सकामं अस्याऽहं पुत्रो भविष्यामि यदि मां ग्रहीष्यतीति यो मन्यते पुत्रार्थी च स्वयमेव पूजापूर्वकं यदि गृह्णाति। एवं गृहीतः कृत्रिम उच्यते।। २१।।

अनु०—पुत्र बनने की लालसा देखकर जिसे पुत्र बना लिया जाए, उसे कृत्रिम

पुत्र कहा जाता है।

गृहे गूढोत्पन्नोऽन्ते ज्ञातो गूढोः।। २२।।

गृहे अतिगुप्तायामपि स्त्रियाममुनोत्पादितोऽयमिति पूर्वमज्ञातः। पश्चात्कालान्तरे येन व्यभिचारादिना कारणेनाऽस्यामुत्पादितोऽयं पुत्र इति विज्ञायते तथापि गूढजः इत्यभिप्रायः। अत्र गृहग्रहणं प्रव्रजितायां गूढोत्पन्नस्य गूढ इति संज्ञा मा भूदित्येतदर्थम्।। २२।।

अनु०—घर में ही व्यभिचार (अनैतिक) से पैदा हुआ बेटा गूढ़ज होता है। इसका पता उसके जन्म के बाद चलता है।

मातापितृभ्यामुत्सृष्टोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यतेसोऽपविद्धः।। २३।।

अत्राऽपि सदृश इत्यनुवर्तते। उत्सृष्टस्त्यक्तः।। २३।।

अनु०—माता-पिता में से यदि कोई एक के द्वारा छोड़े गए बेटे को ग्रहण कर ले, वह अपविद्ध होता है।

असंस्कृतामनतिसृष्टां यामुपयच्छेत्तस्यां यो जातस्स कानीनः।। २४।।

अनेन ज्ञायते गूढजः संस्कृतायां जात इति। अनूढामसंस्कृतामाहुः। अनतिसृष्टां अनभ्युपगतां गुरुभिः अतिसृष्टायामप्यसंस्कृतायां संस्कृतायामप्यनतिसृष्टायां स एव। सोऽयं सदृश्यामुत्पादितो मातामहस्य पुत्रः।। २४।।

अनु०—गुरुजनों की सम्मति के बिना अविवाहिता कन्या से जो पुत्र पैदा हो, उसे कानीन कहते हैं।

या गर्भिणी संस्क्रियते बिज्ञाता वाऽविज्ञाता वा तस्यां यो जातः स सहोढः।। २५।।

या गूढगर्भिणी सती परिणीयते तस्यां यो जातस्स सहोढो नाम। वोढुश्चायं पुत्रः। विज्ञातायां तु संस्कार एनोऽस्ति।। २५।।

अनु०—यदि ज्ञात-अज्ञात रूप से वर-वधू विवाह के समय ही गर्भ को धारण कर ले, तो उससे सहोढ पुत्र की उत्पत्ति होती है।

मातापित्रोर्हस्तात्क्रीतोऽन्यतरेण वा योऽपत्यार्थे परिगृह्यते स क्रीतः।। २६।।

स्वद्रव्यं प्रदायेति शेषः।। २६।।

अनु०—मां-बाप को धन देकर कोई व्यक्ति उसके बेटे को खरीद कर अपना बेटा बना ले, वह क्रीत पुत्र होता है।

क्लीवं त्यक्त्वा पतितं वा याऽन्यं पतिं विन्देत्तस्यां पुनर्भ्वां यो जातस्स

पौनर्भवः।। २७।।

मृतोऽप्यत्राऽभ्यनुज्ञातः। तथा च वसिष्ठः—'मृते वा सा पुनर्भूर्भवति' इति।। २७।।

अनु०—कोई स्त्री अपने नपुंसक अथवा पतित पति को त्याग कर किसी दूसरे पुरुष से विवाह कर पुत्र उत्पन्न करे, उसे पौनर्भव पुत्र कहा जाता है।

मातापितृविहीनो यः स्वयमात्मानं दद्यात्स स्वयंदत्तः।। २८।।

स्वस्वत्वनिवृत्तिः परस्वत्वापादानं च दानम्। अत्राऽपि शरीरेन्द्रियाणामात्मीयत्वाद्दानव्यवहारः।। २८।।

अनु०—अनाथ (मां-वाप रहित) पुत्र जो स्वयं को ही किसी पुरुष या स्त्री के हवाले कर दे, उसे स्वयंदत्त पुत्र के नाम से जाना जाता है।

द्विजातिप्रवराच्छूद्रायां जातो निषादः।। २९।।

द्विजातिप्रवरो ब्राह्मणः।। २९।।

अनु०—व्राह्मण और शूद्रा से उत्पन्न पुत्र निषाद होता है।

कामात्पारशव इति पुत्राः।। ३०।।

द्विजातिप्रवरादेव पूर्वः क्रमोढायाः पुत्रः। अयं तु कामादूढायाः। अनन्तरप्रभवप्रकरणे तयोरपि पुनर्ग्रहणमनयोः पुत्रकार्येष्वपि प्रापणार्थम्।। ३०।।

अनु०—व्राह्मण अपनी काम पिपासा के लिए ही यदि शूद्रा से संभोग करे तो उससे पारशव की उत्पत्ति होती है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

औरसं पुत्रिकापुत्रं क्षेत्रजं दत्तकृत्रिमौ।
गूढजं चाऽपविद्धं च रिक्थभाजः प्रचक्षते।। ३१।।

अनु०—इस प्रसंग में प्रमाण मिलता है-औरस, पुत्रिकापुत्र, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ज, अपविद्ध ये सब उत्तराधिकार के योग्य होते हैं।

कानीनं च सहोढं क्रीतं पौनर्भवं तथा।
स्वयंदत्तं निषादं च गोत्रभाजः प्रचक्षते।। ३२।।

औरसादयः गोत्रभाजश्च रिक्थभाजश्च। रिक्थं द्रव्यम्। कानीनादयश्च तत् गोत्रभाजः। पारशवः अभाग एव विष्ठावत्। अस्मात्सूत्रादिदमप्यवगम्यते—निषादकन्याऽपि सुसमीक्ष्याऽसगोत्रादेव वोढव्या। अन्यथा सगोत्रागमनप्रसङ्गादिति। एते पुत्रिकापुत्रादयः काशकुशस्थानीयाः पुत्रप्रतिनिधयो मन्तव्याः। अश्वयकरणीयत्वात् पुत्रोत्पत्तेः। उक्तंच 'पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः' इति। योषिताऽपि पुत्रवत्या भवितव्यम्। 'अवीरायाश्च योषितः'

इत्यभोज्यान्नप्रकरणे दर्शनात्।।३१-३२।।

अनुं०–कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त, एवं निषाद पुत्र गोत्र पाने के अधिकारी होते हैं।

तेषां प्रथम एवेत्याहौपजङ्घनिः।।३३।।

औपजङ्घनिराचार्यो मन्यते स्म। प्रथमः ओरस एव पुत्रो न पुत्रिकापुत्रादय इति।।३३।।

अनु०–इनमें से केवल औरस पुत्र ही धन के योग्य होते हैं। ऐसा औपजंघनि नामक आचार्य का मानना है।

इदानीमहमीर्ष्यामि स्त्रीणां जनक नो पुरा।
यतो यमस्य सदने जनयितुः पुत्रमब्रुवन्।।३४।।

यमः कृतयुगे मन्दिरे ऋषीनाहूय पप्रच्छ-परदारेषूत्पादितः पुत्रः किं जनयितुरिति? उताहो क्षेत्रिण इति। एवं पृष्टे ते प्रजा जनयितुरेवेति निश्चित्य अब्रुवन्। तदिदमाह-पुरा यमस्य सदने जनयितुः पुत्रमब्रुवन्। इदानीमहमित्यादि। सम्प्रति अहमीर्ष्यामीति न सहे। स्त्रीणामिति। द्वितीयार्थे षष्ठी। अथवा स्वार्थ एव। स्त्रीणां चरन्तं पुरुषं नेर्ष्यामीत्यर्थः। हे जनक ! पुरा यस्माद्यमस्य धर्मराजस्य सदने वेश्मनि जनयितुरेव पुत्रमब्रुवन्नृषयो, न क्षेत्रिण इति। न हि यमराजसकाशे निश्चितोऽर्थो मिथ्या भवितुमर्हतीत्यौपजङ्घनेः मुनेर्मतम्।।३४।।

अनु०–जनक! अब मैं अपनी पत्नियों के बीच बढ़ती हुई ईर्ष्या से अधिक सजग हूं। कारण मृत्यु के बाद पुत्र उसी का होता है, जो उसे पैदा करता है। ऐसा यम के सदन में कहा जाता है।

रेतोधाः पुत्रं नयति परेत्य यमसदने।
तस्माद्भार्यां रक्षन्ति विभ्यन्तः पररेतसः।।३५।।

रेतो दधातीति रेतोधाः बीजं पुत्रं प्रकृतं नयति भुङ्क्ते पुत्रफलं लभते परेत्य मृत्वा यमसदने पुण्यपापफलोपभोगस्थाने। नैवं क्षेत्री। यस्मादेवं तस्मात्पररेतसो विभ्यन्तो भार्यां रक्षन्ति।।३५।।

अनु०–वीर्य का सेचन करने वाला मृत्यु के पश्चात् बेटे को यम के पास ले जाता है। अतः लोग अपनी पत्नियों की रक्षा करते हैं। ताकि कोई दूसरा उनकी पत्नियों में अपने वीर्य का सेचन न कर दे।

अप्रमत्ता रक्षथ तन्तुमेतं मा वः क्षेत्रे परवीजानि वप्सुः। जनयितुः पुत्रो भवति साम्पराये मोघं वेत्ता कुरुते तन्तुमेतमिति।।३६।।

अन्ये बीजवपनं मा कार्षुः। तत्र को दोषः? जनयितुः पुत्रो भवति साम्पराय परलोकेऽपि यदनेन पिण्डोदकदानादि जनयितुरेव भवेत्, न क्षेत्रिण इति। ननु। भार्यायाः पुत्रस्य च रक्षणपोषणचिकित्सादि सर्वं क्षेत्रिणैव क्रियते, तत्कथमस्मिन् पक्षे इति? उच्यते-मोघं वेत्ता कुरुते तन्तुमेतमिति। वेत्ता लब्धा क्षेत्रस्य कुरुते यतं तन्तुं मोघं कुरुते निष्फलोऽस्य प्रयासः इत्यभिप्रायः। इतिशब्द औपजङ्घनेर्मतोपसंहारार्थः।। ३६।।

अनु०—अतः चौंकन्ना रहते हुए अपने संतान की रक्षा करनी चाहिए। ऐसा न हो कि कहीं दूसरा व्यक्ति तुम्हारे खेत में (स्त्री में) अपने वीज (वीर्य) डाल दे। मृत्यु होते ही पुत्र उसी का हो जाता है, जो उसे पैदा करता है। और पति सन्तान की उत्पत्ति को निरर्थक बना देता है।

तेषामप्राप्तव्यवहाराणामंशान् सोपचयान् सुनिगुप्तान्निदध्युराव्यवहार-प्रापणात्।। ३७।।

अप्राप्तव्यवहाराश्च बाला आ षोडशाद्वर्षात्। तथा हि—

गर्भस्थैस्सदृशो ज्ञेय आऽष्टमाद्वत्सराच्छिशुः।
वाल आ षोडशाज्ज्ञेयः पौगण्डश्चेति शब्यते।।

तेषां पुत्राणां मध्ये बालानामंशान् सोपचयान् गुप्तान्निदध्युः। उपचयो नैयायिकी वृद्धिः। तथा बालानां द्रव्यं वर्धयेत्। उपचीयमानांश्चांशान्वा सुगुप्तान् रक्षितान् अव्यवहारप्रापणान्निदध्युः।। ३७।।

अनु०—यदि पुत्र नावालिग हो तो उसके दायभाग की एवं उससे होने वाले समृद्धि अंश की रखवाली सावधानी से तब तक करे, जब तक वह बालिग न हो जाए।

अतीतव्यवहारान् ग्रासाच्छादनैर्बिभृयुः।। ३८।।

अनु०—जो सम्पत्ति सम्बन्धी व्यवहार करने में सक्षम न हो, उनका भोजन, वस्त्र आदि से पालन-पोषण करे।

अन्धजडक्लीवव्यसनिव्याधितादींश्च।। ३६।।

अनु०—अंधा, मंदबुद्धि, नपुंसक, व्यसनी, सगे पुत्रों को उपर्युक्त ढंग से पालें-पोसें।

अकर्मिणः।। ४०।।

अनु०—जो काम करने योग्य न हो, उन्हें वस्त्र, भोजन से पाले, पोसे।

पतिततज्जातवर्जम्।। ४१।।

विभृयादित्यनुवर्तते। अन्धः प्रसिद्धः। अकिञ्चित्करो जडः। क्लीबः पण्ढन्नामा तृतीया प्रकृतिः। व्यसनी द्यूतादिषु प्रसक्तमनाः। अचिकित्स्यरोगी व्याधितः। आदिग्रहणात्परत्र पङ्गुकुब्जादयो गृह्यन्ते। अकर्मिणस्समर्था अपि सन्तो निरुत्साहाः। पतितस्तत्सुतश्च पतिततज्जातौ। तथा च वसिष्ठः-'पतितोत्पन्नः पतितो भवतीत्याहुरन्यन्न स्त्रियाः' इति।। ३८-४१।।

अनु०—परन्तु पतित और उनके सन्तानों का पालन-पोषण करना निषिद्ध है।

न पतितैस्संव्यवहारो विद्यते।। ४२।।

औरसैरप्राप्तव्यवहारैरपि। भरणन्तु। तेषां कर्तव्यमित्युक्तम्।। ४२।।

अनु०—पतित के संग कोई व्यवहार न रखे।

पतितामपि तु मातरं विभृयादनभिभाषमाणः।। ४३।।

यद्यपि माता भाषेत च। तथा च गौतमः-'न कर्हिचिन्तापित्रोरवृत्तिः' इति। अवृत्तिरशुश्रूषा अरक्षणं वा।। ४३।।

अनु०—मां पतिता हो तो भी उसका भरण-पोषण करे। पर उससे वार्तालाप करना मना है।

मातुरलङ्कारं दुहितरस्साम्प्रदायिकं लभेरन्नन्यद्वा।। ४४।।

साम्प्रदायिकमित्यलङ्कारविशेषः। सम्प्रदायागतो लब्धस्साम्प्रदायिकः मातामहेन मातामह्या वा स्वमात्रे यद्दत्तं तत्साम्प्रदायिकं अन्यत् असाम्प्रदायिकं खट्वादिशयनप्रावरणादिकमात्मनः। एतावदेव दुहितरो लभेत् नाऽन्यत्।। ४४।।

अनु०—माता के आभूषण पुत्रियों को दाय भाग में मिले। इसके साथ ही परम्परा या उपहार में प्राप्त धन में से पुत्रियों को हिस्सा देने का विधान है।

न स्त्री स्वातन्त्र्यं विदन्ते।। ४५।।

दायलब्धे तु तस्याः स्वातन्त्र्यं भवेत् कृतकृत्यताभिमानेनेत्यभिप्रायः।।४५।।

अनु०—स्त्रियों को स्वतन्त्रता न दे।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हतीति[1]।। ४६।।

तस्यां तस्यामवस्थायामरक्षतामेतेषां दोषः।। ४६।।

---

१. मनु. ९/३

अनु०–इस प्रसंग में यह पद्य मिलता है-

कुमारावस्था में पिता पुत्री की रक्षा करे। युवा होने पर पति उसकी रक्षा करता है। पुत्र वृद्धावस्था में उसकी रक्षा करते हैं। स्त्री को स्वतन्त्रता से जीवित रहने का अधिकार नहीं होता।

निरिन्द्रिया ह्यदायाश्च स्त्रियो मता इति श्रुतिः।।४७।।

'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हती' त्यनेन सिद्धो दायप्रतिषेधः पुनरनूद्यते निन्दाशेषतया। निरिन्द्रियाः निर्गतरसाः। तदेतदवश्यागन्तव्यानृततताप्रदर्शनार्थम्। आह च–

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्यताम्।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयदिति।।४७।।

अनु०–वेद में कहा गया है-स्त्रियां अवला होती हैं। उन्हें संपत्ति पाने का अधिकार नहीं होता है।

भर्तृहिते यतमानास्स्वर्गं लोकं जयेरन्।।४८।।

भर्तृहिते स्नापनप्रसाधनमर्दनादिभिर्भर्तारं नातिक्रमेदिति यावत्। अत्रैव प्रसङ्गात् प्रायश्चित्तमाह–

अनु०–जो स्त्रियां पति की सुख-समृद्धि के लिए प्रयास करती हैं, कामना करती हैं, उन्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।

व्यतिक्रमे तु कृच्छ्रः।।४६।।

व्यतिक्रमः परपुरुषनिमित्तो मानसेन वाचिकेन व्यापारः। समानजातीय-विषयमेतद्बुद्धिपूर्वं च।।४६।।

अनु०–यदि कोई स्त्री अपने पति के सुख में व्यतिक्रम पैदा कर दे, तो उसे कृच्छ्रव्रत करना पड़ता है।

शूद्रे चान्द्रायणं चरेत्।।५०।।

यदा पुनः स्वभर्तृबुद्ध्या मैथुनाय सङ्कल्पयते सम्भाषते वा असमानजातीयेन शूद्रेण तदा चान्द्रायणम्। शूद्र व्यवायस्य कर्तरि सति द्विजातिस्त्री चान्द्रायणं चरेत् कुर्यात्। अप्रजायामेतत्। कुतः?

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रियश्शूद्रेण सङ्गताः।
अप्रजास्ता विशुद्ध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः।।
इति वसिष्ठः।।५०।।

अनु०–शूद्र के संयोग से यदि पत्नी पति की सेवा में कमी रहने दे तो उसे

चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

वैश्यादिषु प्रतिलोमं कृच्छ्रातिकृच्छ्रादींश्चरेत्।।५१।।

वैश्ये क्षत्रिये च व्यवायस्य कर्तरि सतीत्यर्थः। वहुवचनं ब्राह्मण्याः द्वौ कर्तारौ क्षत्रियायाः एक इति त्रयः। प्रतिलोमं व्युत्क्रमेणेत्यर्थः। आदिशब्दात् प्राग्द्वौ गृहीतौ। कृच्छ्रातिकृच्छ्रः। अतः कृच्छ्रप्रक्रमा एते त्रयः अस्मिन् क्रमेणैवं प्रातिलोम्यं वैश्यसम्बन्धे ब्राह्मण्याः कृच्छ्रातिकृच्छ्रः। अस्या एव क्षत्रियसम्बन्धे सत्यतिकृच्छ्रः। क्षत्रियायास्तु वैश्यसंसर्गे कृच्छ्र इति। अमतिपूर्वे तु वसिष्ठ आह—

'प्रतिलोमं चरेयुस्ताः कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम्' अत्र प्रातिलोम्यं प्रथमं भोजनं ततः त्र्यहमयाचितमित्यादि। 'चान्द्रायणे वा चान्द्रायणानि' इति गुरुलघुभावे वर्णविशेषे अभ्यासविशेषे चेति व्याख्यातं यज्ञस्वामिभिः।।५१।।

अनु०—वैश्य आदि के संयोग से वर्ण के प्रतिलोम क्रम के अनुसार नियम की अवहेलना हो जाए तो स्त्री को कृच्छ्र अथवा अतिकृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करना पड़ता है।

पुंसां ब्राह्मणादीनां संवत्सरं ब्रह्मचर्यम्।।५२।।

संवत्सरं प्राजापत्यमिहाभिप्रेतम्। अत्र पारदारश्च सवर्णविषयः। मतिपूर्वे चैतत्। अमतिपूर्वे तु वसिष्ठः-'ब्राह्मणश्चेदप्रेक्षापूर्वं ब्राह्मणदारनभिगच्छेदनिवृत्तधर्मकर्मणः कृच्छ्रो निवृत्तधर्मकर्मणोऽतिकृच्छ्रः। एवं राजन्यवैश्ययोः' इति। अनिवृत्तधर्मकर्मादिनिवृत्तिहीनतद्भार्यागमने कृच्छ्रः। निवृत्तधर्मकर्मा वृत्तवान्। तद्भार्यागमनेऽतिकृच्छ्रः। 'अनिवृत्तधर्मकर्मा तद्भार्यायामतिकृच्छ्रः' इति व्याख्यातम्।।५२।।

अनु०—ब्राह्मण आदि के लिए एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करे।

शूद्रं कटाग्निना दहेत्।।५३।।

राज्ञोऽयमुपदेशः। मरणान्तिकं चैतत्। कटः कटप्रकृतिद्रव्यं वीरणानि। उक्तं च—'शूद्रश्चेद् बाह्मणीमभिगच्छेत् वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत्' इति।।५३।।

अनु०—यदि शूद्र ब्राह्मण आदि की स्त्री से अनैतिक संबंध रखे, तो उसे घास में जला देना चाहिए।

अब्राह्मणस्य शारीरो दण्डः।।५४।।

अनु०—ब्राह्मण आदि को छोड़ अन्य वर्ण की स्त्री से वह व्यभिचार करे तो उसे शारीरिक दण्ड देकर छोड़ दिया जाए।

(खण्ड-तीन सम्पूर्ण)

खण्ड-चार

अब्राह्मणस्य शारीरो दण्डस्संग्रहणे भवेत्।।१।।

अब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यश्च। तयोश्शारीरो दण्डः अग्नौ प्रक्षेपः कर्तव्यः। क्व? संग्रहणे पारदार्ये। निगुप्तब्राह्मणीगमने मतिपूर्वे वैश्यो लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वाऽग्नौ प्रक्षेप्तव्यः। राजन्यश्शरपत्रैरिति।।१।।

अनु०—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यदि ब्राह्मणी से शारीरिक संबंध बनाए तो उसे शारीरिक दण्ड दे।

सर्वेषामेव वर्णानां दारा रक्ष्यतमा धनात्।।२।।

अपीति शेषः।।२।।

अनु०—सभी वर्ण वाले पुरुषों को चाहिए कि वे अपनी स्त्रियों की धन से भी अधिक सावधानी से उनकी सुरक्षा करें।

न तु चारणदारेषु न रङ्गावतारे वधः।
संसर्जयन्ति ता ह्येतान्निगुप्तांश्चालयन्त्यपि।।३।।

चारणदाराः देवदास्यः। रङ्गावतारः पण्यस्त्रियः। तासु सङ्ग्रहणे वधो न कर्तव्यः। येन तास्संसर्जयन्ति सम्बन्धयन्ति आत्मना निगुप्ताम् रक्षितानपि पुंसो द्रव्यलिप्सया। तानेव क्षीणद्रव्यांश्चालयन्ति उत्सृजन्ति च। एवंस्वभावत्वादासां तद्गमने प्रायश्चित्तमप्यल्पमेव। 'पशुं वेश्यां च यो गच्छेत्प्राजापत्येन शुद्ध्यति' इति। तथाऽन्यत्राऽपि—
जात्युक्तं पारदार्यं च गुरुतल्पत्वमेव च।
चारणादिस्त्रीषु नाऽस्ति कन्यादूषणमेव चेति।।३।।

अनु०—मगर चारणों की स्त्रियां और नृत्य-नाटक, अभिनय करने वाली नृत्यांगनाओं से सहवास करने पर वध का दण्ड न दे। क्योंकि ऐसी स्त्रियों के पति ही उनका परिचय (संबंध) दूसरे लोगों से कराते हैं। या अपने घर में ही दूसरे लोगों से धन लेकर अपनी पत्नी का संबंध दूसरे से करा देते हैं।

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्।
मासि मासि रजो ह्यासां दुरितान्यपकर्षति।।४।।

परपुरुषसंसर्गविषयाणि मानसानि वाचिकानि च दुरितानि पापानि। न पुनर्हिंसादिनिमित्तान्यपकर्षति।।४।।

अनु०—स्त्रियों की पवित्रता वेजोड़ होती है। उन्हें कोई शारीरिक संबंध से अपवित्र नहीं कर सकता। क्योंकि उनका हर महीने आने वाला मासिक धर्म उनके

दोषों को नष्ट कर शरीर से बाहर कर देता है।

सोमश्शौचं ददत्तासां गन्धर्वश्शिक्षितां गिरम्।
अग्निश्च सर्वभक्ष्यत्वं तस्मान्निष्कल्मषाः स्त्रियः।।५।।

तासां स्त्रीणां सोमश्शौचं दत्तवान्। यत एव देवता ताभ्यो वरं ददौ तस्मात्ताभिर्यदशौचं क्रियते तद्भर्त्रा नैवाऽवेक्षणीयम्। देवताप्रसादप्रसङ्गादिदमन्यदुच्यते-गन्धर्वश्शिक्षितां गिरं भाषणप्रकारम्। अनोऽनुचितभाषणेऽपि तासु क्षान्तेन भवितव्यम्। तथा चोक्तं पात्रलक्षणे 'स्त्रीषु क्षान्तम्' इति। अग्निश्च सर्वभक्ष्यत्वं सर्वैर्भोग्यत्वं दत्तवान्, यत एवं देवताभ्यो लब्धवराः स्त्रियाः तस्मात् निष्कल्मषाः विगतकल्मषाः काञ्चनसमाः, अपराधेष्वपि न त्याज्या इत्यभिप्रायः।।५।।

अनु०–स्त्रियों को पवित्रता सोम ने दी। मधुर और मोहिनी बोलने का तरीका गन्धर्वों ने उन्हें दिया। अग्नि ने स्त्रियों को सबके उपभोग्य बनाया। इसलिए स्त्रियां विकारों से मुक्त होती हैं।

अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत्।
मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम्।।६।।

अधिवेदनमत्र विवक्षितम्। न त्यागः। तदपि सति सम्भवे। धर्माधिकारः पुनरस्त्येव। अप्रियवादिन्यास्तु विपन्ने (?)। तस्या अपि ग्रासाच्छादनं देयम्।।६।।

अनु०–पुरुष दसवें काल में अपनी वन्ध्या स्त्री को छोड़ सकता है। जिस स्त्री से सिर्फ कन्याएं ही उत्पन्न होती हैं, उसे पति बारहवें साल में त्याग सकता है। जिस स्त्री के बच्चे पैदा होते ही मृत्यु के मुख में चले जाएं, उस स्त्री को पन्द्रहवें साल में छोड़े। परन्तु वाद-विवाद, लड़ाई-झगड़ा करने वाली पत्नी को यथाशीघ्र छोड़ दे।

संवत्सरं प्रेतपत्नी मधुमांसमद्यलवणानि वर्जयेदधश्शयीत।।७।।

मृतः पतिर्यस्याः तस्याः अयं सांवत्सरिको नियमः। अत्यन्तं ताम्बूलमपि। तद्ग्रहणमेव ब्रह्मचर्यस्याऽपि ग्रहणम्। तच्च यावज्जीविकम्।।७।।

अनु०–पति का निधन हो जाए तो उसकी विधवा पत्नी के लिए मधु, मांस, मदिरा और नमक का साल भर सेवन निषिद्ध है। वह भूमि पर ही सोए।

षण्मासानिति मौद्गल्यः।।८।।

अशक्तावनुग्रहोऽयम्। अन्यथा पितृमेधकल्पोक्तेन 'यावज्जीवं प्रेतपत्नी' इत्यनेन विरोधस्स्यात्।।८।।

अनु०—मौद्गल्य का कथन है कि विधवा के लिए यह विधान सिर्फ छह महीनें के लिए है।

अत ऊर्ध्वं गुरुभिरनुमता देवराज्जनयेत् पुत्रमपुत्रा।। ९।।

अत ऊर्ध्वं संवत्सरात् षड्भ्यो मासेभ्यः गुरुभिश्श्वशुरप्रभृतिभिः अनुमता, तत्सुतेषु। देवरो द्वितीयो वरः स पत्युर्भ्राता। तस्मात्पुत्रमेकं जनयेत् तावतैव सपुत्रवत् सिद्धेः, विवक्षितत्वाच्चैकवचनस्य।। ९।।

अनु०—यदि विधवा अपुत्र हो तो वह इस काल के बाद गुरुओं की सहमति से नियोग कर सकती है वह भी देवर से।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

वशा चोत्पन्नपुत्रा च नीरजस्का गतप्रजा।
नाऽकामा सन्नियोज्या स्यात् फलं यस्यां न विद्यत इति।। १०।।

या पुरुषसम्बन्धं नेच्छति। यस्यामुपगमनफलं न विद्यते गर्भस्य स्रवणात्।। १०।।

अनु०—विधवा, वन्ध्या, पुत्रवती, जिसका गर्भ न ठहरता हो, जिसके बच्चे मर गए हो, जो पुत्र पैदा करने की अनिच्छुक हो, जिससे सम्पर्क का कोई फल न निकलता हो उससे नियोग न करे।

मातुलपितृष्वसा भगिनी भागिनेयी स्नुषा मातुलानी सखिवधू-रित्यगम्याः।। ११।।

स्वसृशब्दो मातुलपितृशब्दाभ्यां प्रत्येकं सम्बध्यते। भगिनी सोदरी। स्नुषा पुत्रस्य भार्या। मातुलानी मातुलस्य पत्नी। सखीवधूः सख्युश्च भार्या।। ११।।

अनु०—मामा की बहन, पिता की बहन और स्वयं की बहन, बहन की पुत्री, पुत्रवधू, भाभी और मित्र की पत्नी से नियोग सर्वदा वर्जित है।

अगम्यानां गमने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति प्रायश्चित्तिः।। १२।।

अमतिपूर्वं गमन एतद् द्रष्टव्यम्। ये पुनर्मातुलस्य दुहितरं पितृष्वसुश्च मन्त्रेण संस्कृत्य बन्धुसमक्षं तस्यामेव पुत्रानुत्पादयन्ति चरन्ति च धर्मं तया सह, तेषां निष्कृतिं देवाः प्रष्टव्याः।। १२।।

अनु०—यदि कोई उपर्युक्त स्त्रियों से यौन संबंध बनाए तो उसे कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और चान्द्रायंण व्रत करना जरूरी है।

एतेन चण्डालीव्यवायो व्याख्यातः।। १३।।

व्यवायो गमनम्। एतदप्यबुद्धिपूर्वविषयम्।। १३।।

अनु०—इस नियम से स्पष्ट है कि चण्डाली से यौन सम्बंध करने पर उपर्युक्त प्रायश्चित्त करें।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

चण्डालीं ब्राह्मणो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च।
अज्ञानात् पतितो विप्रो ज्ञानात्तु समतां व्रजेत्[1]।।१४।।

समशब्दात् प्रायश्चित्ताभावमाह। समस्तानां निमित्तता, न व्यस्तानाम्, 'अभिषुत्य हुत्वा भक्षयेथा' इतिवत्।।१४।।

अनु०—यदि कोई अनजाने में चण्डाली से शारीरिक संबंध बना ले, चण्डाल के हाथ से दिया गया भोजन ग्रहण कर ले, या उसके द्वारा कोई वस्तु दी जाए उसे ले लो तो ब्राह्मण अपने वर्ण से च्युत हो जाता है और पतित हो जाता है। यदि वह ये सारे काम जानने पर भी करता है तो भी उसे चण्डाल ही मानना चाहिए।

पितुर्गुरोर्नरेन्द्रस्य भार्यां गत्वा प्रमादतः।
गुरुतल्पी भवेत्तेन पूर्वोक्तस्तस्य निश्चय इति।।१५।।

गुरुः गुरुस्थानीयोऽभिप्रेतः। नरेन्द्रोऽभिषिक्तः। पूर्वोक्त इति अनन्तराभिहितं प्रायश्चित्तमाहः तच्च कृच्छ्रादित्रयम्।।१५।।

अनु०—गुरुतल्पगामी वह होता है जो पिता, गुरु तथा राजा की पत्नी से संभोग करे। उसके लिए प्रायश्चित्त पहले बताया जा चुका है।

अध्यापनयाजनप्रतिग्रहैरशक्तः क्षत्रधर्मेण जीवेत् प्रत्यनन्तरत्वात्।।१६।।

अशक्तिः नित्यकर्मावसादो भृत्यावसादो वा। अध्यापनादिष्वेकेनैव जीवनाशक्तौ द्वितीयं तृतीयं चाऽधितिष्ठेत्। तत्राऽपि लघूपायासम्भवे गुरूपाय आस्थेयः। कुत एतत्?

यात्रामात्र प्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम्।।

इति स्मरणात्। क्षत्रधर्मः शस्त्रधारणम्। प्रत्यनन्तरत्वात्? प्रतिशब्दोऽत्यन्तानन्तर्ये वर्तते। क्षत्रधर्मो हि वैश्यधर्मादनन्तरो ब्राह्मणस्य। अनेनैतद्दर्शयति-क्षत्रधर्मासम्भवे वैश्यधर्मेणोपजीवेदिति। सोऽपि प्रत्यनन्तर एव शूद्रधर्मव्यपेक्षया। "अध्यापनयाजन-प्रतिग्रहास्सर्वेषाम्। पूर्वः पूर्वो गुरुः। तदलाभे क्षत्रियवृत्तिः तदलाभे वैश्यवृत्तिरि' ति।।१६।।

अनु०—यदि ब्राह्मण की जीविका अध्यापन करने, पुरोहिताई करने और दान लेने से भी न चले तो उसे क्षत्रिय वर्ण की आजीविका अपना लेनी चाहिए। क्योंकि

---

१. मनु. ११/१७५

क्षत्रिय धर्म ब्राह्मण धर्म के निकट होता है।

नेति गौतमोऽत्युग्रो हि क्षत्रधर्मो ब्राह्मणस्य।।१७।।

न क्षत्रधर्मो ब्राह्मणेनाऽऽस्थेय इति गौतम आचार्यो मन्यते स्म। प्रसिद्धगौतमीये 'तदलाभे क्षत्रियवृत्तिः' इति वचनात् अन्यद्गौतमशास्त्रमस्तीति कल्प्यते। तथा 'आहिताग्निश्चेत् प्रवसन् म्रियेत पुनस्संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः' इति वासिष्ठे। अत्युग्रः अतितीक्ष्णः संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च, न दोषो हिंसायामाहवे' इत्येवंलक्षणो ह्यसौ।।१७।।

अनु०–गौतम का इससे मतभेद है। वह कहते हैं कि ब्राह्मण की अपेक्षा क्षत्रिय धर्म कठिन होता है। अतः ब्राह्मण क्षत्रिय धर्म को न अपनाए।

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वाऽपि सङ्करे।
गृह्णीयातां विप्रविशौ शस्त्रं धर्मव्यपेक्षया।।१८।।

अर्थशब्दश्चाऽत्र रक्षणप्रयोजनवचनः। वर्णानां सङ्करः अनर्हस्त्रीपुंसलक्षणः। शस्त्रग्रहणे हेतुः धर्मव्यपेक्षयेति। धर्मबुद्ध्येति यावत्।।१८।।

अनु०–ब्राह्मण और वैश्य गाय की रक्षा के लिए ब्राह्मण या वर्णों की यथा स्थिति और धर्म की रचना के निमित्त अस्त्र-शस्त्र धारण कर सकता है।

वैश्यवृत्तिरनुष्ठेया प्रत्यनन्तरत्वात्।।१९।।

न हीनवर्णेनोत्कृष्टवृत्तिरास्थेया 'न तु कदाचिज्ज्यायसीम्' इति वासिष्ठेनिषेधात्। तत्र कृषिवाणिज्यलक्षणादिः वैश्यवृत्तिः। तत्र वाणिज्यविशेषो विहितः-'तृणकाष्ठमविकृतं विक्रेयम्' इत्येवमादिना।।१९।।

अनु०–या ब्राह्मण वैश्य का धर्म अपना सकता है। क्योंकि क्षत्रिय धर्म के बाद उसी का क्रम है।

प्राक्प्रातराशात् कर्षी स्यात्।।२०।।

प्रातराशो दिवाभोजनम्, तेन च मध्याह्नो लक्ष्यते। अष्टधाकृतस्य वासरस्य पञ्चमो भाग इत्यर्थः। तत्र हि भोजनं विहितम्, 'पञ्चमे भोजनं भवेत्' इति दक्षवचनात्। अस्मात् कालात् प्रागेवाऽनडुद्भ्यां विकृष्याऽक्लिष्टौ तौ विसृजेत्।।२०।।

अनु०–ब्राह्मण को खेती का कर्म करना ही पड़े, तो वह सुबह जलपान करने से पूर्व ही खेतों में जाकर हल चलाए।

अस्यूतनासिकाभ्यां समुष्काभ्यामतुदन्नारया मुहुर्मुहुरभ्युच्छन्दयन्।।२१।।

अविद्धघोणाभ्यामित्यर्थः। समुष्काभ्यां साण्डाभ्यां अनुत्कृत्ताण्डाभ्यामित्यर्थः।

अण्डोत्कर्तनेन हि बीजशक्तिः क्षीयते। अतुदन्नारया आरा नाम सलोहको दण्डः। तया तावनडुहौ अतुदन् तयोर्व्यथामकुर्वन्। अभ्युच्छन्दनं लोहफालायोयोक्त्रलग्नायाश्च मृदोऽपनयनम्, प्रियभाषणं कण्डूयनादिना लालनं च, तन्मुहुर्मुहुः कुर्वन् विलिखेत् भूमिमिति शेषः।।२१।।

अनु०—कृषि कार्य अपनाने वाले ब्राह्मण के लिए कहा गया है कि वह हल में ऐसे बैलों को जोते जो बिना नाक छिदे और बधिया न हों। ऐसे बैलों को प्यार से दुलारते हुए मीठे शब्द बोले और खेत जोते।

भार्यादिरग्निस्तस्मिन् कर्मकरणं प्रागग्न्याधेयात्।।२२।।

गोतमीयमतेन दायादिपक्षोऽप्यस्ति। आचार्यस्य पुनर्भार्यादिरेवाऽग्निरित्यभिप्रायः। कर्म गार्ह्यं यदग्न्याधेयात् पूर्वं तस्मिन् गृह्याणि कर्माणि क्रियन्त इति। गृह्योक्तानां कर्मणां पुनरनुवादोऽग्निहोत्रादितुल्ययोगक्षेमप्राप्तिहेतुत्वज्ञापनार्थः। अग्न्याधेयात्पूर्वं गार्ह्याणां शूलगवादीनामनुष्ठानम्।।२२।।

अनु०—भार्याग्रहण (विवाह) के साथ ही अग्नि का आधान होता है। अग्न्याधेय तक की समस्त क्रियाएं उसी में सम्पन्न करने का विधान है।

अग्न्याधेयप्रभृत्यथेमान्यजस्राणि भवन्ति यथैतदग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावाग्रयणमुदगयनदक्षिणायनयोः पशुः चातुर्मास्यानि ऋतुमुखे षड्ढोता वसन्ते ज्योतिष्टोम इत्येवं क्षेमप्रापणम्।।२३।।

एतानि हि प्रसिद्धानि कर्माणि, पूर्वोक्तानि गार्ह्याणि। अजस्राणि नित्यानि, आगते काले कर्तव्यानि। अग्न्याधेयग्रहणं दृष्टान्तार्थम्। एषां पाठे दृश्यत एव। क्षेमप्रापणं मोक्षः एवं नित्यकर्मनिरतः प्रतिषिद्धकाम्यकर्मवर्जी गृहस्थोऽपि विमुच्यंत इत्यभिप्रायः।

नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायजिघांसया।
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः।। इति।।२३।।

अनु०—अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, उदगायन, दक्षिणायन, पशुसम्बंधी यज्ञ, ऋतु के प्रारम्भ मे होने वाले चातुर्मास्य यज्ञ वसंत में होने वाला षड्ढोता और ज्यातिष्टोम क्रियाएं अग्न्याधेय के बाद निरन्तर होती रहती हैं। इनसे सबकी समृद्धि होती है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

न दिवास्वप्नशीलेन न च सर्वान्नभोजिना।
कामं शक्यं नभो गन्तुमारूढपतितेन वा।।२४।।

न शक्यं गन्तुमिति सम्बन्धः। दिवास्वप्नशीलेनेति शब्देन विहिताकरणस्वभावो लक्ष्यते। स्वप्नो निद्रा मनोवृत्तिविशेषः। 'अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा' इत्यागमः।

हिताहितप्राप्तिपरिहारोपायभूतशुभाशुभकर्मानुष्ठानवर्जनाकुलितचेतसो हि पुंसो नाऽस्ति निद्रावसरः। प्रसन्ने हि चेतसि निद्रा भवति। अलसो वा दिवास्वप्नशीलः। सर्वान्नभोजिशब्देनाऽपि प्रतिषिद्धसेवा कथ्यते, भोज्याभोज्यव्यवस्था यस्य नाऽस्तीत्यभिप्रायः। भुजिरत्र व्यापारमात्रोपलक्षणार्थः। आरूढपतितः तापसः परिव्राजको वा प्रत्यव्यवस्थितः। एतैर्नभस्स्वर्गं गन्तुं प्राप्तुमशक्यमित्यर्थः।। २४।।

अनु०–ऐसे आदमी को स्वर्ग की कभी भी प्राप्ति नहीं होती, जो दिन में सोता है। सव तरह का अनाज खा लेता है। किसी स्थान पर या व्रत करने मे जो विचलित हो जाता है।

दैन्यं शाठ्यं जैह्मेनयं च वर्जयेत्।। २५।।

आत्मनः क्षीणत्वप्रदर्शनेन याचिष्णुता दैन्यम्। शक्तौ सत्यामपि परोपकाराकरणं शाशठ्यं। जैह्मयं कौटिल्यम्। चशब्दादश्लीलादिकमपि।। २५।।

अनु०–दीन, हीन, शठ और कुटिल न बने।

अथाऽप्यत्रोशनसश्च वृषपर्वणश्च दुहित्रोस्संवादे गाथामुदाहरन्ति।। २६।।

उशनाः शुक्रः, तस्य दुहिता देवयानी वृषपर्वातु क्षत्रियः तस्य दुहिता शर्मिष्ठा। तयोस्संवादो विसंवादः गाथाश्लोकः।। २६।।

अनु०–इस प्रसंग में उशना और वृषपर्वा की बेटियों का कथानक प्रमाण के रूप में देते हैं।

स्तुवतो दुहिता त्वं वैयाचतः प्रतिगृह्णतः।
अथाऽहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः।।
ददतोऽप्रतिगृह्णतः इति।। २७।।

प्रतिशास्त्रं प्रभाषते तत्र पूर्वेणाऽर्धेन देवयान्याः पितुरुशनसो दीनस्वभावत्वं कथयति। उत्तरेण चाऽऽत्मनः पितुर्वृषपर्वणः ततो विपरीतस्वभावत्वम्।। २७।।

अनु०–तुम उसकी बेटी हो जो दूसरों की स्तुति, याचना कर रहा है, दान ले रहा है। मगर मैं ऐसे आदमी की बेटी हूं जिसकी आराधना होती है। जो गरीबों को दान देता है। पर किसी का दान नहीं लेता।

(अध्याय-दो, खण्ड-चार सम्पूर्ण)

अध्याय-तीन : खण्ड-पांच

तपस्यमवगाहनम्।। १।।

तपसे हितं तपस्यम्। अवगाहनं स्नानम्। तपस उपक्रमे कर्तव्यमित्यर्थः।। १।।

अनु०–तपस्या के निमित्त स्नान करे।

देवतास्तर्पयित्वा पितृतर्पणम्।। २।।

भवेदिति शेषः। ऋषितर्पणानन्तरं पितृतर्पणं किलाऽन्यत्रोच्यते। इह तु देवतर्पणादनन्तरम्, अत आनन्तर्ये विकल्पः। यद्वा-तपस्येऽवगाहने एव विशेषः।। २।।

अनु०–पितरों को जल देने से पहले देवताओं को जल से तृप्त करें।

अनुतीर्थमप उत्सिञ्चे 'दूर्जं वहन्ती' रिति।। ३।।

अनुतीर्थं तीर्थमनुकूलमित्यर्थः। एतस्मादेव गम्यते जले तर्पणमिति। अयं हि मन्त्रः स्नानविध्यनुवाके कृत्स्नशः पठ्यते। यद्वा-नदीतरणःनन्तरमेतदुत्सेचनं कर्तव्यम्।। ३।।

अनु०–'ऊर्जं वहन्ती' का पाठ और जैसे-जैसे तीर्थ हों, उन्हीं के अनुसार जल गिराए।

अथाऽप्युदाहरन्ति–

स्रवन्तीष्वनिरुद्धासु त्रयो वर्णा द्विजातयः।
प्रातरुत्थायाय कुर्वीरन् देवर्षिपितृतर्पणम्।। ४।।

स्रवन्तीष्वनिरुद्धास्विति नद्यां प्रातःस्नानं विधीयते न तटाकादिषु कुल्यासु वा।। ४।।

अनु०–इस सन्दर्भ में प्रमाण हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण वाले पुरुष सुबह उठें। और निरंतर गिरने वाली जल की धारा से देवता, ऋषि एवं पितरों को तृप्त करें।

निरुद्धासु न कुर्वीरन्नंशभाक्तत्र सेतुकृत्।। ५।।

निरुद्धासु यदि कुर्वीरन्निति शेषः। सेतुकृत् खननकृत्। तत्र सेतुकृत् स्नानतर्पणादिपुण्यफलांशभाग्भवति। पुण्यकर्ता च सेतुकृदेनोंशभाक्। आह च–

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन।
निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते।। इति।।
निपानं तटाक-कूपादि।। ५।।

अनु०–चारों ओर से रुके हुए पानी में स्नान, तर्पण करना मना है। यदि कोई ऐसी जगह तर्पण करता है, तो उसे उसका पुण्य न मिलकर तालाव या कुआं वनाने वाले को मिल जाता है।

तस्मात् परकृतान् सेतून कूपांश्च परिवर्जयेदिति।। ६।।

एतन्निर्वाहकं परकीयमतेनोपन्यस्यति—

अनु०—इसलिए दूसरों के बनवाए हुए तालाब, कूप में स्नान, तर्पण आदि क्रियाएं न करें।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

उद्धृत्य वाऽपि त्रीन् पिण्डान् कुर्यादापत्सु नो सदा।
निरुद्धासु तु मृत्पिण्डान् कूपात् त्रीनब्घटांस्तथेति।।७।।

सदा न कुर्यान्निरुद्धास्विति सम्बन्धः। अविशेषितेन पिण्डशब्देनाऽवकरादीनां पिण्डा गृह्यन्ते। आपत्सु स्रवन्तीनां अनिरुद्धानां चाऽभावे कूपे चेत् स्नानं समुपस्थितं तदा त्रीनपां पूर्णान् घटानुद्धृत्य स्नानम्।।७।।

अनु०—इसमें प्रमाण है— कुएं, तालाब आदि के घिरे पानी में स्नान करना पड़ जाए तो उसमें से तीन घड़ा जल निकाले। उससे स्नान, तर्पण पूरा करे। परंतु यह नियम हमेशा लागू नहीं होता है।

बहु प्रतिग्राह्यस्य प्रतिगृह्याऽप्रतिग्राह्यस्य वाऽयाज्यं वा याजयित्वाऽनाश्यान्नस्य वाऽन्नमशित्वा ततरत्समन्दीयं जपेदिति[1]।।८।।

काश्यपो वामदेवो वा ऋषिः। अप्स्विति शेषः। उत्तरं चतुर्ऋचं अप्रतिग्राह्यस्य पतितादेर्वा परिग्रहदुष्टम्, सुरादिर्वा स्वभावदुष्टम्। अयाज्यं गुरुतल्पगमनादिना याजनानर्हम्, अनाश्यान्नः अभोज्यान्नो लेखनादिनाऽशुद्धान्नः। एतच्च रहस्यप्रायश्चित्तम्। आह च गौतमः-रहस्यं प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ऋचं 'तरत्समन्दी' इत्यादि।।८।।

अनु०—जो कई व्यक्तियों को दान देने में समर्थ हो या ऐसा आदमी जिससे दान नहीं लेना चाहिए उसे दान लेने पर या जिसके लिए यज्ञ नहीं कराना चाहिए उसका यज्ञ कराने पर या जिसका भोजन अग्राह्य है, उसका अन्न ग्रहण कर ले, तो तरत्समन्दीय मन्त्रों का पाठ करना आवश्यक है।

गुरुसङ्करिणश्चैव शिष्यसङ्करिणश्च ये।
आहारमन्त्रसङ्कीर्णा दीर्घं तम उपासत इति।।९।।

गुरवो व्याख्याताः। प्रायश्चित्तीयतां प्राप्याऽकृतप्रायश्चित्तस्सद्भिः संसर्गं न व्रजेदिति। आह—

---

१. तरत्समन्दी धावति धारा सुतस्याऽन्धसः। तरत्समन्दी धावति।१।
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः। तरत्समन्दी धावति।२।
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे। तरत्समन्दी धावति।३।
आययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे। तरत्समन्दी धावति।। (ऋ. सं. ७.१/१५)

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा।
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः।। इति।। ६।।

अनु०—इसका प्रमाण है—जो मनुष्य पतित गुरु से व्यवहार रखता है और जो गुरु पतित शिष्य से धर्म के विरुद्ध व्यवहार रखता है, वे घोर नरक को प्राप्त होते हैं। पतित लोगों का भोजन न करे। उनके लिए मन्त्रों का पाठ करना भी वर्जित है। ऐसा करने पर वे घोर अंधेरे में चले जाते हैं।

अथ स्नातकव्रतानि।। १०।।

वक्ष्यन्त इति शेषः। एतान्यपि प्रजापतिव्रतानि स्नातकाध्यायोक्तावशिष्टानि।। १०।।

अनु०—अब स्नातक के व्रतों की चर्चा होगी।

सायं प्रातर्यदशनीयं स्यात्तेनाऽन्नेन वैश्वदेवं बलिमुपहृत्य ब्राह्मणक्षत्रियविट्छूद्रानभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेत्।। ११।।

यदशनीयमित्यनेनाऽहविष्यस्याऽपि ग्रहणं केचिदिच्छन्ति। तत्पुनर्युक्तायुक्ततया परामृश्यम्। वैश्वदेवं कृत्वा बलिं चोपहृत्येत्यध्याहारः। बलिहरणानन्तरं चाऽभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेत् भोजयेदित्यर्थः। तृणभूम्युदकादीनां पूर्वमेवोक्तत्वात्।।११।।

अनु०—स्नातक प्रातः सायं अपने भोजन में से एक अंश निकाले। उससे वैश्वदेव और बलि कर्म करे। तत्पश्चात् वह अतिथि का चाहे, वह किसी भी वर्ण का हो, उसका यथोचित सत्कार करे।

यदि बहूनां व शक्नुयादेकस्मै गुणवते दद्यात्।। १२।।

गुणवान् पुनः—
विद्यानुष्ठानसम्पन्नो यज्वा पण्डित एव।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथिस्स्वर्गसङ्क्रमः।। इति।। १२।।

अनु०—यदि अतिथि कई हों और भोजन का अभाव हो तो स्नातक गुणवान और सदाचारी को भोजन से सत्कृत करे।

यो वा प्रथममुपागतः स्यात्।। १३।।

आगतानां बहूनां मध्ये यः प्रथमं प्राप्तस्तं भोजयेदिति।। १३।।

अनु०—अथवा जो सर्वप्रथम आया हुआ अतिथि हो, उसे भोजन से कृतार्थ करे।

शूद्रश्चेदागतस्तं कर्मणि नियुञ्ज्यात्।। १४।।

ततस्तं भोजयेदिति शेषः। द्विजातीनां तु विद्यातपसी एव भोजयितुं पर्याप्ते।

शूद्रस्य त्वभ्यागतस्य तदसम्भवात्तत्स्थाने कर्मकरणम्। ततश्च निर्गुणे द्विजादावभ्यागते तमपि कर्मणि नियुञ्ज्यादित्युक्तं भवति। युक्तं चैतत्, वसिष्ठवचनात्-'अश्रोत्रिया अननुवाक्याः अनग्नयश्शूद्रसधर्माणो भवन्ति' इति। आचार्योऽपि वक्ष्यति-'कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत्' इति। कर्म च काष्ठभेदनमृत्तिकासान्द्रीकरणादि।। १४।।

अनु०–शूद्र अतिथि हो, तो उससे कोई कार्य करवाए फिर उसे भोजन दे।

श्रोत्रियाय वाऽग्रं दद्यात्।। १५।।

यदि बहूनां न शक्नुयात् इत्यनुवर्तते। तत्र ग्रासःशिख्यण्डप्रमाणाश्चत्वारो ग्रासा एकैकं भैक्षम्, तच्चतुर्गुणितं पुष्कलमित्युच्यते। ततुष्कलचतुष्ट्यं चाऽग्रम्।। १५।।

अनु०–यदि अनेक लोगों को भोजन देने की स्थिति में स्नातक आतिथेय असमर्थ हो तो एक श्रोत्रिय विद्वान को सोलह ग्रास का भोजन प्रदान करे।

ये नित्याभक्तिकास्स्युस्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहितः।। १६।।

आसमन्तात् भक्तं आभक्तम्, नित्यं आभक्तं येषां ते नित्याभक्तिकाः, नित्यमन्नं ये भजन्ते पुत्रदारभृत्यादयः। तेषामुपरोधः पीडा, तदभावोऽनुपरोधः। संविभागो दानम्। तदुपरोधे सति न कर्तव्यम्। आह च–

भृत्यानामुपरोधेन यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च।। इति।। १६।।

अनु०–जो प्रतिदिन भोजन करते हैं उनके भोजन में कटौती न करे। उनको भोजन कराए। बाद में जो भोजन बचे, उसे अतिथियों में बांटे।

न त्वेव कदाचिददत्वा भुञ्जीत।। १७।।

अदत्वा भोजने सति दोषगुरुत्वख्यापनार्थो निपातद्वयप्रयोगः।। १७।।

अनु०–बिना भोजन का अंश निकाले स्वयं भोजन करना वर्जित है।

अथाऽप्यत्राऽन्नगीतौ श्लोकावुदाहरन्ति-

यो मामदत्वा पितृदेवताभ्यो भृत्यातिथीनां च सुहृज्जनस्य। सम्पन्नमश्नन्विषमत्ति मोहात्तमद्म्यहं तस्य च मृत्युरस्मि।। हुताग्निहोत्रः कृतवैश्वदेवः पूज्यातिथीन् भृत्यजनावशिष्टम्। तुष्टश्शुचिश्श्रद्दधदत्ति यो मां तस्याऽमृतं स्यां स च मां भुनक्तीति।। १८।।

अन्नाभिमानिन्या देवतया गीतावतौ श्लोकौ निन्दास्तुतिरूपौ। अनयोः पूर्वो निन्दारूपः, उत्तरस्तुनिरूपः। पितृदेवताभ्योऽन्नदानं वैश्वदेवबलिहरणं पञ्चमहायज्ञे। अतिथीनां सुहृज्जनस्येति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। एतेभ्योऽन्नमदत्वा सम्पन्नं मृष्टं अत्ति, तमद्म्यहं तस्य च मृत्युरस्मि दारिद्र्यं व्याधिं चोत्पादयामीत्यर्थः। अग्निहोत्रशब्दस्सायम्प्रातः

कर्तव्यहोमोपलक्षणार्थः। तुष्टोऽतिथिभोजनेनाऽननुतापी। शुचिः पादप्रक्षालनादिना। श्रद्दधत् भक्ष्यभोजनादिनाऽतीव रुचिमान्। यद्वा श्रद्दधत् अतिथीन् पूजयेदिति सम्बन्धः। मां भुनक्ति अवति। अन्यथा 'भुजोऽनवने' इत्यात्मनेपदमेव स्यात्। यस्माद्यथाशक्ति दत्वैव भुञ्जीतेति श्लोकद्वयस्याऽर्थः[1]*।। १८।।*

अन्न देवता द्वारा निर्दिष्ट दो पद्य दर्शाए जाते हैं-

जो पितर, देवता, सेवक, अतिथि, मित्र और मुझे भोजन दिए बिना ही भोजन करता है, वह समझो जहर खाता है। मैं ऐसे व्यक्ति को अपना भोजन समझ कर ग्रहण कर लेता हूं। मैं उसका काल बन जाता हूं।

मगर अग्निहोत्री, वैश्वदेव पूजक अतिथि, पूज्य, विद्वान, सेवक आदि को भोजन करा के बचे हुए भोजन को जो प्रसन्नचित्त मन से एवं श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, मैं उसके लिए अमृत के समान हो जातां हूं। मैं उसे सुखी बना देता हूं।

सुब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यो गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो यथाशक्ति कार्यो बहिर्वेदिभिक्षमाणेषु।। १६।।

अस्मिन् सूत्रे चतुर्थ्यर्थे सप्तम्यौ द्रष्टव्यौ। यद्वा-निमित्तसंयोग एव चतुर्थ्यन्तः वेदपारगेभ्यः इत्यनुक्रम्य (?) द्रष्टव्यः। एवं च तेभ्य एव दानमित्युक्तं भवति। सुब्राह्मणः आचारसम्पन्नः ग्रन्थमात्रप्रयोजनो वा। श्रोत्रियस्तदनुष्ठानपरः। वेदस्य पारं पर्यन्तः निष्ठा तदर्थज्ञानं तद्गमयतीति वेदपारगः विचारसिद्धवेदार्थज्ञानवानित्यर्थः। गुर्वर्थः गुरुसंरक्षणपरः। निवेशो विवाहः। स निवेशार्थः। औषधं भेषजम्। वृत्तिक्षीणौ हीनधनः। यक्ष्यमाणः प्रसिद्धः। अध्ययनसंयोगो ज्ञानैकशरणः। अध्वसंयोगः पन्थाः। विश्वजिन्नामा सर्वस्वदक्षिणः क्रतुः, तद्याजी वैश्वजितः स चाऽन्येषामपि सर्ववेदस दायिनां प्रदर्शनार्थः। एतेभ्यो वहिर्वेदि अक्रतुकालेऽपि याचमानेभ्यो द्रव्यदानं यथाशक्ति कार्यम्। अत्र मनुः—

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सार्ववेदसम्।
गुर्वर्थपितृमात्रर्थस्वाध्यायाद्युपतापिनः।।
नवैतान् स्नातकान् विद्यात् ब्राह्मणान् धर्मभिक्षुकान्।
निस्स्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः।। इति।।

अनु०—सदाचरण करने वाला, वेदज्ञान और यज्ञ-यागादि आदि में दक्ष श्रोत्रिय, वेदविद्या में निपुण पुरुष यदि यज्ञ मण्डप को छोड़ अन्य जगह गुरु को दक्षिणा देने, विवाह करने, औषध लेने, बेरोजगार होने के कारण भरण-पोषण के निमित्त अथवा यज्ञ अध्ययन, यात्रा या विश्वजित् यज्ञ करने हेतु धन अपने लिए मांगे तो उसे यथा

१. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेतास्सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।। (ऋ. ८/६/२३/१)

सामर्थ्य धन देना चाहिए।

कृतान्नमितरेषु।।२०।।

कृतान्नं पक्वान्नम्। आह च-'इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते' इति। इतरेभ्योऽतिथिभ्यः बहिर्वेदि कृतान्नमेव देयं नियमतः। सान्तानिकादिभ्यः पुनः कृतान्नमकृतान्नं च।।२०।।

अनु०—याचकों को पका हुआ भोजन दे।

सुप्रक्षालितपादपाणिराचान्तश्शुचौ संवृते देशेऽन्नमुपहृतमुपसङ्गृह्य कामक्रोधद्रोहलोभमोहानापहत्य सर्वाभिरङ्गुलीभिः शव्दमकुर्वन्प्राश्नीयात्।।२१।।

आत्मयाजिनो भोजनविधिरयम्। संवृते देशे उपविश्य भुञ्जीतेति शेषः। फलकादौ पादं पात्रं वाऽऽरोप्य न भोक्तव्यमिति। उपहृतमानीतम्। उपसंगृह्य प्रीतिपूर्वकमभिसंवाद्य कामादीन्वर्जयित्वा शब्दं सीत्काराद्यकुर्वन्।।२१।।

अनु०—पैर-हाथ को खूब साफ करे। आचमन करे। शुद्ध और पवित्र और चारों ओर से घेरे गए स्थान पर बैठकर लाए भोजन को सम्मान के साथ ग्रहण करे। काम, क्रोध, मोह से दूर रहे। सभी अंगुलियों से भोजन को मुंह में पहुंचाए और मौन होकर भोजन करे।

(खण्ड-पांच सम्पूर्ण)

खण्ड-छह

न पिण्डशेषं पात्र्यामुत्सृजेत्।।१।।

जग्धाऽवशिष्टस्य पिण्डस्याऽभोज्यत्वात्तस्य पात्र्यामुत्सर्जने पुनरादानप्रसङ्गाच्च। अतश्च यावद्ग्रसितुं शक्नोति तावदेवाऽऽददीतेति गम्यते।।१।।

अनु०—भोजन का ग्रास मुंह में चला जाए फिर भी कोई अंश बच जाए, तो उसे थाली में नहीं रखना चाहिए।

मांसमत्स्यतिलसंसृष्टप्राशनेऽप उपस्पृश्याऽग्निमभिमृशेत्।।२।।

संसृष्टशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। यावद्भिर्मांसपरमाणुभिर्मिश्रित ओदने तद्रसोपलब्धिर्भवति तावद्भिस्संसृष्टस्य प्राशने इदं प्रायश्चित्तम्। ननु मांससंसृष्टनिषेधादेव मत्स्यसंसृष्टस्याऽपि निषेधसिद्धेः कुतः पृथगुपादानं? मत्स्यार्थमिति। उच्यते-मत्स्यगन्धोपलब्धावपि प्रायश्चित्तं भवतीत्यभिप्रायः। तिलसंसृष्टं तिलोदनम्।।२।।

अनु०—मांस, मछली या तिल युक्त पदार्थ का भक्षण करने के बाद जल से

हाथ-मुंह धोए और अग्नि को स्पर्श करे।

अस्तमिते च स्नानम्।।३।।

अनु०–सूर्य के डूबने पर नहाए।

पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत्।।४।।

अनु०–पलाश से निर्मित आसन, खड़ाऊं और दातुन का प्रयोग वर्जित है।

नोत्सङ्गेऽन्नं भक्षयेत्।।५।।

अनु०–गोद में रखकर भोजन नहीं करना चाहिए।

आसन्द्यां न भुञ्जीत।।६।।

अनु०–आसन पर रखकर भोजन करना वर्जित है।

वैणवं दण्डं धारयेद्रुक्मकुण्डले च।।७।।

अनु०–बांस का डण्डा रखे। कानों में सोने के कुण्डल पहने।

पदा पादस्य प्रक्षालनमधिष्ठानं च वर्जयेत्।।८।।

अनु०–नहाते हुए एक पैर से दूसरे पैर को मसलना निषिद्ध है। खड़े होने पर भी एक पैर को दूसरे पैर पर न चढ़ाए।

न बहिर्मालां धारयेत्।।९।।

अनु०–बाहर दिखने वाली माला न पहने।

सूर्यमुदयास्तमये न निरीक्षेत।।१०।।

अदृष्टार्थमेतद्व्रतम्।। ३-१०।।

अनु०–डूबते और अस्त होते हुए सूर्य को देखना मना है।

नेन्द्रधनुरिति परस्मै प्रब्रूयात्।।११।।

अनु०–यदि इन्द्रधनुष पर नजर पड़ भी जाए, तो भी किसी दूसरे से यह न कहे- मुझे इन्द्रधनुष दिखाई दे रहा है।

यदि ब्रूयान्मणिधनुरित्येव ब्रूयात्।।१२।।

परं प्रति निषेधोऽयम्। आत्मनो निरीक्षणे न दोषः। इतिकरणलिङ्गात् शब्दोच्चारणनिषेधमेनमध्यवस्यामः।। ११-१२।।

अनु०–यदि कहना ही आवश्यक हो तो मणिधनु कहकर वार्तालाप करे।

पुरद्वारीन्द्रकीलपरिघावन्तरेण नाऽतीयात्।।१३।।

इन्द्रकीलः पुरद्वारे स्थापितः काष्ठविशेषः। परिघा तु प्रसिद्धा। तावन्तरेण न गच्छेत्।। १३।।

अनु०—नगर के द्वार पर बने इन्द्रकील और परिघा के मध्य में से न निकले।

प्रेङ्खयोरन्तरेण न गच्छेत्।। १४।।

प्रेखो निखातदारुलम्बमाना क्रीडाफलका, तयोरन्तरेण गमननिषेधः।। १४।।

अनु०—झूले के बीच मे से न गुजरे।

वत्संतन्त्रीं च नोपरि गच्छेत्[1]।। १५।।

तन्त्री दाम तल्लङ्घनं निषिध्यते। चशब्दात् गोतन्त्रीं च।। १५।।

अनु०—बछड़े के पगहे पर से रास्ता न निकाले।

भस्मास्थिरोमतुषकपालापस्नानानि नाऽधितिष्ठेत्।। १६।।

रोमशब्दः केशश्मश्रुणोरपि प्रदर्शनार्थः। अपस्नानं स्थलस्नानस्रुतजलं गात्रोद्वर्तनमलं वा।। १६।।

अनु०—भस्म, हड्डी, बाल, भूसा, खप्पर, काई और पानी से गीले स्थान से नहीं गुजरना चाहिए।

गां धयन्तीं न परस्मै प्रब्रूयात्[2]।। १७।।

स्वकीयामपि तां वारयेत्। न तु परस्मा आचक्षीत। किमयं स्तनन्धयस्य ख्यापननिषेधः, किं वा धेन्वा इति। तत्र गां धयन्तीमिति श्रवणाद्धेन्वा एव क्वचित्काञ्चित् पिबन्त्या इति। केचित्पुनस्तस्यास्तथा प्रीत्यभावात् यथा वत्सस्य मातुः स्तनान् पिबतः, तत्र हि साक्रोशं कथयन्ति वारयन्ति च। कथं पुनः धयन्तीमितिशब्देन स्तनं पिबन्तीति गम्यते? गां धयन्तीं वत्सस्य मूत्रादिकमिति योजनया। अनेन चाऽतीव प्रस्नुतावस्था लक्ष्यते।। १७।।

अनु०—गाय बछड़े को दूध पिला रही हो, तो इस बारे में किसी से कुछ न कहे।

नाधेऽनुमधेनुरिति ब्रूयात्।। १८।।

अनु०—ऐसी गाय जो दूध न देती हो, उसे अधेनु कहना ठीक नहीं।

यदि ब्रूयात् धेनुभव्ये त्येव ब्रूयात्।। १९।।

---

१. गौ. ध. सू. ९/५३

२. गौ. ध. सू. ९/२४

क्षीरिणी गौर्धेनुः। अधेनुस्तद्विपरीता। उच्चारणनिषेधाददृष्टं कल्प्यम्।। १८-१६।।

अनु०—यदि उसके बारे में कुछ कहना हो तो उसने धेनुकन्या कहकर पुकारे।

शुक्ता रूक्षाः परुषा वाचो न ब्रूयात्।। २०।।

शुक्ताः शोककारिण्यः, यथा विधवां विधवेति। रूक्षाः अविद्यमाने दोषे दोषख्यापिकाः, यथा श्रोत्रियं सन्तमश्रोत्रिय इति। परुषास्तु विद्यमाने दोषे गुणख्यापकाः, यथाऽन्धं चक्षुष्मानिति।। २०।।

अनु०—शोक युक्त, रूखा, और कठोर वचन न बोले।

नैकोऽध्वानं व्रजेत्।। २१।।

मध्ये व्याध्याद्युत्पत्तिप्रसङ्गात्। अतस्सद्वितीयो व्रजेत्।। २१।।

अनु०—एकाकी यात्रा वर्जित है।

न पतितैर्न स्त्रिया न शूद्रेण।। २२।।

सह व्रजेदिति शेषः। एतैस्सद्वितीयो न स्याद्गमन इत्यर्थः।। २२।।

अनु०—पतित, स्त्री, शूद्र के साथ यात्रा पर न निकले।

न प्रतिसायं व्रजेत्।। २३।।

प्रमादभयादेव।। २३।।

अनु०—सायंकाल होने वाली हो तो यात्रा न करे।

न नग्नस्स्नायात्।। २४।।

अनु०—बिना कपड़ों के स्नान न करे।

न नक्तं स्नायात्।। २५।।

अनयोः पूर्वः प्रतिषेधः स्नानमात्रे। उत्तरस्तु नित्यनैमित्तिके। तत्र हि—'शक्तिविषये मुहूर्तमपि नाऽप्रयतस्स्यात्' इत्युक्तम्। नैमित्तिकस्याऽपि महानिशि प्रतिषेधं केचिदिच्छन्ति।। २४-२५।।

अनु०—रात्रि में न नहाए।

न नदीं बाहुकस्तरेत्।। २६।।

बाहुभ्यां तरतीति बाहुकः।। २६।।

अनु०—नदी को बाहों से तैरकर पार न करे।

न कूपमवेक्षेत।। २७।।

आत्मानं तत्र द्रष्टुमिति शेषः। इतरथा कूपपतितानां बालादीनामुत्तारणासिद्धेः।। २७।।

अनु०—कुएं में झांकना वर्जित है।

न गर्तमवेक्षेत।। २८।।

अधोमुख एव निम्नो भूभागः गर्तो भवति। को विशेषः कूपगर्तयोरिति चेत्-कूपो नाम दुःखेनाऽऽदायोदकं पातुं योग्यः, निम्नं खातित इत्यर्थः। यः करेणोदकं गृहीत्वा पातुं योग्यस्स गर्तः।। २८।।

अनु०—किसी गड्ढे को झांककर न देखे।

न तत्रोपविशेद्यत एनमन्य उत्थापयेत्।। २६।।

सर्वत्र पारवश्यं पुरुषस्य हृदीत्युपदेशः। राजभवनादिष्वासननिषेधोऽयम्। स्वयमारोढुमशक्यं देशं प्रत्यारोहणनिषेधो वा। 'सूर्यमुदयास्तमये न निरीक्षेत' इत्यारभ्योक्तानां प्रतिषेधानां केचिददृष्टार्थाः केचिद्दृष्टार्थाः केचिदुभयार्था इत्यवश्यं परिहरणीया एव। नो चेत् 'स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्' इत्यवसरः स्यात्।।२६।।

अनु०—वहां न बैठे, जहां से उसे कोई उठने को कह सके।

पन्था देयो ब्राह्मणाय गवे राज्ञे ह्यचक्षुषे।
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च।। ३०।।

अब्राह्मणेभ्योऽप्यचक्षुः प्रभृतिभ्यः पञ्चभ्यो वर्त्मसङ्कटे समुपस्थिते पन्थानं दातुं स्वयं तस्मादपसरेदेव। चशब्दोऽनुक्तोपसंग्रहार्थः। तेन 'चक्रिणेऽन्धकाय समुपजीविने तपस्विने हिताय वा' इत्यादिब्राह्मणादिर्ग्राह्यः।। ३०।।

अनु०—ब्राह्मण, गाय, राजा, सूरदास, वृद्ध, बोझा युक्त आदमी, गर्भवती स्त्री और निर्बल पुरुष को जाने के लिए रास्ता दे देना चाहिए।

प्रभूतधोदकयवससमित्कुशमाल्योपनिष्क्रमणमाढ्यजनाकुलमनलससमृद्धमार्यजनभूयिष्ठमदस्युप्रवेश्यं ग्राममावासितुं यतेत धार्मिकः।। ३१।।

प्रभूतशब्दः एधादिभिष्षड्भिः प्रत्येकमभिसंबन्धनीयः। एधः इन्धनादि। यवसः दोह्यानां गवादीनां भक्षः। उपनिष्क्रमणं विहारभूमिः। आढ्याः धनवन्तः। अलसाः निरुत्साहाः। तद्विपरीता अनलसाः। आर्याः पण्डिताः। दस्यवश्चोराः तैरप्रवेश्यं अधृष्यम्। तत्र हि धर्माश्रमाविरोधेन जीवनं सुकरं भवति। तत्र धार्मिको नित्यं निवसेदित्यर्थः।। ३१।।

अनु०—धर्म-कर्म में आगे रहने वाले आदमी को ऐसे गांव में रहना चाहिए

जहां ईंधन का अभाव न हो, जल, चारा, समिधा, कुश, माला आदि की परेशानी न हो, आवागमन की सुविधाएं हों, सेठ-साहूकारों का वास हो। जहां उद्यमी और परिश्रमी रहते हों, जहां बहुतायत में आर्य बसते हों और चोरी न होती हो।

उदपानोदके ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः।
उषित्वा द्वादश समाः शूद्रसाधर्म्यमृच्छति।।३२।।

उदपानं कूपः कूपोदकमेव पानीयं, नाऽन्यत् यस्मिन् ग्रामे स एवमुक्तः। वृषलीशब्दः प्राक् प्रदानाद्रजस्वलाया वाचक। तथा हि–

पितुर्गृहे तु या कन्या ऋतुं पश्यत्यसंस्कृता।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः।। इति।।

शूद्रायाः पतित्वे धर्मानुष्ठानानुपपत्तेः। एवं विधो धार्मिकोऽपि शूद्रसाधर्म्यमृच्छति। तस्मादल्पोदके ग्रामे धार्मिको न निवसेदित्यभिप्रायः।।३२।।

अनु०–जिस गांव या स्थान पर कुआं ही पानी का साधन हो, उसी से सब पानी पीते हों, वहां यदि कोई ब्राह्मण बारह वर्ष पर्यंत शूद्रा से विवाह कर रहता है, तो वह शूद्रव्रत् हो जाता है।

पुरेणुकुण्ठितशरीरस्तत्परिपूर्णनेत्रवदनश्च। नगरे वसन् सुनियतात्मा सिद्धिमवाप्स्यतीति न तदस्ति।।३३।।

कुण्ठितं प्रच्छादितम्। तच्छब्देन पुररेणुरेव परामृश्यते। तेन परिपूरिते नेत्रे वदनं च यस्य स तत्परिपूर्णनेत्रवदानः। उष्ट्रखरविड्वराहगजाश्वपुरीषमूत्रसुराकाकोच्छिष्टशवकपालास्थितुषभस्माद्युपहतसर्वावयव इत्यर्थः। एवंविधस्सुनियतेन्द्रियोऽपि नगरे वसन् परलोकं नाऽऽप्नोतीत्यर्थः।।३३।।

अनु०–यदि यह माने कि नगर मे रहते हुए वहां की धूलि से जिसकी देह मैली न हुई हो, जिसकी आंखें और मुंह पर धूल न लगी हो, परंतु जो इन्द्रिय और मन का पापी हो वह वहां रहकर भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता।

रथाश्वगजधान्यानां गवां चैव रजश्शुभम्।
अप्रशस्तं समूहन्याः श्वाजाविखरवाससाम्।।३४।।

पूर्वाणि पञ्च रजांसि शुभानि। इतराणि षट्र अप्रशस्तानि वर्ज्यानि। समूहनी सम्मार्जनी।।३४।।

अनु०–रथ, घोड़ा, हाथी के चलने पर जो धूल उड़ती है, वह पवित्र समझी गई है। इसके साथ-साथ गाय के पैरों से उड़ने वाली धूल भी पवित्र कही गई है। मगर झाडू लगाते समय जो धूल उड़ती है वह अशुद्ध होती है, बकरी, भेड़, गदहे

के चलने से और जो कपड़ों से धूल उड़ती है, वह दूषित एवं अशुद्ध होती है।

पूज्यान् पूजयेत्।। ३५।।

अवसरौचित्योपायेनाऽयमपि श्रेयस्करो नियमः। उक्तं च-'प्रतिवध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः'।। इति।। ३५।।

अनु०–पूजनीयों का आदर-सत्कार करना चाहिए।

ऋषिविद्वन्नृपवरमातुलश्वशुरर्त्विजः ।
एतेऽर्घ्यार्शशास्त्रविहिताः स्मृताः कालविभागशः।। ३६।।

ऋषिर्मन्त्रार्थज्ञः। विद्वान् साङ्गस्य सेतिहासस्य वेदस्य प्रवक्ता। नृपोऽभिषिक्तः। क्षत्रियः। वरो वोढा दुहितुः। इतरे प्रसिद्धाः। अर्घ्याः मधुपर्कार्हा इति शास्त्रेण वेदेन चोदिता स्मृताश्च स्मृतिकर्तृभिर्मन्वादिभिरप्यनुमोदिताः। यद्वा-कालविभागेन स्मृताः।।३६।।

अनु०–ऋषि-महर्षि, विद्वान पुरुष, राजा, मामा, ससुर और ऋत्विजों का अवसर को देखते हुए यथोचित आदर-सत्कार कर, उन्हें अर्घ्य दे।

ऋषिविद्वन्नृपाः प्राप्ताः क्रियारम्भे वरर्त्विजौ।
मातुलश्वशुरौ पूज्यौ संवत्सरगतागताविति।। ३७।।

प्राप्ताः प्रवासादभ्यागताः। क्रियारम्भः पुंसवनसोमयागादीनामारम्भः। संवत्सरपर्यागतौ संवत्सरमुषित्वाऽऽगतौ।। ३७।।

अनु०–वेदविद्, ऋषि, विद्वान और राजा आ जाएं तो मधुपर्क से उनका आदर-सत्कार करे। यज्ञ के प्रारम्भ में ऋत्विज का सम्मान मधुपर्क देकर करना चाहिए। साल भर बाद मामा-ससुर आ जाए तो उन्हें अर्घ्य देना न भूले।

अग्न्यगारे गवां मध्ये ब्राह्मणानां च सन्निधौ।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं वाहुमुद्धरेत्।। ३८।।

स्वाध्याये वर्तमाने भोजनेऽपि बाहोरुद्धरणं नमस्काररूपेण। चशब्दः प्रशस्तमङ्गुल्यदेवायतनप्रज्ञातवनस्पत्यादिप्रदर्शनार्थः।। ३८।।

अनु०–ऐसे घर में प्रवेश करते समय जहां यज्ञ की अग्नि प्रज्ज्वलित हो, रास्ते के वीच में गाय हो, ब्राह्मण के निकट से जाना हो, दैनिक स्वाध्याय और भोजन करते हुए दाएं हाथ को उठाकर चलना चाहिए।

उत्तरं वासः कर्तव्यं पञ्चस्वेतेषु कर्मसु।
स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भोजनाचमनयोस्तथा।। ३९।।

तृतीयं वस्त्रमुपवीतवत् व्यतिषज्यते तदुत्तरीयम्। तत् स्नातकस्य प्राप्यमप्येषु

कर्मस्ववश्यं कर्तव्यमित्युच्यवते। उत्सर्गो मूत्रपुरीषकरणम्।।३६।।

अनु०—स्वाध्याय, मल-मूत्र विसर्जन के समय, दान, भोजन और आचमन करना हो तो उत्तरीय वस्त्र धारण करे।

हवनं भोजनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः।
वहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम्।।४०।।

जान्वोर्द्वयोरन्तरा दक्षिणं वाहुं निधायैतानि कार्याणीत्यर्थः। उपहारो बलिहरणम्। यद्वाप्रसिद्ध एवोपहरो देवगुरुविषयः।।४०।।

अनु०—हवन, भोजन, देव अथवा गुरु आदि को बलि भेंट करते हुए उपहार देते हुए और दान लेने और आचमन करते हुए दाएं हाथ को घुटने के अंदर रखे।

अन्ने श्रितानि भूतानि अन्नं प्राणमिति श्रुतिः।
तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्नं हि परमं हविः।।४१।।

अन्ने श्रितानि अन्नावष्टम्भानि स्थावराणि जङ्गमानि च। 'अन्नं प्राणमन्नपान' मिति, श्रुतिः। देवा अप्यन्नावष्टम्भा एव। हुतप्रहुतादयस्तेषामन्नानि तस्माद्यथाशक्त्या दातव्यम्।।४१।।

अनु०—प्राणी का आधार अन्न है। अन्न को प्राण कहा जाता है, ऐसा वेद में वर्णन मिलता है। इसलिए अन्न का दान करे। अन्न को सबसे उपर्युक्त हवि माना जाता है।

हुतेन शाम्यते पापं हुतमन्नेन शाम्यति।
अन्नं दक्षिणया शान्तिमुपयातीति नश्श्रुतिरिति।।४२।।

हुतं होमः कूष्माण्डगणहोमादिलक्षणः। तेन पापं शाम्यते। हुतविषयं च न्यनातिरिक्तमन्नदानेन शाम्यति। अन्नदानविषयं च न्यूनातिरिक्तमस्वादुताकृतं प्रियवचनाभावनिमित्तं च दक्षिणया शाम्यति। वक्ष्यति ह्येतान्—

भोजयित्वा द्विजानान्ते पायसेन च सर्पिषा।

गोभूतिलहिरण्यानि भुक्तवद्भ्यः प्रदाय च।। इति।।

चशब्दोऽवधारणार्थः। सर्वत्राऽत्र प्रमाणमस्माकं श्रुतिरेवेत्यर्थः। सा च 'तस्मादन्नं ददत् सर्वाण्येतानि ददाती' त्येवमादिका।।४२।।

अनु०—पाप शांत करना हो तो हवन करे। अन्न दान करने से हवन शांत होता है। अन्न दक्षिणा से शान्ति मिलती है। ऐसा श्रुति में बताया गया है।

(अध्याय-तीन, खण्ड-छह सम्पूर्ण)

अध्याय-चार : खण्ड-सात

अथाऽतस्सन्ध्योपासनविधिं व्याख्यास्यामः।।१।।

अथशब्दो मङ्गलार्थः। तस्मिन् खल्वर्थे स्मर्यते—

ओङ्कारश्चाऽथशब्दश्च द्वावेतौ ब्राह्मणः पुरा।

कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।। इति।।

तस्मादिति माङ्गल्यहेतुतामुपदर्शयति। सन्ध्योपानं हि सर्वेभ्यः कर्मभ्यो मङ्गलतरम्। सन्ध्या नाम रात्रेर्वासरस्य चाऽन्तरालकालवर्ति सूर्योपासनम्। तत्र प्रणवव्याहृतिसहितस्तत्सवितुरिति। मन्त्रोच्चारणजन्यस्तद्विषयस्सन्ततो मानसो व्यापारः। इदमेवाऽत्र प्रधानम्। यदन्यत्तरङ्गम्। तथा च ब्राह्मणम्-'उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते' इति। कुर्वन् प्रदक्षिणं मन्त्रोच्चारणं वा। ब्राह्मणग्रहणं ऋणश्रुतिवत्। विधिमनुष्ठानक्रमं वक्ष्याम इति सङ्ग्रहः कृतः। तत्र कालो वक्ष्यते-'सुपूर्वामपिपूर्वामुपक्रम्य' इत्यत्र।।१।।

अनु०—यहां से सन्ध्या-उपासना की विधि बताएंगे।

तीर्थं गत्वाऽप्रयतोऽभिषिक्तः प्रयतो वाऽनभिषिक्तः प्रक्षालितपादपाणिरप आचम्य सुरभिमत्याऽब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिर्हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व्याहृतिभिरन्यैश्च पवित्रैरात्मानं प्रोक्ष्य प्रयतो भवति।।२।।

कर्तृसंस्कारोऽयम्। तीर्थं नदी देवतादि बहिर्ग्रामाज्जलाशयः। तत्र गतस्सन्नप्रयतश्चेत् स्नायादेव। प्रयतश्चेन्न स्नायात्। स्नानास्नानयोर्विकल्पः। स च शक्त्यपेक्षः प्रक्षालितपादपाणिरित्यादि अभिषिक्तानभिषिक्तयोस्साधारणम्। प्रक्षालनं चाऽऽमणिबन्धात्। 'अभ्यर्हितं पूर्वम्' इति पाणेः पूर्वनिपाताभावश्छान्दसः। अत्राऽपामाचमनं समन्त्रं वेदितव्यम्। मन्त्रश्च-'अग्निश्च मा मन्युश्चे' त्यनुवाकः सायङ्काले। 'सूर्यश्च' मा मन्युश्चेति प्रातः। प्रत्यहं हस्तपादादिभिः पापकरणस्याऽवश्यंभावित्वात्तदवलोपन-समर्थत्वाच्चैतयोः। स्नानप्रक्षालनाचचमनप्रोक्षणानि च बाह्याभ्यन्तरमलावलोपनार्थानीति गम्यते। प्रयतो भवतीति सूत्रान्ते निगमनात्। अत एव च स्नानमप्यत्र 'हिरण्यश्रृङ्ग' मित्येवमादिभिभिस्समन्त्रकमेव द्रष्टव्यम्। वक्ष्यति सन्ध्योपासनफलप्रदर्शनवेलायां मान्त्रवर्णिकमेव पापप्रमोचनम्-'यदुपस्थकृतं पापम्' इत्येवमादिना। वसिष्ठश्चैतमर्थ-मनुमोदमान उपलक्ष्यते-'अथाऽऽचामेदग्निश्चेति। सायं सूर्यश्चेति प्रातः मनसा पापं ध्यात्वा निवदन' इति यद्यपि रहस्यप्रायश्चित्तप्रकरण इदं पठ्यते तथाऽपि वाक्यादविगान-समाचारादहरहरप्यवगन्तव्यम्। सुरभिमती 'दधिक्राव्णः' इत्यृक्। अब्लिङ्गाः अब्देवत्यः ताश्च 'आपो हि' इति तिस्त्रः। वारुण्यो वरुणदेवत्याः ताश्च 'यच्चिद्धि ते' इति तिस्त्रः। 'केचित् 'अव ते हेडः' इति 'इमं मे वरुण' इति ... 'हिरण्यवर्णाः' इति

चतस्रः। पावमान्यः पवमानः सुवर्चनः इत्यनुवाकः। अन्यानि पवित्राण्यघमर्षणादीनि स्वयमेव वक्ष्यति-'उपनिषदो वेदादयः' इति प्रक्रम्य 'सावित्रीति चेति पावनानी' त्यन्तेन। यद्वा-'अघमर्षणं देवकृतम्' यत्र। प्रयतः पूतस्सन्ध्योपासनयोग्यो भवति।। २।।

अनु०--शुद्ध, पवित्र जलाशय पर जाए। स्नान करे। स्वच्छ होने पर यदि स्नान न करना हो. तो भी हाथ-पैर अवश्य धोए। आचमन करे। 'सुरभि' शब्द बोले, ऋग्वेद की ऋचा का पाठ करे। अप्, वरुण और हिरण्यवर्ण के मन्त्रों को पढ़े। पवमानः सुवर्चनः, अनुवाक् एवं व्याहृतियों और पवित्र करने वाले दूसरे मन्त्रों का पाठ करे। फिर अपने ऊपर जल छिड़के। इससे वह शुद्ध हो जाता है।

अथाऽप्युदाहरन्ति--

अपोऽवगाहनं स्नानं विहितं सार्ववर्णिकम्।
मन्त्रवत्प्रोक्षणं चाऽपि द्विजातीनां विशिष्यते इति।। ३।।

अपोऽवगाहनमिति वारुणं स्नानमाह। तच्च सार्ववर्णिकं सर्ववर्णसाधारणम्। मन्त्रवत्प्रोक्षणं पूर्वोक्तैर्मन्त्रैर्मार्जनं तच्च ब्राह्मणादित्रैवर्णिकानां विशिष्टं स्नानम्। एवं चाऽद्विजस्य वारुणमेव। द्विजातीनां पुनरुभयोस्समुच्चयस्सति सम्भवे। असम्भवेऽपि तेषां मार्जनमवश्यंभावि।। ३।।

अनु०--इस सन्दर्भ में प्रमाण देते हैं-

सभी वर्ण वाले पुरुषों को शुचिता के लिए जल में डुबकी लगा कर नहाने का निर्देश है। द्विजातियों को ही (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) मन्त्र पढ़ते हुए जल प्रोक्षण करना उचित है। यह उनके लिए विशेष विधान है।

सर्व कर्मणां चैवाऽऽरम्भेषु प्राक्सन्ध्योपासनकालाच्चैतेनैव पवित्रसमूहेनाऽऽत्मानं प्रोक्ष्य प्रयतो भवति।। ४।।

सर्वकर्माणि श्रुतिस्मृतिशिष्टागमसिद्धानि। सर्वकर्मग्रहणेनैव सिद्धे सन्ध्योपासनस्य पृथग्ग्रहणं तस्याऽत्यन्तप्राशस्त्यप्रतिपादनार्थम्। तच्च प्रदर्शितमस्माभिरथातश्शब्दयोरभिप्रायं वर्णयद्भिः। पवित्रसमूहेन सुरभिमत्यादीनां स्तोमेनाऽऽत्मानं प्रोक्ष्याऽद्भिरेवाऽऽत्मानं परितोऽपि रक्षा कर्तव्या। अत ऊर्ध्वं गायत्र्याऽभिमन्त्रितेनाऽम्भसा हतानि रक्षांस्यात्मानमाह-मृत्युरिति। यच्च स्वाध्यायब्राह्मणे पठितम्-'सन्ध्यायां, गायत्र्याऽभिमन्त्रिता आप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति' 'यत्प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति' इति च। तदपि प्रसिद्धत्वादेव नोक्तमाचार्येण, 'अग्निश्च' इत्यादिमन्त्रद्वयवत्। स्मृतिरप्यस्ति--

कराभ्यां तोयमादाय सावित्र्या चाऽभिमन्त्रितम्।
आदित्याभिमुखो भूत्वा प्रक्षिपेत् सन्ध्ययोर्द्वयोः।। इति।।

एतदुक्तं भवति-सन्ध्योपासनवेलायां कर्तव्येषु समन्त्रकाचमनप्रोक्षणजलोत्क्षेपण-

प्रदक्षिणसावित्रीजपोपस्थानेष्वाचार्येण स्वशाखायामनुक्ता उक्ताः। उक्तास्तु नोक्ताः सिद्धत्वादेव। न केवलमुत्क्षेपणप्रदक्षिणे एव भवतः।।४।।

अनु०—वह शुद्ध और पवित्र समझा जाता है-जो हर प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों के आरम्भ में सन्ध्या, उपासना से पूर्व इन पवित्र ऋचाओं को पढ़ता है और जल का प्रोक्षण करने से पवित्र हो जाता है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

दर्भेष्वासिनो दर्भान् धारयमाणस्सोदकेन पाणिना प्रत्यङ्मुखस्सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेत्।।५।।

दर्भेष्वग्रथितेष्वनन्तर्गर्भेषु त्रिष्वासीनस्तादृशानेव दर्भान् सोदकेन पाणिना धारयमाणः। एकवचनाद्दक्षिणो ग्रहीतव्यः। सावित्रीं सवितृदेवत्यां तत्सवितुः इत्येतामृचं प्रणवव्याहृतिसहिताम्। तथाहि—

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते।। इति।।

ऋषिच्छन्दोदेवताविनियोगस्मरणपूर्वको जपो द्रष्टव्यः। न ह्येतज्ज्ञानमृते श्रौतस्मार्तकर्मप्रसिद्धिरित्यभियुक्तोपदेशात्। तत्र प्रणवव्याहृतीनामृषिर्वामदेवः। देवी गायत्री छन्दः। ओङ्कारस्सर्व देवत्यः पारमेष्ठ्यः। व्यस्तानां व्याहृतीनामग्निर्वायुससूर्य इति देवताः। सावित्र्या ऋषिः विश्वामित्रः गायत्री छन्दः सविता देवता। सन्ध्योपासने विनियोगः। यस्मिन् सर्वमोतं प्रोतं च भवतीति ओङ्कारेण ब्रह्मोच्यते। तच्च सवितृमण्डलमध्यवर्ति। तथा च श्रुतिः-'आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः' इति। स एव च भूः भवतेस्सद्रूपं परं ब्रह्म। भुवः भावयतेः तदेव हि सर्वं भावयतीति। तदेव सुवः। तथा च यास्कः-'स्वरादित्यो भवति सु रणः सु ईरणः स्वृतो रसान् स्वृतो भासं ज्योतिषां स्वृतो भासेति'। यो देवस्सविताऽस्माकं धियः कर्माणि पुण्यानि प्रति प्रेरयेत् तस्य यो भर्गः तपनहेतुः वरेण्यं वरणीयं वरदं वा मण्डलभिचिन्तयाम उपास्मह इति मन्त्रार्थः।।५।।

अनु०—इस प्रसंग में यह पद्य है-

कुश से बने आसन पर बैठे। हाथ में जल ले। पश्चिम की तरफ मुंह करे। और एक सहस्र बार गायत्री मन्त्र का पाठ करे।

प्राणायामशो वा शतकृत्वः।।६।।

'सावित्रीमावर्तयेत्' इत्यनुवर्तते। प्राणायामश्च श्वासनिरोधनमात्रम्। न सव्याहृतीकामित्यादिकम्। प्रत्यावृत्ति श्वासनिरोधः। अथ वा यावच्छक्ति त्रिः चतुः पञ्चकृत्वः पठित्वा श्वासमुत्सृजेत्।।६।।

अनु०—या प्राणायाम के साथ-साथ सौ बार गायत्री मन्त्र का जाप करे।

उभयतःप्रणवां ससप्तव्याहृतिकां मनसा वा दशकृत्वः।। ७।।

सावित्रीं प्राणायामश आवर्तत इत्यनुवर्तते। उभयतः प्रणवो यस्यास्तथा सप्त व्याहृतिभिस्सह वर्तत इति सैवोच्यते। सप्तव्याहृतयो भूरादयस्सत्यान्ताः[1]। अत्रैवं क्रमः कल्प्यः-प्रथमं प्रणवस्ततः सप्त व्याहृतयः ततस्सावित्रिसहिताच्च ध्यानतः (?) प्रणव इति। केचित्सावित्र्या एवोभयतः प्रणवमिच्छन्ति। न तु सप्तानामपि व्याहृतीनाम्। अपरे पुनरादितः प्रणवस्ततस्सप्तव्याहृतिकायाः सावित्र्या दशकृत्वोऽभ्यासः ततः प्रणव इति। एतौ पक्षौ विचारणीयौ। आद्यस्य तु सम्प्रदायोऽस्ति।। ७।।

अनु०—या सावित्री मन्त्र के आदि और अंत में प्रणव और व्याहृतियों को संयुक्त कर दस वार जपे।

त्रिभिश्च प्राणायामैस्तान्तो ब्रह्महृदयेन।। ८।।

ब्रह्महृदयं 'ओं भूः। ओ भुवः' इत्यनुवाकः। अनेन नवकृत्वः पठित्वा एनान् त्रीन् प्राणायामान् सम्पाद्य तान्तः ग्लानिमापन्नस्सावित्रीमावर्तयेदिति सिंहावलोकनन्यायेन सम्बन्धः। स्मृतिशतसिद्धत्वात्। एवं हि प्राणायामलक्षणं प्रसिद्धम्—

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामस्स उच्यते।। इति।।

'ओमापो ज्योतिरि' त्यनुवाकशेषश्शिरः[2]। तत्र प्रणवो गतः। व्याहृतित्रयं च। महः महतेः पूजाकर्मणो व्याप्तिकर्मणो वा ब्रह्म। जनो ब्रह्म जनेर्विपरीतलक्षणात् न जायत इत्यर्थः। तपस्तपतेरभिजनकर्मणः। सत्यमिति धातुत्रयनिमित्तमेतत्। सर्वं ब्रह्मैवेत्युपसंहारार्थः। सावित्री गता। आपः आप्नोतेः। ज्योतिः द्योततेः दीप्तिकर्मणः। रसः शब्दरूपं हि तद्ब्रह्म। अमृतं अविनाशि हि तद्ब्रह्म। बृहतेर्वृद्धिकर्मणः परिवृढं भवति।। ८।।

अनु०—ओम् भूः, ओम् भुवः आदि का उच्चारण करते हुए तीन बार प्राणायाम करे। यदि थकान आ जाए तो सावित्री मन्त्र का जाप कर सकता है।

वारुणीभ्यां रात्रिमुपतिष्ठत 'इमं मे वरुण' 'तत्त्वा यामी' तिं द्वाभ्याम्।। ६।।

'अहरेष मित्रः रात्रिर्वरुण' इति श्रुतेः रात्रिमिति कालनिर्देशः। उपस्थेयस्तु सविता तत्कालविशिष्टः। उपस्थानं चोपोत्थितेनैव कर्तव्यम्, न पुनरासीनेनैव। यच्च

---

१. ओम् भूः। ओम् भुवः। ओम् सुवः। ओम् महः। ओम् जनः। ओम् तपः। ओम् सत्यम्। ओम् तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।
२. ओमापो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवस्सुवरोम्।

समयाचारप्रसिद्धं प्रदक्षिणादि तदप्यत्र कर्तव्यं 'तृतीयशिशष्टागमः' इति लिङ्गात् ।। ९ ।।

अनु०–शाम को संध्या-उपासना करते हुए 'इमं मे वरुण' और 'तत्वा यामि', वरुण परक देवता के इन मंत्रों को उच्चारण करते हुए सूर्य देव की स्तुति-उपासना करे।

एवमेव प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन् ।। १० ।।

एवमिति 'तीर्थं गत्वा' इत्यादि सर्वमतिदिशति। प्रातरिति कालनिर्देशः। प्राङ्मुख इति प्रत्यङ्मुखनिवृत्त्यर्थम्। तिष्ठन्निति आसननिवृत्त्यर्थम् ।। १० ।।

अनु०–इसी प्रकार सुबह (प्रातःकाल) पूर्व की और मुंह करके सन्ध्या-उपासना करनी चाहिए।

मैत्रीभ्यामहरुपतिष्ठते 'मित्रस्य चर्षणीधृतो' 'मित्रो जनान् यातयती' ति द्वाभ्याम् ।। ११ ।।

अतिरोहितार्थमेतत् ।। ११ ।।

अनु०–मित्र देवता परक् 'मित्रस्य चर्षणीधृतः' और 'मित्रो जनान् यातयति' मंत्रों से दिन में उपासना करे।

सुपूर्वामपि पूर्वामुपक्रम्योदित आदित्ये समाप्नुयात् ।। १२ ।।

सुपूर्वां नक्षत्रेषु दृश्यमानेषु पूर्वां सन्ध्यामुपक्रम्याऽदित्योदयोत्तरकाले समाप्नुयात् ।। १२ ।।

अनु०–प्रातःकाल सन्ध्या करनी हो, तो सूर्य के उदय होने से पहले प्रारम्भ करे और सूर्य के उदित हो जाने पर सम्पन्न करे।

अनस्तमित उपक्रम्य सुपश्चादपि पश्चिमाम् ।। १३ ।।

सुपश्चात् यावन्नक्षत्रविभावनं तावति समाप्नुयादित्यर्थः ।। १३ ।।

अनु०–शाम को संध्या सूरज डूबने से पूर्व करे। और तब तक करे जब तक तारे दिखाई न दे जाएं।

सन्ध्ययोश्च सम्पत्तावहोरात्रयोश्च सन्ततिः ।। १४ ।।

सन्ध्योपासनकर्तुर्भवतीति शेषः। सम्पत्तिस्सपूर्णता। सा च सन्ध्योपासनेन यथाविध्यनुष्ठानेन भवति। तस्यां च सत्यामहोरात्रयोस्सन्ततिरविच्छेदो भवति। उपासितुरायुरविच्छिन्नं भवतीत्यर्थः। आह च–

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।। इति।। १४।।

अनु०—प्रातः और सायंकाल की संध्या-उपासना करने से जीवन में दिन-रात की परम्परा जुड़ी रहती है।

अपि चाऽत्र प्रजापतिगीतौ श्लोकौ भवतः—
अनागतां तु ये पूर्वामनतीतां तु पश्चिमाम्।
सन्ध्यां नोपासते विप्राः कथं ते ब्राह्मणास्स्मृताः।।
सायं प्रातस्सदा सन्ध्यां ये विप्रा नो उपासते।
कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेदिति।। १५।।

प्रजापतिग्रहणमादरार्थम्। अनागतामनतिक्रान्तामिति चोदितकालाभिप्रायम्। कथं ते ब्राह्मणा इति। विप्रग्रहणं च द्विजात्युपलक्षणार्थम्। अत एव शूद्रकर्मस्वित्युक्तम्। इतरथा क्षत्रियकर्मस्वित्यवक्ष्यत् आनन्तर्यात्। आह च—
न तिष्ठति तु यः पूर्वामुपासते न च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यस्सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।। इति।। १५।।

अनु०—जो ब्राह्मण प्रातः और सांय काल को उचित समय पर सन्ध्या-उपासना नहीं करता, उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। ऐसे द्विजातियों से राजा शूद्र से कराए जाने वाले कार्य करा सकता है।

तत्र सायमतिक्रमे रात्र्युपवासः प्रातरतिक्रमेऽहरुपवासः।। १६।।

अतीतां तां सन्ध्यां कृत्वेति शेषः। उपवासोऽनशनम्।। १६।।

अनु०—यदि किसी शाम को संध्या-उपासना न की जा सके, तो उस रात में निराहार रहना चाहिए। अगर सुबह संध्या-उपासना न की जा सके, तो दिन भर कुछ न खाए।

स्थानासनफलमवाप्नोति।। १७।।

प्रायश्चित्तप्रशंसैषा।। १७।।

अनु०—ऐसा प्रायश्चित्त करने से उस फल की प्राप्ति होती है, जो बैठकर या खड़े होकर संध्या-उपासना से मिलती है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

यदुपस्थकृतं पापं पद्भ्यां वा यत्कृतं भवेत्।
बाहुभ्यां मनसा वाऽपि वाचा वा यत्कृतं भवेत्।
सायं सन्ध्यामुपस्थान तेन तस्मात्प्रमुच्यते।। १८।।

उपस्थकृतं परभार्यां प्रति बहुशः प्रायश्चित्तस्याऽऽम्नानादिह स्वभार्यायामेवाऽनृतु-

कालाद्युपयोगेऽनाम्नाते। पद्भ्यां यद्बुद्धिपूर्वप्रतिषेधगमनादि कृतम्। बाहुभ्यामपि हिंसाच्छेदन भेदनादि हस्तचापलं तत्। तथा मनसा परद्रव्यस्याऽभिध्यानादि। वाचा कृतं अवद्यवदनादि। यत्र यत्र वाङ्मनःकायकृते प्रायश्चित्ताम्नानविरोधो नास्ति, तत्र तत्रैतदेव प्रायश्चित्तमित्यभिप्रायः। सन्ध्योपासंनप्रशंसा चैषा।। १८।।

अनु०—इस प्रसंग में प्रमाण स्वरूप यह पद्य हैं-

जननेन्द्रिय, पैर, हाथ, मन या वाणी से जो व्यक्ति जो दुष्कर्म, पापाचरण करता है, वे सब शाम को संध्या-उपासना करने से क्षीण हो जाते हैं।

रात्र्या चाऽपि सन्धीयते।। १६।।

पुरुष इति शेषः। अभिसन्धानमभ्युदयः।। १६।।

अनु०—संध्या-उपासना करने वाला आने वाली रात से संयुक्त हो जाता है।

न चैनं वरुणो गृह्णाति।। २०।।

वरुणो नाम वृणातेः पापमप्सु मरणं जलोदरव्याधिर्वा।। २०।।

अनु०—वरुण देवता उसे नहीं मारते।

एवमेव प्रातरुपस्थाय रात्रिकृतात् पापात् प्रमुच्यते।। २१।।

अर्थवादातिदेशः। फलातिदेशो वाऽयम्। रात्रावुपस्थादिभिः कृतादित्यर्थः।। २१।।

अनु०—इसी तरह सुबह-शाम, संध्या-उपासना करने से रात में किए हुए पापों से व्यक्ति छूट जाता है।

अह्ना चाऽपि सन्धीयते।। २२।।

पूर्वैव व्याख्या।। २२।।

अनु०—उस व्यक्ति का सम्वंध आने वाले दिन से हो जाता है।

मित्रश्चैनं गोपायत्यादित्यश्चैनं स्वर्गं लोकमुन्नयतीति।। २३।।

इदमपि तथा।। २३।।

अनु०—संध्या-उपासना करने वाले को मित्र देवता वचाते हैं। आदित्य उसे स्वर्ग लोक ले जाते हैं।

स एवमेवाऽहरहरहोरात्रयोः सन्धिषूपतिष्ठमानो व्रह्मपूतो व्रह्मभूतो व्राह्मणः शास्त्रमनुवर्तमानो व्रह्मलोकमभिजयतीति विज्ञायते।। व्रह्मलोकमभिजयतीति विज्ञायते।। २४।।

व्रह्मपूतः सावित्र्या पूतः। व्रह्मभूतः शब्दव्रह्मप्रणवमापन्नः।।

आह च–
योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः स्वमूर्तिमानिति।।
विज्ञायते इति श्रुतिसंसूचनम्।। २४।।

अनु०–ब्रह्म से पवित्र हो जाता है-और उसके साथ एकत्व स्थापित कर लेता है। जो ब्राह्मण उपर्युक्त तरह संध्या-उपासना करता है, शास्त्र कहते हैं–उस संध्या उपासक को ब्रह्म लोक मिलता है। ऐसी वेद की मान्यता है।

(अध्याय-चार, खण्ड-सात सम्पूर्ण)

अध्याय-पांच : खण्ड-आठ

अथ हस्तौ प्रक्षाल्य कमण्डलुं मृत्पिण्डं च गृह्य तीर्थं गत्वा त्रिः पादौ प्रक्षालयते त्रिरात्मानम्।। १।।

अथ स्नानविधिरुच्यते इति शेषः। तत्राऽऽरम्भे हस्तयोः प्रक्षालनम्। यद्वा तीर्थे गत्वा हस्तौ प्रक्षाल्येति सम्बन्धः। चशब्दात् गोमयदूर्वादर्भादि च। अनञ्पूर्वे हि समासे क्त्वो ल्यप् भवति, इह तु छान्दसो गृह्येति ल्यबादेशः। तीर्थम्।
नदीषु देवखातेषु तटाकेषु सरस्सु च।
स्नानं समाचरेन्नित्यमुत्स प्रस्रवणेषु च।। इति।।
तथा–
सति प्रभूते पयसि नाऽल्पे स्नायात् कथंचन।
इत्येवञ्जातीयकम्। तत्र गत्वा मृत्पिण्डैकदेशेन कमण्डलूदकेन चैकैकं पादं त्रिस्त्रिः प्रक्षालयते। एवमात्मानमपि। आनर्थक्यदतदङ्गन्यायेनाऽऽत्मनश्शरीरं प्रक्षालयेदिति गम्यताम्।। १।।

अनु०–दोनों हाथ पानी से स्वच्छ करे। कमण्डलु और मिट्टी का ढेला ले। शुद्ध, पवित्र जलाशय पर जाकर मिट्टी और जल से पैरों को साफ करे और अपने शरीर को भी तीन बार शुद्ध करे।

अथ हैके ब्रुवते-श्मशानमापो देवगृहं गोष्ठं यत्र च ब्राह्मणा अप्रक्षाल्य पादौ तन्न प्रवेष्टव्यमिति।। २।।

श्मशानादयः प्रथमान्ताश्शब्दा निर्देशफलाः। प्रातिपदिकार्थे हि प्रथमां स्मरति पाणिनिः। तेषां कर्मत्वख्यापनार्थं तच्छब्दप्रयोगः। द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सूचयतः। तस्मात्प्रक्षाल्यैव प्रवेष्टव्यं श्मशानादीति वाक्यार्थः। 'अर्हे कृत्यतृचश्च' इति स्मरणेन तव्यप्रत्ययादर्हार्थो गम्यते न तु कार्यत्वम्, प्रक्षाल्यैव प्रवेष्टुमर्हतीत्यर्थः।। २।।

अनु०—कुछ लोगों का मानना है- श्मशान, जल, मंदिर और गाय के बाड़े में नहीं जाना चाहिए। इसके साथ ही जहां ब्राह्मण हो, वहां भी पैरों को साफ किए विना न जाए।

अथाऽपोऽभिप्रपद्यते—

हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्यते तीर्थं मे देहि याचितः।
यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः।।
यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम्।
तन्म इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिस्सविता च पुनन्तु पुनः पुनरिति।। ३।।

अथशब्दात्प्रक्षालनानन्तर्यमाह। तत्र गन्धद्वारमित्यृचा गोमयेनात्मानमालेप्यं केचिदिच्छन्ति। हिरण्यशृङ्गमित्यृचोवामदेव ऋषिः। काण्डर्षयो वा विश्वेदेवाः। प्रथमा पुरस्ताद् बृहती, द्वितीया पंक्तिः। उभे अपि लिङ्गोक्तदेवते। तत्र द्वयोरप्ययमर्थः-हिरण्यशृङ्गं हिरण्यशृंगं वरुणं प्रपद्ये त्वां शरणं इत्यध्याहारः। मया याचितस्त्वं मम स्नानाय तीर्थं जलाशयं देहि। वरुणो ह्यपां राजा 'यासां राजा वरुणः' लिङ्गात्। किमतो यदाज्ञया तुभ्यं तीर्थमिति? आह-यन्मयेति। असाधूनामभोज्यान्नानां अन्नं यन्मया भुक्तम्, यो वा मया पापकर्मभ्यः प्रतिग्रहः कृतः, यच्च मया मनोवाक्कायकर्मभिः दुष्कृतं, तत्सर्वं जलाशयस्नानेन इन्द्रादयः पुनन्त्विति यन्मया पुनः पुनः प्रार्थयितुं शक्यते इत्येतदतो भवति।। ३।।

अनु०—पैरों को धोने के बाद हिरण्यशृंग आदि मन्त्रों का जप करते हुए पानी में उतरे। मैं वरुण की शरण में जाता हूं, उसकी सींगें सोने की हैं। हे वरुण! आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें और नहाने के लिए शुद्ध पवित्र जल दें। यदि मैंने दूषित लोगों के घरों का भोजन ग्रहण कर लिया हो या पापी का दान ग्रहण किया हो, मन-वाणी और कर्म से जो पाप हुए हों ऐसे उन पापों से इन्द्र, वरुण, बृहस्पति और सविता मुझे दूर करें, मुझे पवित्र करने की कृपा करें।

अथाऽञ्जलिना उपहन्ति 'सुमित्रा न आप ओषधयस्सन्त्वि' ति।। ४।।

द्विहस्तसंयोगोऽञ्जलिः तेनाऽञ्जलिना जलप्रपदनानन्तरमुपहन्ति गृह्णाति। नः अस्माकं आपश्चौषधयश्च तदुत्पादितास्सुमित्राः सुखहेतवस्सन्त्विति मन्त्रार्थः।। ४।।

अनु०—इसके बाद 'सुमित्रा न आप ओषधयस्सन्तु' का पाठ करे और जल स्वीकार करे।

तां दिशं निरुक्षति यस्यामस्य दिशि द्वेष्यो भवति 'दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म' इति।। ५।।

अस्य स्नातुः द्वेष्यो यस्यां दिशि अस्ति तां दिशं अपोऽभ्युक्षति। यः पुरुषः अस्मान् द्वेष्टि यं वा वयं द्विष्मः तस्मै दुर्मित्रा दुःखहेतवः आपो भूयासुरिति मन्त्रार्थः।।५।।

अनु०—'दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुः योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः' का पाठ करते हुए जल को पृथ्वी पर उस दिशा में गिराए जिस दिशा में उसके शत्रु का वास हो।

अथाऽप उपस्पृश्य त्रिः प्रदक्षिणमुदकमावर्तयति 'यदपां क्रूरं यदनेध्यं यदशान्तं तदपगच्छता' दिति।।६।।

उपस्पर्शनं पाणिप्रक्षालनं आवर्तयति परिभ्रामयति, क्रूरं यदमेध्यं मूत्रादि अशान्तं व्याधिरूपं यदेवञ्जातीयकं अप्सम्बन्धि तत्सर्वमपगच्छतादिति मन्त्राभिप्रायः।।६।।

अनु०—जल से आचमन करे। यदपां क्रूरं यदमेध्यं यदशान्तं तदपगच्छतात्' पढ़ते हुए तीन परिक्रमा पूरी करे। और जल को हाथों से इधर-उधर (आवर्त) करे।

अप्सु निमज्ज्योन्मज्ज्य।।७।।

अनु०—जल में डुबकी मारे और बाहर निकले, आचमन करे।

नाऽप्सु सतः प्रयमणं विद्यते न वासः पल्पूलनं नोपस्पर्शनम्।।८।।

उन्मज्ज्याऽऽचान्तः पुनराचामेदिति सम्बन्धः। निमज्जनमद्भिरात्मनः प्रच्छादनम् उन्मज्जनं ताभ्य आविर्भावः। अत्रोन्मज्जनानन्तरभाविनीं क्रियामनुक्त्वा मनस्याविर्भूतं प्रतिषेधं विस्मरणभयादाचार्य उपदिशति स्म-नाप्सु सत इति। प्रयमणं शौचं मूत्रपुरीषाद्यपनयनलक्षणं पल्पूलनं मलापनयनाय पाणिभ्यामवस्फोटनं, उपस्पर्शनं आचमनम्। एतत्त्रयमप्सु सता न कर्तव्यमित्यर्थः।।७-८।।

अनु०—जल में मल-मूत्र विसर्जन करना निषिद्ध है। वस्त्रों को हाथों से मलकर साफ न करे। और उससे आचमन करना वर्जित है।

यद्युपरुद्धास्स्युरेतेनोपतिष्ठते 'नमोऽग्नयेऽप्युसुमते नम इन्द्राय नमो वरुणाय नमो वारुण्यै नमोऽद्भ्य' इति।।६।।

अनु०—यदि जल चारों ओर से बंधा हो, घिरा हो, तो 'नमोऽग्नयेऽप्सुमते नम इन्द्राय नमो वरुणाय नमो वारुण्यै नमोऽद्भ्यः' से पूजा-अर्चना करे।

उत्तीर्याऽऽचम्याऽऽचान्तः पुनराचामेत्।।१०।।

'तपस्यमवगाहनम्' इत्यस्मिन्नध्याये 'स्रवन्तीष्वनिरुद्धासु' इति निरुद्धास्वप्सु स्नानप्रतिषेध उक्तः। तस्येदानीं प्रायश्चित्तमाह-यद्युपरुद्धास्स्युरेतेनोपतिष्ठते 'नमोऽग्नय' इति। नात्र मन्त्रे तिरोहितं किञ्चिदस्ति। जलाशयादुत्तीर्य प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा

आचामेत्। अप आचम्याऽऽचामेदित्येव सिद्धे आचान्तः पुनरिति चोक्तम्। तस्याऽयमभिप्रायः-मन्त्राचमनं सर्वत्राऽऽचान्त एव कुर्यादिति।। ९-१०।।

अनु०–जल से बाहर आए और आचमन पर आचमन करे।

आपः पुनन्तु पृथिवी पृथिवी पूता पुनातु माम्।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्।।
यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहं स्वाहेति।। ११।।

वामदेव ऋषिः, विश्वेदेवा वा ऋषयः। द्वे अप्येते अनुष्टुभौ आपः प्रार्थ्यन्ते। आपश्शोधयन्तु। इह पृथिवीशब्देन तन्मयं शरीरमुच्यते। ताभिरद्भिः पूतं शरीरं मां पुनातु। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिरिति एकस्मिन् पूजायां बहुवचनमेतत्, वैष्णवान् खनामि' इति यथा। ब्रह्मणस्पतिः पृथिवी पुनात्वित्यर्थः। ब्रह्मपूता बृहस्पतिपूतं शरीरम्, यदुच्छिष्टमन्यत् यदभोज्यं मया भुक्तं यद्वा दुश्चरितं मम सम्बन्धीति शेषः। सर्वं पुनन्तु मां, सर्वस्मादस्मात् मामापः पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहम्। असन्तश्शूद्राः पापकर्माणो वा तत्प्रतिग्रहजातादेनसो मामापः पुनन्त्विति। स्वाहेति प्रदानप्रतिपादक-श्रवणार्थेयमित्यवेहि।। ११।।

अनु०–हे प्रभो! आप जल से पृथिवी पवित्र करें। पवित्र पृथिवी मुझे शुद्ध करे। मुझे ब्रह्मणस्पति पूत करें। ब्रहम शुद्ध करें। जूंठा, ग्रह्णीय भोजन करने से जो मैंने पाप किए हैं अथवा जो पापाचार किए हैं और जिनसे दान नहीं लेना चाहिए, उनसे दान ले लिया हो तो, उसे जल से शुद्ध पवित्र करें।

पवित्रे कृत्वाऽद्भिर्मार्जयति आपो हिष्ठा मयोभुव इति तिसृभिः 'हिरण्यवर्णाश्शुचयः पावका' इति चतसृभिः 'पवमानस्सुवर्चन' इत्येतेनाऽनुवाकेन मार्जयित्वाऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन त्रीन् प्राणायामान् धारयित्वोत्तीर्य वासः पीडयित्वा प्रक्षालितोपवातान्यक्लिष्टानि वासांसि परिधायाऽप आचम्य दर्भेष्वासीनो दर्भान् धारयमाणः प्राङ्मुखस्सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा दशावरम्।। १२।।

पवित्रे इति द्विवचनाद् द्वाभ्यां दर्भाभ्यां मार्जनम्। अन्तर्जलं जलमध्यम्। तेनैव सिद्धे गतग्रहणं जलेनैव सर्वाङ्गीणाच्छादनार्थम्। अघमर्षणं नाम ऋतं च सत्यं च' इति त्र्यृचम्। तेन त्रिः पठितेन एकः प्राणायामो भवति। एवं त्रयः प्राणायामाः। वासःपीडनमिह पितृणां तृप्त्यर्थम्। उपवातं शोषितम्। अक्लिष्टमच्छिद्रम्। बहुवचनादन्तर्वाससो बहिर्वासस उत्तरीयस्य च ग्रहणम् आचमनं मध्याह्नसन्ध्याग्राहकम्। आचमनानन्तरं च सावित्र्याऽभिमन्त्रितानामपामादित्याभिमुखं प्रक्षेपणं सदाचारसिद्धं द्रष्टव्यम्। अपरिमितं उक्तसंख्यातोऽधिकम्।। १२।।

अनु०—कुश से दो पवित्र बनाए। 'आपो हिष्टा मयोभुवः' 'हिरण्य वर्णाशुचयः', पवमानस्सुवर्चन का उच्चारण करते हुए मार्जन करना चाहिए। फिर जल में उतर जाए। 'ऋतं च सत्यं च'...जैसे अघ नाशक मन्त्रों को बोले। तीन प्राणायाम करे। फिर नदी, तालाब के किनारे आकर धुले-निचोड़े एवं सूखे वस्त्र धारण करे। वस्त्र फटे न हों। इसके बाद जल से आचमन करे। कुश के आसन पर बैठे। हाथ में कुश ले। पूर्व की ओर मुंह करे। हजार या सौ बार या अनिश्चित बार या न्यून से न्यून दस गायत्री मंत्र का पाठ करे।

अथाऽऽदित्यमुपतिष्ठते— 'उद्वयं तमसस्परि। उदु त्यम्। चित्रम्। तच्चक्षुर्देवहितम्। य उदगा' दिति।। १३।।

ऋज्वेतत्।। १३।।

अनु०—इसके बाद 'उद्वयं तमसस्परि', 'उदुत्यं', 'चित्रम्', 'तच्चक्षुर्देवहितम्', 'य उदगात्' मन्त्रों से सूर्य की अर्चना करनी चाहिए।

अथाऽप्युदाहरन्ति-

प्रणवो व्याहृतयस्सावित्री चेत्येते पञ्च ब्रह्मयज्ञा अहरहर्ब्राह्मणं किल्बिषात् पावयन्ति।। १४।।

यज्ञशब्देन जपो लक्ष्यते। आह च प्रणवादीन् प्रक्रम्य—
विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुणं साहस्रो मानसः स्मृतः।।
इत्यादि। तुल्यवत्प्रसंख्यानात् प्रणवव्याहृतीनामपि सावित्र्याः पुरस्तात् प्रयोगोऽवगम्यते। अहरहरिति नित्यस्नानार्थतामाह। किल्विषं पापम्।। १४।।

अनु०—इस सम्बन्ध में यह प्रमाण है—

ब्राह्मण प्रतिदिन प्रणव, व्याहृतियां, सावित्री मंत्र से ब्रह्मयज्ञ करे तो पाप से छूट जाता है।

पूतः पञ्चभिर्ब्रह्मयज्ञैरथोत्तरं देवतास्तर्पयति।। १५।।

अतिरोहितार्थमेतत्।। १५।।

अनु०—वह इन ब्रह्मयज्ञों से शुद्ध-पवित्र होता है और फिर वह देवताओं को तर्पण से तृप्त करता है।

(खण्ड-आठ सम्पूर्ण)

खण्ड-नौ

अग्निः प्रजापतिस्सोमो रुद्रोऽदितिर्बृहस्पतिस्सर्पा इत्येतानि प्राग्द्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि।। ओं वसूंश्च तर्पयामि।।१।।

अनु०–मैं अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, प्राग्द्वार के समस्त देवता, नक्षत्र, ग्रह, दिन और रात का मुहूर्तों के संग तर्पण अर्पित कर रहा हूं, वसुओं को तर्पण कर रहा हूं।

पितरोऽर्यमा भगस्सविता त्वष्टा वायुरिन्द्राग्नी इत्येतानि दक्षिणद्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि।। ओं रुद्रांश्च तर्पयामि।।२।।

अनु०–मैं पितर, अर्यमा, भग, सविता, त्वष्टा, वायु, इन्द्र, अग्नि ये दक्षिण द्वार के देवता हैं, इनके साथ-साथ नक्षत्र, ग्रह, दिन-रात का मुहूर्तों के संग तर्पण करता हूं। रुद्रों को तृप्त करता हूं।

मित्र इन्द्रो महापितर आपो विश्वेदेवा ब्रह्मा विष्णुरित्येतानि प्रत्यग्द्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि।। ओं आदित्यांश्च तर्पयामि।।३।।

अनु०–मित्र, इन्द्र, महापिता, आपः, विश्वेदेवा, ब्रह्मा, विष्णु पश्चिम द्वार के इन देवताओं के साथ नक्षत्र, ग्रह, दिन-रात, का मुहूर्त के संग तर्पण कर रहा हूं।

वसवो वरुणोऽजएकपादहिर्बुध्न्यः पूषाऽश्विनौ यम इत्येतान्युदग्द्वाराणि दैवतानि सनक्षत्राणि सग्रहाणि साहोरात्राणि समुहूर्तानि तर्पयामि।।४।।

अनु०–वसु, वरुण, अज, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनौ और यम इन उत्तर द्वार के देवताओं के साथ एवं ग्रह, नक्षत्र, दिन-रात का मुहूर्त के साथ तर्पण करता हूं।

ओं विश्वान् देवांस्तर्पयामि साध्यांस्तर्पयामि। ब्रह्माणं तर्पयामि। प्रजापतिं तर्पयामि। चतुर्मुखं तर्पयामि। परमेष्ठिनं तर्पयामि। हिरण्यगर्भं तर्पयामि। स्वयम्भुवं तर्पयामि। ब्रह्मपार्षदांस्तर्पयामि। ब्रह्मपार्षदींश्च तर्पयामि।। अग्निं तर्पयामि। वायुं तर्पयामि। वरुणं तर्पयामि। सूर्यं तर्पयामि। चन्द्रमसं तर्पयामि। नक्षत्राणि तर्पयामि। ज्योतींषि तर्पयामि। सद्योजातं तर्पयामि। ओं भूः पुरुषं तर्पयामि। ओं भुवः पुरुषं तर्पयामि। ओं सुवः पुरुषं तर्पयामि। ओं भूर्भुवस्वः पुरुषं तर्पयामि। ओं भूस्तर्पयामि। ओं भुवस्तर्पयामि। ओं सुवस्तर्पयामि। ओं महस्तर्पयामि। ओं जनस्तर्पयामि। ओं

तपस्तर्पयामि। ओं सत्यं तर्पयामि।। ओं भवं देवं तर्पयामि। ओं शर्वं देवं तर्पयामि। ओमीशानं देवं तर्पयामि। ओं पशुपतिं देवं तर्पयामि। ओं रुद्रं देवं तर्पयामि। ओमुग्रं देवं तर्पयामि। ओं भीमं देवं तर्पयामि। ओं महान्तं देवं तर्पयामि। ओं भवस्य दवेस्य पत्नीं तर्पयामि। ओं शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ओमीशानस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ओं पशुपतेर्देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ओं रुद्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ओमुग्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ओं भीमस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि। ओं महतो देवस्य पत्नीं तर्पयामि।।५।।

अनु०—मैं समस्त देवताओं सान्ध्यों को तृप्त करता हूं। मैं ब्रह्म, प्रजापति, चतुर्मुख, परमेष्ठी, हिरण्यगर्भ, स्वयंभू, ब्रह्मपार्षद, ब्रह्मपार्षदी, अग्नि, वायु, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ज्योति, सद्योजात, भूः पुरुष, भुवः पुरुष, सुवः पुरुष, भूः भुवः स्वः पुरुष, भूः भुवः सुवः मह, जन, तप, सत्य, भव, भवदेव, रुद्रदेव, शर्वदेव, ईशान देव, पशुपति देव, रुद्रदेव, उग्रदेव की भीमदेव और महतदेव और उनकी पत्नियों को तृप्त करता हूं।

ओं भवस्य देवस्य सुतं तर्पयामि। ओं शर्वस्य देवस्य सुतं तर्पयामि। ओमीशानस्य देवस्य सुतं तर्पयामि। ओं पशुपतेर्देवस्य सुतं तर्पयामि। ओं रुद्रस्य देवस्य सुतं तर्पयामि। ओमुग्रस्य देवस्य सुतं तर्पयामि। ओं भीमस्य देवस्य सुतं तर्पयामि। ओं महतो देवस्य सुतं तर्पयामि। ओं रुद्रांस्तर्पयामि। रुद्रपार्षदाँस्तर्पयामि। रुद्रपार्षदींश्च तर्पयामि।।६।।

अनु०—मैं भवदेव सुत, शर्वदेव सुत, ईशानदेवसुत, पशुपतिदेव सुत, रुद्रदेव सुत, उग्रदेव सुत, भीमदेव सुत, महतदेव सुत और रुद्रों को तृप्त करता हूं। रुद्रपार्षदों और रुद्रपार्षदी को तृप्त कर रहा हूं।

ओं विघ्नं तर्पयामि। विनायकं तर्पयामि। वीरं तर्पयामि। शूरं तर्पयामि। वरदं तर्पयामि। हस्तिमुखं तर्पयामि। वक्रतुण्डं तर्पयामि। एकदन्तं तर्पयामि। लम्वोदरं तर्पयामि। गणपतिं तर्पयामि। विघ्नपार्षदांस्तर्पयामि। विघ्नपार्षदींश्च तर्पयामि।।७।।

अनु०—मैं विघ्न, विनायक, वीर, शूर, वरद, हस्तिमुख, वक्रतुण्ड, एकदंत, लम्वोदर, गणपति, विघ्नपार्षद, विघ्नपार्षदी को तृप्त करता हूं।

ओं सनत्कुमारं तर्पयामि। स्कन्दं तर्पयामि। इन्द्रं तर्पयामि। षष्ठीं तर्पयामि। षण्मुखं तर्पयामि। विशाखं तर्पयामि। जयन्तं तर्पयामि। महासेनं तर्पयामि। स्कन्दपार्षदांस्तर्पयामि। स्कन्दपार्षदींश्च तर्पयामि।।८।।

अनु०—मैं सनत्कुमार, स्कन्द, इन्द्र, षष्ठी, षण्मुख, विशाख, जयन्त, महासेन, स्कन्दपार्षद, स्कन्दपार्षदी को तृप्त करता हूं।

ओमादित्यं तर्पयामि। सोमं तर्पयामि। अङ्गारकं तर्पयामि। बुधं तर्पयामि। वृहस्पतिं तर्पयामि। शुक्रं तर्पयामि। शनैश्चरं तर्पयामि। राहुं तर्पयामि। केतुं तर्पयामि।९।।

अनु०–आदित्य, सोम, अङ्गारक, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैचर, राहु, केतु के निमित्त तर्पण करता हूं।

ओं केशवं तर्पयामि। नारायणं तर्पयामि। माधवं तर्पयामि। गोविन्दं तर्पयामि। विष्णुं तर्पयामि। मधुसूदनं तर्पयामि। त्रिविक्रमं तर्पयामि। वामनं तर्पयामि। श्रीधरं तर्पयामि। हृषीकेशं तर्पयामि। पद्मनाभं तर्पयामि। दामोदरं तर्पयामि। श्रियं देवीं तर्पयामि। सरस्वतीं देवीं तर्पयामि। पुष्टिं देवीं तर्पयामि। तुष्टिं देवीं तर्पयामि। वैनतेयं तर्पयामि। विष्णुपार्षदांस्तर्पयामि। पार्षदींश्च तर्पयामि।।१०।।

अनु०–केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, श्रियदेवी, सरस्वती देवी, पुष्टिदेवी, तुष्टिदेवी वैनतेय, विष्णुपार्षद और पार्षदी को तर्पण दे रहा हूं।

ओं यमं तर्पयामि। यमराजं तर्पयामि। धर्मं तर्पयामि। धर्मराजं तर्पयामि। कालं तर्पयामि। नीलं तर्पयामि। मृत्युं तर्पयामि। अन्तकं तर्पयामि। चित्रं तर्पयामि। चित्रगुप्तं तर्पयामि। औदुम्वरं तर्पयामि। वैवस्वतं तर्पयामि। वैवस्वतपार्षदांस्तर्पयामि। वैवस्वतपार्षदींश्च तर्पयामि।।११।।

अनु०–यम, यमराज, धर्म, धर्मराज, काल, नील, मृत्यु, अन्तक, चित्र, चित्रगुप्त, औदुम्बर, वैवस्वत, वैवस्वत पार्षद और वैवस्वत पार्षदी को तृप्त करता हूं।

भरद्वाजं तर्पयामि। गौतमं तर्पयामि। अत्रिं तर्पयामि। आङ्गिरसं तर्पयामि। विद्यां तर्पयामि। दुर्गां तर्पयामि। ज्येष्ठां तर्पयामि। धान्वन्तरिं तर्पयामि। धान्वन्तरिपार्षदांस्तर्पयामि। धान्वन्तरिपार्षदींश्च तर्पयामि।।१२।।

अनु०–भरद्वाज, गौतम, अत्रि, आङ्गिरस, विद्या, धान्वन्तरि पार्षद, धान्वन्तरि पार्षदी को तृप्त कर रहा हूं।

अथ निवीती।।१३।।

अनु०–यज्ञोपवीत को गले के चारों ओर लटकाए।

ओमृषींस्तर्पयामि। परमर्षींस्तर्पयामि। महर्षींस्तर्पयामि। व्रह्मर्षींस्तर्पयामि। देवर्षींस्तर्पयामि। राजर्षींस्तर्पयामि। श्रुतर्षींस्तर्पयामि। जनर्षींस्तर्पयामि। तपर्षींस्तर्पयामि। सत्यर्षींस्तर्पयामि। सप्तर्षींस्तर्पयामि। काण्डर्षींस्तर्पयामि। ऋषिकांस्तर्पयामि। ऋषिपत्नीस्तर्पयामि। ऋषिपुत्रांस्तर्पयामि। ऋषिपौत्रांस्तर्पयामि। काण्वं बौधायनं तर्पयामि।

आपस्तम्वं सूत्रकारं तर्पयामि। सत्याषाढं हिरण्यकेशिनं तर्पयामि। वाजसनेयिनं याज्ञवल्क्यं तर्पयामि। आश्वलायनं शौनकं तर्पयामि। व्यासं तर्पयामि। वसिष्ठं तर्पयामि। प्रणवं तर्पयामि। व्याहृतीस्तर्पयामि। सावित्रीं तर्पयामि। गायत्रीं तर्पयामि। छन्दांसि तर्पयामि। ऋग्वेदं तर्पयामि। यजुर्वेदं तर्पयामि। सामवेदं तर्पयामि। अथर्ववेदं तर्पयामि। अथर्वाङ्गिरसं तर्पयामि। इतिहासपुराणानि तर्पयामि। सर्पवेदास्तर्पयामि सर्पदेवजनांस्तर्पयामि। सर्वभूतानि तर्पयामि।। १४।।

अनु०—ऋषि, परमर्षि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, श्रुतर्षि, जनर्षि, तपर्षि, सत्यर्षि, सप्तर्षि, काण्डर्षि, ऋषि, ऋषिपत्नी, ऋषिपुत्र, ऋषिपौत्र, काण्व बौधायन, आपस्तम्ब सूत्रकार, सत्याषाढ़ हिरण्यकेशी, वाजसनेयि याज्ञवल्क्य, आश्वलायन शौनक, व्यास, वसिष्ठ, प्रणव, व्याहृति, सावित्री, गायत्री छन्द, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, अथर्व, आङ्गिरस, इतिहास पुराण सर्पवेद सर्वदेव जन एवं समस्त भूतों को तृप्त करता हूं।

(खण्ड-नौ सम्पूर्ण)

खण्ड-दस

अथ प्राचीनावीती-ओं पितॄन् स्वधा नमस्तर्पयामि। पितामहान् स्वधा नमस्तर्पयामि। प्रपितामहान् स्वधा नमस्तर्पयामि। मातॄस्स्वधा नमस्तर्पयामि। पितामहीस्स्वधा नमस्तर्पयामि। प्रपितामहीस्स्वधा नमस्तर्पयामि। मातामहान् स्वधा नमस्तर्पयामि। मातुः पितामहान् स्वधा नमस्तर्पयामि। मातुःप्रपितामहान् स्वधा नमस्तर्पयामि। मातामहीस्स्वधा नमस्तर्पयामि। मातुः पितामहीस्स्वधा नमस्तर्पयामि। मातुःप्रपितामहीस्स्वधा नमस्तर्पयामि।। १।।

अनु०—पितर, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामही, मातुरपितामह, माता, प्रपितामह, मातामही, मातुःपितामही, मातुःप्रपितामही को प्रचीनवीती होकर स्वधा और तर्पण अर्पित करता हूं।

ओमाचार्यान्स्वधा नमस्तर्पयामि। आचार्यपत्नीः स्वधा नमस्तर्पयामि। गुरून्स्वधा नमस्तर्पयामि। गुरुपत्नीस्स्वधा नमस्तर्पयामि। सखीन्स्वधा नमस्तर्पयामि। सखिपत्नीस्स्वधा नमस्तर्पयामि। ज्ञातिन्स्वधा नमस्तर्पयामि। ज्ञातिपत्नीस्स्वधा नमस्तर्पयामि। अमात्यान् स्स्वधा नमस्तर्पयामि। अमात्याः स्वधा नमस्तर्पयामि। सर्वान्स्वधा नमस्तर्पयामि। सर्वास्स्वधा नमस्तर्पयामि।। २।।

अनु०—मैं आचार्य, आचार्यपत्नी, गुरु, गुरुपत्नी, सखा, सखीपत्नी, ज्ञाति, ज्ञातिपत्नी, अमात्य, अमात्यपत्नी, सभी को स्वधा एवं तर्पण दे रहा हूं।

अनुतीर्थमप उत्सिञ्चति-ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्य तर्पयत मे पितॄन्। तृप्यत तृप्यतेति।।३।।

अनुतीर्थं तीर्थं प्रति। अनेनैतत् ज्ञापितं भवति-जलतर्पणं भवतीह महदिति ऊर्जं अन्नं अमृतादिपञ्चकम्। यद्यपि कीलालमन्नम्। तथाऽपि परिस्रुतसन्निधानात् यवागूरभिप्रेता। यूयं स्वधा अमृताः स्थ तर्पयत मम पितृपितामहप्रपितामहान्। यूयं च तृप्यत वीप्सावचनमादरार्थम्।।३।।

अनु०—अपने हाथों से तीर्थों को जल अर्पित करे। प्रार्थना करे— हे जल! तुम अन्न लाने वाले हो, अमृत, दूध, घी, यवागू लाते हो। तुम पितरों के लिए अमृत के समान हो। तुम मेरे पितरों को तृप्त कर दो। तुम भी मेरे द्वारा तृप्त हो जाओ, तृप्त हो जाओ।

नैकवस्त्रो नार्द्रवासा देवानि कर्माण्यनु सञ्चरेत्।
पितृसंयुक्तानि चेत्येकेषां पितृसंयुक्तानि चेत्येकेषाम्।।४।।

नाऽऽर्द्रवासाः इति साक्षादार्द्रवासोनिषेधार्थः। अनुसञ्चरेत् अनुतिष्ठेत्। पितृसंयुक्तानि अत्राऽपिशब्दोऽध्याहर्तव्यः।।४।।

अनु०—देवताओं का पूजन एक वस्त्र पहनकर न करे। गीले कपड़े पहने हो तो भी देवताओं का पूजन वर्जित है। पितृ विषयक क्रियाएं भी एक वस्त्र या गीले वस्त्र धारण कर न करे। ऐसा कुछ आचार्यों का विचार है।

(अध्याय-पांच, खण्ड दस-सम्पूर्ण)

अध्याय-छह, खण्ड-ग्यारह

अथेमे पञ्च महायज्ञास्तान्येव महासत्राणि—देवयज्ञः पितृयज्ञो भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति[1]।।१।।

फलत एषां यज्ञानां महत्त्वं न स्वरूपतः, दीर्घकालप्रयोगसामान्याच्च महासत्रसमास्ते। 'देवयज्ञः' इत्यादिसंज्ञाकरणं संव्यवहारार्थम्।।१।।

अनु०—पञ्च महायज्ञ हैं—देव, पितृ, भूत, मनुष्य और ब्रह्मयज्ञ। इनको महासत्र भी कहते हैं।

अहरहस्स्वाहाकुर्यादा काष्ठात् तथैतं देवयज्ञं समाप्नोति।।२।।

अत्र 'देवेभ्यस्स्वाहा' इति मन्त्र उद्धर्तव्यः। द्रव्यमोदनप्रभृति आ काष्ठात् ज्ञेयम्।

---

१. शत. ब्रा. ११/५/६/१, आप. ध. सू. १/१२/१४, १/१३/१

वीप्सावचनं नित्यत्वख्यापनार्थम्। समाप्नोति अनुतिष्ठेत्। एवमुत्तेरष्वपि यथासम्भवं योजना।।२।।

अनु०—नित्य-प्रतिदिन देवताओं को स्वाहा के साथ अग्नि में आहुतियां दे। यदि लकड़ी का एक ही टुकड़ा हो, तो भी उसे अग्नि में समर्पित कर सकते हैं। यह देवयज्ञ होता है।

अहरहस्स्वधाकुर्यादोदपात्रात्तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति।।३।।

'पितृभ्यस्स्वधा नमः' इति मन्त्रोऽध्याहार्यः। उदपात्रं उदकं आज्यौदनप्रभृति तत्पर्यन्तमित्यर्थः।।३।।

अनु०—हर रोज पितरों को स्वधा के साथ जल से पूर्ण पात्र आदि से पूजित करे। यह पितृयज्ञ कहलाता है।

अहरहर्नमस्कुर्यादा पुष्पेभ्यस्तथैतं भूतयज्ञं समाप्नोति।।४।।

'भूतेभ्यो नमः।' इति मन्त्रोद्धारः। एते त्रयो महायज्ञाः वैश्वदेवबलिहरणैरेव सम्पादिता इति। केचित्कर्तव्या इति। एतत्तु युक्तायुक्तया विचारणीयम्।।४।।

अनु०—हर दिन प्राणियों को पुष्प अर्पित करते हुए पूजा करे। यह भूतयज्ञ करने का विधान है।

अहरहर्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं दद्यादा मूलफलशाकेभ्यस्तथैतं मनुष्ययज्ञं समाप्नोति।।५।।

बहुभ्यो दातुं शक्त्यभावे एकस्मा अपि।।५।।

अनु०—मनुष्य यज्ञ करने के लिए हर दिन मनुष्य ब्राह्मणों को मूल,फल और शाक आदि देकर सत्कृत करे।

अहरहस्स्वाध्यायं कुर्यादा प्रणवात्तथैतं ब्रह्मयज्ञं समाप्नोति।।६।।

ब्रह्मयज्ञः कर्तव्यः ब्रह्मैव यज्ञस्य च यागः।।६।।

अनु०—हर दिन वेद का स्वाध्याय प्रणव से शुरू करे। इसे ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है।

स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः।।७।।

ऋज्वेतत्।।७।।

अनु०—वेद का अध्ययन ब्रह्मयज्ञ होता है।

तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहूर्मन उपभृच्चक्षुर्ध्रुवा मेधा स्रुवः

सत्यमवभृथस्स्वर्गो लोक उदयनं यावन्तं ह वा इमां वित्तस्य पूर्णां ददत्स्वर्गं लोकं जयति भूयांसं चाऽक्षय्यं चाऽप पुनर्मृत्युं जयति य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते।। ८।।

उपमेयम्, उपासना वा। तस्मिन् तत्तद्भावयेदित्यर्थः। वाचि जुहूबुद्धिमित्यादि। उदयनं परिसमाप्तिः। एतस्मादपि प्रायणोऽप्युन्नेयः। प्रारम्भापेक्षत्वात् परिसमाप्तेः। तदानीमस्मिन् लोके प्रायणीयबुद्धिः। वित्तस्य वित्तेन धनेन स्वाध्याययज्ञेन स्वाध्याययज्ञमुपासिता जयति ततोऽपि भूयांसमक्षय्यमनन्तमपवर्गं मोक्षमित्यर्थः। अपमृत्युरकालमरणम्।। ८।।

अनु०—स्वाध्याय रूपी ब्रह्मयज्ञ का वाणी जुहू है। मन उसका उपभृत् है। ध्रुवा की जगह चक्षु स्थान लेता है। बुद्धि स्रुवा का कार्य सम्पन्न करती है। अवभृथ सत्य है। स्वर्गलोक का उदयन या यज्ञ की समाप्ति है। धन-धान्य से भरी हुई धरा का दाता को उतना या उससे भी ज्यादा फल प्राप्त होता है जो ज्ञानी, स्वाध्यायी को होता है। उसे मोक्ष मिलता है। उसका पुर्नजन्म नहीं होता है।

तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्य इति हि ब्राह्मणम्।। ६।।

हिशब्दो हेतौ। इत्थं ब्राह्मणस्य भावादित्यर्थः।। ६।।

अनु०—अतः स्वाध्याय करना परम कल्याण कारक है। यह ब्राह्मण का वचन है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

स्वभ्यक्तस्सुहितः सुखे शयने शयानः यं यं क्रतुमधीते तेन तेनाऽस्येष्टं भवतीति।। १०।।

स्वभ्यक्तः तैलादिना। सुहितः तृप्तो भोजनादिना। 'यं यं क्रतुम्' इत्यस्मिन् विधावन्यानर्थक्यप्रसंगात् प्रशंसैषा।। १०।।

अनु०—तेल आदि से मालिश करे। भोजन आदि से सन्तुष्ट हो जाए। और आराम से लेटे। ऐसे में वह जिन-जिन यज्ञों के मन्त्रों का पाठ करता है, उससे उसका अभीष्ट सिद्ध हो जाता है।

तस्य ह वा एतस्य धर्मस्य चतुर्धा भेदमेक आहुरदृष्टत्वात् ये चत्वार इति कर्मवादः।। ११।।

योऽसौ धर्मः श्रुतिस्मृतिशिष्टागमैः प्रसिद्धः तस्यै तस्य धर्मस्य चातुर्विध्यमाश्रमचतुष्टयकृतमिति एके ऋषय आहुः। किमिति ? यावत् दृष्टत्वान्मन्त्रार्थस्य तैः, यं दृष्ट्वैमाहुः। तस्यैतत्प्रतीकग्रहणं ये चत्वार इति। चत्वारोऽप्याश्रमाः देवलोकायनाः पन्थान इत्येव सत्यम्। अयं तावन्मन्त्रः कर्मवादः कर्मभेदमेव करोति नाऽऽश्रमभेदम्।। ११।।

अनु०—कुछ आचार्यों ने इस धर्म के चार प्रकार कहे हैं। परन्तु यह मालूम न चले तो ये भेद यज्ञ सम्बन्धी कर्मों में समझे चाहिए।

ऐष्टिकपाशुकसौमिकदार्वीहोमाणाम् ।। १२ ।।

स्वार्थ एवाऽत्र तद्धितः ।। १२ ।।

अनु०—ये भेद हैं— ऐष्टिक, पशु, सोम और दार्वीहोम।

तदेषाऽभिवदति— 'ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति। तेषां यो अज्यानिमजीतिमावहात्तस्मै नो देवाः परिदत्तेह सर्व' इति ।। १३ ।।

तत्कर्मचातुर्विध्यमृगेषाऽभिवदति। कथम्? ऋषिर्वामदेवः त्रिष्टुप्छन्दः नवसस्यानि देवता। अज्यानिहोमे तदुपधाने च विनियोगः। य इमे चत्वारः पथयः पन्थानः देवो देवलोकः। भीमो भीमसेन इतिवत् तद्गमनहेतवः। ऐष्टिकादयः द्यावापृथिव्योरन्तरा मध्ये वियन्ति विविधं गच्छन्ति विदिता इत्यर्थः। तेषामिति कर्मणि षष्ठी। तानि अज्यानिमजीतिं क्रियाविशेषणे। अज्यानिं अहानिं अविगुणं अजीतिं मध्य य आवहात् आवहेत् अनुतिष्ठेत्। तस्मै नः अस्माकं मध्ये सस्यानि हे सर्वे देवाः परिदत्त प्रयच्छत श्रौतकर्मानुष्ठाने निःश्रेयसं दत्तेति मन्त्रार्थः। तदेतदैकाश्रम्ये सत्युपपद्यते। नाऽऽश्रमचातुर्विध्ये। कथम्? तदाहि गृहस्थ एव स्यात्। तत्र च गृहस्थो वैदिकैः कर्मभिरधिक्रियते नेतरे। तदेतदैकाश्रम्ये उपपन्नं भवति। ननु भेदपक्षेऽपि गृहस्थो वैदिकानि करोत्येव। सत्यं, अल्पविषयत्वं तदा शास्त्रस्य स्यात्। सर्वाधिकारं चेदं कर्मशास्त्रं विना कारणेन न बाधितुं युक्तम् ।। १३ ।।

अनु०—इस मंत्र में कहा गया है- आकाश और पृथिवी के मध्य से भिन्न-भिन्न ओर से चार मार्ग देवलोक को जाते हैं। ऐसे उन मार्गों में भी जो सर्वाधिक और निरन्तर समृद्धि दायक हो, देवता वह मार्ग हमें सुझाए।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वानप्रस्थः परिव्राजक इति ।। १४ ।।

ब्रह्मचार्यत्र नैष्ठिको गृह्यते। नोपकुर्वाणः ।। १४ ।।

अनु०—आश्रम चार हैं— ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक आश्रम।

ब्रह्मचारी गुरुशुश्रूष्यामरणात् ।। १५ ।।

शुश्रूषाऽस्मिन्नस्तीति शुश्रूषी। आ मृत्योः गुरुकुले वसेत्। ये पुनरग्नीन्धनादयो धर्मा उपकुर्वाणस्योक्ताः तेऽप्यस्य विद्यन्त एव ।। १५ ।।

अनु०—गुरु की मृत्यु पर्यन्त सेवा करे।

वानप्रस्थो वैखानसशास्त्रसमुदाचारः ।। १६ ।।

अनु०—वानप्रस्थ आश्रम में विखनस ऋषि द्वारा बताए गए नियमों का पालन करे।

वैखानसो वने मूलफलाशी तपश्शीलः सवनेषूदकमुपस्पृशञ्छ्रामणकेनाऽग्नि-माधायाऽग्राम्यभोजी देवपितृभूतमनुष्यर्षिपूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्षमप्युपयुञ्जीत न फालकृष्टमधितिष्ठेद् ग्रामं च न प्रविशेज्जटिलश्चीराजिनवासा नाऽतिसंवत्सरं भुञ्जीत।। १७।।

वने प्रतिष्ठित इति वानप्रस्थः। वैखानसोऽपि वानप्रस्थ एव। संज्ञान्तरकरणं तु संव्यवहारार्थम्। विखनसा ऋषिणा प्रोक्तं वैखानसशास्त्रम्। तत्र हि बहवो धर्मा वानप्रस्थस्योक्ताः 'ग्रीष्मे पञ्चतपाः' इत्यादयः। समुदाचारः समाप्ताचार इत्यर्थः। वने मूलफलान्यश्नन् प्रतिषिद्धानि परिहरेत्। तपश्शीलः तपःपरः। सवनेषूदकोपस्पर्शनं त्रिषवणस्नानम्। श्रामणो नामाऽऽधानविधिरस्ति वैखानसशास्त्रे। तेनाग्निमाधाय जुहुयादिति शेषः। ग्रामे भवमन्नं ग्राम्यं व्रीह्यादिप्रभवं तन्न भवतीति अग्राम्यं श्यामाकाद्यारण्यौषधिप्रभवम्। तद्भोजी स्यात्। मूलफलैः प्राणधारणाशक्तावेतद्विज्ञेयम्। देवादिपूजा च तेनैवाऽन्नेन यथासम्भवं कार्या। सर्वातिथ्यमादायाऽऽगतोऽतिथिः सर्वातिथिस्तं तेनैव पूजयेदित्यर्थः। तत्राऽपि प्रतिषिद्धवर्जं, प्रतिषिद्धः पतितादिः। व्याघ्रादिहतं मांसं कुद्दालादिनाऽनार्जितं मूलादि वा। फालकृष्टप्रतिषेधादफालकृष्टाधिष्ठाने न दोषः। ग्रामो वाससमुदायः। चशब्दान्मनुष्यसमुदायश्च। जटिलः अलुप्तकेशः अप्रसाधितकेशश्च। चीरवासा अजिनवासाश्च। चीरं वृक्षादानीतं वासः फलजं वा जीर्णम्। अजिनं व्याघ्रादिचर्म। चीराजिनयोर्विधानात् समुच्चयो गम्यते। तत्र चैकमधोवासोऽपरमुत्तरीयम्। अतिसांवत्सरिकं संवत्सरमतिक्रान्तमन्नं न भुञ्जीत। अनेनैतद् गम्यते तावन्तं कालं सञ्चयो द्रव्यस्याऽस्तीति।। १६-१७।।

अनु०—वानप्रस्थी वन में रहे। कन्दमूल फल को खाए। तपस्या में जीवन बिताए। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल नहाए। वैखानस शास्त्र में जैसे अग्नि का आधान बताया है, वैसे ही करे। गांव में पैदा हुई भोज्य सामग्री का सेवन निषिद्ध है। वनस्पति को ही खाए। देव, पितृ एवं प्राणी, मनुष्य और ऋषि का आदर-सत्कार करे। वह समस्त वर्णों के पुरुषों का आतिथ्य करे। जिनसे सम्पर्क-व्यवहार की मनाही हो, उनसे दूर रहे। व्याघ्र आदि पशु जिन पशुओं को मार दे, उन मरे हुए पशुओं का मांस खा सकते हैं। जिस भूमि को जोता जा चुका है, उसमें कदम न रखे। गांव में न जाए। जटा बढ़ाए। वृक्ष छाल और मृग का चर्म वस्त्र के स्थान पर धारण करे। एक वर्ष से अधिक अवधि तक जो अन्न संचित किया गया हो, वह अन्न असेवनीय होता है।

परिव्राजकः परित्यज्य वन्धूनपरिग्रहः परिव्रजेद्यथाविधि।।१८।।

बन्धवो मातापितृव्यतिरिक्ताः योनिसम्बन्धिनः। कुत एतद् गम्यते? 'न कदाचिन्मातापित्रोश्शुश्रूषा' इति विशेषवचनारम्भसामर्थ्यात्। तादात्त्विकौपयिकादधिकः परिग्रहः। तथा च गौतमः-'अनिचयो भिक्षुः' इति। परितो ग्रहणं परिग्रहः परिस्सर्वतोभावे। सर्वैर्वर्णैर्दत्तः परिग्रहः। प्रशस्तब्राह्मणकुले भिक्षेतेति यावत्। परिव्रजेत् संन्यसेत् यथाविधि। विधिश्च वक्ष्यते-'अथाऽतः संन्यासविधिम्' इति।।१८।।

अनु०—संन्यासी अपने माता-पिता बन्धु-बांधवों का त्याग कर दे। सम्पत्ति लिए वगैर ही घर-बार छोड़कर जंगल की राह ले।

अरण्यं गत्वा।।१६।।

तत्र वसेदिति शेषः।।१६।।

अनु०—वन में रहे।

शिखामुण्डः।।२०।।

शिखाव्यतिरिक्तं शिरो मुण्डितं यस्येति विग्रहः।।२०।।

अनु०—सिर के केशों को मुंडवा दे, केवल शिखा रखे।

कौपीनाच्छादनाः।।२१।।

परिव्राजकाः स्युरिति शेषः। कौपीनमाच्छादनं येषामति 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति कर्मणि ल्युट्। कुत्सितमाच्छादनं कौपीनमिति वैयाकरणाः। सोऽयंव्यञ्जनप्रदेशे उक्तः। तथा च गौतमः-'कौपीनाच्छादनार्थं वासो बिभृयात्प्रहीणमेके निर्णिज्य' इति।।२१।।

अनु०—गुप्त अंगों को ढकने मात्र के लिए कौपीन पहने।

वर्षास्वेकस्थः।।२२।।

*वर्षा नाम ऋतुः। तस्मिन्नेकस्मिन्नेव देशे तिष्ठेत्। '**ध्रुवशीलो वर्षासु**' इति गौतमः।।२२।।*

अनु०—वर्षा ऋतु में ही वह एक स्थान पर रह सकता है।

काषायवासाः।।२३।।

कषायेण रक्तं काषायम्।।२३।।

अनु०—काषाय रंग के कपड़े पहने।

सन्नमुसले व्यङ्गारे निवृत्तशरावसम्पाते भिक्षेत।।२४।।

सन्नं मुसलं यस्मिन् काले निवृत्तमुसलव्यापारे इति यावत्। व्यङ्गारे विगताश्शान्ता

अङ्गारा यस्मिन्। शरावो भोजनपात्रोपलक्षणार्थः। सम्पातस्सम्मार्जनं उच्छिष्टावमार्जने वृत्ते इत्यर्थः। एतैर्विशेषणैरपराह्ण उपलक्ष्यते। आह च–

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्।। इति।। २४।।

अनु०–मूसल चलना वंद हो जाए, चूल्हा बुझ जाए, भोजन के पात्र साफ किए जा चुके हों, तव संन्यासी भिक्षा के लिए निकले।

वाङ्मनःकर्मदण्डैर्भूतानामद्रोही।। २५।।

दण्डो दमनादित्याहः-वागादिभिर्भूतानि न दमयेत्। अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादिति यावत्।। २५।।

अनु०–मन, वाणी और कर्म का संयमन करे। किसी भी जीव-जन्तु को पीड़ा न पहुंचाए।

पवित्रं विभृयाच्छौचार्थम्।। २६।।

पवित्रं कुशमुष्टिः पञ्चमुष्टिर्वा जलपवित्रं बिभ्रद्वर्तेति शेषः। तद्भरणं चाऽऽत्मशुद्ध्यर्थं देहाद्देशाद्वा जन्तूनां शोधनार्थम्।। २६।।

अनु०–जल छानने के निमित्त पवित्र (कपड़ा) अपने पास रखे।

उद्धृतपरिपूताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात्।। २७।।

कार्यं मूत्रपुरीषप्रक्षालनम्, न त्वाचमनम्।। २७।।

अनु०–कुंआ, तालाब, नदी आदि से निकाले हुए जल को छाने और उससे शुद्धि कर्म करे।

अपविध्य वैदिकानिं कर्माण्युभयतः परिच्छिन्ना मध्यमं पदं संश्लिष्यामह इति वदन्तः।। २८।।

अस्माल्लोकादमुष्माच्च उभयतः परिच्छिन्नाः विच्छिन्नाः भ्रष्टा वयमस्मै वै लोकाय प्रजोत्पादनं अमुष्मै वैदिकानि कर्माण्यग्निहोत्रादीनि। उभयं च गार्हस्थ्यनिबन्धनं 'मनुष्यलोकः पुत्रेण जय्यः नान्येन कर्मणा पितृलोकः' इति श्रुतेः पितृलोकः देवलोकः। तस्मादुभयभ्रष्टा वयं, गर्भस्थानावलुम्पनात्। अतो वयं मर्त्या मध्यमं पदं सर्वभूतान्तर्गत पद्यते गम्यते तदुपासकैरिति पदं आत्मानं संश्लिष्यामहे।। २८।।

अनु०–वेद वर्जित कार्यों को छोड़ दे। लोक-परलोक से अपना सम्वन्ध विच्छेद करे। 'हम मध्यम पद से ब्रह्म के साथ सम्वन्ध जोड़े' उसे ऐसा कहना चाहिए।

एकाश्रम्यं त्वाचार्या अप्रजननत्वादितरेषाम्।। २९।।

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति। यदुक्तं 'चतुर्धा भेदमेक आहुः' इति तन्न, ऐकाश्रम्यं एकश्चाऽसावाश्रमश्च तद्भाव ऐकाश्रम्यम्। तच्च गार्हस्थ्ये। नैव पारिव्रज्यादीनामन्यतम इत्याचार्यो मन्यते स्म। कुतः? अप्रजननत्वादितरेषां पारिव्राज्यादीनाम्। प्रत्यक्षश्रुतिविधानाच्च गार्हस्थ्यस्य 'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः' तस्मात्प्रजननं परमं वदन्ति इत्येवमादिना। तथा 'यावज्जीवं जुहुयात्,' 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' 'तं यज्ञपात्रैर्दहन्ति' इति च। नन्वितरेषामपि प्रत्यक्षश्रुतिविधानमस्ति। तथा च छान्दोग्ये धर्मस्कन्धश्रुतिः—'त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलावासी तृतीयः' इति। तपश्शब्देनाऽत्र तापसपरिव्राजकयोर्ग्रहणम्। सत्यं यद्यत्र विधिप्रत्ययोऽस्ति स तावन्नास्ति। नाऽप्यध्याहारः' अनुपत्तेरभावात्। प्रणवस्य स्तुत्यर्थत्वात्तेषामुपादानस्य। तस्मादैकाश्रम्यमेव साधीयः। अपि च अप्रजननत्वादितरेषाम्। प्रजननमत्र पुत्रोत्पत्तिः। सा चेतरेषां नाऽस्ति। तया चाऽवश्यं भवितव्यमित्युक्तं 'प्रजातन्तुम्' इत्यादि श्रुतिप्रदर्शनेनेत्याह।। २९।।

अनु०—किन्तु आचार्यों का कहना है कि आश्रम केवल एक ही है। क्योंकि अन्य आश्रमवासी सन्तान की उत्पति नहीं कर सकते।

तत्रोदाहरन्ति- प्राह्लादिर्ह वै कपिलो नामाऽसुर आस। स एतान् भेदांश्चकार देवैस्सह स्पर्धमानस्तान् मनीषी नाऽऽद्रियेत।। ३०।।

सैषा श्रौतगार्हस्थ्यस्य प्रशंसा स्मार्तेतराश्रमाभावादेव। प्रह्लादस्यापत्यं प्राह्लादिः। भेदान् आश्रमाणाम्। देवस्पर्धयाऽसुरेण यस्मात्कृता आश्रमभेदाः तस्मात् तान् मनीषी नाऽऽद्रियेत। मनीषी मनस्वी प्राज्ञ इत्यनर्थान्तरम्।। ३०।।

अनु०—इस सम्बन्ध में उदाहरण देते हैं—कपिल नामक एक असुर था। प्रह्लाद का बेटा था। उसने देवताओं से स्पर्धा की! और आश्रम भेद की रचना की। बुद्धिमान आश्रम भेदों को सम्मान से नहीं देखते।

अदृष्टत्वात्। 'ये चत्वार' इति कर्मवाद ऐष्टिकपाशुकसौमिकदार्वीहोमाणाम्।। ३१।।

निगमनार्थः पुनरुपन्यासः। अतोऽप्रजननत्वादितरेषां प्रत्यक्षश्रुतिविधानाच्च गार्हस्थ्यस्यैकाश्रम्यमेव निःश्रेयसकरम्। उक्तं च—'गृहस्थोपि विमुच्यते' इति।

स्यादेतत्—नैव हि कर्मणां मोक्षोपायत्वमस्ति, प्रमाणाभावात्। न तावत्प्रत्यक्षं प्रमाणम्, विद्यमानोपलम्भनत्वात्तस्य। नाऽप्यनुमानम्, सम्बन्धग्रहणाभावात्। न खल्वपि शब्दः। कथम्? लौकिकस्तावत् मूलज्ञानाभावादसमर्थः। वेदवाक्यानि पुनः प्रातिस्विकफलदायीनि कर्माणीति श्रूयन्ते। यदपि 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनस्सुकृतं भवति' इति तदेतदपि चिरेण क्षयमालोच्य भवतीति। यथा नक्तं संस्थापनवचनं

'असंस्थितो हि तर्हि यज्ञ' इति चिरेण संस्थामालोच्य, तद्वदेवाऽऽपातत:। न कृत्स्नेभ्योऽपि वेदकर्मभ्यो मोक्ष इतीदृशं वाक्यमस्ति। यद्यप्यस्ति तथाऽपि तदन्यार्थत्वेन नेतुं शक्यते। उपमानादि तु दूरोत्सारितम्। यच्च भगवद्गीतासु वचनम्—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:। इति

तदपि सिद्धे सत्युपायत्वे कर्मणोऽवधारणं ब्रूयात्। तदेवाऽद्याप्यसिद्धम्। अतस्तदप्यन्यार्थमेव। तस्मात्कर्मणां न मोक्षोपायत्वे प्रमाणमस्ति। अस्ति तु ज्ञानस्य 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इति।।३१।।

अनु०—ये चत्वार, का अर्थ अस्पष्ट है। अतः वहां इष्टि, विशेष पशु, सोम और दार्वीयज्ञ का अर्थ समझना चाहिए।

तदेषाऽभ्यनूच्यते—एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य। न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्। तस्यैवाऽऽत्मा पदवित्तं विदित्वा। न कर्मणा लिप्यते पापकेनेति।।३२।।

वामदेव ऋषिः काण्ड ऋषिर्वा। त्रिष्टुप्छन्दः। ज्ञानप्रशंसा। एष आत्मेति सम्बध्यते। नित्यो महिमेति पदद्वयं स्वयमेव न्यासविधौ विवरिष्यति 'अपुनर्भवं नयतीति नित्यो, महदेनं गमयतीति महिमा। यद्वा—नित्यस्सर्वदा सः। महिमा महान् सर्वत्राऽस्तीति स एष परमात्माऽभिप्रेतः। ब्राह्मणस्येति जात्यवच्छिन्नस्सोपाधिकः क्षेत्रज्ञवर्ती च तयोरव्यतिरेकार्थः। परमात्मा न कर्मणा अग्निहोत्रादिना वर्धते तत्फलभुग्भवति। अतस्ततोऽन्यः कर्ता भोक्ता च। तथा-नोऽपि न कनीयान् कर्मणा ब्रह्महत्यादिना निकृष्टो नरकभाग् भवतीत्यर्थः। यतोऽसौ पापमपि न करोति तस्मादेव तस्य ब्राह्मणस्य सोपाधिकस्य, एवशब्दः पादपूरणः, अवधार्याभावात्। तस्याऽऽत्मा परमात्मा पदवित्। पद्यते गम्यतेऽनेनार्थ इति वेदः पदं, अत एव 'नाऽवेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' इत्युक्तम्। सततमात्मानमभेदेन विदित्वा न कर्मणा लिप्यते पापकेन शुभेन च।

तदुक्तम्—

सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न स बध्यते इति।

तथा—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। इति।।३२।।

अनु०—इस प्रसंग में यह उद्धरण आता है- यही महिमा ब्राह्मण में नित्य रूप से रहती है। कर्म से इसे तो बढ़ाया जा सकता है। यह घटता भी नहीं है। आत्मा उस महान तत्व का ज्ञान प्राप्त कर लेती है। पाप कर्मों से आत्मा मुक्त रहती है।

स यत् ब्रूयात् - येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः पिता पुत्रेण पितृमान् योनियोनौ। नाऽवेदविन्मनुते तं बृहन्तं सर्वानुभुमात्मानं साम्पराये इति।।३३।।

स ब्रूयात् परिहारत्वेनाऽधस्तनीमृचमित्यर्थः। सत्यमाह भवान् यदि केवलादेव ज्ञानात् सर्वभेदप्रत्ययनिबर्हणान्मोक्ष इति, न त्वेतदेवम्। अपि कर्मणः। ननु 'एष नित्यो महिमा' इत्युक्तं, सत्यं, ज्ञानात्, तत्तु न कर्म निषेधति। ननु कर्मणां मोक्षं प्रत्यनुपायत्वात् निषेधत्येवेत्युक्तम्। मोक्षानभिज्ञः कर्मद्वेषी देवानां प्रियः। मोक्षेऽपि नाऽऽत्मनश्शरीरपरिग्रहाभावः। स च प्रागभावः प्रध्वंसाभावो वा? न तावदात्मज्ञानेन शरीरं प्रध्वस्तम्, प्रत्यक्षविरोधात्। तदुक्तं 'बुद्धे चेत्क्षेमप्रापणं इहैव न दुःखमुपलभेत' इति। अथ मन्यसे सुखदुःखोपभोगार्थानि देहारम्भकाणि पुण्यापुण्यान्यदृष्टानि कर्माणि क्षीयन्त इति। तदुक्तं-'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे' इति। तदपि न, न हि कर्म क्षीयते फलमदत्त्वेत्याहुः। ननु प्रायश्चित्तेन क्षीयत इति त्वयाऽभ्युपगतमेव। नैतदेवम्, न हि तत्राऽपि चान्द्रायणादिभिः पापकर्मप्रध्वंस्यते। दुःखानुभवप्रकारोऽयं वाचनिकः यथौषधपानम्। यथा चोपवासादिना शुष्कगात्रो ज्वरादिना नाऽभिभूयते तद्वदेतदपि। तदा मोक्षप्रागभाव इति, वदामः। सुखदुःखोपभोगार्थं देहग्रहणम्, तच्च सुखदुःखञ्च काम्यप्रतिषिद्धासेवया नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानाच्च मोक्षसिद्धिः। आहुश्च मीमांसकाः—

नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायजिघांसया।
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः।। इति।।

तद्धेतुकमात्मज्ञानं तदर्थानि चोपनिषद्वाक्यानि। एवमुपपद्यमाने नाऽन्यथा कल्पयितुं युक्तम्। न चाऽऽत्मानं मोक्षयेदेवेति वेदेन चोद्यते—

आत्मा ज्ञातव्य इत्येतन्मोक्षार्थं न च चोद्यते।
कर्मप्रसिद्धिसिद्ध्यर्थं आत्मज्ञानस्य लभ्यते।।

कथं तर्हि? अयं परिहारः-'येन सूर्यः' इति ज्ञानकर्मसमुच्चयाभिधानात् साजात्येन तत् यद्यत्स्यात्। प्रजनने प्रजनन इत्यर्थः। ईदृक्कर्म मोक्षायाऽलं भवतीत्यभिप्रायः। अतो नाऽवेदविद् अवेदार्थवित् तत्कर्मकृच्च मनुमते जानाति कर्मठः परमात्मानं बृहन्तं सर्वानुभवितारं साम्पराये अपवर्गे निमित्तसप्तम्येषा।। ३३।।

अनु०—यदि वह ऐसा कहे, तो उसे ध्यान देना चाहिए, जो वेद के ज्ञान से रहित है। वह मरते समय, समस्त अनुभवों से भरपूर उस आत्मा पर विचार नहीं करता, जिससे सूर्य भासित है, तेजमान होकर प्रकाशित हो रहा है और पिता-पुत्र का योनि से पैदा होने पर उसी के द्वारा पितृमान् बन जाता है।

इमे ये नाऽर्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः। त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञय इति[1]।। ३४।।

बृहस्पत्यार्ष त्रिष्टुप्छन्दः। अज्ञाननिन्दया ज्ञानकर्मप्रशंसा। यत्तदोर्व्यत्यासः कर्तव्यः।

१. ऋ. सं. २/२४/४

इमे जना वाचं वेदं अभिपद्य अधीत्य पापया वाक्प्रतिरूपया धीराः तमसि शेते इति सिरीः शरीरं तन्वते विस्तारयन्ति वेदविप्लवादिना पोषयन्तीत्यर्थः। तत्र कर्म अप्रजज्ञयः अजानन्तः अवेदार्थज्ञा इति यावत्। एते नार्वाङ्न अर्वाञ्चः नाऽपि पराञ्चः चरन्ति उभयभ्रष्टा इत्यर्थः। न ते ब्राह्मणाः नाऽपि सुतेकरासः सुतस्याऽकर्तारः अभिषवाद्यकर्तारः अयष्टारः अप्रजज्ञयो यद्यपि तन्तुं तन्वते तथापि न सुते करासो भवन्ति।। ३४।।

अनु०–जो सही अर्थों में ब्राह्मण नहीं हैं, जो सोमयज्ञ न करे ऐसे आदमी के लिए काम नहीं करते जो उसके निकट होते हैं और न उसके लिए जो दूर हैं। वे इस कथन से युक्त होकर पाप वाली वाणी से यज्ञ सम्पन्न करते हैं।

प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्। जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर् ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति। एवमृण संयोगादीन्यसंख्येयानि भवन्ति।। ३५।।

अमृतत्वं जननमरणशून्यत्वं, मुक्तिरित्यनर्थान्तरम्। आश्रमभेदे सति कथमेवं ब्रूयात्। ऋणवान् अनन्तराः पुत्राणां लोकाः ऋणमस्मिन् सन्नयति। ज्योत्स्ना ह पुत्रं परमे व्योमन्न प्रजात्वति गुण इत्यादि। तस्मादप्यैकाश्रम्यमेव ज्याय॥। ३५।।

अनु०–अग्नि! हम पुत्रों के माध्यम से तुम्हें प्राप्त करें। ब्राह्मण पैदा होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से ऋषि के ऋण से मुक्ति होती है। यज्ञ करने से देव ऋण से मुक्त होते हैं। पितरों के ऋण से तव छुटकारा मिलता है, जब सन्तान की उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकार वेद-शास्त्रों में अनेक जगह ऋण सम्बन्ध चर्चाएं मिलती हैं।

त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजातिं श्रद्धां तपो यज्ञमनुप्रदानम्। य एतानि कुर्वते तैरित्सह स्मो रजो भूत्वा ध्वंसतेऽन्यत्प्रशंसन्निति प्रशंसन्निति।। ३६।।

त्रयाणां वेदानां समाहारस्त्रयी ब्रह्मचर्यमित्यपावरणे तैरेव सह सार्धं स्मः भवामः नान्यैरन्यतरोपासकैर्वा। यस्त्वन्यतरदेवोपास्ते ज्ञानं कर्म वा प्रशंसन् स रजो भूत्वा प्रध्वंसते रजः पापं रजस्वलेति यथा। यद्वा रजस्सूक्ष्माणि चूर्णानि यथा तानि क्वचिदपि नाऽवतिष्ठन्ते तद्वन्नाऽऽस्पदं लभते। अथवा गुणो रजः सत्त्वं रजस्तम इति। अस्मिन् पक्षे मतुपो लोपो द्रष्टव्यः। आहोपुरुपिकयाऽन्यतरदेव प्रशंसन् रजस्वलो भूत्वा ध्वंसते। तस्मात् ज्ञानकर्म समुच्चयस्साधीयान्।

नन्वाश्रमभेदो नाऽस्तीत्युक्तं किमिदं प्रलप्यते त्रयीं विद्यामिति? अविवेकापराधोऽयं नाऽऽयुष्मतो दोषः।

श्रौते नास्तीत्युक्तम्। न पुनस्स्मार्तेऽपि नाऽस्तीति। असंख्येयानि स्मृतिवाक्यानि सन्ति 'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् गृहाद्वा वनाद्वा' 'तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रवत' इति। आह च—

'आश्रमसमुच्चयं द्वितीयं' आयुषो भागं तृतीयम्। इति। तथा चापस्तम्बः-चत्वार आश्रमाः गार्हस्थ्यं आचार्यकुलं मौनं वानप्रस्थ्यमिति। तत्र भेदे सति आश्रमाणां वाधो विकल्पस्समुच्चयो वा सम्भवति। तत्र मानवे बाधपक्षस्सहेतुकः प्रतिपादितः।

सर्वेषामपि चैतेषां वेदश्रुतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठस्स त्रीनेतान् बिभर्ति हि।।

वेदश्रुत्या हि गृहस्थस्य स्त्र्यपादानप्रभृत्याश्मशानकरणात् सर्वं विधीयते स्मृत्या। भाष्यकारोऽपि बहु मन्यते स्माऽस्य च गृहस्थाश्रमस्य वेदे श्रुतिविधानतः श्रैष्ठ्यवचनात्तदविरोधेनाऽऽश्रमान्तरप्रतिपत्तिरवगम्यते इति वदन्। गौतमोऽपि तु शब्देनेतरौ पक्षौ व्यावृत्य सहेतुकममुं पक्षमेवोपसंहृतवान् 'ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थ्यस्य' इति। आचार्याभिप्रायस्तु विस्तरेण प्रदर्शितः। तस्मात् सूक्तं 'ये चत्वारः पथयो देवयाना इति कर्मवादो नाऽऽश्रमवादः' इति।। ३६।।

अनु०—तीन वेदों का अध्ययन करना, ब्रह्मचर्य नियम का पालन करना, पुत्र पैदा करना, श्रद्धा और तप का अनुष्ठान करना, यज्ञ और दान करना जैसे कामों को जो सम्पन्न करे, वे सब हमारे पास रहें। इन्हें छोड़ जो दूसरे कार्यों की सराहना करते हैं, वे धूल में मिल जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय-छह, खण्ड-ग्यारह सम्पूर्ण)

अध्याय-सात : खण्ड-बारह

अथ शालीनयायावराणामात्मयाजिनां प्राणाहुतीर्व्याख्यास्यामः।। १।।

शालीनयायावराश्च गृहस्था एव केनचिद् व्यक्तिविशेषेणोच्यन्ते। 'आत्मयाजी पुनः जीर्णस्स्यात् तस्याऽग्निहोत्रचेष्टायाम्' इत्यनेन विधानेनाऽऽत्मनि समारूढाग्निः 'तस्यैवं विदुषो यज्ञस्याऽऽत्मा यजमानः' इत्यत्रोक्तो वा। एतेषामुपादानं मुनेरपि वक्ष्यमाणेन विधिना भोक्तव्यम्, किमङ्ग पुनरन्यैराश्रमिभिरित्येतत्प्रदर्शयितुम्। प्राणदेवत्या आहुतयः प्राणाहुतयः। प्राणशब्दोऽपानादीनामप्युपलक्षणाय।। १।।

अनु०—अब हम आत्मा में ही अग्नि का आधान कर यज्ञ कराने वाले गृहस्थ एवं यायावरों के प्राणदेवता की हवियों का विश्लेषण करेंगे।

सर्वावश्यकावसाने संमृष्टोपलिप्ते देशे प्राङ्मुख उपविश्य तद्‌ भूतमाह्रियमाणं भूर्भुवस्सुवरोमित्युपस्थाय वाचं यच्छेत्।। २।।

अवश्यं भाव्यावश्यकं तन्नियोगतोऽहरहः कर्तव्यम्। सर्वावश्यकपरिसमाप्तिर्मध्यन्दिनात् प्रागेव 'पूर्वाह्णे वै देवानां मध्यन्दिने मनुष्याणामपराह्णे पितृणाम्' इति श्रुतेः। तथा दक्षेणाऽप्युक्तम्-'पञ्चमे भोजनं स्मृतम्' इति। सम्मृष्टः शोधितः।

उपलिप्तो गोमयेनोदकेन च। देशग्रहणं भूमौ पादनिधानार्थम्। तेन पादावासनमारोप्य न भुञ्जीतेति गम्यते। प्राङ्मुखत्वं नित्यवत् कर्तव्यम्। उपवेशनग्रहणात् स्थानशयननिवृत्तिः प्रतीयते। तेनाऽनेन मन्त्रेण उपस्थाय नमस्कृत्य मौनी भवेत्।।२।।

अनु०—दैनन्दिन कार्यों को सम्पन्न करे। फिर साफ-सुथरे और लिपि हुई जगह पर बैठ जाए। पूर्व की ओर मुंह करे। भोज्यान्न की भूः, भुवः, स्वः, ओम् कहते हुए पूजा-अर्चना करे और शांत रहे।

न्यस्तमन्नं महाव्याहृतिभिः प्रदक्षिणमुदकं परिषिच्य सव्येन पाणिनाऽविमुञ्च 'न्नमृतोपस्तरणमसी' ति पुरस्तादपः पीत्वा पञ्चान्नेन प्राणाहुतीर्जुहोति 'प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो माऽऽविशाऽप्रदाहाय प्राणाय स्वाहे' ति।।३।।

न्यस्त भाजने प्रक्षिप्तमन्नं महाव्याहृतिभिः 'भूरग्नये च पृथिव्यै चे' त्यादिभिः प्रदक्षिणमुदकं परिषिच्य, सव्येन पाणिना भोजनपात्रं अविमुञ्चन् अविसृजन् 'अमृतोपस्तरणमसी' त्यपः पिबेत्। पुरस्ताद् ग्रहणात् परिधानमेतदन्नस्येति ज्ञापयति, तथोपरिष्टादिति। इतरथाऽन्यदन्नं भवेत्। 'अन्नममृतं च' इति श्रुतिः। अमृतमन्नं तस्योपस्तरणमुदकं तदेवाऽपिधानं तत्त्वमसीत्युदकमामन्त्र्यते। 'अपोऽशान, कर्म कुरु' इति यदुक्तमुपनयनसमये तदिदम्। 'प्राणे निविष्टः' इत्यन्तेन जुहोतीति सम्बन्धः। प्राणे प्राणार्थमभिनिविष्टोऽहममृतमन्नं जुहोमि मय्येव। मां च शिवस्सुखहेतुः आविश अप्रदाहाय च भव। स्वाहेति प्रदानप्रतिपादकः। प्रयच्छामीति यावत्। एवमुत्तरेष्वपि यथासम्भवं योजनीयम्।।३।।

अनु०—जो भोजन सामग्री सामने रखी हो, उसके चारों ओर दाहिने हाथ से जल छिड़के और महाव्याहृतियों का उच्चारण करे। बाएं हाथ से भोजन के पात्र को पकड़े। 'अमृतोपस्तरणमसि...' का उच्चारण करते हुए जल पिए। 'प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो माऽऽविशाऽप्रदाहाय प्राणाय स्वाहा, का उच्चारण करे। पांच बार अन्न से प्राणों के निमित्त आहुतियां दे।

पञ्चान्नेन प्राणाहुतीर्हुत्वा तूष्णीं भूयो व्रतयेत्प्रजापतिं मनसा ध्यायन्।।४।।

अन्नेन पञ्चप्राणाहुत्यनन्तरं यथेष्टं व्रतयेद् भुञ्जीत। तूष्णींग्रहणेन वाग्यमनिवृत्तिः मन्त्रनिवृत्तिर्वा गृह्यते। ध्यायेदिति शेषः। तेषामपाठः। तथा भूयश्शब्दात् षष्ठो ग्रासो गृह्यते।।४।।

अनु०—प्राणों को पांच आहुतियां देने के बाद मौन होकर प्रजापति को ध्याये और भोजन करे।

नाऽन्तरा वाचं विसृजेद्यन्तरा वाचं विसृजेद्भूर्भुवस्सुवरोमिति जपित्वा पुनरेव भुञ्जीत।।५।।

ऋज्वेतत् ।। ५ ।।

अनु०—मौन होकर भोजन करे। यदि बोलना भी पड़े तो फिर से भूः, भुवः, स्वः, ओम् का जाप करे और भोजन खाए।

त्वक्केशनखकीटाखुपुरीषाणि दृष्ट्वा तं देशं पिण्डमुद्धृत्याऽद्भिरभ्युक्ष्य भस्माऽवकीर्य पुनरद्भिः प्रोक्ष्य वाचा च प्रशस्तमुपयुञ्जीत :। ६ ।।

केशग्रहणं लोमनखादीनामपि प्रदर्शनार्थम्। कीटः बृहतीफलादिप्रभवो घुणः। तद्ग्रहणं चाऽजीवन्मक्षिकापिपीलिकादीनामपि प्रदर्शनार्थम्। जीवतामपवादश्रवणात् 'मशकैर्मक्षिकाभिश्च निलीनं नोपहन्यते' इति। आखुपुरीषं गुदादिपुरीषग्रहणार्थं विड्वराहश्लोकसंगृहातपरिग्रहार्थं च। यो देशः कीटादिसंयुक्तः तं देशम्। वाचा प्रशस्तस्योपयोगः प्रशस्तमित्युच्चरिते उपयोगः। उच्चारयिता च स्वयं वाऽन्यो वा यस्तदा प्रयतो भवति।। ६ ।।

अनु०—चमड़े का टुकड़ा, बाल, नाखून, कीड़ा, चूहे की विष्ठा, भोजन में गिरी हुई दिखाई दे जाए तो उतनी जगह से भोजन को थाली से निकाल दे, जो बचे उस पर जल छिड़क करके फिर उसे खाए।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

आसीनः प्राङ्मुखोऽश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्।
अस्कन्दयंस्तन्मनाश्च भुक्त्वा चाऽग्निमुपस्पृशेदिति।। ७ ।।

आसनप्राङ्मुखत्वयोः पुनरुपादानं पञ्चप्राणाहुत्यन्ते तयोः पर्यवसानं मा भूदिति। वाग्यतोऽन्नं व्रतयेत्। तूष्णींग्रहणेनैव सिद्धत्वादनुवादः। अकुत्सयन् अगर्हयन् अपक्वतुषपर्णपातादिदोषैः। अस्कन्दयन् भूमावनवकिरन् तन्मनाः अन्नमेव चिन्तयन् भुक्त्वा चाऽऽचान्तश्चाऽग्निमुपस्पृशेदिति योजना।। ७।।

अनु०—पूर्व की ओर मुंह करे। मौन रहे। भोजन की प्रशंसा करे। पृथ्वी पर भोजन का कण न गिराए। भोजन पर ही ध्यान रखे और भोजन ग्रहण करे। इसके वाद उसे अग्नि का स्पर्श कराए।

सर्वभक्ष्यापूपकन्दमूलफलमांसादीनि दन्तैर्नाऽवद्येत्।। ८ ।।

सर्वभक्ष्योदाहरणत्वेनाऽपूपादिग्रहणम्। एतानि दन्तैर्नाऽवद्येत् न खण्डयेत् दन्तखण्डितावशिष्टं पुनर्भक्षणाय नाऽऽदद्यादित्यर्थः।। ८ ।।

अनु०—अपूप, कन्द, मूल, फल, मांस आदि जो बिना काटकर खाए जा सकते हों, उन्हें दांतों से न काटे। इसी प्रकार भोजन ग्रहण करे।

नाऽतिसुहितः ।। ६ ।।

अत्यशनं वर्जयेत्। उक्तं च–
'न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत्' इति।
अतो मिताशनमिति।। ९।।

अनु०–आवश्यकता से अधिक भोजन करना ठीक नहीं।

'अमृतापिधानमसि' इत्युपरिष्टादपः पीत्वाऽऽचान्तो हृदयदेशमभिमृशति- 'प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकस्तेनाऽन्नेनाऽऽप्यायस्वे' ति।। १०।।

अमृतस्याऽपिधानमुपरि प्रच्छादनं उदकं तत्त्वमसीति मन्त्रार्थः। अभिमर्शनमन्त्रस्य वामदेव ऋषि काण्डर्षिर्वा। निचृद्गायत्री छन्दः जीवो देवना। हृदयं जीवायतनं तत्रस्थो जीव आमन्त्र्यते। ग्रन्थिः बन्धनं प्राणायतनं असि रुद्रः अन्तकः अन्तकरस्सन् मा अन्तः विश अन्तको मा भूरित्यर्थः। यज्जीवितं मम तेनाऽन्नेन मां आप्यायस्व वर्धय।। १०।।

अनु०–भोजन करके 'अमृतापिधानमसि' बोले और जल का पान करे। आचमन करे। 'प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकस्तेनाऽन्नेनाऽऽआप्यायस्व' का पाठ करते हुए हृदय स्थान को छूए।

पुनराचम्य दक्षिणे पादाङ्गुष्ठे पाणी निस्रावयति 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः। ईशस्सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वभुगि' ति।। ११।।

पाणिभ्यामिति द्विवचनात् द्वाभ्यां हस्ताभ्यामुदकं निस्रावयेत्। अङ्गुष्ठमात्र इत्यृचः वामदेव ऋषिः अनुष्टप्छन्दः आत्मा देवता। मात्रच्प्रत्ययः। अद्य परमात्मा स्मृतः पुरुषः पुरि शेत इति व्युत्पत्त्या। आह च कृष्णद्वैपायनस्सावित्र्युपाख्याने–
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं विचकर्ष यमो बलात्।। इति।।
तत्परिमाणश्च तदाश्रयश्चाऽसावीश्वरः जगतो जङ्गमस्य सर्वशब्दात्स्थावरस्य प्रभुः प्रभूतं प्रियतमं विश्वं भुनक्ति भुङ्क्त इति वा विश्वभुक्।। ११।।

अनु०–फिर उसे दोबारा आचमन करना चाहिए। अपने हाथ से जल की बूंदें दाएं पैर के अंगूठे पर और 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः' आदि का उच्चारण करे।

हुतानुमन्त्रणमूर्ध्वहस्तस्समाचरेत्- 'श्रद्धायां प्राणे निविश्याऽमृतं हुतम्। प्राणमन्नेनाऽऽप्यायस्वे' ति पञ्च।। १२।।

पञ्चैते मन्त्राः हुतानुमन्त्रणं तत्साधनं हुतस्य भुक्तस्याऽनुमन्त्रणमन्वीक्ष्य वदनं तदूर्ध्वहस्तस्समाचरेत्।। १२।।

अनु०–'श्रद्धायां प्राणे निविश्याऽमृतम् हुतम् प्राणमन्नेनाऽऽप्यायस्व...' आदि का

पाठ हाथ उठाकर करे।

'ब्रह्मणि म आत्माऽमृतत्वाये' त्यात्मानम्।।१३।।

स्वशरीरमनुमन्त्रयत इति शेषः। जीवपरमात्मानावेकीभावयेदिति मन्त्रार्थः।।१३।।

अनु०—'ब्रह्मणि म आत्माऽमृतत्वाय...' कहते हुए मन्त्र पढ़े।

अक्षरेण चाऽऽत्मानं योजयेत्।।१४।।

अक्षरं प्रणवः तेन आत्मानं प्रणवं क्षेत्रज्ञं वा एकीभूय ध्यायेदित्यर्थः।

अनु०—स्वयं अपने आत्मा को अक्षर के साथ एकाकार करे और उस पर चित्त लगाए।

सर्वक्रतुयाजिनामात्मयाजी विशिष्यते।।१५।।

विदुषः प्रशंसैषा। यथा च श्रुतिः—'स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाऽङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत् स्यात्' इति।।१५।।

अनु०—यह आत्मा का यज्ञ सभी यज्ञों से सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

यथा हि तूलमषीकम्।।१६।।

अनु०—जैसे रुई और इषीक।

(खण्ड-बारह सम्पूर्ण)

खण्ड—तेरह

यथा हि तूलमैषीकमग्नौ प्रोतं प्रदीप्यते।
तद्वत्सर्वाणि पापानि दह्यन्ते ह्यात्मयाजिनः।।१।।

इषीकं तृणविशेषः। तूलमग्रं प्रणवं शुष्कमिति शेषः। आत्मयाजी यथाविधि भुञ्जानः सर्वाणि इह जन्मनि जन्मान्तरे च कृतानि। श्रुतिरपि 'तद्यथेषीकतूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हाऽस्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति' इति।।१।।

अनु०—जैसे रुई और घास-फूस अग्नि में रखते ही प्रज्ज्वलित हो जाते हैं, वैसे ही आत्मा में यज्ञ करने वाले के समस्त पाप छूट जाते हैं।

केवलाघो भवति केवलादी। मोघमन्नं विन्दते इति।।२।।

एवमविदुषो निन्दया विदुषः प्रशंसा। अघं पापं इतरथा केवलाघो भवेत् कोऽसौ?

केवलादी केवलाहारीत्यर्थः। स एव मोघमन्नं विन्दत इति अनया ऋचा निन्द्यत इति शेषः। अस्य ऋषिर्भिक्षुः त्रिष्टुप्छन्दः। अन्नदानप्रशंसा। मोघं वृथा अन्नमदनीयं विन्दते भुङ्क्ते अप्रचेताः अविद्वानित्येतत्। अहं सत्यमेव ब्रवीमि न मृषा। वधो हिंसा इत् इत्यवधारणे स इति केवलाश उच्यतेः तस्य केवलाशनं वध एवेत्यर्थः। अथ वा एतद्भिक्षोर्वाक्यम्, तस्य वध इत्युक्तम्, तमावेष्टयति नाऽर्यमणं पुष्यति देवतार्थं न प्रयच्छतीति नो सखायं चाऽप्यभ्यागतं पूजयति, स एव केवलाघो भवति केवलादित्वात्। गतश्लोकदर्शितविस्तरः[1] ।।२।।

अनु०—जो व्यक्ति अकेला खाता है, वह मानो पापों को ही खाता है। पाप इकट्ठा करता है।

स एवमेवाऽहरहस्सायम्प्रातर्जुहुयात् ।।३।।

अत एतद्गम्यते 'सर्वावश्यकावसाने' इत्यस्य दिवसे कर्तव्यानामन्ते दिवाभोजिन एवमेव रात्रावित्ययमर्थ इति।।३।।

अनु०—इसी विधि से हर रोज सुबह-शाम अग्निहोत्र करना चाहिए।

अद्भिर्वा सायम् ।।४।।

भोजनीयम्, आचमनभोजनसामान्यात् ।।४।।

अनु०—या शाम को जल ही समर्पित करें।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

अग्रे भोजयेदतिथीनन्तर्वत्नीरनन्तरम्।
बालवृद्धांस्तथा दीनान् व्याधितांश्च विशेषतः ।।५।।

अन्तर्वत्नी गर्भिणी। ऋज्वन्यत् ।।५।।

अनु०—सर्वप्रथम अतिथियों को भोजन से सत्कृत करे। फिर गर्भवती महिला को भोजन खिलाए। इसके बाद बालक, वृद्ध को भोजन दे। फिर पीड़ित और उनमें भी जो रोगी हो, उसे भोजन कराए।

अदत्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्ते यथाविधि।
भुज्यमानो न जानाति न स भुङ्क्ते स भुज्यते।।६।।

यथाविधीति आचमनभोजनसामान्यात् भुज्यमानः क्षीयमाणोऽपि न जानात्यात्मनो भुज्यमानताम्। न हि स भोजनकर्ता। किं तर्हि? स भुज्यते कर्म भवति। यथा भुज्यमानं द्रव्यं क्षीयते एवं केवलादीत्यभिप्रायः।।६।।

---

१. तै. ब्रा. २/८/८/३

अनु०—मगर जो इस विधि से भोजन न कराकर अकेला ही खाता है, उसे यह पता नहीं लगता कि वह भोजन कर रहा है या भोजन उसी को खा रहा है।

पितृदैवतभृत्यानां मातापित्रोर्गुरोस्तथा।
वाग्यतो विघसमश्नीयादेवं धर्मो विधीयते इति।।७।।

विघसः शेषः। तथा वसिष्ठोऽप्यतिथिपूजाप्रकरणे आह—'श्रेयांसं श्रेयांसमानुपूर्व्येण। स्वगृह्याणां कुमारीवालवृद्धतरुणप्रजाताः। ततोऽपरान् गृह्यांश्च। श्वचण्डालपतितवायसेभ्यो भूमौ निर्वपेत्। शूद्रायोच्छिष्टमनुच्छिष्टं वा दद्यात्। शेषं दम्पती भुञ्जीयाताम्' इति। वाग्यत इति पुनर्वचनमादरार्थम्।।७।।

अनु०—पितर, देव, सेवक, माता-पिता और गुरुओं को भोजन कराने के बाद जो भोजन बचे, मौन रहकर उसे खाए। इसे धर्म कहा गया है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः।
द्वात्रिंशतं गृहस्थस्याऽपरिमितं ब्रह्मचारिणः।।८।।

अपरिमितं ग्रासानां परिमाणसङ्ख्यानियमो नास्तीत्यर्थः।।८।।

अनु०—इस सन्दर्भ में प्रमाण देते हैं-संन्यासी को आठ ग्रास भोजन ग्रहण करना चाहिए। वानप्रस्थ सोलह और गृहस्थ बत्तीस ग्रास भोजन करे। ब्रह्मचारी यथेष्ट भोजन करे। उसके लिए ग्रासों का विधान नहीं है।

आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः।
अश्नन्त एव सिद्ध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नतामिति।।९।।

अनडुद्ग्रहणं दृष्टान्तार्थम्। नैतेषां परिमितमित्येतत्सिध्यति। कर्मकर्तृत्वेनाऽनश्नतामेषां न सिद्धिः कर्मणः। उपवासप्रतिषेधो वाऽयम्। आहिताग्नेर्ब्रह्मचारिणश्चोपवासे सति शुश्रूषायाः कर्मणश्च लोपप्रसङ्गात्।।९।।

अनु०—अग्निहोत्री, बैल और ब्रह्मचारी ये तीनों बिना नाप-तोल के भोजन करने पर ही अपने कार्य करने मे समर्थ हो सकते हैं। भोजन के अभाव में ये काम नहीं कर पाएंगे।

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा योऽनश्नंस्तु तपश्चरेत्।
प्राणाग्निहोत्रलोपेन ह्यवकीर्णी भवेत्तु सः।।१०।।

प्राणाग्निहोत्रलोपनिन्दैषा। नन्वेवं सति पञ्चाहुतिलोप एव दोषस्स्यात्, नेतरग्रासलोपे। यथाऽग्निहोत्रहोमे हुतशेषप्राशनाभावे दोषो नाऽस्ति तद्वदेतदपि। वक्तव्यो

वा विशेषः उच्यते-स्यादेतदेवं यद्यनशननिन्दा न स्यात्, अस्ति तु। तस्मादनशननिन्दैषा।। १०।।

अनु०–जो गृहस्थ या ब्रह्मचारी उपवास करते हुए तपश्चर्या करता है, वह प्राणाग्निहोत्र न करने पर अवकीर्णी कहा जाता है।

अन्यत्र प्रायश्चित्तात्प्रायश्चित्ते तदेव विधानम्ः।। ११।।

उपवास एव साधीयानित्यर्थः।। ११।।

अनु०–प्रायश्चित्त की तपस्या के सिवाय दूसरे प्रायश्चित्त में उपवास का ही निर्देश है।

अथाऽप्युदाहरन्ति–

अन्तरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च।
सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्ते कदाचनेति।। १२।।

कालयोरन्तराऽनशनं तदुपवासफलं भवेत्। अतश्च नाऽन्तरा भोजनं कर्तव्यम्।। १२।।

अनु०–इस संदर्भ में यह पद्य है-जो सुबह और शाम के मध्य भोजन नहीं करता, वह हमेशा उपवास करने वाले के समान ही कहा गया है।

प्राणाग्निहोत्रमन्त्रांस्तु निरुद्धे भोजने जपेत्।
त्रेताग्निहोत्रमन्त्रांस्तु द्रव्यालाभे यथा जपेदिति।। १३।।

निरुद्धे भोजने व्याध्यादिना द्रव्यासम्भवेन वा तदानीं 'भूर्भुवस्स्वः' इत्यादीन् प्राणाहुतिमन्त्रान् वा जपेत्।। १३।।

अनु०–जैसे यज्ञ की सामग्री न हो तो तीन प्रकार की अग्नियों से संवंद्धित मन्त्रों को पाठ करते हैं। वैसे ही भोजन के अभाव में भी प्राणाग्नि होत्र के मन्त्रों को जपना चाहिए।

एवमेवाऽऽचरन् ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति।। १४।।

ब्राह्मणो ब्रह्म तद्भूयं तद्भावः।। १४।।

अनु०–ऐसा आचार-विचार करने वाला ब्रह्म के साथ एकत्व स्थापित कर लेता है।

(अध्याय-सात, खण्ड-तेरह सम्पूर्ण)

अध्याय-आठ : खण्ड-चौदह

पित्र्यमायुष्यं स्वर्ग्यं प्रशस्यं पुष्टिकर्म च।।१।।

पितृदेवत्यं पित्र्यं श्राद्धम्। तदेव आयुष्यमायुषे हितम्। स्वर्ग्यं स्वर्गसाधनम्। प्रशस्यं प्रशंसनीयम्। पुष्टिकर्म सर्वसुखसम्पत्तिः। एवंलक्षणं श्राद्धं वक्ष्याम इति संग्रहः क्रियते।।१।।

अनु०—पितृदेवताओं के निमित्त श्राद्ध क्रिया को, दीर्घ आयु देने वाला, स्वर्ग प्रदाता, प्रशंसा के योग्य और समृद्धि का मूल कहा गया है।

त्रिमधुस्त्रिणाचिकेतस्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निष्षडङ्गविच्छीर्षको ज्येष्ठसामिकस्स्नातक इति पङ्क्तिपावनाः[1]।।२।।

त्रयो मधुशब्दवन्तो मन्त्राः 'मधु वाता ऋतायते' इत्यादयः। ते तेन बहुशोऽभ्यस्ताः स त्रिमधुः। त्रिणाचिकेतो नामाऽथर्वणां व्रतम् तच्चारी। अयं वाव यः पवते' इत्यनुवाकत्रयं वा, तद्विद्वान्। त्रिसुपर्णो नाम बह्वृचानां व्रतं तच्चारी। त्रिसुपर्णः 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यनुवाकत्रयं वा, तद्विद्वान्। पञ्चाग्निः सभ्यावसथ्याभ्यां सह। षडङ्गवित् प्रसिद्धः। शीर्षकः शिरोव्रतिकः अथर्वणामेतच्छिरोव्रतं नाम। ज्येष्ठसाम 'मूर्धानं दिव' इत्यस्यामुत्पन्नं तद्योऽधीते स ज्येष्ठसामिकः। एवमुक्तलक्षणः स्नातको वेदितव्यः। पंक्तिपावनाः पङ्क्तिशोधकाः।।२।।

अनु०—त्रिमधु करने वाला, तीन वार नाचिकेत का व्रत धारण करने वाला, त्रिसुपर्ण व्रती और पञ्चाग्नि की तपश्चर्या करने वाला वेद के छह अंगों का विद्वान्, शिरोव्रत करने वाला, ज्येष्ठ सोम का विद्वान और स्नातक ये पंक्ति को शुद्ध करते हैं।

तदभावे रहस्यवित्।।३।।

रहस्यमरण्ये पठितव्यो ग्रन्थः, यस्तमर्थतो ग्रन्थतश्च वेत्ति सोऽपि पंक्तिपावनः श्राद्धार्हः। अत्र तदभावशब्दः पूर्वैस्सम्बन्धनीयः रहस्यविदभावे त्रिमध्वादय इत्यर्थः।।३।।

अनु०—इनके अभाव में रहस्य विद्या का जानकार पंक्ति को पवित्र करने वाला होता है।

---

१. मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः।।१।।
मधुनक्तमुतोषसि मधुमत्पार्थिवं रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता।।२।।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमा ँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।३।।
(तै. सं. ४/२/६)

ऋचो यजूंषि सामानीति श्राद्धस्य महिमा।
तस्मादेवंविदं सपिण्डमप्याशयेत्।।४।।

महिमा सम्पत्। पंक्तिपावनाः ऋगादिशब्देन तद्विदो लक्ष्यन्ते। यस्मादेवं तस्मात् एवंविदं रहस्यविदं ब्रह्मज्ञम्। तस्मादत्यन्तगुणवानपि रहस्यवित्सपिण्डो भोजयितव्यः। रहस्यविद्धि भूतानां श्रेष्ठो भवति। आह च—

भूतानां प्राणिनश्श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराश्श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणास्स्मृताः।।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसः विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृशु ब्रह्मवादिनः।
ब्रह्मविद्भ्यः परं भूतं न किञ्चिदिह विद्यते।। इति।।

अनु०—ऋग्वेद, यजुर्वेद के मंत्र और सामवेद के मंत्रों से श्राद्ध की महिमा बढ़ती है। अतः सपिण्डी भी इनका जानकार हो तो उसे भी भोजन करा सकते हैं।

रक्षोघ्नानि च सामानि स्वधावन्ति यजूंषि च।
मध्वृचोऽथ पवित्राणि श्रावयेदाशयञ्छनैः।।५।।

रक्षोघ्नानि सामानि 'अग्ने रक्षाणो अंहसः, अग्ने युक्ष्वाहि ये तव, प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना, प्रयग्ने हरसा हरः, न तस्य मा यया च न, श्रृष्ट्यग्ने नवस्य मे, यद्वा उ विश्पतिः शितः, अग्निं होतारम्' एतत्सूक्तोत्पन्नानि स्वधावन्ति यजूंषि च 'सोमाय पितृपीताय स्वधा नमः इत्यादीनि। मध्वृचः 'मधु वाताः' इत्यादीनि त्रीणि पवित्राणि 'पवमानस्सुवर्जनः; इत्यादीनि भुञ्जानान् ब्राह्मणान् श्रावयेत्।।५।।

अनु०—भोजन कराने वाला, भोजन करने वाले ब्राह्मणों को रक्षोघ्न साम, स्वधा के समान, यजुस्, मंत्र और मधु नामक ऋचाएं जैसे पवित्र कारक मन्त्रों को सुनाए।

चरणवतोऽनूचानान्योनिगोत्रमन्त्रासम्बन्धाञ्छुचीन्मन्त्रवतस्त्र्यवरान्युजः पूर्वेद्युः प्रातरेव वा निमन्त्र्य सदर्भोपक्लृप्तेष्वासनेषु प्राङ्मुखानुपवेशयत्युदङ्मुखान्वा।।६।।

चरणमाचारः। यद्वा गुरुपूर्वक्रमागतं शाखाध्ययनं तद्विहितोपनयनं च येषां ते चरणवन्तः। वेदाङ्गाध्यायिनोऽनूचानाः। योन्यसम्बन्धाः। गोत्रासम्बन्धाः। असगोत्राः। मन्त्रासम्बन्धाः अशिष्योपाध्यायाः। शुचयो बाह्यभ्यन्तरयोः। मन्त्रवन्तः श्रोत्रियाः। त्रिमध्वादीनामेतेषां च सम्भवापेक्षया व्यस्तसमस्तभावः कल्प्यः। निमन्त्रणं श्वः करिष्यामि प्रसीदन्तु भवन्तो भोक्तुमित्येवमादि।।६।।

अनु०—श्रेष्ठ आचार-विचार वाले, वेदों के ज्ञाता, पवित्र आत्मा, मंत्र को जानने वाले विद्वान्, त्रिमधु ज्ञाता, वेदांगविद् न्यून से न्यून तीन और हमेशा विषम संख्या

में ब्राह्मण को जो विवाह, गोत्र से सम्बन्धी न हों, श्राद्धकर्म वाले दिन या उससे पहले वाले दिन या उसी दिन सुबह उन्हें अपने घर पर आने का निमंत्रण दे। उन्हें दर्भ से आच्छादित आसन पर बैठाए। उनका मुंह पूर्व अथवा उत्तर की ओर होना चाहिए।

अथैनांस्तिलमिश्रा अपः प्रतिग्राह्य गन्धैर्माल्यैश्चाऽलङ्कृत्याऽग्नौ करिष्यामीत्यनुज्ञातोऽग्निमुपसमाधाय सम्परिस्तीर्याऽऽग्निमुखात्कृत्वाऽऽज्यस्यैव तिस्र आहुतीर्जुहोति–'सोमाय पितृपीताय स्वधा नमस्स्वाहा। यमायाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वधा नमस्स्वाहा। अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमस्स्वाहे' ति।।७।।

अग्नौ करिष्यामीत्युक्ते कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञात इति शेषः। अन्यदतिरोहितम्। दार्विहोमिकतन्त्रप्राप्त्यर्थमाग्निमुखादित्युक्तम्।।७।।

अनु०–ब्राह्मणों के बैठ जाने पर उन्हें तिल मिला जल दे। उन्हें सुगन्धित द्रव्य और पुष्प माला पहनाए। 'अग्नौ करिष्यामि' कहकर उनसे हवन करने की अनुमति मांगे। अनुमति मिलने पर हवनकुंड में अग्नि रखे। हवनकुंड के चारों तरफ कुश बिछा दे। 'सोमाय पितृपीताय स्वधानमस्स्वाहा।' अग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमस्स्वाहा' का उच्चारण करते हुए घी की तीन आहुतियां अग्नि को समर्पित करे।

तच्छेषेणाऽन्नमभिधार्याऽन्नस्यैता एव तिस्र आहुतीर्जुहुयात्।।८।।

तच्छेषेण आज्यशेषेण अन्नस्य अन्नेनेत्यर्थः। एता इत्याहुतिमन्त्रान् व्यपदिशति।।८।।

अनु०–अवशिष्ट घी, हवि अन्न में मिलाए और उसकी तीन आहुतियां अग्नि को समर्पित करे।

वयसां पिण्डं दद्यात्।।९।।

वयश्शब्देनेह काका गृह्यन्ते।।९।।

अनु०–कौओं को पिण्ड दे।

'वयसां हि पितरः प्रतिमया चरन्ती' ति विज्ञायते।।१०।।

प्रतिमया आकारेण।।१०।।

अनु०–वेद में कहा गया है कि कौओं के रूप में पितर लोग इधर-उधर घूमते हैं।

अथेतरत् साङ्गुष्ठेन पाणिनाऽभिमृशति।।११।।

भोक्तुकामस्य ब्राह्मणस्य कराङ्गुष्ठेन अनखेन स्वपाणिना भोज्यद्रव्यमभिमृशति। स्वपाणिर्व्यवहितकारणम्।।११।।

अनु०—वचे हुए अनाज को हाथ और अंगूठे से छूए।

पृथिवीसमं तस्य तेऽग्निरुपद्रष्टर्चस्ते महिमा दत्तस्याऽप्रमादाय पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा पितृणां क्षेष्ठा अमुत्राऽमुष्मिन् लोक इति। अन्तरिक्षसमं तस्य ते वायुरुपश्रोता यजूंपि ते महिमा दत्तस्याऽप्रमादाय, पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा पितामहानां क्षेष्ठा अमुत्राऽमुष्मिन् लोक इति। द्यौसमं तस्य त आदित्योऽनुख्याता सामानि ते महिमा दत्तस्याऽप्रमादाय पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा प्रपितामहानां क्षेष्ठा अमुत्राऽमुष्मिन् लोक इति।। १२।।

एते त्रयो मन्त्राः पृथिव्यन्तरिक्षद्युक्रमाः। लोकानां तावन्महिमा एष वेदितव्यः। यदेतद्दीयतेऽन्नं तदामन्त्र्यते। पृथिव्या समं तस्यैवंविधस्य तव अग्निरुपद्रष्टा साक्षिभूतः एवमुपश्रोता अनुख्यातेति च। ऋचस्ते महिमा महत्त्वम्। एवमुपासनया दत्तास्याऽन्नस्याऽप्रमादो भवति। पृथिव्येव तव पात्रं आधारः द्यौरेवाऽपिधानं ब्रह्मणा ब्राह्मणस्य मुखे त्वा जुहोमि। ब्राह्मणानामित्यादि जुहोमीत्यन्तं प्रतिपत्तिमात्रम्। अक्षितमसि मा क्षेष्ठाः क्षयं मा गाः पित्रादीनां परस्मिन् लोके।। १२।।

अनु०—तत्पश्चात् इन मंत्रों को जपे-तुम पृथिवी की तरह फैले हुए हो। तुमको अग्नि देख रहा है। तुम्हारी महिमा का बखान ऋचाएं करती हैं। जो दान तुमने दिया है, वह निष्फल न हो जाए इसके लिए तुम्हें पृथ्वी को पात्र समझना चाहिए। मैं ब्रह्म के मुख अग्नि में हवि देता हूं। मैं तुम विद्वान वेदज्ञों के प्राण और अपान में हवि देता हूं। तुम कभी भी नष्ट न होने वाले नहीं हो। तुम पितर लोक जाने में पूर्ण समर्थ हो। तुम अन्तरिक्ष की तरह हो। तुम्हें वायु सुन रहा है। तुम्हारी महिमा यजुस मंत्र है। तुम द्युलोक के तुल्य हो। तुम सूर्य के समान हो। तुम्हें प्रकट करने वाला है। साम तुम्हारी महिमा बतलाता है।

(खण्ड-चौदह सम्पूर्ण)

खण्ड-पन्द्रह

अथ वै भवति।। १।।

अनु०—इस तरह भी करते हैं।

अग्नौ करणशेषेण तदन्नमभिधारयेत्।
निरङ्गुष्ठं तु यद्दत्तं न तत्प्रीणाति वै पितृन्।। २।।

हस्ताङ्गुष्ठेनाऽभिमर्शनमुक्तम्। तदभावे निन्दैषा।। १-२।।

अनु०—हवनकुंड में आहुतियां देने के वाद जो अनाज बच जाए, उसे अंगूठे से एक तरफ कर दे। विना अंगूठे से छूए अनाज से पितृगण संतुष्ट नहीं होते।

उभयोश्शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्नं निवेदितम्।
तदन्तरमुपासन्तेऽसुरा वै दुष्टचेतसः।। ३।।

सव्येन पाणिना भोजनपात्रमुपस्पृश्यैव भुञ्जीतेत्येतदनेन विधीयते। शाखयोः हस्तयोः।। ३।।

अनु०—पितरों को अनाज दोनों हाथों से दे। अन्यथा असुर बीच में उसे खा जाते हैं।

यातुधानाः पिशाचाश्च प्रतिलुम्पन्ति तद्धविः।
तिलदाने ह्यदायादास्तथा क्रोधवशेऽसुराः।। ४।।

भोजनस्थानेष्वासनेषु च तिलविकिरणस्याऽक्रोधस्य च प्रशंसैषा।। ४।।

अनु०—भोजन करने की जगह और आसनों पर तिल ने बिखेरे तो उस हविष्य अन्न को यातुधान और पिशाच गड़प कर लेते हैं। वे भी जिन्हें अपना भाग नहीं मिला है, वे भी हविष्य अन्न को जबरन हड़प लेते हैं। ऐसा करने पर यज्ञकर्ता क्रोध करता है, तो उसकी हवि असुर छीन लेते हैं।

काषायवासा यान्कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान्।
न तद्देवगमं भवति हव्यकव्येषु यद्धविः।। ५।।

दैवे कर्मणि पित्र्ये च काषायवासोनिषेधः श्वेतवाससा भवितव्यमिति विधानार्थम्। किञ्च-काषायवाससो यतीश्वराः। तेऽपि पित्र्ये दैवे कर्मणि च जपहोमप्रतिग्रहान् कुर्वते। तद्देवगमं पितृगमं च न भवतीति शेषः। हव्यं देवदैवत्यं कव्यं पितृदैवत्यम्।। ५।।

अनु०—मनुष्य लाल और काषाय वस्त्र पहन कर प्रार्थना और होम न करे। दान भी न ले। क्योंकि वह देवों को नहीं मिलता। इसके साथ ही ब्रह्म के द्वारा यज्ञ में दी गई आहुतियां भी देवताओं तक नहीं पहुंचतीं।

यच्च दत्तमनङ्गुष्ठं यच्चैव प्रतिगृह्यते।
आचामति च यस्तिष्ठन् स तेन समृध्यत इति।। ६।।

प्रदानप्रतिग्रहयोरङ्गुष्टस्याऽवहिर्भावार्थः, तिष्ठतः आचमननिषेधार्थश्चाऽयं श्लोकः।। ६।।

अनु०—अंगूठे से छुआए विना दिया गया दान और अंगूठे से छुआए विना

जो दान लिया जाता है, वह लाभप्रद नहीं होता। तथा खड़े होकर आचमन करना निरर्थक ही है।

आद्यन्तयोरपां प्रदानं सर्वत्र।।७।।

सर्वत्र दाने श्रद्दधानेनाऽऽदावन्ते च जलदानं कर्तव्यम्। तथा च गौतमः- 'भिक्षादानमत्पूर्वम्। ददातिषु चैवं धर्म्येषु' इति।।७।।

अनु०—दान के आदि और अंत में हर जगह जल देना चाहिए।

जयप्रभृति यथाविधानम्।।८।।

दार्विहोमिकमुत्तरतन्त्रं कर्तव्यमित्यर्थः।।८।।

अनु०—जय जैसी दार्वियज्ञ की पश्चात्वर्ती क्रियाएं विधि से करे।

शेषमुक्तमष्टकाहोमे।।९।।

इतोऽधिकमष्टकाहोमादवगमयितव्यम्। 'आशयेष्वन्नशेषान् सम्प्रकिरन्ति' इत्यादि। अनेनैतत् ज्ञापितं भवति-मासिश्राद्धस्यवेदं प्रयोगान्तरमिति।।९।।

अनु०—बाकी नियमों की चर्चा अष्टका होम के प्रसंग में की गई है।

[1]द्वौ देवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे।।१०।।

देवे वैश्वदेवे।।१०।।

अनु०—देवकार्य हो तो दो ब्राह्मण को भोजन कराए। पितृकर्म में तीन ब्राह्मण को जिमाए। या इन अनुष्ठानों में एक-एक विप्र को भोजन करा सकते हैं। यदि यजमान खुशहाल हो, धन-दौलत वाला हो तो भी इनसे अधिक ब्राह्मणों को भोजन न कराए।

[2]सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम्।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत्।।११।।

कारुण्यात् स्नेहात् लोकगर्हाभयाद्वा श्राद्धविस्तरे प्रसक्ते सति प्रतिषेधः।।११।।

अनु०—अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराने से सत्कार, देश और समय की अनुकूलता, शुचिता एवं उनें ब्राह्मणों की योग्यता नष्ट हो जाती है। अतः ब्राह्मणों की संख्या को बढ़ाना उचित नहीं।

१. मनु. ३/१२५
२. मनु. ३/१२६

उरस्तः पितरस्तस्य वामतश्च पितामहाः।
दक्षिणतः प्रपितामहाः प्रष्ठतः पिण्डतर्कथा इति।।१२।।

श्रद्धासञ्जननोऽर्थवादः। पिण्डतर्कका: पिण्डचिन्तकाः मातामहादयः।।१२।।

अनु०—सामने की तरफ से व्यक्ति के पितर लोग ओर दाईं तरफ से क्रमशः पितर और प्रपितःमह और पीछे पिण्ड प्राप्त करने की इच्छुक मातामहादि लेते हैं।

(अध्याय-आठ, खण्ड-पन्द्रह सम्पूर्ण)

अध्याय-नौ : खण्ड-सोलह

प्रजाकामस्योपदेशः।।१।।

प्रजा सत्पुत्रः, तत्कामस्योपदेशः करिष्यते।।१।।

अनु०—जिसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करना हो, अव उसको उपदेश देते हैं।

प्रजननिमित्ता समाख्येत्यर्श्विनावूचतुः।।२।।

प्रजननमुत्पादनं तन्निमित्ता पुत्र इति समाख्या प्रसिद्धिरित्यर्थः। न तु दानादिनिमित्ता पुत्रसमाख्या। अतो दत्तादिरत्रप्रतिनिधिः। तत्रैते ऋचौ भवतः-'परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो' 'न हि प्रभायारणस्सुशेवः' इति।।२।।

अनु०—अश्विनीदेवों का कहना है कि पुत्र पैदा करने से यश मिलता है।

आयुषा तपसा युक्तस्स्वाध्यायेज्यापरायणः।
प्रजामुत्पादयेद्युक्तस्स्वे स्वे वंशे जितेन्द्रियः।।३।।

आयुश्शब्देन तत्करणं लक्ष्यते। तच्च विधिवत्सन्ध्योपासनं विप्रापवादाभाव इत्यादि। आह च—

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
आयुर्विप्रापवादेन सन्ध्यावन्दनहानतः।।
अतिथिपूजाहानाच्च नश्यत्यायुरपि ध्रुवम्।
नाऽधितिष्ठेत केशांस्तु न भस्मास्थिकपालकान्।
न कार्पासास्थि न तुषान् दीर्घमायुर्जिजीविषुः।। इति।।
तथा—
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्।।
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः।
स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव।।

इत्येवमादि द्रष्टव्यम्। तपो दानम्। 'एतत्खलु वाव तप इत्याहुर्यस्स्वं ददातीति' इति श्रुतेः। वक्ष्यमाणं वा ब्रह्मचर्यादि। स्वाध्यायेज्ये तु प्रसिद्धे एव। स्वे इति स्वे स्वे वर्णे ब्राह्मणो ब्राह्मण्यामित्यादि। इन्द्रियमिहोपस्थमभिप्रेतं पुत्रकारणत्वात्। तज्जयः परदारादिवर्जनम्, स्वदारेष्वप्यकालवर्जनं च। एते प्रजोत्पत्त्युपायाः यथाविधानं क्रियमाणाः प्रजोत्पत्त्युपाया भवन्तीत्यभिप्रायः।।३।।

अनु०—आयु और तप बढ़ाने वाले कार्य करे। वेदों का स्वाध्याय करे और यज्ञ रचे। इन्द्रियों को जीते। विधि-विधान से अपने वंश की वृद्धि करे। (संतान की उत्पति करे)

ब्राह्मणस्यर्णसंयोगस्त्रिभिर्भवति जन्मतः।
तानि मुच्याऽऽत्मवान् भवति विमुक्तो धर्मसंशयात्।।४।।

ब्राह्मणग्रहणात् स्वमूलश्रुतिप्रमाणं द्रष्टव्यम्। त्रिभिः अवश्यकर्तव्यैरिति शेषः। जन्म उपनयनं ततः प्रभृति ऋणवान् भवति। ततः प्राक् शूद्रसमत्वात्। तानि कर्माणि ऋणानि विमुच्य यथाविधि सम्पाद्य आत्मवान् स्वतन्त्रो भवति। यस्मादयं धर्मसंशयात् किमेतानि यथावत् सम्पादयितुं शक्ष्यामो न वेत्येवंरूपसंशयाद्विमुक्तो भवति।।४।।

अनु०—तीन ऋण ब्राह्मण के साथ उसके जन्म से जुड़े होते हैं। उनको चुका देने पर वह धर्म-आचार सम्बन्धी बातों का ज्ञाता बन जाता है।

[1]स्वाध्यायेन ऋषीन् पूज्य सोमेन च पुरन्दरम्।
प्रजया च पितृन्पूर्वाननृणो दिवि मोदते।।५।।

सोमेन सोमयागेन।।५।।

अनु०—ऋषियों का पूजन वेदों के स्वाध्याय से करे। सोमयज्ञ के द्वारा इन्द्र की पूजा करे। फिर संतान पैदा करे। इससे उसके पितृगण संतुष्ट होते हैं और वह सभी ऋणों से छूट जाता है। उसे स्वर्गधाम मिलता है।

पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणाऽमृतमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाऽधिरोहतीति।।६।।

पुत्रेण दृष्टेन। तत्पुत्रेण तत्पौत्रेण इत्यत्रापि दृष्टेनेति शेषः। अमृतं देवैस्सायुज्यम्। नाकं कमिति सुखम्, तदभावो दुःखम्। एतत्प्रतिषिध्यते। दुःखाननुविद्धं मुखं ब्रह्मणः पदमिति यावत्। 'दिवि मोदते' इति सिद्धे पुनरुपादानं बहुपुत्रोत्पादनार्थम्। यथाहुः पौराणिकाः—

एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।

---

१. मनु. ३/८१

यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।। इति।।६।।

अनु०–इन लोकों को जीतने के लिए पुत्र पैदा करना चाहिए। पौत्र के जन्म से व्यक्ति का अमृत मिलता है। और प्रपौत्र को देखने से महान स्वर्ग की प्राप्ति होती है, यह वेद में कहा गया है।

विज्ञायते च-जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर् ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति। एवमृणसंयोगं वेदो दर्शयति।।७।।

तदपाकरणं चेति शेषः।।७।।

अनु०–वेद में बतलाया गया है-ब्राह्मण जन्म से ही तीन ऋणों से दबा होता है। ऋषियों के लिए ब्रह्मचर्य के ऋण से, देवताओं के लिए यज्ञ के ऋण से तथा सन्तान उत्पन्न करने से पितृ ऋण छूट जाता है। इस तरह वेद में भी ऋणों की चर्चा हुई है।

सत्पुत्रमुत्पाद्याऽऽत्मानं तारयति।।८।।

सत्पुत्रस्साधुपुत्रः अध्ययनविज्ञानानुष्ठानसम्पन्नो यथा भवति तथोत्पादनीयः पुत्र इत्यर्थः। 'अनुशिष्टं लोक्यं पुत्रमाहुः तस्मादेनमनुशास्ति' इति श्रुतेः।।८।।

अनु०–पुरुष की रक्षा श्रेष्ठ आचार-विचार वाला पुत्र पैदा करने से होती है।

सप्ताऽवरान् सप्त पूर्वान् षडन्यानात्मसप्तमान्।
सत्पुत्रमधिगच्छानः तारयत्येनसो भयात्।।९।।

अधिगच्छानः प्राप्नुवानः सप्तपूर्वापरानात्मपञ्चदशान् एनसस्तारयतीति सम्बन्धः। अन्यानसत्पुत्रानौरसानधिगच्छानः त्रीन् प्राचस्त्रीन् प्रतीचः आत्मसप्तमान् तारयति।।९।।

अनु०–जिस व्यक्ति के घर में श्रेष्ठ पुत्र का जन्म होता है, वह व्यक्ति अपने वाद की सात पीढ़ियों के पुरुषों को पाप के डर से मुक्त करता है। इसके साथ ही उसकी पूर्व की सात पीढ़ियां भय से छूटती हैं। दोनों और छह अन्य लोगों को भय से हटाता है। और सातवां स्वयं भी पाप के भय से मुक्त हो जाता है।

तस्मात्प्रजासन्तानमुत्पाद्य फलं प्राप्नोति।।१०।।

अनु०–इसलिए वह ऐसा पुत्र पैदाकर यह फल प्राप्त करता है।

तस्माद्यत्नवान् प्रजामुत्पादयेत्।।११।।

अनु०–अतः विधिपूर्वक सन्तान की उत्पत्ति करे।

औषधमन्त्रसंयोगेन।।१२।।

ओषधिसंयोगेन हि प्रजा भवति, शुक्रपानां क्रिमीणामपनयनात्। तथा

मन्त्रसंयोगेनाऽपि रक्षःपिशाचाद्यपनयनात्। 'तस्माद्यत्नवान् प्रजामुत्पादयेत्' इत्यस्य विस्तरः।। १०-१२।।

अनु०—इसकी पूर्ति के लिए औषधि और मंत्रों का उपयोग करना चाहिए।

तस्योपदेशः श्रुतिसामान्येनोपदिश्यते।। १३।।

तस्य प्रजोत्पादने यत्नवतः औषधाद्युपदेशोऽस्माभिरूपदिश्यते। केन मूलज्ञानेनेति? श्रुतिसामान्येन श्रुतेस्समानभावस्तुल्यता ऐकरूप्यं श्रुतिसामान्यं तेन। किमुक्तं भवति? प्रजामुत्पादयेदित्यस्याः श्रुतेः पुत्रकामेष्ट्याः औषधमन्त्रादिषु चैकरूपेणाऽऽपेक्षिकत्वादिति।। १३।।

अनु०—उस आदमी के निमित्त उपदेश वेदों के अनुसार ही बताया गया है।

सर्ववर्णेभ्यः फलत्त्वादिति फलत्त्वादिति।। १४।।

फलवत्त्वात् प्रयोजनवत्त्वात्। फलमिहोपनयनस्याऽध्ययनम्, तच्च वेदार्थ-ज्ञानाद्युपयुक्तत्वात् त्रैवर्णिकानामित्यर्थः। यद्वा फलत्त्वात् औषधमन्त्रादेरपि।। १४।।

अनु०—यह सभी वर्णों के उद्देश्य को पूरा कर देता है।

(अध्याय-नौ, खण्ड-सोलह सम्पूर्ण)

अध्याय-दस : खण्ड-सत्रह

अथाऽतस्सन्न्यासविधिं व्याख्यास्यामः।। १।।

सम्यक् न्यासः प्रतिग्रहाणां सन्न्यासः। विधिर्विधानमितिकर्तव्यता।। १।।

अनु०—यहां से आगे संन्यास आश्रम के नियमों का विश्लेषण करेंगे।

सोऽत एव ब्रह्मचर्यवान् प्रव्रजतीत्येकेषाम्।। २।।

स इति सर्वनाम्ना निर्दिश्यते। स च गर्भाधानादिसंस्कारैस्संस्कृतः अधीतवेदः चीर्णव्रतो गृहस्थाश्रमप्राप्तियोग्यो गृह्यते। तत्राऽपि दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य ब्रह्मविदो ब्रह्मचर्यादेव सन्न्यासेऽधिकारो नाऽन्यस्य। इदमपरं तस्य विशेषणं ब्रह्मचर्यवानिति। अतश्च विप्लुतब्रह्मचर्यस्याऽपि चरितनिर्वेषस्य गृहस्थसन्न्यासवनाश्रमाधिकारः। प्रव्रजति प्रकर्षेण व्रजति न प्रत्यावर्तते इत्यर्थः। तत्र दोषमाह—

चाण्डालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसाः।
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैस्सह वासयेत्।।
संवासात्तत्र प्रायश्चित्तं संवर्त आह—
सन्न्यस्य दुर्मतिः कश्चित्प्रत्यापत्तिं व्रजेत्तु यः।

स कुर्यात्कृच्छ्रमश्रान्तं षाण्मासात्प्रत्यनन्तरम्।। इति।।
एतदेकेषां मतम्।।२।।

अनु०—कुछ आचार्यों का कहना है कि ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि पूरी हो जाए, तभी संन्यास आश्रम में प्रवेश करना उचित है।

अथ शालीनयायावराणामनपत्यानाम्।।३।।

शालीनयायावरा इति च गृहस्थानामेव केनचिद्वृत्तिविशेषेण संज्ञामुत्तरस्मिन्नध्याये वक्ष्यति। अनपत्याश्चेदेतेऽपि प्रव्रजेयुः।।३।।

अनु०—कुछ विद्वानों का विचार है कि संन्यास आश्रम वह ग्रहण करे, जो नम्र हो, घुमक्कड़ गृहस्थ हो अथवा जिसकी सन्तान न हो।

विधुरो वा।।४।।

स्वस्मिन् सञ्जात इति शेषः। विधुरो मृतभार्यः भार्यान्तरोपादानासमर्थश्च गृह्यते।।४।।

अनु०—जिसकी पत्नी का निधन हो जाए, वह संन्यासी बन सकता है।

प्रजाः स्वधर्मे प्रतिष्ठाप्य वा।।५।।

स्वयमसमर्थस्याऽग्निहोत्रादिषु समर्थापत्यस्याऽधिकारः।।५।।

अनु०—या अपने वेटों को अच्छी तरह से धर्म-कर्म में लगा दे, फिर संन्यासी वन जाए।

सप्तत्या ऊर्ध्वं संन्यासमुपदिशन्ति।।६।।

प्रायशस्सप्तत्या ऊर्ध्वमेव भार्यानिवृत्तरजस्का गार्हस्थ्यधर्मानुष्ठानासामर्थ्यं वा भवतीति मत्वोक्तं सप्तत्या ऊर्ध्वमिति।।६।।

अनु०—सत्तर वर्ष की आयु पार हो जाए, तो व्यक्ति संन्यासी बन सकता है। वह दूसरों को उपदेश देने लायक हो जाता है।

वानप्रस्थस्य वा कर्मविरामे।।७।।

विरामोऽवसानम्। असामर्थ्यमाश्रमविहितधर्मानुष्ठाने। अस्यामवस्थायां प्रव्रज्याऽप्रव्रज्य वा वानप्रस्थेनाऽपि ध्यानपरायणेन भवितव्यं वानप्रस्थान्तरेभ्य एव भैक्षमाददानेन। उक्तावस्थाव्यतिरिक्तावस्थासु कृतोऽपि संन्यासोऽकृत एव भवति।।७।।

अनु०—या वानप्रस्थ की अवधि पूरी कर ले और अपने योग्य सभी कर्मों को पूरा कर ले तव संन्यासी वन जाए।

एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्।
तस्यैवाऽऽत्मा पदवित्तं विदित्वा न कर्मणा लिप्यते पापकेनेति[1]।। ८।।

सैषाऽऽश्रमचातुर्विध्यप्रस्तावेऽस्माभिर्व्याख्याता। तं विदित्वेत्येतदत्रोपयुज्यते।। ८।।

अनु०—ब्रह्म की महिमा शाश्वत है। वह सदा थी, सदा है, सदा रहेगी। उसकी महिमा कर्मों से बढ़ती नहीं है। और न ही न्यून होती है। ब्रह्म की महत्ता का ज्ञान आत्मा को होता है। इसलिए जो आत्मज्ञानी है, उसे पाप कर्म नहीं सताते हैं।

अपुनर्भवं नयतीति नित्यः।। ९।।

पुनर्भवः पुनर्जन्म तदभावं नयतीति नित्यः, पदविन्यासेनेत्यर्थः।। ९।।

अनु०—आत्मज्ञानी को पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

महदेनं गमयतीति महिमा।। १०।।

स्पष्टार्थमेतत्।। १०।।

अनु०—आत्मज्ञानी को महिमा की प्राप्ति होती है।

केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वोपकल्पयते।। ११।।

पूर्वाह्णे वपनं कृत्वा अपराह्णे उपकल्पयते आर्जयति।। ११।।

अनु०—बाल, दाढ़ी, मूछ, शरीर के बाल और नाखून कटाए और स्वयं को संन्यास आश्रमी बनने के लिए तैयार करे।

यष्टयशिक्यं जलपवित्रं कमण्डलुं पात्रमिति।। १२।।

यष्टयो दण्डाः द्वितीयार्थे प्रथमा। शिक्यं रज्जुनिर्मितं भिक्षापात्रधारणम्। जलपवित्रं आचमनार्थोदकस्य पावनहेतुभूतं वस्त्रम्। तच्चाऽभिनवं केशादिरहितं च द्विगुणं त्रिगुणं वाऽष्टाङ्गुलं प्रादेशमात्रं भवति। उक्तः कमण्डलुः। पात्रं भैक्षाचरणार्थम्। तत्र विकल्पः-'अलाबुं दारुपात्रं वा मृन्मयं वैणवं तथा' इति। इति शब्दः पादुकाद्युपलक्षार्थः। तथा हि—

पादुकामजिनं छत्रं तथा सूत्रमुपानहौ।
सूचीपल्लववल्कं च त्रिविष्टब्धं कमण्डलुम्।।
विसमासोऽन्यतमाभावेऽपि दोषाभावख्यापनार्थः।। १२।।

अनु०—दण्ड, छींका (रस्सी से निर्मित भिक्षा का पात्र) जल छानने का वस्त्र, कमण्डल और भिक्षा पात्र साथ रखे।

---

१. तै. ब्रा. ३/१२/९

एतत्समादाय ग्रामान्ते ग्रामसीमान्तेऽग्न्यगारे वाऽऽज्यं पयो दधीति त्रिवृत्प्राश्योपवसेदपो वा।। १३।।

आपरिसमाप्तेर्न भुञ्जीत। अपां त्रिवृता सह विकल्पस्सम्भवापेक्षः।।१३।।

अनु०—उपर्युक्त वस्तुओं को ले। गांव के एक छोर या उससे बाहर एकान्त में जाए। या जहां अग्नि का आधान किया हो, वहां जाए। घी, दूध और दही तीनों को मिलाए और उसे खाए। फिर उपवास रखे या जल पीकर रहे।

ओं भूस्सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्। ओं भुवस्सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि। ओंथ्ंसुवस्सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयादिति। पच्छोऽर्धर्चशस्ततस्समस्तया च व्यस्तया च।। १४।।

पच्छः प्रणवव्याहृतिसावित्रीपादः सावित्र्याः विहरणमेतदित्यर्थः। अर्धर्चशस्ततस्समस्तया च व्यस्तया च। अर्धर्चशः सावित्र्याः प्रणवव्याहृतीर्विहरेत्। ततस्समस्तयाऽनवीनमुच्चरितया ता एव विहरेत्। व्यस्तया पच्छोऽन्ते विरम्योच्चरितया विहरेत्।। १४।।

अनु०—ये मन्त्र बोले और भोजन करे-ओं भूस्सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्। ओं भुवस्सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि। ओंसुवस्सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोद्यात्।

इस तरह प्रणव और व्याहृतियों के साथ सावित्री के हर चरण का अलग-अलग और हर आधी-आधी ऋचा का पृथक् रूप से और पूरी ऋचा का एक साथ और पृथक् रूप से पाठ करे।

आश्रमादाश्रममुपनीय ब्रह्मपूतो भवतीति विज्ञायते।। १५।।

आश्रमान्तरमितिवचनात्त्रिवृत्प्राशनेनैव संन्यासः कृत इत्येतदेकीयं दर्शनम्।। १५।।

अनु०—पुरुष ब्रह्म के साथ उस समय एकाकार हो जाता है, जब वह एक आश्रम से दूसरे आश्रम में प्रवेश करता है, यह वेद में बताया गया है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।
भिक्षावलिपरिश्रान्तः पश्चाद्भवति भिक्षुक इति।। १६।।

न केवलं त्रिवृत्प्राशनादेव भिक्षुकः। किं तर्हि? वक्ष्यमाणैर्होमादिभिरपि। भिक्षुकः इति 'संज्ञायां कन्' इति कन्प्रत्ययः।। १६।।

अनु०—इस प्रसंग में यह पद्य दर्शाया गया है—

जो एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाए, हवन करे जितेन्द्रिय हो, भिक्षा और बलि देने से जो थक जाए ऐसा व्यक्ति स्वयं ही संन्यासी आश्रम में प्रवेश करता है।

स एष भिक्षुरानन्त्याय।। १७।।

अनन्त एवाऽऽनन्त्यम्, स चाऽऽत्मा तद्भावाय भवतीत्यर्थः।। १७।।

अनु०–ब्रह्म के संग वह सायुज्य प्राप्त कर लेता है, जो इस तरह संन्यासी बनता है।

पुराऽऽदित्यस्याऽस्तमयाद्गार्हपत्यमुपसमाधायाऽन्वाहार्यपचनमाहृत्य ज्वलन्तमाहवनीयमुद्धृत्य गार्हपत्ये आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्वत्याऽहवनीये पूर्णाहुतिं जुहोति 'ओं स्वाहे' ति[1]।। १८।।

नाऽत्र तिरोहितं किञ्चिदस्ति।। १८।।

अनु०–सूर्य डूब जाए, तो गार्हपत्य अग्नि जलाए। वहां अन्वाहारपचन अग्नि लाए। जलती हुई हवन योग्य अग्नि को निकाले। अग्नि को घी से तृप्त करे। उसे कुश से पवित्र करे। स्रुक् से चार बार उसमें से चार अंश ले। समिधा रखी हुई प्रज्ज्वलित आह्वनीय अग्नि पर 'ओम् स्वाहा' कहते हुए पूर्ण आहुति अर्पित करे।

एतद्ब्रह्मान्वाधानमिति विज्ञायते।। १९।।

यथा दर्शपूर्णमासयोरन्वाधानं तथैतदपि ब्रह्मप्रवेशस्य।। १९।।

अनु०–इस अनुष्ठान का नाम ब्रह्मान्वाधान है।

अथ सायं हुतेऽग्निहोत्र उत्तरेण गार्हपत्यं तृणानि संस्तीर्य तेषु द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि सादयित्वा दक्षिणेनाऽऽहवनीयं ब्रह्मायतने दर्भान् संस्तीर्य तेषु कृष्णाजिनं चाऽन्तर्धायैतां रात्रिं जागर्ति।। २०।।

आहवनीयशब्दः परिगृहीताग्निपरिग्रहार्थः। तेनौपासनाग्निकेनाऽपि तत्सन्निकाश इदं कर्तव्यम्। जागर्ति बुध्यते। एषा हि ब्रह्मरात्रिः। अन्यदसंवृतम्।। २०।।

अनु०–शाम को यज्ञ करे। गार्हपत्य अग्नि की उत्तर दिशा में तृण बिखेरे। उस पर पात्रों को उलट कर रख दे। आहवनीय अग्नि की दक्षिण दिशा में जहां ब्रह्म न बैठे, वहां कुश बिखेरे। कुश को काले मृगचर्म से ढक दे और रात में जागे।

य एवं विद्वान् ब्रह्मरात्रिमुपोष्याऽग्नीन् समारोप्य प्रमीयते सर्वं पाप्मानं तरति

---

१. सप्त ते अग्ने समिधस्सप्त जिह्वास्सप्तर्षयस्सप्त धाम प्रियाणि। सप्तहोत्रास्सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्वा घृतेन। (तै० सं० १।५।३।२)

तरति ब्रह्महत्याम्।।२१।।

अग्नीन् समारोप्य आत्मनीति शेषः। वक्ष्यमाणस्याऽऽत्मसमारोपणस्याऽस्मिन्नप्यवसरे पाठोऽस्मिन्नपि क्रमेऽग्निसमारोपणाभ्यनुज्ञानार्थः। एतदवस्थापन्नस्य मृतस्याऽऽश्रम-फलावाप्तिर्भवतीत्यभिप्रायः।।२१।।

अनु०—इस प्रकार का ज्ञाता जो ब्राह्मण ब्रह्मरात्रि में निराहार रहकर पवित्र अग्नि को निहित मृत्यु को प्राप्त होता है, वह समस्त पापों यहां तक कि ब्रह्महत्या के पाप से भी छूट जाता है।

अथ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय काले एव प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात्।।२२।।

रात्रेः पश्चिमो यामः पञ्चघटिकावशेषो ब्राह्मो मुहूर्तः। उषःप्रभृत्योदयादित्येके। तत्र शक्त्यपेक्षो विकल्पः। कालग्रहणं उपोदयाभ्युषितोदयकालानां यस्य योऽङ्गीकृतः कालस्तत्प्रदर्शनार्थम्।।२२।।

अनु०—वह ब्रह्मकाल में उठे। और तब उसे प्रातः कालीन सन्ध्या-हवन करना चाहिए।

अथ पृष्ठ्यांस्तीर्त्वाऽपः प्रणीय वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपति सा प्रसिद्धेष्टिस्सन्तिष्ठते।।२३।।

अग्निर्वैश्वानरो देवता अस्य। औपासननिष्ठ आत्मसमारोपश्चेत् तद्दैवत्यश्चरुः। अन्यत्प्रसिद्धम्।।२३।।

अनु०—इसके पश्चात् पृष्ठ्या नामक वेदिका के भाग को ढके। जल लाए। वैश्वानर अग्नि के लिए बारह कपालों में चरु बनाए। इसे अन्तिम इष्टि कहते हैं। यह अत्यन्त प्रसिद्ध है।

आहवनीयेऽग्निहोत्रपात्राणि प्रक्षिपेदमृण्मया न्यनायसानि।।२४।।

उत्तरत्र मन्त्रविधानात् तूष्णीमेवाऽत्र प्रक्षेपः।।२४।।

अनु०—अग्निहोत्र के निमित्त जो पात्र हो, मिट्टी या पत्थर के पात्रों को छोड़कर सबको अग्नि में भस्म कर दे।

गार्हपत्ये अरणी 'भवतं नस्समनसा' विति[1]।।२५।।

प्रक्षीपतीत्यनुवर्तते।।२५।।

अनु०—'भवतं नस्समनसा' का उच्चारण करे और दोनों अरणियों को गार्हपत्यं

---

१. भवतं नस्समनसौ समोकसावरेपसौ। मा यज्ञं हिं सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः।। (तै० सं० १/३/७)

अग्नि के हवाले कर दे।

अथाऽऽत्मन्यग्नीन् समरोपयते 'या ते अग्ने यज्ञिया तनु' रिति त्रिस्त्रिरेकैकं समाजिघ्रति।।२६।।

एकैकमग्निं सभ्यावसथ्यावपि यदि विद्येते, तथा औपासनमपि। जिघ्रतिः गन्धोपादाने वर्तते। ततश्च धूमायमाने नाग्नेराघ्राणं कर्तव्यमिति गम्यते। सर्वत्राऽयमात्मसमारोपणप्रकारः।।२६।।

अनु०—अपने अंदर शुद्ध, पवित्र अग्नियों को निहित करे। या ते अग्ने यज्ञिया तनु का पाठ करते हुए तीन प्रकार की अग्नियों के धूम को तीन-तीन बार खींचे।

अथाऽन्तर्वेदि तिष्ठन् ओं भूर्भुवस्सुवः संन्यस्तं मया संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशूक्त्वा त्रिरुच्चैः।।२७।।

ब्रूयादिति वाक्यसमाप्तिः। संन्यस्तं त्यक्तम्।।२७।।

अनु०—यज्ञवेदि के मध्य में खड़ा हो जाए। 'ओं भूर्भुवस्सुवः संन्यस्तं मया' का तीन बार धीरे से और तीन बार जोर से उच्चारण करे।

त्रिषत्या हि देवा इति विज्ञायते।।२८।।

त्रिषत्याः। सुषामादिषु पाठात् षत्वम्। देवा हि सकृद्द्विर्वोक्तावनृतमिति मन्वते, अनृतसम्मिता मनुष्याः' इति श्रुतेः। त्रिरुक्तैः प्रतियन्ति श्रद्दधति।।२८।।

अनु०—तीन बार कहने पर देवता उसे सत्य समझते हैं। ऐसा वेद में बताया गया है।

'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः' इति चाऽपां पूर्णमञ्जलिं निनयति।।२९।।

अस्मत्तः निर्भयानि भूतानि सन्त्विति मन्त्रार्थः। अपां पूर्णः अद्भिः पूर्णः। अञ्जलिः द्विहस्तसंयोगः।।२९।।

अनु०—जल से अंजुलि भरे और उसे अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः' कहकर जमीन पर छोड़े।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः।
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयं चाऽपि ह जायते।।३०।।

अभयदानप्रशंसैषा एतदन्तश्च संन्यासविधिः। ये पुनरनग्नयो विधुरादयः तेषामप्युप्रकल्पनप्रभृति दानान्तः प्रयोगोऽग्निकार्यरहितो द्रष्टव्यः।।३०।।

अनु०—इस प्रसंग में यह पद्य है—

जो संन्यासी सबको अभय दान देकर घूमता है, उसे किसी से भय खाने की जरूरत नहीं होती।

स वाचंयमो भवति।।३१।।

य एवं कृतसंन्यासः स वाचंयमस्स्यात् आत्यन्तिकमेतद् व्रतमन्यत्र स्वाध्यायान्मन्त्रोच्चारणाच्च। उक्तं च 'स्वाध्याय एवोत्सृजमानो वाचम्' इति।।३१।।

अनु०—अपनी वाणी पर संयम रखे।

'सखा मे गोपाये ति दण्डमादत्ते 'यदस्य पारे रजस' इति शिक्यं गृहणाति 'येन देवाः पवित्रेणे' ति जलपवित्रं गृहणाति 'येन देवा ज्यातिषोर्ध्वा उदाय'न्निति कमण्डलुं गृहणाति सप्तव्याहृतिभिः पात्रं गृहणाति।।३२।।

अतिरोहितमेतत्।।३२।।

अनु०—'सखा मे गोपाय का उच्चारण करे। फिर दण्ड धारण करे। छींका धारण करते समय 'यदस्य पारे रजसः[1]' का उच्चारण करे। जल छानने का वस्त्र (जलपवित्र) ग्रहण करते समय 'येन देवां पवित्रेण'[2] का पाठ करे। 'येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्'[3], मन्त्र पढ़कर कमण्डलु ग्रहण करे। भिक्षापात्र ग्रहण करने से पूर्व सात व्याहृतियों का उच्चारण करना चाहिए।

यष्टयशिक्यं जलपवित्रं कमण्डलुं पात्रमित्येतत्समादाय, यत्राऽऽपस्तद्गत्वा स्नात्वाऽप आचम्य सुरभिमत्याऽब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिर्हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरिति मार्जयित्वाऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन षोडश प्राणायामान् धारयित्वोत्तीर्य वासः पीडयित्वाऽन्यत् प्रयतं वासः परिधायाऽप आचम्यों भूर्भुवस्सुवरिति जलपवित्रमादाय तर्पयति-ओं भूस्तर्पयाम्यों भुवस्तर्पयाम्यों सुवस्तर्पयाम्यों महस्तर्पयाम्यों जनस्तर्पयाम्यों तपस्तर्पयाम्यों सत्यं तर्पयामीति।।३३।।

आश्रमान्तरसाधारणविहितानां स्नानादीनामनुक्रमणं षोडशप्राणायामानामपि विधानार्थं तर्पणान्तरविधानार्थं च। तर्पणञ्च जलपवित्रनिस्सृतेन जलेन।।३३।।

अनु०—दण्ड, छींका, जलपवित्र, कमण्डल, भिक्षापात्र ग्रहण कर तालाव, नदी पर (जहां जल है) नहाए। वहां आचमन करे। सुरभिमती, जल, वरुण देवता विषयक

१. यदस्य पारे रजसश्शुक्रं ज्योतिरजायत। तन्नः पर्षदति द्विषोऽग्ने वैश्वानर स्वाहा।। (तै. सं. ४/२/५/२)

२. येन देवाः पवित्रेणाऽऽत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु मा।। (तै. ब्रा. १/४/८)

३. येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन् येनाऽऽदित्या वसवो येन रुद्राः। येनाऽङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैतु यजमानस्वस्ति।। (तै. सं. ५/७/२/२)

हिरण्यवर्ण और पवमान मन्त्रों का पाठ करते हुए नहाए। जल में उतरते समय अघमर्षण मन्त्रों को बोले। सोलह बार प्राणायाम करे। नहाकर किनारे पर आए। कपड़े धारण करे। कपड़े शुद्ध हो, निचोड़ कर साफ किए गए हो और सूखे हुए हो।

पुनः आचमन करे। 'ओं भूर्भुवस्सुवः' कहकर शुद्ध जल को ले। ओं भूस्तर्पयामि ओं भुवस्तर्पयामि, ओं सुवस्तर्पयामि ओं महस्तर्पयामि, ओं जनस्तर्पयामि, ओं तपस्तर्पयामि, ओं सत्यं तर्पयामि कहते हुए जल से तृप्त करे।

पितृभ्योञ्जलिमुपादाय ओं भूस्स्वधों भुवस्स्वधों सुवस्स्वधों भूर्भुवस्सुवर्महर्नम इति।। ३४।।

तर्पयतीति प्रकृतम्। देववदिति प्राचीनावीतनिवृत्त्यर्थम्। मन्त्रा अपि स्वधाकरणमात्राः, न चतुर्थीनमस्कारान्ताः।। ३४।।

अनु०—पितरगणों के लिए अंजुलि में जल ले। 'ओं भूस्स्वधा', 'ओं भुवस्स्वधा', 'ओं सुवस्स्वधा', 'ओं भूर्भुवस्सुवर्महर्नमः' के उच्चारण सहित जल का तर्पण करे।

अथोदुत्यं चित्रमिति द्वाभ्यामादित्यमुपतिष्ठते।। ३५।।

एतदपि वैशेषिकमुपस्थानम्।। ३५।।

अनु०—'उदुत्यं चित्रम् इत्यादि दो मंत्र बोले और उनसे सूर्य की आराधना करे।

ओमिति ब्रह्म ब्रह्म वा एष ज्योतिः य एष ज्योतिः य एष तर्पत्यैष वेदा य एव तर्पयति वेद्यमेवैतद्य एष तर्पयति एवमेवैष आत्मानं तर्पयत्यात्मने नमस्करोत्यात्मा ब्रह्माऽऽत्मा ज्योतिः।। ३६।।

प्रणवप्रशंसैषा। प्रणवो ब्रह्मणो नेदिष्ठमभिधानम्। वेदयतीति प्रणवोवेदः वेद्यं वेदितव्यम्। एष इत्यपरोक्षनिर्देशः। सर्वदा आदित्यप्रणवब्रह्मतादात्म्यप्रतिपत्त्यर्थः। एवमादित्योपस्थानवेलायां मनस्समाधानं कर्तव्यमित्यर्थः। तथा च पातञ्जलसूत्रम्-'तस्य वाचकः पणवः। तज्जपः तदर्थभावनम्' इति च। तदन्यथाऽप्ययमेव समागमप्रकारः। एवमेवैष भिक्षुरात्मानं तर्पयति नमस्करोति ब्रह्मज्योतिश्शब्दाभ्यामात्मैवोच्यते इत्याह-आत्मा ब्रह्मा ज्योतिः ब्रह्म परिवृढः सर्वतः ज्योतिः द्युतेर्दीप्तिकर्मणः।। ३६।।

अनु०—ओम् अक्षर को ब्रह्म कहते हैं। यह ज्योति ब्रह्म है। जो यह ज्योति है, जो तृप्त करता है, वही उसका जानकार है। जो तर्पण देता है उसको इसे जानना चाहिए। जो तर्पण कर्म करता है, मानो वह अपने को ही तृप्त कर रहा है। इस प्रकार वह स्वयं को तृप्त करता है। स्वयं को नमस्कार कर रहा है। ब्रह्मा ही आत्मा है। आत्मा ही ज्योति है।

सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो वा।। ३७।।

विवृतमेतत्तत्र।।३७।।

अनु०—हजार, सौ या अनगिनत बार सावित्री मन्त्र जपे।

ओं भूर्भुवःस्सुवरिति पवित्रमादायाऽपो गृह्णाति।।३८।।

पवित्रं जलपवित्रं पावयेत् जन्तुमारर्थम्।।३८।।

अनु०—'ओं भूर्भुवः सुवः' के उच्चारण के साथ जल छानने वाले वस्त्र से जल छान ले।

न चाऽत ऊर्ध्वमनुद्धृताभिरद्भिरपरिस्रुताभिरपरिपूताभिर्वाऽऽचामेत्।।३९।।

अनुद्धृताभिः अन्तर्जलाशयात्। अपरिस्रुताभिः अपरिमिताभिः पवित्रान्ते नवाऽपरिपूताभिः।।३९।।

अनु०—इसके बाद उसके लिए कुएं के जल से आचमन करना मना है। अशुद्ध (बिना कपड़े से छाना गया) और अच्छी तरह से संशोधित न किया जल आचमन योग्य नहीं है।

न चाऽत ऊर्ध्वं शुक्लं वासो धारयेत्।।४०।।

शुक्लप्रतिषेधात् कुङ्कुमकुसममञ्जिष्ठारक्तमनुज्ञातमेव।।४०।।

अनु०—न तो वह फिर कभी सफेद कपड़े पहने।

(खण्ड-सत्रह सम्पूर्ण)

खण्ड—अट्ठारह

एकदण्डी त्रिदण्डी वा।।१।।

उक्तेऽपि दण्डत्रित्वे विकल्पाभिधानं किमर्थम्? उच्यते-सकलाश्रमधर्मानुष्ठाने सति दण्डसंख्यायां नाऽभिनिवेशः कर्तव्य इत्यभिप्रायः।।१।।

अनु०—एक अथवा तीन दण्ड धारण करके संन्यासी विचरण करे।

अथेमानि व्रतानि भवन्ति-अहिंसा सत्यमस्तैन्यं मैथुनस्य च वर्जनं त्याग इत्येव।।२।।

अहिंसा वाङ्मनःकायैर्भूतानां दुःखानुत्पादनम्। उक्तेऽप्यभयप्रदाने पुनरभिधानमतिक्रमे प्रायश्चित्तगौरवार्थम्। सत्यं यथाभूतार्थवादित्वम्। स्तैन्यं पुनः बलेन वञ्चनया चौर्येण वा परद्रव्यादानम्। मैथुनवर्जनन्तु स्त्रिया सह सम्भाषण, सहासन, तत्स्पर्शन निरीक्षणादीनां वर्जनम्। त्यागो दानम्। यद्यप्यनिचयो भिक्षुस्तथाऽपि औषधपुस्तकादिपरिग्रहोऽस्त्येव। तथा च तत्सिद्धवत्कारेण गौतमो 'दशवर्षभुक्तं परैस्सन्निधौ

भोक्तु' रित्यभिधायाऽभिधत्ते 'न श्रोत्रियप्रव्रजितराजन्यपुरुषैः' इति।

याज्ञवल्क्योऽपि–

'वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणां रिक्थभागिनः' इति।।२।।

अनु०–मन, कर्म और वाणी से किसी को कष्ट न देना अहिंसा है। यह संन्यासी का व्रत है। सच बोलना, छल-चोरी-जबरदस्ती से दूसरे का धन न लेना, स्त्री का सर्वदा त्याग करना और दूसरों को प्रसन्न चित्त होकर दान देना संन्यासी का व्रत होता है।

पञ्चैवोपव्रतानि भवन्ति-अक्रोधो गुरुशुश्रूषाऽप्रमादश्शौचमाहार शुद्धिश्चेति।।३।।

गुरुशुश्रूषा पित्रोः परिचरणम्, विद्यागुरोर्वा। यद्यपि विदितवेदितव्यस्य संन्यासेऽधिकारः। तथाऽपि संशयस्तिरोधानं वा सम्भाव्यत इति गुरुशुश्रूषया भवितव्यम्। असमीक्ष्यकारित्वं प्रमादः तदभावोऽप्रमादः। आहारदोषोऽपि त्रिधा भवति-जात्याश्रयनिमित्तैर्लशुनपतितकेशादिभिस्तदाहारशुद्धिः। चशब्दस्सन्तोषादिपरिग्रहार्थः। व्रतोपव्रतयोर्भेदेन विधानं प्रायश्चित्तगुरुलघुत्वख्यापनार्थम्।।३।।

अनु०–उसके लिए पांच उपव्रतों का विधान है-क्रोध न करना, गुरु की सेवा करना, आलस्य न करना, शुद्धता और आहार की पवित्रता पर बल देना। ये उपव्रत हैं। इनका संन्यासी पालन करे।

अथ भैक्षचर्या ब्राह्मणानां शालीनयायावराणामपवृत्ते वैश्वदेवे भिक्षां लिप्सेत।।४।।

भिक्षाणां समूहो भैक्षं तच्चर्या तदर्जनम्। ब्राह्मणानां गेहेष्वित्यध्याहारः। भिक्षां भिक्षितद्रव्यं लिप्सेत याचेत।।४।।

अनु०–वह कई घरों से भिक्षा मांगे। इस बारे में जो नियम हैं, उन्हें आगे बताएंगे। वैश्वदेव को बलि दे। इसके बाद विनम्र और घुमक्कड़ (यायावर) ब्राह्मणों के घर जाए, उनसे भिक्षा पाने की कामना करे।

भवत्पूर्वां प्रचोदयात्।।५।।

'भवति भिक्षाम्' इत्यादि सिद्धे सत्यारम्भात्क्षत्रियवैश्यभिक्षुकयोरयमेव मन्त्रः। तयोरपि संन्यासेऽधिकारोऽस्तीति ज्ञापितं भवति। तत्पुनर्ब्राह्मणपरिव्राजकन्यायकृतोपमादिकां प्रसिद्धिं समीक्ष्य युक्तायुक्ततया विचारणीयम्।।५।।

अनु०–भिक्षा देने के लिए कहने से पहले 'भवत्' का प्रयोग करना चाहिए।

गोदोहनमात्रमाकाङ्क्षेत्।।६।।

मन्त्रमुक्त्वेति।।६।।

अनु०—भिक्षा उतने समय में ही मांगने की कामना करे, जितना समय गाय को दुहने में लगता है।

अथ भैक्षचर्यादुपावृत्तः शुचौ देशे न्यस्य हस्तपादान् प्रक्षाल्याऽऽदित्यस्याऽग्रे निवेदयेत्– 'उदुत्यं चित्र' मिति ब्रह्मणे निवेदयते 'ब्रह्मजज्ञान'[1] मिति।।७।।

पृथगेतौ पिटकस्थौ शुचौ देशे निधाय।।७।।

अनु०—भिक्षाटन के बाद शुद्ध पवित्र जगह पर भिक्षा पात्र रखे। हाथ-पैर स्वच्छ करे। 'उदुत्यं चित्रम्' इत्यादि मन्त्रों के साथ के सूर्य को अन्न अर्पित करे। 'ब्रह्म जज्ञानम्' आदि मन्त्र पढ़ते हुए अनाज ब्रह्मन् की सेवा में प्रस्तुत करें।

विज्ञायते-आधानप्रभृति यजमान एवाऽग्नयो भवन्ति तस्य प्राणो गार्हपत्योऽपानोऽन्वाहार्यपचनो; व्यान आहवनीय उदानसमानौ सभ्यावसथ्यौ।।८।।

आधीयन्तेऽग्नय आत्मनीत्यात्मसमारोपणमाधानं तत्प्रभृतीत्यर्थः।।८।।

अनु०—वेद से यह पता चलता है कि यजमान में ब्रह्म का आधान करते समय सभी अग्नियां उसमें निहित होती हैं। गार्हपत्य अग्नि यजमान का प्राण है। अपानवायु अन्वाहार्य पचन है। आहवनीय अग्नि ध्यान है। उदान और समान को क्रमशः सभ्य और आवसथ्य अग्नि कहा जाता है।

पञ्च वा एतेऽग्नय आत्मस्थाः।।९।।

उक्तानुवादोऽयम्। पञ्चसंख्या सम्भयावसथ्यकरणपक्षमाश्रित्य। अकरणपक्षेऽपि तत्सङ्कल्पोऽस्त्येव 'आहवनीये सभ्यावसथ्ययोस्सङ्कल्पः' इत्याधानपरिभाषा-वचनात्।।९।।

अनु०—ये पांचों अग्नियां आत्मा में वास करती हैं।

आत्मन्येव जुहोति।।१०।।

एव शब्दः 'यस्याऽग्नौ न क्रियते यस्य चाऽग्रं न दीयते न तद्भोक्तव्यम्, इत्येवमाशङ्कानिवृत्त्यर्थः।।१०।।

अनु०—इस तरह यजमान का आत्मा ही हवन सम्पन्न करता है।

स एष आत्मयज्ञ आत्मनिष्ठ आत्मप्रतिष्ठ आत्मानं क्षेमं नयतीति विज्ञायते।।११।।

एवं सत्यात्मयज्ञता भवति आत्मनिष्ठः यथाविध्यात्मोपासकः आत्मसुखप्राप्त्यर्था

---

१. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतस्सुरुचो वेन आवः। स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठास्सतश्च विवः। (तै. सं. ४/२/८/२)

यस्यकरूपा बुद्धिः आसावात्मप्रतिष्ठः। सैषा पूर्वोक्तोपासनायाः प्रशंसा।। ११।।

अनु०–यह आत्मयज्ञ कहा गया है। यह आत्मा में स्थित होता है। इसकी प्रतिष्ठा आत्मा में होती है। इससे आत्मा का कल्याण होता है। यह वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है।

भूतेभ्यो दयापूर्वं संविभज्य शेषमद्भिस्संस्पृश्यौषधवत् प्राश्नीयात्।। १२।।

भूतानि पक्षिसरीसृपादीनि। दया अनुकम्पा। तत्पूर्वं संविभज्य प्रदायाऽद्भिस्संस्पृश्य शुक्लान्नं दृष्टार्थमेतत्। औषधवदिति विरसं विवक्षितम्। तथा सति रसोपलब्धिर्न भवतीत्यभिप्रायः।। १२।।

अनु०–संन्यासी उदारता वश अपने भोजन में से प्राणियों का अंश निकाले। जो भोजन बचे, उसे जल से छिड़ककर पवित्र करे और औषधि के समान भोजन को ग्रहण करे।

प्राश्याऽप आचम्य 'वाङ्म आसन्नसोः प्राण' इति जपित्वा ज्योतिष्मत्याऽऽदित्यमुपतिष्ठते उद्वयं तमसस्परीति।। १३।।

भैक्षभोजनादन्यत्राऽप्येतद्वेदितव्यम्।। १३।।

अनु०–भोजन, आचमन करके वाङ्म आसन्नसोः प्राणः जपे और ज्योतिष्मती मंत्र से सूर्य की अर्चना करे।

अयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छया।
आहारमात्रं भुञ्जीत केवलं प्राणयात्रिकमिति।। १४।।

अयाचितमप्रार्थितम्। असंक्लृप्तमनवधृतं मनसाऽपि। यदृच्छयोपपन्नं नाम केनचित् प्रयोजनान्तरवशादानीतम् आहारमात्रं सूपोपदंशादिविस्ताररहितम्। प्राणयात्रिकं यथा प्राणो नाऽपगच्छति।। १४।।

अनु०–अयाचित अन्न, जिसके बारे में पहले से पता न हो, जो संयोग से प्राप्त हो, इन उपायों से प्राप्त भोजन में से उतना ही भोजन करे, जिससे प्राणों का निर्वहन हो सके।

अथाऽप्युदाहरन्ति–

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशाऽरण्यवासिनः।
द्वात्रिंशतं गृहस्थस्याऽपरिमितं ब्रह्मचारिणः।। १५।।

अल्पाभ्यवहारार्थोऽयं नियमः।। १५।।

अनु०–इस संदर्भ में यह पद्य है– संन्यासी आठ ग्रास भोजन ग्रहण करे। सोलह

और वत्तीस ग्रास का भोजन क्रमशः वानप्रस्थी और गृहस्थ का होता है। परन्तु ब्रह्मचारी के भोजन की नाप-तौल नहीं होती।

भैक्षं वा सर्ववर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु।
अपि वा सर्ववर्णेभ्यो न चैकान्नं द्विजातिष्विति।। १६।।

सर्ववर्णग्रहणात् शूद्रान्नमप्यभ्युपगतम्। अतश्चैकान्नपक्षेऽपि द्विजातिग्रहणं मुख्यस्यैव।। १६।।

अनु०—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन सभी वर्णों वाले से भिक्षा मांग सकते हैं। या इनमें केवल ब्राह्मण से ही भिक्षा मांगे। या सभी वर्णों से भिक्षा ग्रहण करे। अन्न ग्रहण करे। पर ब्राह्मण से प्राप्त भोजन अभक्ष्य होता है।

अथ यत्रोपनिषदमाचार्या ब्रुवते तत्रोदाहरिन्त—
स्थानमौनवीरासनसवनोपस्पर्शनचतुर्थषष्ठाष्टमकालव्रतयुक्तस्य।। १७।।

यत्र ग्रहणं चित्तप्रणिधानार्थं तत्रोपनिषद्रहस्यं कर्तव्यतयाऽऽचार्या ब्रुवते। तत्र तद्विशेषमन्यमुपदिशन्ति स्म। स्थानं हिमोत्सङ्गः। मौनं वाक्संयमः स्वाध्यायतोऽपि। वीरासनमेकरूपेणाऽऽसनम्। रात्राविति शेषः। चतुर्थषष्ठाष्टमकालता एकाहद्व्यहत्र्यहातिक्रमः व्रतमनशनं त्रिभिस्सम्बध्यते।। १७।।

अनु०—इस प्रसंग में विद्वान आचार्य उपनिषद् के कथन का उल्लेख करते हैं और यह विशेष निर्देश है कि वह दिन में न बैठे। वाणी पर नियन्त्रण रखे। रात हो जाए तो एक आसन पर ही बैठा रहे, सुबह-दोपहर और शाम को नहाए। भोजन चौथे, छठे, आठवें प्रहर में ग्रहण करे।

कणपिण्याकयावकदधिपयोव्रतत्वं चेति।। १८।।

कणास्तण्डुलावयवाः। पिण्याकं तिलपिष्टम्। यवतण्डुलपक्वौदनः यवागूर्वा यावकम्। सममन्यत्।। १८।।

अनु०—चावल के कंण, तिल से बना पिण्याक (भोजन सामग्री) और जौ का वना भोजन, दही और दूध का सेवन करे।

तत्र मौने युक्तस्त्रैविद्यवृद्धैराचार्यैर्मुनिभि रन्यैर्वाऽऽश्रमिभिर्बहुश्रुतैर्दन्तान् सन्धायाऽन्तर्मुख एव यावदर्थं सम्भाषीत न यत्र लोपो भवतीति विज्ञायते।। १६।।

त्रयी ग्रन्थतोऽर्थतश्च यैस्समधिगता, ते त्रैविद्यवृद्धाः अत्रैविद्यवृद्धा अप्याचार्याः। मुनयः परिव्राजकाः। अन्याश्रमग्रहणान्नैष्ठिकतापसयोर्ग्रहणम्। दन्तैर्दन्तानिति सम्भाष्यादन्यो यथा न शृणुयादित्यर्थः।। १६।।

अनु०—वेद के अनुशीलन से पता चलता है संन्यासी मौन रहे। वेद विद्वान,

आचार्य, मुनि, ब्रह्मनिष्ठ, नैष्ठिक ब्रह्मचारी या तपस्वी के साथ बात करनी हो तो वह दांतों को दबाकर मुंह के अंदर जितना जरूरी हो, उतना बोले। इस तरह के आचरण से व्रत भंग नहीं होता।

स्थानमौनवीरासनानामन्यतमेन सम्प्रयोगो न त्रयं सन्निपातयेत्।। २०।।

वक्ष्माणं यत्तदपेक्षणीयम्।। २०।।

अनु०—दिन में खड़ा रहना, मौन धारण करना, रात में एक आसन में बैठना, इनमें से संन्यासी किसी एक व्रत को पूरा करे। तीनों व्रत एक साथ करना उचित नहीं।

यत्र गतश्च यावन्मात्रमनुव्रतयेदापत्सु न यत्र लोपो भवतीति विज्ञायते।। २१।।

आपत्सु अथेष्टमशित्वा कणादीनामप्यन्यतमं पश्चान्नाश्नीयादित्यर्थः।। २१।।

अनु०—जहाँ जाए वहां मात्रा के अनुसार से भोजन करे। प्राणसंकट में जिस किसी का भी अन्न खाने से व्रत भंग नहीं होता।

स्थानमौनवीरासनसवनोपस्पर्शनचतुर्थषष्ठाष्टमकालव्रतयुक्तस्य। अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं घृतं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधमिति।। २२।।

हविः क्षारलवणवर्जम्। ब्राह्मणकाम्या ब्राह्मणभ्यर्थना। एवमहविष्यमपि गुरोर्वचनात्। औषधार्थञ्चाऽहविष्यमपि।। २२।।

अनु०—दिन में बिल्कुल न बैठना, मौन रहना, रात भर बैठना, सुबह, दोपहर, शाम को नहाना, चौथे, छठे या आठवें प्रहर में भोजन करना, ऐसे व्रतों का पालन, जल, मूल, घी, दूध, यज्ञ की हवि, ब्राह्मण का निवेदन, गुरु का वचन और औषध के सेवन से भी व्रत भंग नहीं होता।

सायं प्रातरग्निहोत्रमन्त्रान् जपेत्।। २३।।

यदग्निहोत्रेऽधीयते तदाहिताग्नेस्सतो भिक्षुकस्य।। २३।।

अनु०—सुबह-शाम अग्निहोत्र के मंत्रों का पाठ करे।

वारुणीभिस्सायं सन्ध्यामुपतिष्ठते मैत्रीभिः प्रातः।। २४।।

द्वयोर्द्वयोः प्राप्तयोः बह्वीनां विधानमेतत्। तत्र वारुण्या 'यच्चिद्धि ते' इति तिस्त्रः। मैत्र्यः पुनः प्रतिदृधे द्वे 'प्र स मित्र' इत्येषा च।। २४।।

अनु०—शाम को संध्या में वरुण के मन्त्रों का पाठ करते हुए उनकी अर्चना करे। सुबह संध्या करते हुए मित्र देवता विषयक मंत्र बोलकर उनकी उपासना करे।

अनग्निरनिकेतस्स्यादशर्माऽशरणो मुनिः।। २५।।

शर्म ग्रहणम्। शरणं परानुग्रहः। उभते च हिंसाऽनुग्रहयोरनारम्भी इति। इतिशब्द

एवं प्रकाराणां ग्रहणार्थः। कथं प्रकाराणाम्?

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मुक्तिर्न लोकचित्तग्रहणे रतस्य।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चैव रम्यावसथप्रियस्य।।
इत्यादीनाम्।। २५।।

अनु०—संन्यासी अग्नि को अपने साथ न रखे। वह घर रहित होकर रहे। किसी से कुछ न ले। किसी के शरण में रहना उसके लिए मना है।

भैक्षार्थी ग्राममन्विच्छेत्।। २६।।

भैक्षशब्दो जलपवित्रादेरपि प्रदर्शनार्थः।। २६।।

अनु०—गांव में भिक्षा मांगने के समय ही जाए।

स्वाध्याये वाचमुत्सृजदिति।। २७।।

स्वाध्यायः प्रणवः समस्तवेदो वा।। २७।।

अनु०—वेद का अध्ययन करते समय ही उसे बोलना चाहिए।

विज्ञायते च-परिमिता वा ऋचः परिमितानि सामानि परिमितानि यजूंष्यथैतस्यैवाऽन्तो नाऽस्ति यद् ब्रह्म तत्प्रतिगृणत आचक्षीत स प्रतिगर इति।। २८।।

अस्ति द्वादशाहे दशमेऽहनि मानसे ग्रहे चातुर्होत्रविधानं 'अथ ब्रह्म वदन्ति' इति। ब्रह्म चतुर्होतारः, 'ब्रह्म वै चतुर्होतारः' इति दर्शनात्। तस्य वाक्यशेषः परिमिता वा इत्यादि। अयमर्थः—ऋगादयो मन्त्राः परिमिताः। एतस्य पुनश्चतुर्होत्राख्यस्य ब्रह्मणोऽन्तो नाऽस्ति। तस्मात्तदेव प्रतिगृणते अध्वर्यव आचक्षत एताः। एवं कृते ब्रह्मणो ब्रह्मैव प्रतिगरस्सम्पद्यते। एवं हि तत्राऽध्वर्युः प्रतिगृणाति 'ओं होतः' इति। गृणातिश्शब्दकर्मा भाषणकरणमित्यर्थः। किमुक्तं भवति? यथा मानसस्य प्रणवः प्रतिगरः एवं मौनिनोऽपि प्रणव एव स्वाध्याय इति।। २८।।

अनु०—वेद के अनुसार-ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या निश्चित है। सामवेद के मन्त्रों की संख्या सीमित है। यजुर्वेद के मन्त्र भी सीमित हैं। परन्तु ब्रह्म अपार है। उसका पार नहीं पाया जा सकता। इसी सम्बन्ध में अध्वर्यु का विचार है कि ब्रह्म ही प्रतिगार है।

एवमेवैष आशरीरविमोक्षणाद् वृक्षमूलिको वेद संन्यासिकः।। २६।।

वेदसंन्यासिको गृहस्थः एव कृतकरणीयोऽभिधीयते। न हि वेदसंन्यासोऽस्ति शास्त्रविरोधात्। अतस्तदर्थानुष्ठानाय प्रतिग्रहादीनां वृत्तिकर्मणां संन्यासो यस्येत्यर्थः। अवसन्नशरीरो जरसा कृतसम्प्रतिविधानो वा पुत्रोपहृतवृत्तिस्तस्याऽयमुपदेशः आशरीरविमोक्षणात् वृक्षमूलिक इति। अथ यस्तावत्समर्थो गृहात् प्रव्रज्यायाः तस्य

यथाशास्त्रं सैव भवति। असमर्थस्य पुनरुत्सृष्टाग्नेश्शास्त्राद्वा इयमेव व्यवस्थोच्यते। प्रव्रज्या च वैकल्पिकी। एवं प्रव्रज्यानन्तरमुपदेशो युज्यत इति। आह च—

वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत। इत्यभिप्रायः कृतविधानो वा आसीताऽमृतदर्शनादिति (?) एवमिति वक्ष्यमाणं प्रणवध्यानं परामृश्यते। एतदुक्तं भवति-परमसंयमवान् परमात्मध्यानैकावलम्बनः पुत्रैश्वर्ये सुखमासीतेति।। २६।।

अनु०—संन्यासी जब तक शरीर से मुक्त न हो, तव तक उसे वृक्षमूलिक संन्यासी रहना चाहिए।

वेदो वृक्षः तस्य मूलं प्रणवः।। ३०।।

वृक्षो व्रश्चनात् पापस्य। प्रणवपूर्वत्वाद्वेदारम्भस्य मूलव्यपदेशः।।३०।।

अनु०—वेद वृक्ष है और प्रणव उसकी जड़ है।

प्रणवात्मको वेदः।। ३१।।

आत्मा सारः प्रणवसारो वेदः। तथा च श्रुतिः 'तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओंकारः सम्प्रसुस्राव' इति। आह च—

अकारं चाऽप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहत् भूर्भुवस्स्वरितीति च।। (मनु.) ३१।।

अनु०—प्रणव वेद की आत्मा होती है।

प्रणवो ब्रह्म प्रणवं ध्यायेत्।। ३२।।

उक्तार्थमेतत् 'स प्रतिगरः' इत्यत्र। परमात्मतादात्म्यध्यानमनेनाभिप्रेतम्।। ३२।।

अनु०—प्रणव ही ब्रह्म है। संन्यासी प्रणव को ध्याये।

प्रणवो ब्रह्मभूयाय कल्पत इति होवाच प्रजापतिः।। ३३।।

ब्रह्मभूयाय ब्रह्मभावाय। अमोघं हि प्रजापतेर्वाक्यम्।। ३३।।

अनु०—प्रणव के द्वारा ही ब्रह्म से एकात्मकता स्थापित होती है। यह प्रजापति का विचार है।

सप्तव्याहृतिभिर्ब्रह्मभाजनं प्रक्षालयेदिति प्रक्षालयेदिति।। ३४।।

सप्तव्याहृतयो भूराद्यास्सत्यान्ताः। ब्रह्मभाजनं भिक्षापात्रं 'अन्नं ब्रह्म' इति श्रुतेः। यद्वा ब्रह्मभाजनं शरीरे तद्भुक्त्वा प्रक्षालयेदिति।। ३४।।

अनु०—ब्रह्म के पात्र अर्थात् शरीर को सात व्याहृतियों से शुद्ध, पवित्र करना चाहिए।

(प्रश्न-दो, अध्याय-दस, खण्ड-अट्ठारह सम्पूर्ण)

प्रश्न–तीन

अध्याय–एक : खण्ड–एक

अथ शालीनयायावरचक्रचरधर्मकाङ्क्षिणां नवभिवृत्तिभिर्वर्तमानानाम्।।१।।

वृत्त्युपाया वक्ष्यन्त इति शेषः। गृहस्थविशेषाः केचिच्छालीनयायावराः। शालीनयायावरशब्दौ स्वयमेव व्युत्पादयति-शालाश्रयत्वाच्छालीनत्वम्' इत्यादि। सर्वेषामप्याश्रमिणां स्वकीयधर्मकांक्षित्वे सति विशेषोपादानमेतदर्थम्। तच्च क्षिप्रं पुरुषार्थप्रापणम्।।१।।

अनु०–यहां से हम शालीन, यायावर, चक्रचर (संन्यासियों के प्रकार) के कर्तव्य-कर्मों के पालन के इच्छुक तथा नौ तरह की जीविका वृत्ति से जीवन चलाने वाले लोगों के नियमों की व्याख्या करेंगे।

तेषां तद्वर्तनाद् वृत्तिरित्युच्यते।।२।।

अनेन वृत्तिशब्दो व्युत्पाद्यते। तेषां शालीनयायावराणां तद्वर्तनात् तस्य शरीरस्य वर्तनात् दर्शितमेतदस्माभिः पूर्वसूत्रे।।२।।

अनु०–वृत्ति उसे कहते हैं जिससे व्यक्ति अपना जीवन-गुजर बसर करता है।

शालाश्रयत्वाच्छालीनत्वम्। वृत्त्या वरया यातीति यायावरत्वम्। अनुक्रमचरणाच्चक्रचरत्वम्।।३।।

अन्वर्थसंज्ञा एताः। विस्तीर्णाभिः शालाभिर्युक्ताश्शालीनाः। यथा 'जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। सह सर्वत आवसथान् मापयांचक्रे सर्वत एव मेऽन्नमत्स्यन्तीति'। तद्वदेतेऽपीति। खप्रत्ययो मत्वर्थीयः। अनुक्रमेण चरणमनुक्रमचरणम्। यायावारामेवैषा संज्ञा। अनुक्रमचरणं नाम विप्रक्षत्रियविशां गेहेषु पूर्वस्य पूर्वस्याऽभावे उत्तरोत्तरचरणम्। वृत्त्या वरया उत्कृष्टया यापयत्यात्मानमिति। णिचो लोपोऽत्र द्रष्टव्यः।।३।।

अनु०–जो घर में रहकर कर्तव्य-कर्मों को निभाए, वह शालीन होता है। उत्कृष्ट

उपाय से जो जीवन चलाए, उसे यायावर कहते हैं।

वर्णों के क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के घर पर जो भिक्षाटन करता है, उसको चक्रकर कहते हैं।

ता अनुव्याख्यास्यामः।।४।।

क्रमेण ता वृत्तीः विविच्य व्याख्यास्यामः।।४।।

अनु०–हम इन वृत्तियों की चर्चा कर रहे हैं।

षण्णिवर्तनी कौद्दाली ध्रुवा सम्प्रक्षालीनी समूहा पालिनी सिलोञ्छा कापोता सिद्धेच्छेति नवैताः।।५।।

एता अप्यन्वर्थसंज्ञा एव। एतासामेव रूपमुपरितनेऽध्याये स्वयमेव निपुतरं विवरिष्यते।।५।।

अनु०–षण्णिवर्तनी, कौद्दाली, ध्रुवा, सम्प्रक्षालीनी, समूहा, पालिनी, सिलोञ्छा, कापोता, सिद्धेच्छा नामक नौ तरह की वृत्तियां बताई गई हैं।

तासामेव वान्याऽपि दशमी वृद्धिर्भवति।।६।।

वान्या वनसम्बन्धिनी वन्यधान्यमूलफलाहारेण वृत्तिः, यामेनां दशमीमित्याचक्षते साऽपि तासामेवान्यतमेत्याचार्याभिप्रायः। वान्यायाः पृथगुपादानमितराभ्यः प्राशस्त्यप्रतिपादनार्थम्।।६।।

अनु०–इन्हें छोड़कर एक वृत्ति और होती है। वह है- जंगल में रहते हुए जीवन यापन करना। यह दसवीं वृत्ति कहलाती है।

आ नववृत्तेः।।७।।

नव वृत्तयो यस्य तस्याऽनुष्ठानं वक्ष्यत इति शेषः। आङ्त्राभिविधौ। अतश्च दशमीमाश्रितवतो वक्ष्यमाणो विधिर्न भवति।।७।।

अनु०–नववृत्तियों में से किस जीविका को कैसे ग्रहण करे। उसका विधि-विधान इस तरह है।

केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वोपकल्पयते–कृष्णाजिनं कमण्डलुं यष्टिं वीवधं कुथहारिमिति।।८।।

उकल्पनमार्जनम्। वीवधो दृढदारूभयतश्शिक्यम्। कुथहारिः वासवशासनदात्रम् (?)। इतिशब्दः कुद्दालादेर्वक्ष्यमाणस्योपलक्षणार्थः। एतानि नवानि भवेयुः।।८।।

अनु०–केश, मूंछ, दाढ़ी, शरीर के रोम, एवं नख को काटे। क्रमशः इनसे काला मृग चर्म, कमण्डल, बहंगी, कुथहारी (दराती) बनाए।

त्रैधातवीयेनेष्ट्वा प्रस्थास्यति वैश्वानर्या वा।।६।।

प्रस्थास्यति निर्गच्छति। आहिताग्नेर्गृहस्थस्य विधिः। इतरस्याऽपि तद्देवत्यश्चरुरिष्यते। एतत्पूर्वेद्युरेव कार्यम्।।६।।

अनु०–त्रैधातवीय या वैश्वानारी इष्टि करके घर छोड़ने के लिए अच्छी तरह सोच-विचार करे।

प्रातरुदित आदित्ये यथासूत्रमग्नीन् प्रज्वाल्य गार्हपत्य आज्यं विलाप्योत्पूय स्रुक्स्रुवं निष्टप्य सम्मृज्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽऽहवनीये वास्तोष्पतीयं जुहोति।।१०।।

अनु०–अगले दिन सुबह सूरज के निकलते ही अपने सूत्र के अनुसार अग्नि का आधान करे। गार्हपत्य अग्नि में घी को तपाए। उसे स्वच्छ करने के लिए कुश का प्रयोग करे। स्रुक् और स्रुवा को अग्नि में रखे। फिर उन्हें साफ करे। स्रुक् में चार बार घी ले। और आह्वनीय अग्नि में वास्तोष्पतीय नामक यज्ञ पूर्ण करे।

'वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मा' निति पुरोनुवाक्यामनूच्य 'वास्तोष्पते' शग्मया संꣳसदा ते' इति याज्यया जुहोति।।११।।

यथासूत्रं आत्मीयशास्त्रानुसारेण वास्तोष्पतीयहोमो यागानुष्ठानम्। ऋज्वन्यत्।।११।।

अनु०–'वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मा' एवं 'वास्तोष्पते शग्मया संꣳसदा ते' आदि मन्त्रों से अपने सूत्र के अनुकूल यज्ञ करना चाहिए।

सर्व एवाऽऽहिताग्निरित्येके।।१२।।

अधिकारिनिर्देशः। त्रैधातवीयादेरविशेषेण सर्वस्याऽप्याहिताग्नेः प्रयाणे निमित्त एतदित्येकीयं मतम्।।१२।।

अनु०–कुछ आचार्यों का विचार है कि अग्नि का आधान करने वाले समस्त लोगों के लिए इस यज्ञ का विधान है।

यायावर इत्येके।।१३।।

यायावरस्याऽऽहिताग्नेश्चेत्यपरम्।।१३।।

अनु०–परन्तु कुछ विद्वान कहते हैं कि यायावर के लिए यज्ञ का निर्देश है।

---

१. वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो भवानः। यत्वे महे प्रतितन्नो जुषस्व शन्न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे।।

२. वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। आवः क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिस्सदा नः।। (तै. सं. ३/४/१०)

निर्गत्य ग्रामान्ते ग्रामसीमान्ते वाऽवतिष्ठते तत्र कुटीं मठं वा करोति कृतं वा प्रविशति।। १४।।

ग्रामान्तो वास्तुसीमा। इतरा क्षेत्रसीमा। कुटी एकस्थूणमस्थूणं वा वेश्म। मठो बहुस्थूणः।। १४।।

अनु०—घर छोड़ दे। गांव के दूसरे किनारे या उसकी सीमा पर निवास करे। वहां कुटी या मठ बनाए। यदि वहां पहले से ही कुटी या मठ बना हो, तो उसमें जाकर रहे।

कृष्णाजिनादीनामुपक्लप्तानां यस्मिन् यस्मिन्नर्थे येन येन यत्प्रयोजनं तेन तेन तत्कुर्यात्। प्रसिद्धमग्नीनां परिचरणम्। प्रसिद्धं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजनम्। प्रसिद्धः पञ्चानां महतां यज्ञानामनुप्रयोगः। उत्पन्नानामोषधीनां निर्वापणं दृष्टं भवति।। १५।।

उत्पन्नानां तस्मिन् काले। अभिनवानामहन्यहन्यार्जितानां वा।। १५।।

अनु०—कृष्ण चर्म आदि को यथायोग्य व्यवहार में लाए। अग्नि की रक्षा करे। दर्श पूर्णमास यज्ञ पूर्ण करे। पांच महायज्ञों के नियमों को जाने। औषधियों का निर्वापण भी देखा जाता है।

'विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं निर्वपामी' ति वा तूर्ष्णीं वा ताः संस्कृत्य साधयति।। १६।।

ओषधीनां संस्कारोऽवहननादिः। साधनं पाकः। एवंभूतमोदनमग्नौ कृत्वा तच्छेषं स्वयं वाग्यतो भुञ्जीतेत्यभिप्रायः।। १६।।

अनु०—मौन रहकर औषधियों को शुद्ध करे। उन्हें पकाए। और विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं निर्वपामि' का उच्चारण करे।

तस्याऽध्यापनयाजनप्रतिग्रहा निवर्तन्ते।। १७।।

द्रव्यार्जनस्योपायान्तरविधानादध्यापनादीनां निवृत्तिरुक्ता।। १७।।

अनु०—अब उसे पढ़ाने, यज्ञ कराने और दान लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

अन्ये च यज्ञक्रतव इति।। १८।।

अन्यत्वं दर्शपूर्णमासव्यपेक्षम्। एतेऽपि निवर्तन्ते। इतिकरणात् 'पूर्तादयोऽपि निवर्तन्ते।। १८।।

अनु०—दूसरे प्रकार के यज्ञों को करना भी जरूरी नहीं होता।

हविष्यं च व्रतोपायनीयं दृष्टं भवति।। १९।।

व्रतोपायनीयं भोज्यम्।। १९।।

अनु०—यज्ञ की हवि का भक्षण व्रत का पालन करते समय कर सकते हैं।

सर्पिर्मिश्रं दधिमिश्रमक्षारलवणमपिशितमपर्युषितम्।।२०।।

क्षाररसः हिङ्ग्वादि। पिशितं पक्वं मांसम्। पर्युषितं पक्वमोदनमुषोऽन्तरितमतीतं च।।२०।।

अनु०—उसे घी मिश्रित या दही मिला हुआ भोजन करना चाहिए। लवण, मांस और बासी भोजन करना उसके लिए वर्जित है।

ब्रह्मचर्यमृतौ वा गच्छति।।२१।।

ब्रह्मचर्यं रेतस उत्सर्गाभावः। ऋतौ वा गच्छति कृतार्थाकृतार्थापेक्षा विकल्पः।।२१।।

अनु०—ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे या ऋतुकाल में ही सम्भोग करे।

पर्वणि पर्वणि केशश्मश्रुलोमनखवापनं शौचविधिश्च।।२२।।

शौचस्य बाह्यस्याऽऽभ्यन्तरस्य च विधिश्शौचाधिष्ठानाध्याय एवोक्तः। तथाऽप्युक्तं स्मारयितुमाह।

अनु०—जब पर्व आए तो सिर के बाल, दाढ़ी, मूंछ शरीर के बाल और नाखून कटवा दे तथा शुद्धि के निमित्त निर्दिष्ट निर्देशों के अनुसार आचरण करे।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

श्रूयते द्विविधं शौचं यच्छिष्टैः पर्युपासितम्।
बाह्यं निर्लेपनिर्गन्धमन्तश्शौचमहिंसनम्।।२३।।

अनु०—इस प्रसंग में यह पद्य दिया जा रहा है-शौच के दो भेद होते हैं। इनका आचरण शिष्ट लोग करते हैं। वह है बाह्यशौच एवं अन्तःशौच। बाह्यशौच में दुर्गन्ध एवं अशुद्धि जन्य वस्तुओं के लेप को दूर करते हैं। किसी भी प्राणी को पीड़ा न देना अन्तःशौच कहा जाता है।

अद्भिश्शुद्ध्यन्ति गात्राणि बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यतीति।
अहिंसया च भूतात्मा मनस्सत्येन शुद्ध्यतीति।।२४।।

व्याख्यातश्श्लोकः। अन्तश्शौचमहिंसनमित्येतद्विधानपरोऽयं प्रपञ्चः।।२४।।

अनु०—जल से शरीर के अंग-प्रत्यंग शुद्ध होते हैं। ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। आत्मा की शुद्धि का कारण है। अहिंसा और मन की शुद्धि सत्य से होती है।

(अध्याय-एक, खण्ड-एक सम्पूर्ण)

अध्याय-दो : खण्ड-दो

यथो एतत् षण्णिवर्तनीति।।१।।

यथो एतदिति निपातः उक्तानुभाषणार्थः 'यथा एतद्धुतः प्रहुत आहुतः' इति। यथा वा 'यथो एतदेकस्य सतः' इति। नवानां वृत्तीनां षण्णिवर्तनीति यां प्रथमं पठिता तां विवरिष्यामीत्यर्थः।।१।।

अनु०–षण्णिवर्तनी के नियम ये हैं-

षडेव निवर्तनानि निरुपहतानि करोति स्वामिने भागमुत्सृजत्यनुज्ञातं वा गृह्णाति। प्राक्प्रातराशात्कर्षी स्यादस्यूतनासिकाभ्यां समुष्काभ्यामतुदन्नारया मुहुर्मुहुरभ्युच्छन्दयन्। एतेन विधिना षण्णिवर्तनानि करोतीति षण्णिवर्तनी।।२।।

निवर्तनं नाम भूम्याः कर्षणं कृषीवलानां प्रसिद्धम् इयदेकं निवर्तनमिति। निरुपहतं अकृष्ट क्षेत्रं षट्संख्याविशिष्टानि निवर्तनान्यकृष्टक्षेत्राणि समापादयन्तीत्यर्थः। तत्र निष्पन्नौपधेरयं विशेषः-स्वामिने भागमित्यादि। भूस्वामिने भागोंऽशः परक्षेत्रविषयमेतत्। सामर्थ्यात् स चेदनुजानीयात्सर्वे स्वयमेव गृह्णीयात्। स्वक्षेत्रेषु नाऽयं विधिः स्वक्षेत्रत्वात्। आपदुपायोऽयम्। प्राक्प्रातरित्यादि व्याख्यातम्। एतेन विधानेन षण्णिवर्तनीशब्दं व्युत्पादयन्नुपसंहरति।।२।।

अनु०–छह निवर्तन भूमि में कृषि करे। भूमि बिना जोती हुई हो। भूमि के मालिक को उसका अंश दे। फिर अपना भाग ले। या खेत के मालिक के आग्रह पर वह समस्त अंश ले सकता है। वह नाक न छिदे एवं बधिया न किए गए बैलों से प्रातःकाल खेती कर्म करे। लेकिन यह कर्म प्रातः भोजन (जलपान) से पहले ही हो। बैलों को कोड़े-डंडे से न मारे। बैलों को प्यार से पुचकारे और खेत जोते। इस उपाय से जो खेती करता है, उसे षण्णिवर्तनी कहते हैं।

कौद्दालीति जलाभ्याशे कुद्दालेन वा फालेन वा तीक्ष्णकाष्ठेन वा खनति बीजान्यावपति कन्दमूलफलशाकौषधीर्निष्पादयति। कुद्दालेन करोतीति कौद्दाली।।३।।

अभ्याशे समीपे अपरिग्रहे। कुद्दालमयोमुखं काष्ठम्। फालमायस्यं खनित्रमिति यावत्। तीक्ष्णाग्रं काष्ठं प्रसिद्धम्। एतेषां सम्भवापेक्षो विकल्पः खनति विखनति। ततो बीजान्यावपति कन्दादीनाम्। कन्दमामोपयोग्यम्। मूलं पक्वोपयोग्यम्। अन्यत्प्रसिद्धम्।।३।।

अनु०–जो तालाब के निकट कुदाली, फाल या नुकीली लकड़ी के टुकड़े से जमीन को खोदे और उसके कन्द, मूल, फल, शाक और औषधि पैदा करे, वह कौद्दाली होता है।

ध्रुवायां वर्तमानश्शुक्लेन वाससा शिरो वेष्टयति-'भूत्यै त्वा शिरो वेष्ट्यामी' ति।।४।।

प्रत्यारम्भं इति केचित्। अहरहरित्यन्ये। एवं कृष्णाजिनादानेष्वपि द्रष्टव्यम्।।४।।

अनु०–सफेद कपड़े से शिर को बांधे। 'भूत्यै त्वा शिरोवेष्ट्यामि' का उच्चारण करे वह ध्रुवावृत्ति वाला होता है।

'ब्रह्मवर्चसमसि ब्रह्मवर्चसाय त्वे' ति कृष्णाजिनमादत्ते। अब्लिङ्गाभिः पवित्रम्। 'बलमसि बलाय त्वे' ति कमण्डलुम्।।५।।

आदत्त इत्यनुवर्तते।।५।।

अनु०–'ब्रह्मवर्चमसि ब्रह्मवर्चसाय त्वा' बोलते हुए काले मृग का चर्म पहने। जलदेवता विषयक् मंत्रों से जल पवित्र (वस्त्र छानने वाला कपड़ा) को ग्रहण करना चाहिए। 'बलमसि बलाय त्वा' का उच्चारण कर कमण्डल धारण करे।

'धान्यमसि पुष्ट्यै त्वे' ति वीवधम्। 'सखा मे गोपाये' ति दण्डम्। अथोपनिष्क्रम्य व्याहृतीर्जपित्वा दिशामनुमन्त्रणं जपति-'पृथिवी चाऽन्तरिक्षं च द्यौश्च नक्षत्राणि च या दिशः। अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च पान्तु मां पथि देवता' इति। मानस्तोकीयं जपित्वा ग्रामं प्रविश्य गृहद्वारे गृहद्वार आत्मानं वीवधेन सह दर्शनात् संदर्शनीत्याचक्षते।।६।।

ध्रुवा हि वृत्तिर्भिक्षाटनप्राधान्यात्। भैक्षभाजनं च वीवधः। तत्र तत्र प्रतिगृहमुपनिष्क्रम्य व्याहृतीर्जपति। दिशामनुमन्त्रणम्-'पृथिवी च' इति मन्त्र। 'मा नस्तोके' इति गृहद्वारे। आत्मानं वीवधेन गृहद्वारिभ्यस्संदर्शयित्वा (?) तूष्णीमेव गोदोहनकालमात्रं तिष्ठेत्। एतस्मादेव लिङ्गादेतस्या वृत्तेस्सन्दर्शनीति संज्ञान्तरमाचक्षते।।६।।

अनु०–'धान्यमसि पुष्ट्यै त्वा' के उच्चारण के साथ बहंगी को उठाए। 'सखा मे गोपाय' कहते हुए दण्ड धारण करना चाहिए। कुटिया से निकले। व्याहृतियों को जपे। दिशाओं के लिए 'पृथिवी चाऽन्तरिक्षं च द्यौश्च नक्षत्राणि च या दिशः। अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च पान्तु मां पथिदेवता' का उच्चारण करे। गांव में घुसते हुए 'मानस्तोकीय' को जपे। वह जहां जाए, वहां बहंगी को आगे करके घर वालों को दिखाए। इस उपाय को संदर्शनी कहा जाता है।

वृत्तेर्वृत्तरवार्तायां तयैव तस्य ध्रुवं वर्तनाद् ध्रुवेति परिकीर्तिता।।७।।

वृत्तंर्वृत्तेरिति वीप्सादर्शनात् अवार्तायामित्यध्याहार्यम्। वृत्त्यवार्ताशब्दौ द्रव्यलाभालाभवचनौ। प्रथमो वृत्तिशब्दः प्राणयात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थद्रव्यार्जनवचनः। तयैव भिक्षया वर्तेत। ध्रुवमित्याद्युपसंहारः। ध्रुवं निश्चयेन।।७।।

अनु०—यदि भिन्न-भिन्न वृत्तियों से जीविका न चले तो उसे भिक्षावृत्ति से अपना जीवन विताना चाहिए। उसे ध्रुवा वृत्ति कहा गया है।

सम्प्रक्षालनीति। उत्पन्नानामोषधीनां प्रक्षेपणं निक्षेपणं नास्ति निचयो वा भाजनानि सम्प्रक्षाल्य न्युब्जतीति सम्प्रक्षालनी।। ८।।

उपपन्नानामुत्पादयितुमङ्कुरीकर्तुं योग्यानां बीजानामित्यर्थः। ओषधीनां व्रीह्यादिवीजानां प्रक्षेपणं बीजावापनम्। यद्वा पूर्वमेवोत्पन्नानां यात्रामात्र-प्रसिद्ध्यर्थमार्जितानामित्यर्थः। नास्तीत्येतत्काकाक्षिवत् प्रक्षेपणनिक्षेपणनिचयेषु सम्बध्यते। निक्षेपणं निक्षेपः। पात्र्यां भोजनवेलायाम्, निचयस्सञ्चयः आमे पक्वे च सञ्चयो न कर्तव्य इत्यर्थः। किं तर्हि कुर्यात्? अहरेव भाजनानि सम्प्रक्षाल्य न्युब्जति न्यञ्चं करोति सैषा सम्प्रक्षालनी वृत्तिः।। ८।।

अनु०—पैदा होने के योग्य व्रीहि आदि के बीजों को बोना या औषधि, अन्न आदि को नष्ट करने के अभिप्राय से फेंकने अथवा इकट्ठा करने की वृत्ति जिसमें न हो, उसे सम्प्रक्षालनी कहते हैं। इस वृत्ति में बरतनों को धोकर उलटा रखते हैं।

समूहेति। अवारितस्थानेषु पथिषु वा क्षेत्रेषु वाऽप्रहितावकाशेषु वा यत्र यत्रौषधयो विद्यन्ते तत्र तत्र समूहन्या समूह्य ताभिर्वर्तयतीति समूहा।। ९।।

अवारितस्थानान्यनिषिद्धानि। अप्रतिहतावकाशाः वृत्तिशून्या देशाः। समूहनी सम्मार्जनी।। ९।।

अनु०—जहां जाना वर्जित नहीं हैं, रास्ते-अथवा खेत में जो जगह घिरी न हो, औषधि, वृक्ष आदि हो उन स्थानों पर झाड़ू लगाए। इससे जो भक्षणीय पदार्थ मिलें उनसे जीवन यापन करे। इसे समूहानाम की वृत्ति कहते हैं।

पालनीत्यहिंसिकेत्येवेदमुक्तं भवति। तुषविहीनांस्तण्डुलानिच्छति सज्जनेभ्यो वीजानि वा पालयतीति पालनी।। १०।।

सज्जनेभ्यो विद्वद्भ्यः। पालयति प्रयच्छति तस्मात्तंडुलानेव स्वयं गृह्णीयात्। तुषविहीनग्रहणं तुषाणामप्यसंग्रहणार्थम्। तेषु मिश्रणसम्भावना यतः।। १०।।

अनु०—पालनीवृत्ति का एक दूसरा नाम अहिंसिका वृत्ति भी है। जो सज्जनों के घर जाए और उनसे छिलका रहित चावल मांगने की इच्छा प्रकट करे या वीज प्राप्त करे। उसी से गुजर-वसर करे। इस वृत्ति को पालनीवृत्ति कहते हैं।

सिलोञ्छेति। अवारितस्थानेषु पथिषु वा क्षेत्रेषु वाऽप्रतिहतावकाशेषु वा यत्रयत्रौषधयो विद्यन्ते तत्रतत्रैकैकं कणिशमुञ्छयित्वा काले काले सिलैर्वर्तयतीति सिलोञ्छा।। ११।।

कणिशो धान्यस्तम्बः। उञ्छनं उत्पाटनम्। उञ्छनकालः वीप्सया सम्बध्यते। सर्वावश्यकालः उञ्छनकालः। सिलाः ग्रासविशेषाः। यावद्भिरात्मयात्रा भवतीति। शेषं पूर्ववत्।।११।।

अनु०—जहां आने-जाने की मनाही न हो, ऐसे रास्ते अथवा खेत में जो चारों ओर से खुला हो, घिरा न हो, ऐसी जगहों पर जो अन्न, औषधि आदि जमीन पर गिरी हो, वहां से एक-एक कण को इकट्ठा कर उनसे जीविका यापन करे तो यह सिलोञ्छा वृत्ति होती है।

कापोतेति। अवारितस्थानेषु पथिषु क्षेत्रेषु वाऽप्रतिहतावकाशेषु वा यत्र यत्रौषधयो विद्यन्ते तत्र तत्राऽङ्गुलिभ्यामेकैकामोषधिमुञ्छयित्वा सन्दर्शनात् कपोतवदिति कापोता।। १२।।

संदर्शनादात्मनः प्रकटीकरणात्। संदर्शनादिति पाठे खादनादित्यर्थः। तद्यथा कपोतो द्वाभ्यां चञ्चुभ्यां एकस्थान्यव्यक्तं गृहीत्वा पतति एवं कापोतामास्थाय वर्तते।। १२।।

अनु०—जहां आ-जा सकते हों, ऐसे रास्तों अथवा खेतों में जो चारों ओर खुले हों, वहां जो औषधि अन्न हो उनमें से दो अंगुलियों के द्वारा एक-एक औषधि, अन्न, फल का सेवन करे। यह कपोत की भांति जीविका यापन करने का उपाय है। इसलिए इसे कापोतावृत्ति कहते हैं।

सिद्धेच्छेति। वृत्तिभिश्श्रान्तो वृद्धत्वाद्धातुक्षयाद्वा सज्जनेभ्यः सिद्धमन्नमिच्छतीति सिद्धेच्छा।। १३।।

पूर्वोक्ताभिर्वृत्तिभिः। श्रान्तः परिक्षीणः। वृद्धता वयसा, धातुक्षयेण रोगेण। सिद्धं पक्वान्नम्।। १३।।

अनु०—यदि कोई वृद्ध हो जाए और अन्य वृत्तियों से जीविका न चल रही हो, तो वह शिष्ट-सभ्य जनों के घर जाए और उनसे पका हुआ भोजन ग्रहण करे। इस वृत्ति का नाम सिद्धेच्छा वृत्ति है।

तस्याऽऽत्मसमारोपणं विद्यते संन्यासिवदुपचारः पवित्रकाषाय-वासोवर्जम्।। १४।।

तस्य सिद्धेच्छावृत्तेरपरो नियमः-अग्नीनामात्मनि समारोपणं परिव्राजक-धर्माणामनुष्ठानं च। किं सर्वेषाम्। नेत्याह-जलपवित्रं पक्षपवित्रं काषायवासश्च वर्ज्यम्।। १४।।

अनु०—सिद्धेच्छा वृत्ति से जीविका चलाने वाले को चाहिए कि वह सभी अग्नि

को अपनी आत्मा में निहित करे। उसका आचरण संन्यासी की तरह होना चाहिए।

वान्याऽपि वृक्षलतावल्ल्योषधीनां च तृणौषधीनां च श्यामाकजर्तिलादीनां वान्याभिर्वर्तयतीति वान्या।।१५।।

वृक्षलतासूत्पातिता बल्लीगुल्मलतासु च। ओषध्यः फलपाकान्ताः यद्वा-द्विविधा ओषध्यः वल्ल्योषध्यः तृणौषध्यश्च। यासां वल्लीभ्य एव धान्यं गृह्यते ता वल्ल्योषध्यः। ताश्च कुलुत्थाद्याः। तृणौषध्यस्तु- तस्मादुपरिष्टादोषधयः फलं गृह्णन्ति' इत्यत्र या उक्ताः, ताश्च व्रीह्याद्याः। अत्र पुनरेवंलक्षणका एवाऽऽरण्या गृह्यन्ते। अत एव श्यामाकजर्तिलादीनामित्युदाहृतम्। आदिग्रहणं सप्तानामपि सङ्ग्रहार्थम्। एवं चोपसंहारोऽप्युपपन्नो भवति- वन्याभिर्वर्तयतीति वान्ये ति। षष्ठी सम्बन्धमात्रलक्षणा। वृक्षादीनां फलैरिति शेषः।।१५।।

अनु०–वृक्ष, लता से उत्पन्न फल, तृण, श्यामाक तिल आदि का सेवन कर जीवन बिताना वान्यावृत्ति कही जाती है।

अथाऽप्युदाहरन्ति–

मृगैस्सह परिस्पन्दः संवासस्तेभिरेव च। तैरेव सदृशी वृत्तिः प्रत्यक्षं स्वर्गलक्षणं प्रत्यक्षं स्वर्गलक्षणमिति।।१६।।

उत्क्षेपणावक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणानीति परिस्पन्दः। चलनात्मिका क्रियेति यावत्। तेभिरिति ऐसो लोपश्छान्दशः। मृगसदृशवृत्तित्वमस्य स्वयंविशीर्णं फलादिभक्षणाद्भवत्याम द्रव्यभक्षणाच्च।।१६।।

अनु०–इस सन्दर्भ में यह उद्धरण देते हैं–

पशुओं के संग घूमना-फिरना, उनमें रहना, उन्हीं की भांति जीविका चलाना, ये लक्षण स्वर्ग की प्राप्ति के बताए गए हैं।

(अध्याय-दो, खण्ड-दो सम्पूर्ण)

अध्याय-तीन : खण्ड-तीन

अथ वानप्रस्थस्य द्वैविध्यम्।।१।।

वक्ष्यत इति शेषः। तच्च वृत्तिविशेषकृतम्।।१।।

अनु०–वानप्रस्थ के दो भेद वताए गए हैं।

पचमानका अपचमानकाश्चेति।।२।।

अग्निपक्वाशिनः अनग्निपक्वाशिनश्चेति सूत्रार्थः।।२।।

अनु०–एक तो वह जिसमें भोजन अग्नि पर पकाते हैं, (पचमानक) और दूसरा वह (अपचमानक) जिसमें भोजन नहीं पकाया जाता है।

तत्र पचमानकाः पञ्चविधाः-सर्वारण्यका वैतुषिकाः कन्दमूलभक्षाः फलभक्षाश्शाकभक्षाश्चेति ।। ३ ।।

एते पचमानकप्रभेदाः ।। ३ ।।

अनु०–पचमानक वानप्रस्थी के पांच भेद कहे गए हैं– १. सर्वारण्यका, २. वैतुषिका, ३. कन्दमूलभक्षक, ४. फलभक्षक, ५. शाकभक्षक।

तत्र सर्वारण्यका नाम द्विविधाः द्विविधमारण्यमाश्रयन्तः इन्द्रावसिक्ता रेतोवसिक्ताश्चेति ।। ४ ।।

अरण्ये भवमारण्यं तच्च द्विविधं-वल्ल्यादयो मृगादयश्च। तत्र वल्ल्यादिभक्षा इन्द्रावसिक्ताः। इन्द्रेण देवेन पर्जन्यरूपिणा वृष्ट्या सिक्ताः वर्धिताः वल्ल्यादयः। तद्भक्षणादिन्द्रावसिक्ताः। उक्तं चाऽऽचार्येण-'अथाऽस्य कर्मणस्सानुप्रदानं पितृवधो या च का च वलिप्रकृतिरिन्द्रकर्मैव तत्' इति। तथा रेतोऽवसिक्ताः मृगमांसाशिनः रेतसा हि हेतुभूतेनाऽवसिक्तानि मांसानि, तदाश्रयात्। सर्वारण्यकानां च द्वैविध्यम् ।। ४ ।।

अनु०–सर्वारण्यका के दो भेद बताए गए हैं। वे वन में उत्पन्न हुई वस्तुओं को दो प्रकार से अपना भोजन बनाते हैं। १. वर्षा द्वारा उत्पन्न वस्तुओं को खाते हैं। २. मृग आदि पशुओं के मांस का सेवन करते हैं।

तत्रेन्द्रावसिक्ता नाम वल्लीगुल्मलतावृक्षाणामानयित्वा श्रपयित्वा सायं प्रातरग्निहोत्रं हुत्वा यत्यतिथिव्रतिभ्यश्च दत्त्वाऽथेतरच्छेषभक्षाः ।। ५ ।।

भवेयुरित्यध्याहार्यम्। वल्ल्यादीनां फलानि आनयित्वा आनीय। यतयो भिक्षुकाः। अतिथयः प्रसिद्धाः। व्रतिनो ब्रह्मचारिणः। वल्ल्यादिफलानामग्निहोत्रद्रव्यत्वेन विधानात् नित्यानां पयादिद्रव्याणां निवृत्तिः। इतरद्भक्षाः शेषभक्षाश्चेति विग्रहः। इतरद्भक्षा इति सिद्धे शेषभक्षा इति वचनं अग्निहोत्रशेषे यात्रानिर्यातितशेषे च वैश्वदेवप्राप्त्यर्थम्। इतरदपि शेषं कृत्वा भक्षयेदित्यर्थः ।। ५ ।।

अनु०–दो तरह की इन भोज्य सामग्री में भी जो भोजन सामग्री इन्द्र द्वारा उत्पन्न होती हैं वे वृक्ष, लताएं और झाड़ी के फल होते हैं। इनको पकाना चाहिए। सुवह-शाम हवन करना चाहिए। भिक्षुक, अतिथि और ब्रह्मचारी को उनका अंश देकर वचे भोजन को ग्रहण करे।

रेतोवसिक्ता नाम मांसं व्याघ्रवृकश्येनादिभिरन्यतमेन वा हतमानयित्वा श्रपयित्वा सायं प्रातरग्निहोत्रं हुत्वा यत्यतिथिभ्यश्च दत्त्वाऽथेतरच्छेषभक्षाः ।।६ ।।

अस्याऽपि पूर्वैव व्याख्या।।६।।

अनु०—पशुओं का मांस रेतावसिक्त होता है। बाघ, भेड़िया, बाज आदि शिकारी पशु-पक्षियों द्वारा मारे जाने वाले पशु-पक्षियों का मांस पकाए। सुवह-शाम हवन करे। भिक्षुक, अतिथि और ब्रह्मचारी को तृप्त करे और शेष मांस स्वयं खाए।

वैतुषिकास्तुषधान्यवर्जं तण्डुलानानयित्वा श्रपयित्वा सायं प्रातरग्निहोत्रं हुत्वा यत्यतिथिव्रतिभ्यश्च दत्त्वाऽथेतरच्छेषभक्षाः।। ७।।

तुषधान्यवर्जद्रव्याहरणस्य प्रयोजनं तत्स्वीकारोऽपि कथं नु नाम स्यादिति।।७।।

अनु०—जो जंगल में उत्पन्न पदार्थों को छिलका निकाले बगैर ही खाता हो, वह तुष धान्य को छोड़, चावल मांगे। उन्हें पकाए। उसे सुबह-शाम हवन करना चाहिए। और भिक्षुक, अतिथि, ब्रह्मचारी को भाग देना चाहिए। इसके बाद जो बचे, उसे ग्रहण करे।

कन्दमूलफलशाकभक्षाणामप्येवमेव।। ८।।

एवमिति आनयित्वेत्यादीति शेषः।।८।।

अनु०—जो कन्द, मूल या शाक खाने वाले हैं, उन्हें भी उपर्युक्त विधि का पालन करना चाहिए।

पञ्चैवाऽपचमानकाः उन्मज्जकाः प्रवृत्ताशिनो मुखेनादायिनस्तोयाहारा वायुभक्षाश्चेति।। ६।।

एते भेदाः।।६।।

अनु०—उन्मज्जक, प्रवृत्ताशिन्, मुखेनादायिन, तोयाहार और वायुभक्षक ये पांच अपचमानक के भेद होते हैं।

तत्रोन्मज्जका नाम लोहाश्मकरणवर्जम्।। १०।।

लोहकरणं दर्व्यादि। अश्मकरणमप्येवमाकृतिकमेव किञ्चित्। काष्ठान्येव करणमादान इत्यर्थः।।१०।।

अनु०—उन्मज्जक में लोहा और पत्थर निर्मित उपकरणों का प्रयोग निषिद्ध है। इनके बिना जो भोजन तैयार होता है, उसका सेवन करने वाला उन्मज्जक होता है।

हस्तेनाऽऽदाय प्रवृत्ताशिनः।। ११।।

भक्षयन्तीति वाक्यसमाप्तिः।।११।।

अनु०–हाथ में लेकर जो भोजन करते हैं, उन्हें प्रवृत्ताशिन् कहा जाता है।

मुखेनाऽऽदायिनो मुखेनाऽऽददते।। १२।।

पशुवदित्यभिप्रायः।। १२।।

अनु०–मुख से लेकर जो भोजन करता है, वह मुखेनादायिन् होता है।

तोयाहाराः केवलं तोयाहाराः।। १३।।

केवलशब्दादुपदंशादिस्थानेऽपि तोयस्यैव प्रवेशः कर्तव्यः।।१३।।

अनु०–जो सिर्फ जल पीकर रहे, उसे तोयाहार कहते हैं।

वायुभक्षा निराहाराश्च।। १४।।

अनु०–वायु का भक्षक उपवास रखता है।

वैखानसानां विहिता दश दीक्षाः।। १५।।

अनु०–वैखानसों की इस तरह दस दीक्षाएं होती हैं।

यश्शास्त्रमभ्युपेत्य दण्डं च मौनं चाऽप्रमादं च।। १६।।

अनु०–जो संन्यासी धर्म का पालक है, उसे दण्ड ग्रहण करना चाहिए। वह मौन रहे, आलस्य, लापरवाही न करे।

वैखानसाश्शुद्ध्यन्ति निराहाराश्चेति।।१७।।

वायुभक्षा इत्येतावदेवोच्यमाने वाङ्मुखादायिवत् द्वयोः कारणताशङ्काऽपि स्यादिति मत्वा निराहाराश्चेत्युक्तम्।

मुखेनादायिप्रभृतीनां त्रयाणां संज्ञासिद्धमपि सन्देहनिवृत्त्यर्थं वृत्तिविवरणमाचार्येण कृतम्।

वानप्रस्थसंन्यासभेदः किमर्थमाचार्यकृत इति।

असावेव द्रष्टव्यः। यद्वा-उक्तव्यतिरिक्तवृत्तिनिषेधार्थम्।। १७।।

अनु०–विखनस् के लिए जो आचार-विचार बताए गए हैं, उन नियमों को पालने वाला संन्यासी और निराहारी समस्त दोषों से मुक्त और शुद्ध हो जाते हैं। वे पाप से रहित हो जाते हैं।

शास्त्रपरिग्रहस्सर्वेषां ब्रह्मवैखानसानाम्।। १८।।

वक्ष्यत इति शेषः। ब्रह्मणा दृष्टाः वैखानसाः ब्रह्मवैखानसाः। यद्वाब्राह्मणास्सन्त इति।। १८।।

अनु०—समस्त ब्राह्मण वैखानसों के निमित्त शास्त्र के अनुसार ये नियम होते हैं।

न द्रुह्येद्‌ दंशमशकान्‌ हिमवान्‌ तापसो भवेत्‌।
वनप्रतिष्ठस्सन्तुष्टश्चीरचर्मजलप्रियः।। १६।।

दंशादिकानामपि हिंसां नाऽऽचरेत्‌। द्रुः जिघांसायां वर्तते। हिमवान्‌ शीतसहिष्णुः। तद्ग्रहणं धर्मस्याऽप्युपलक्षणार्थम्‌। आह च—

ग्रीष्मे पञ्चतपाश्च स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः।। इति।।

वनप्रतिष्ठः ग्रामप्रवेशवर्जः। सन्तुष्टो वितृष्णः। चीरचर्मप्रियः तद्वसनः। जलप्रियः कमण्डलुधारी। ऋज्वन्यत्‌।।१६।।

अनु०—वह दंश और मच्छर आदि छोटे-छोटे जन्तुओं को कष्ट न दे। शरीर को ठंड सहने योग्य बताए। तपस्या में रमा रहे। वन में रहे। संतोष रखे। वृक्ष के वल्कल और चमड़े को वस्त्र के रूप में प्रयोग करे।

अतिथीन्‌ पूजयेत्पूर्वं काले त्वाश्रममागतान्‌।
देवविप्राग्निहोत्रे च युक्तस्तपसि तापसः।। २०।।

युक्तशब्दः काकाक्षिनिरीक्षणवत्‌ उभयत्र सम्बध्यते देवविप्रपूजायामग्निहोत्रे तपसि च युक्तः स्यादित्यर्थः।।२०।।

अनु०—यदि कोई अतिथि किसी तपस्वी की कुटिया-आश्रम में भोजन के समय आ जाए, तो तपस्वी उसको भोजन से सत्कृत करे। देव, ब्राह्मण का आदर करे। हवन एवं तपस्या में रत रहे।

कृच्छ्रां वृत्तिमसंहार्यां सामान्यां मृगपक्षिभिः।
तदहर्जनसम्भारां कषायकटुकाश्रयाम्‌।। २१।।

अनु०—जो कठिन एवं मुश्किल है और पशु-पक्षियों की उस जीविका वृत्ति की तरह है, जिसमें केवल एक दिन के लिए ही पदार्थों का इकट्‌ठा करते हैं। कषाय और कड़ुई रस वाली वस्तु का सेवन किया जाता है।

परिगृह्य शुभां वृत्तिमेतां दुर्जनवर्जिताम्‌।
वनवासमुपाश्रित्य ब्राह्मणो नाऽऽवसीदति।। २२।।

कृच्छ्रां दुःखाम्‌। असंहार्यां दुर्भराम्‌। मृगपक्षिसादृश्यामव्यापदम्‌ तदहर्जीविका जना वैखानसाः। तत्सम्भारास्सम्भार्या आर्जनीयाः वैखानससकाशादेवाऽश्वस्त-निकधनमार्जयेदित्यर्थः। तदहर्जनसम्भारेति 'सुपां सुपा' इति समासः। कषायं चित्तमलम्‌।

कटुक वाचिकं मलं अप्रियभाषणम्, न तदाश्रयः विपरीतलक्षणैषा। एषैव शुभा दुर्जनवर्जिता च वृत्तिः। दुर्जनाः नास्तिकाः।।२१-२२।।

अनु०—दुर्जनों के संग न रहे। इससे कल्याण होता है। यह श्रेष्ठ वृत्ति होती है। इसे जो अपनाता है और वन में रहता है, वह ब्राह्मण सदा सुखी रहता है।

मृगैस्सह परिस्पन्दः संवासस्तेभिरेव च।
तैरेव सदृशी वृत्तिः प्रत्यक्षं स्वर्गलक्षणम्।
प्रत्यक्षं स्वर्गलक्षणमिति।। २३।।

फलार्थवादोऽयम्।। २३।।

अनु०—पशुओं के साथ घूमना, उनके साथ रहना, उन्हीं की तरह जीविका चलाना, ये स्वर्ग प्राप्त करने के प्रत्यक्ष लक्षण माने गए हैं।

(अध्याय-तीन, खण्ड-तीन सम्पूर्ण)

अध्याय—चार : खण्ड-चार

अथ यदि ब्रह्मचर्यव्रत्यमिव चरेत्।। १।।

व्रतं नियमस्तस्मै हितं व्रत्यं तदभावोऽव्रत्यम्। ब्रह्मचारिग्रहणं प्रदर्शनार्थम्। यस्य यस्मिन् काले ब्रह्मचर्य चोदितमपि गृहस्थस्य भिक्षावर्जमस्याऽऽश्रमिणो वक्ष्यमाणे कर्मण्यधिकारः।। १।।

अनु०—ब्रह्मचारी अपने आचार-विचार के प्रतिकूल आचरण करे, तो उसे इस नियम का पालन करना पड़ता है।

मांसमश्नीयात् स्त्रियं वोपेयात् सर्वास्वेवाऽऽर्तिषु।।२।।

अव्रत्यानि परिभाषायां प्रपञ्चितानि- 'अथोपनीतस्याऽव्रत्यानि भवन्ति नाऽन्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीत' इत्यादि। अत्र तेषां दिङ्मात्रं प्रदर्शितम्। तत्र हि पुनरुपनयनं नैमित्तिकत्वेन विहितम्। इह तु होमः। अनयोश्शक्तिबुद्धिपूर्वव्यपेक्षया विकल्पसमुच्चयौ द्रष्टव्यौ। सर्वास्वेवार्तिषु प्रदेशेषु।। २।।

अनु०—मांस का सेवन ब्रह्मचारी के लिए निषिद्ध है। फिर भी यदि वह मांस खा ले और स्त्री से संपर्क करने पर अथवा समस्त प्रकार के व्रतों का उल्लंघन करने पर प्रायश्चित्त के फलस्वरूप ये कर्म करे।

अन्तराऽगारेऽग्निमुपसमाधाय सम्परिस्तीर्याऽऽग्निमुखात् कृत्वाऽथाज्या-हुतीरुपजुहोति।। ३।।

आऽग्निमुखात्कृत्वेति दार्विहोमिकतन्त्रप्राप्त्यर्थम्, उपजुहोतीति श्रवणात्।

पक्वहोमानन्तरं वक्ष्यमाणहोमादिः। पक्वहोमाश्च व्याहृतीभिस्सावित्र्या च।। ३।।

अनु०—घर में अग्नि के ऊपर समिधा रखे। उसके चारों तरफ कुश विछाए। अग्निमुख तक सम्पन्न होने वाली क्रियाएं करे। घृत की आहुतियां दे और ये मंत्र पढ़े।

'कामेन कृतं कामः करोति कामायैवेदं सर्वं यो मा कारयति तस्मै स्वाहा। मनसा कृतं मनः करोति मनस एवेदं सर्वं यो मा कारयति तस्मै स्वाहा। रजसा कृतं रजः करोति रजस एवेदं सर्वं यो मा कारयति तस्मै स्वाहा। तमसा कृतं तमः करोति तमस एवेदं सर्वं यो मा कारयति तस्मै स्वाहा। पाप्मना कृतं पाप्मा करोति पाप्मन एवेदं सर्वं यो मा कारयति तस्मै स्वाहा। मन्युना कृतं मन्युः करोति मन्यव एवेदं सर्वं यो मा कारयति तस्मै स्वाहेति'।। ४।।

कामेन कृतं न मया। यद्यप्यात्मा कर्मकर्ता तथाऽपि कामधीनमेतद्व्रत्यचरणमनुध्यातव्यमित्यभिप्रायः। एवं मनःप्रभृतिष्वपि यथासम्भवं तस्य हेतुभावो द्रष्टव्यः। कामः रागोऽर्थव्यतिकराव्यतिकराभिलाषः। मन्युः क्रोधः तद्विघातकृत्सु। तावेवाऽविहिताकरणप्रतिषिद्धसेवनयोर्निदानम्। तत्संहकारीणि मनोरजस्तमांसि। पाप्मा कर्तुः पापम्। तदप्यनेकजन्मोपार्जितं कारणमेव।।४।।

अनु०—यह काम ने किया, यही पाप करता है। यह सब काम का है जो मुझसे कराता है। यह मन, राग, तमस, पापी एवं मन्यु ने किया। ये ही मन, रज, तम, पापी, मन्यु पाप करते हैं। मन, रज, पापी, मन्यु के काम हैं। जो मुझसे कराते हैं।

जयप्रभृति सिद्धमा धेनुवरप्रदानात्।। ५।।

इदमपि तन्त्रप्राप्तिद्योतकमेव।। ५।।

अनु०—जय से लेकर अन्त में दक्षिणा के लिए गाय के दान तक की क्रियाएं मालूम हैं।

अपरेणाऽग्निं कृष्णाजिनेन प्राचीनग्रीवेणोत्त वसति।। ६।।

अपरेणाऽग्निमग्नेः पश्चिमदेशे ऋज्वन्यत्, रात्राविति शेषः।। ६।।

अनु०—इसके बाद अग्नि के पश्चिम दिशा की ओर काले मृग के चर्म से शरीर को ढककर बैठे। मृगचर्म की गर्दन पूरब और उसके केश ऊपर रखे।

अथ व्युष्टायां जघनार्धादात्मानमपकृष्य तीर्थं गत्वा प्रसिद्धं स्नात्वाऽन्तर्जलगतोऽघमर्षणेन षोडश प्राणायामान् धारयित्वा प्रसिद्धमादित्योपस्थानात् कृत्वाऽऽचार्यस्य गृहानेति।। ७।।

व्युष्टायां उषस्समये जघनार्धात् आत्मसम्बन्धिनो नाभेरधोभागात् पुनर्जननमिति निर्वृत्य (?) तीर्थं नदीदेवखातादिपुण्यजलाशयः। प्रसिद्धमिति पूर्वोक्तस्नानविधिनाऽऽदित्यो-

पस्थानपर्यन्तं करोति। अयं विशेषः-अघमर्षणमन्त्रेण षोडश प्राणायामाः। ब्रह्मचारी चेदाचार्यस्य गृहानेति। गृहस्थस्तु गृहान्।।७।।

अनु०–सूर्य उदय हो जाए तो किसी तालाब पर जाए। वहां नाभि से नीचे के भाग को निकाले और विधि से स्नान करे। जल में ही अघमर्षण मन्त्र पढ़े। सोलह बार प्राणायाम करे। सूर्य की पूजा तक के कार्य सम्पन्न करे। तत्पश्चात् आचार्य के घर पहुंचे।

यथाऽश्वमेधावभृथमेवैतद्विजानीयादिति।।८।।

अनु०–यह क्रिया उसी तरह मानी जाती है। जैसे अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर अवभृथ स्नान करने की विधि होती है।

(अध्याय-चार, खण्ड-चार सम्पूर्ण)

अध्याय-पांच : खण्ड-पांच

अथाऽतः पवित्रातिपवित्रस्याऽघमर्षणस्य कल्पं व्याख्यास्यामः।।१।।

पवित्रं पुरुषसूक्तादि। तेषां मध्ये अतिपवित्रमघमर्षणं सूक्तं तस्य कल्पः प्रयोगः।।१।।

अनु०–पवित्र से भी पवित्रतम अघमर्षण सूक्त की चर्चा यहां से करेंगे।

तीर्थं गत्वा स्नातः शुचिवासा उदकान्ते स्थण्डिलमुद्धृत्य सकृत्क्लिन्ने वाससा सकृत्पूर्णेन पाणिनाऽऽदित्याभिमुखोऽघमर्षणं स्वाध्यायमधीयीत।।२।।

शुचिवासा इत्यस्योपसंहारः-सकृत्क्लिन्नेति। सकृत्प्रक्षालितमिति यावत्। इत्थम्भूतलक्षणे तृतीया। स्थण्डिलमादित्यमण्डलाकारम्। पूर्णेनेति इयमपीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। सकृदेव पाणिपूरणं न पुनरादानम्। एवमन्यत्राऽपि जपेष्वापरिसमाप्तेः सोदकेन पाणिना भवितव्यम्। आदित्याभिमुखवचनात् स्थण्डिलस्य पश्चात्प्राङ्मुखस्तिष्ठन्।।२।।

अनु०–जहां जल नहाने योग्य हो, उस जलाशय में नहाए। स्वच्छ, शुद्ध कपड़े धारण करे। तालाब के किनारे से मिट्टी निकाले। एक बार भिगाए गए कपड़े से और एक बार हाथ में जल लेकर स्वाध्याय के ढंग से सूर्य की ओर मुंह करे और अघमर्षण सूक्त पढ़े।

प्रातश्शतं मध्याह्ने शतमपराह्णे शतमपरिमितं वा।।३।।

प्रातश्शतमधीयीत। मध्यन्दिने दक्षिणाभिमुख उदङ्मुखो वा। अपराह्णे प्रत्यङ्मुखः। अपरिमितमपराह्णेनैव सम्बध्यते।।३।।

अनु०–सुबह और दोपहर में सौ-सौ अघमर्षण सूक्त पढ़े। अपराह्न में सौ या इससे अधिक बार अघमर्षण के मन्त्रों का पाठ करे।

उदितेषु नक्षत्रेषु प्रसृतयावकं प्राश्नीयात्।।४।।

प्रसृतयावकस्वरूपमुपरितनेऽध्याये वक्ष्यति। तत्राऽस्यैव वैश्वदेवबलिहरणादि कर्तव्यम्। 'यदशनीयस्य' इति प्राप्तेऽपि उत्तरत्र निषेधात्।।४।।

अनु०–तारे निकल आए तो मुट्ठी भर जौ से बने भोजन को ग्रहण करे।

ज्ञामकृतेभ्योऽज्ञानकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तरात्रात् प्रमुच्यते।।५।।

एवमेव सप्तरात्रे कृते गोवधादिभ्यो विमुच्यत इत्यर्थः।।५।।

अनु०–इस तरह सात रातों में अघमर्षण सूत्र पढ़े। इससे जाने-अनजाने में हो जाने वाले पाप तक छूट जाते हैं।

द्वादशरात्राद् भ्रूणहननं गुरुतल्पगमनं सुवर्णस्तैन्यं सुरापानमिति च वर्जयित्वा।।६।।

ब्रह्महत्यादीनि महापातकानि वर्जयित्वा अन्येभ्यः पापेभ्यः प्रमुच्यत इति शेषः।।६।।

अनु०–वेदविद् ब्राह्मण का वध, गुरुपत्नी से यौन सम्बन्ध, सोने की चोरी और मदिरापान जैसे पापों को छोड़, अन्य पापकर्म बारह सत्रों में अघमर्षण मन्त्रों के पाठ से दूर हो जाते हैं।

एकविंशतिरात्रात्तान्यपि तरति तान्यपि जयति।।७।।

तानि पूर्ववर्जितानि महापातकानि। तरणं क्षपणम्। जयः पुण्यफलयोग्यता।।७।।

अनु०–इक्कीस रातों में जो अघमर्षण के मन्त्रों को पढ़ता है, जपता है तो वह इन महापातकों से भी मुक्त हो जाता है और उन्हें अपने आधीन कर लेता है।

सर्वं तरति सर्वं जयति सर्वक्रतुफलमवाप्नोति सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति सर्वेषु वेदेषु चीर्णव्रतो भवति सर्वैर्देवर्ज्ञातो भवत्याचक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति कर्माणि चाऽस्य सिध्यन्तीति बौधायनः।।८।।

आचक्षुषः आदृशः पथः। बौधायनसंशब्दनादन्यस्तच्छिष्योऽस्य ग्रन्थस्य कर्तेति गम्यते। मनुरब्रवीदितिवत्।।८।।

अनु०–अघमर्षण मन्त्रों का पाठ करने वाले व्यक्ति के लिए कुछ भी अपार नहीं रहता है। वह सबको हरा देता है। यज्ञ से होने वाले समस्त फल उसे मिल जाते हैं। समस्त तीर्थस्थानों में वह नहा लेता है। वेदों के अध्ययन निमित्त जो व्रत विहित हैं,

उन्हें वह पूरा कर लेता है। उसे देवगण पहचान लेते हैं। ब्राह्मणों की पंक्ति पर जैसे ही उसकी नजर पड़ती है, त्यों ही वह पवित्र हो जाता है। उसकी समस्त क्रियाएं फलदायक होती हैं। ऐसा बौधायन का विचार (उपदेश) है।

(अध्याय-पांच, खण्ड-पांच सम्पूर्ण)

अध्याय-छह : खण्ड-छह

अथ कर्मभिरात्मकृतैर्गुरुमिवाऽऽत्मानं मन्येताऽऽत्मार्थे प्रसृतयावकं श्रपयेदुदितेषु नक्षत्रेषु।।१।।

कर्मभिर्गर्हितैः गुरुमिवाऽजगरगीर्णमिवाऽऽत्मानं मन्यते। पुत्रदारादिकृतैनोनिवृत्त्यर्थमात्मग्रहणम्। अत एवाऽऽत्मार्थमित्युक्तम्। आत्मार्थे न परार्थे एतस्मादेव लिङ्गादतोऽन्यत्र पापक्षपणे आर्त्विज्यमस्तीति गम्यते। यद्वा-'नाऽऽत्मार्थं पाचयेत्' इत्यस्य प्रतिप्रसवोऽयम्-प्रसृतयावकमात्मार्थमेव श्रपयेदिति। ततश्च वैश्वदेवातिथिभृत्यादीनां द्रव्यान्तरमन्वेष्टव्यं भवति। सति चैवमुत्तरसूत्रेण प्राप्तस्याऽयमनुवादः 'न ततोऽग्नौ जुहुयात्' इति। प्रसृतं गोकर्णकरपरिमितं यावको यवविकारो यवागूर्वा उदितेषु नक्षत्रेष्विति श्रपणकालः।।१।।

अनु०—यदि कोई आदमी किसी कार्य को करने के बाद अपने कर्मों पर पछताए या बोझ सा अनुभव करे तो तारे निकलने पर एक मुठ्ठी भर यवागू पकाए।

न ततोऽग्नौ जुहुयान्न चाऽत्र बलिकर्म।।२।।

'यदशनीयस्य' इति प्राप्तस्याऽयं प्रतिषेधः पर्युदासो वा।।२।।

अनु०—उस यवागू से अग्निहोत्र नहीं करना चाहिए। बलिवैश्व कर्म भी निषिद्ध है।

अशृतं श्रप्यमाणं शृंत चाऽभिमन्त्रयेत्।।३।।

यवानामवघातावस्थायां पाकावस्थायां पक्वावस्थायां चाऽन्वीक्ष्य मन्त्रं ब्रूयादित्यर्थः।।३।।

अनु०—जौ पकाने या उससे पहले इन मन्त्रों से उसे पवित्र कर लेना चाहिए।

यवोऽसि धान्यराजोऽसि वारुणो मधुसंयुतः।
निर्णोदस्सर्वपापानां पवित्रमृषिभिस्स्मृतम्।।४।।

धान्यराजत्व मन्येषु धान्येषु म्लायत्सु मोदमानतयोत्थानात्। वारुणत्वं पुनरेतेषां 'वारुणं यवमयं चरुमश्वो दक्षिणा' 'वरुणाय धर्मपतये यवमयं चरुम्' इत्येवमादिषु

प्राचर्येण वरुणसम्वन्धात्। मधुसंयुतत्वं तेनाऽभिधारितत्वात्। ऋज्वन्यत्।।४।।

अनु०-तुम जौ हो। तुम समस्त अन्नों के राजा हो। वरुण तुम्हें पवित्र समझते हैं और उनके लिए मधु से मिश्रित हो। ऋषि तुम्हें सभी पापों से मुक्त करने वाला बताते हैं। तुम सबको पवित्र करने वाले हो।

घृतं यवा मधु यवा आपो यवा अमृतं यवाः।
सर्वं पुनथ मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्।।५।।

घृतादिग्रहणं प्रदर्शनार्थम्। यवा एव सर्वपवित्रत्वेन ध्यातव्या इति तेषां प्रशंसा।।५।।

अनु०-यव मधु है। यव जल है। यव अमृत है। तुम मेरे समस्त पापों को दूर करो। मुझे दुष्कर्मों से मुक्त कर दो।

वाचा कृतं कर्म कृतं मनसा दुर्विचिन्तितम्।
अलक्ष्मीं कालरात्रीं च सर्वं पुनथ मे यवाः।।६।।

कालरात्री कृत्या।।६।।

अनु०-वाणी, कर्म और मन से किये गए समस्त पापों को पवित्र करो। अभाग्य एवं कालरात्रि जो सबको नष्ट करती है, उन सबको शुद्ध, पवित्र करो।

श्वसूकरावधूतं यत्काकोच्छिष्टोपहतं च यत्।
मातापित्रोरशुश्रूषां सर्वं पुनथ मे यवाः।।७।।

श्वादिग्रहणमाहारदोषकृतपापोपलक्षणार्थम्।।७।।

अनु०-कुत्ते, कौए या सूअर से छुआ गया दूषित अन्न खाने से उत्पन्न दोष दूर करो। माता-पिता की अनुमति लिए बिना खाने से उत्पन्न पाप से बचाओ।

महापातकसंयुक्तं दारुणं राजकिल्विषम्।
बालवृत्तमधर्मं च सर्वं पुनथ मे यवाः।।८।।

दारुणं क्रूरं तत्पूर्वोत्तराभ्यां सम्बध्यते। राजकिल्बिषं राजसेवानिमित्तम्। बालवृत्तं बालकृतं अज्ञानकृतं वा। अधर्मः पापम्। स एव सर्वत्र विशेष्यभूतः।।८।।

अनु०-महापातक के निकृष्ट पाप, राजा की सेवा करते हुए जो पाप किया जाए, उसको बालक, वृद्ध के साथ किए गए अत्याचार, अधर्म और समस्त पापों को तुम पवित्र करो।

सुवर्णस्तैन्यमव्रत्यमयाज्यस्य च याजनम्।
ब्राह्मणानां परीवादं सर्वं पुनथ मे यवाः।।९।।

अव्रत्यं नियमलोपकृतम्। ऋज्वन्यत्।। ६।।

अनु०—सोने की चोरी, व्रत भंग, जिसके लिए यज्ञ कराना वर्जित है उसके लिए यज्ञ करने से उत्पन्न पाप और उससे होने वाले पापों से बचाओ। ब्राह्मण की निन्दा करने से जो पाप लगता है, उससे भी मुझे दूर करो।

गणान्नं गणिकान्नं च शूद्रान्नं श्राद्धसूतकम्।
चोरस्यान्नं नवश्राद्धं सर्वं पुनथ मे यवा इति।। १०।।

गणान्नं गणाय गणेन वा सङ्कल्पितम्। श्राद्धं पितृभ्यः सङ्कल्पितम्। सूतकं तत्सम्बन्ध्यन्नम्। नवश्राद्धमेकोद्दिष्टान्नम्। परगृहविषयं सङ्कल्पाविषयमभोज्यमेतत्। एते मन्त्रः वामदेवार्षा अनुष्टुप्छन्दसः यवदेवत्याश्च द्रष्टव्याः।।१०।।

अनु०—अनेक लोगों से प्राप्त अन्न, वेश्या और शूद्र से मिला अन्न अथवा श्राद्ध और जन्म से सम्बन्ध सूतक के समय मिला अन्न खाने से चोर का अन्न और नवश्राद्ध का अन्न पापकारक होता है। ये यवागू! तुम मुझे इससे परे करो।

श्रप्यमाणे रक्षां कुर्यात्।। ११।।

स्थाल्यां कृष्णायसादि प्रतिमुञ्चेदित्यर्थः।। ११।।

अनु०—जौ पकाते समय उसकी रक्षा भी करनी चाहिए।

'नमो रुद्राय भूताधिपतये द्यौश्शान्ता'।। १२।।

अयमेको मन्त्रः।। १२।।

अनु०—'नमो रुद्राय भूताधिपतये' का उच्चारण करे।

'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम् — [1]ये देवाः पुरस्सदोऽग्निनेत्रा रक्षोहण' इति पञ्चभिः पर्यायैः। [2]मा नस्तोके [3]व्रह्मा देवानामिति द्वाभ्याम्।। १३।।

---

१. ये देवाः पुरस्सदोऽग्निनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यस्स्वाहा ये देवाः दक्षिणसदो यमनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यस्स्वाहा ये देवाः पश्चात्सदस्सवितृनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यस्स्वाहा ये देवा उत्तरसदो वरुणनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यस्स्वाहा ये देवा उपरिषदो वृहस्पतिनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यस्स्वाहा। इत्त्यनुषङ्गप्रकारः। (तै. सं. १/८/७/१)

२. मानस्तोके तनये मा न आयुंषि मा नोगोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते। (तै.सं. ४/५/१०/३)

३. व्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृध्राणाꣳस्वधितिर्वनानाꣳसोमः पवित्रमत्येति रेभन्। (तै. सं. ३/४/११/१)

'ये देवाः रक्षोहणः' इत्येतस्य पदत्रयस्य पञ्चस्वप्यनुषङ्गार्थं 'अग्निनेत्रा रक्षोहणः' इति पठितम्। 'नमो रूद्राय' इत्यादि 'ब्रह्मा देवानाम्' इत्येवमन्ता मन्त्रा रक्षामन्त्राः।। १३।।

अनु०–'कृणुष्व पाजः प्रसृतिं न पृथ्वीम्' आदि अनुवाक् का 'देवाः पुरसदोऽग्नि नेत्रा रक्षोहण' जैसे पांच वाक्यों का 'मा न स्तोके तनये' तथा 'ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीतामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्' आदि।

श्रृतं च लघ्वश्नीयात् प्रयतः पात्रे निषिच्य।। १४।।

नाऽत्र तिरोहितं किञ्चिदस्ति।। १४।।

अनु०–जौ पक जाए तो उसका थोड़ा भाग दूसरे बर्तन में निकालकर रख दे। स्वयं को शुद्ध करे। आचमन करे फिर उसे खाए।

'ये देवा मनोजाता मनोयुजस्सुदक्षा दक्षपितारस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यस्स्वाहे' त्यात्मनि जुहुयात्।। १५।।

एते पञ्च पर्यायाः प्राणाहुतिमन्त्राः। तस्मान्मन्त्रो निवर्तते प्राशनसमये। कर्तुस्तु कालाभिधाननियमात् फलविशेषः।। १५।।

अनु०–'ये देवा मनोजाता मनोयुजस्सुदक्षा दक्षपितारस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यस्स्वाहा।' का पाठ करते हुए अन्न की आत्मा में ही आहुति दे।

त्रिरात्रं मेधार्थी।। १६।।

पूर्वेण विस्तृतं प्रसृतयावकं प्राश्नीयादित्यनुवर्तते मेधानां ग्रहीतुं त्वस्य। तदशनम्।। १६।।

अनु०–मेधा प्राप्ति की इच्छा करने वाले को तीन रात पर्यन्त यवागू खाना चाहिए।

षड्रात्रं पीत्वा पापकृच्छुद्धो भवति।। १७।।

अल्पपापकृदिति शेषः।। १७।।

अनु०–छह रात तक जो इस विधि-विधान से यवागू खाता है, वह पाप से छूट जाता है।

सप्तरात्रं पीत्वा भ्रूणहननं गुरुतल्पगम न सुवर्णस्तैन्यं सुरापानमिति च पुनाति।। १८।।

अनात्मकृतस्याऽप्येनसो निर्णोदो भवतीत्याह–

अनु०—सात दिन यवागू खाने से व्यक्ति वेदविद् ब्राह्मण की हत्या के पाप से छूट जाता है। गुरु पत्नी से शारीरिक सम्बन्ध बनाने वाला पापी, सोने को चुराने वाला, और सुरापायी भी पापों से छूट जाता है।

एकादशरात्रं पीत्वा पूर्वपुरुषकृतमपि पापं निर्णुदति।।१६।।

पूर्वपुरुषाः पितृप्रभृतयः।।१६।।

अनु०—यदि ग्यारह दिन-रात तक यवागू का सेवन करे, तो पूर्वपुरुषों द्वारा किए गए पापकर्म भी छूट जाते हैं।

अपि वा गोनिष्क्रान्तानां यवानामेकविंशतिरात्रं पीत्वा गणान् पश्यति गणाधिपतिं पश्यति विद्यां पश्यति विद्याधिपतिं पश्यतीत्याह भगवान् बौधायनः।।२०।।

गोभ्यो जठरस्थशकृद्भिस्सह निष्क्रान्तानाम्। भूयस्येषा प्रशंसाऽस्य कर्मणः।।२०।।

अनु०—गाय के गोबर में से प्राप्त अन्न के द्वारा तैयार यवागू का इक्कीस दिन-रात तक भक्षण करने वाला गण और गणाधिपति के दर्शन करता है। वह विद्या का साक्षात्कार करता है। विद्यापति उसे दर्शन देते हैं। ऐसा आचार्य बौधायन ने कहा है।

(अध्याय-छह, खण्ड-छह सम्पूर्ण)

अध्याय-सात : खण्ड-सात

अथ कूष्माण्डैर्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत[1]।।१।।

कूष्माण्डानि वक्ष्यमाणां यद्देवादयो मन्त्राः। जुहुयादिति सोपस्थानस्य ग्रहणम्, प्रायश्चित्ते कृतेऽप्यपूत इव यो मन्येत।।१।।

अनु०—जो आदमी स्वयं को अपवित्र-सा अनुभव करे, वह कूष्माण्ड मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्निहोत्र करे।

यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति योऽयोनौ रेतस्सिञ्चति।।२।।

यथा स्तेन इति। सुवर्णस्येति शेषः। प्रदर्शनार्थं चैतन्महापातकानाम्। महापातकप्रायश्चित्ते कृतेऽपि अपूत इव यो मन्येतेत्यर्थः। एवमेषोऽपूतो भवति योऽयोनौ रेतस्सिञ्चति। अयोनौ रेतस्सेको ब्रह्महत्यासम इति तस्य निन्दास्मृतिः—

उत्सृजेदात्मनश्शुक्रमक्षेत्रे कामतो नरः।
हतं तेन जगत्सर्वं बीजनाशेन पापिना।।

---

१. तै. आ. २/८

अनु०–सात दिन यवागू खाने से व्यक्ति वेदविद् ब्राह्मण की हत्या के पाप से छूट जाता है। गुरु पत्नी से शारीरिक सम्बन्ध बनाने वाला पापी, सोने को चुराने वाला, और सुरापायी भी पापों से छूट जाता है।

एकादशरात्रं पीत्वा पूर्वपुरुषकृतमपि पापं निर्णुदति।।१६।।

पूर्वपुरुषाः पितृप्रभृतयः।।१६।।

अनु०–यदि ग्यारह दिन-रात तक यवागू का सेवन करे, तो पूर्वपुरुषों द्वारा किए गए पापकर्म भी छूट जाते हैं।

अपि वा गोनिष्क्रान्तानां यवानामेकविंशतिरात्रं पीत्वा गणान् पश्यति गणाधिपतिं पश्यति विद्यां पश्यति विद्याधिपतिं पश्यतीत्याह भगवान् बौधायनः।।२०।।

गोभ्यो जठरस्थशकृद्भिस्सह निष्क्रान्तानाम्। भूयस्येषा प्रशंसाऽस्य कर्मणः।।२०।।

अनु०–गाय के गोबर में से प्राप्त अन्न के द्वारा तैयार यवागू का इक्कीस दिन-रात तक भक्षण करने वाला गण और गणाधिपति के दर्शन करता है। वह विद्या का साक्षात्कार करता है। विद्यापति उसे दर्शन देते हैं। ऐसा आचार्य बौधायन ने कहा है।

(अध्याय-छह, खण्ड-छह सम्पूर्ण)

अध्याय-सात : खण्ड-सात

अथ कूष्माण्डैर्जुहुयाद्योऽपूत इव मन्येत[1]।।१।।

कूष्माण्डानि वक्ष्यमाणां यद्देवादयो मन्त्राः। जुहुयादिति सोपस्थानस्य ग्रहणम्, प्रायश्चित्तं कृतेऽप्यपूत इव यो मन्येत।।१।।

अनु०–जो आदमी स्वयं को अपवित्र-सा अनुभव करे, वह कूष्माण्ड मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्निहोत्र करे।

यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति योऽयोनौ रेतस्सिञ्चति।।२।।

यथा स्तेन इति। सुवर्णस्येति शेषः। प्रदर्शनार्थं चैतन्महापातकानाम्। महापातकप्रायश्चित्तं कृतेऽपि अपूत इव यो मन्येतेत्यर्थः। एवमेषोऽपूतो भवति योऽयोनौ रेतस्सिञ्चति। अयोनौ रेतस्सेको ब्रह्महत्यासम इति तस्य निन्दास्मृतिः–

उत्सृजेदात्मनश्शुक्रमक्षेत्रे कामतो नरः।
हतं तेन जगत्सर्वं बीजनाशेन पापिना।।

---

१. तै. आ. २/८

न ब्रह्महा ब्रह्महा स्यात् ब्रह्महा वृषलीपतिः।
यस्तस्यां गर्भमाधत्ते तेनाऽसौ ब्रह्महा भवेत्।। इति।।२।।

अनु०–सोने की चोरी करने वाले और वेदविद् ब्राह्मण का वध करने वाले, पापी को वही पाप लगता है, जो पाप वर्जित मैथुन कर्म से या अप्राकृतिक मैथुन से वीर्यपात करने पर लगता है।

यदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यत इति।।३।।

श्रुतिमेवाऽऽत्मीयत्वेन पठित्वा तस्या अभिप्रायमाह, तस्या एव वाक्यशेषं वा।।३।।

अनु०–श्रुति में कहा गया है–वेदविद् ब्राह्मण का वध करने की अपेक्षा जो न्यून पाप हैं, उनसे उसे मुक्ति मिल जाती है।

अयोनौ रेतस्सिक्त्वाऽन्यत्र स्वप्नात्।।४।।

श्रुतौ ह्यश्रुतमेतत् 'अन्यत्र स्वप्नात्' इति।।४।।

अनु०–स्वप्नदोष के मामले को छोड़, स्त्री के गुप्तांग के अलावा वीर्य स्खलित होने पर पाप लगता है।

अरेपा वा पवित्रकामो वा।।५।।

रेप इति पापनाम। तदस्य न विद्यते सोऽरेपाः। तथा च ब्राह्मणम्–'पवित्रं नो ब्रूते येनाऽरेपसस्स्यामेति यद्देवा देवहेलनं यददीव्यन्नृणमहं बभूवाऽऽयुष्टे विश्वतो दधदित्येतैराज्यं जुहुत, वैश्वानराय प्रतिवेदयाम इत्युपतिष्ठत इति। पवित्रकामो वा जुहुयादित्येव। न वैसशरीरस्य सतः पापापहतिरस्तीत्यभिप्रायः।।५।।

अनु०–उसे पाप मुक्त होने के लिए यह अनुष्ठान करना चाहिए।

अमावास्यायां पौर्णमास्यां वा केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वा ब्रह्मचारिकल्पेन व्रतमुपैति।।६।।

पर्वण्युपक्रमः। ब्रह्मचारिकल्पो मधुमांसादिवर्जनम्। इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। व्रतं सङ्कल्पः कूष्माण्डैर्होष्यामीति।।६।।

अनु०–अमावस्या या पूर्णमासी को केश, दाढ़ी, मूंछ, रोम और नख कटवा दे तथा ब्रह्मचारी के लिए निर्दिष्ट व्रतों का पालन करे।

संवत्सरं मासं चतुर्विंशत्यहो द्वादश रात्रीः षट् तिस्रो वा।।७।।

इमे श्रुतिसिद्धाः कल्पाः। एतेषां च व्यवस्था 'यावदेनो दीक्षामुपैति' इति।।७।।

अनु०—यह व्रत एक साल; एक मास, चौबीस दिन, बारह, छह या तीन रात करे।

न मांसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयान्नोपर्यासीत जुगुप्सेताऽनृतात्।। ८।।

अनृतौ नोपेयादिति ऋतौ चोपेयादेव उपर्यासननिषेधः खट्वादौ। ततश्च तृणादावुपर्यासने न दोषः। जुगुप्सा निन्दा। नाऽनृतं वदेदित्यर्थः। ब्रह्मचारिकल्पेनेत्यनेनैव मांसभक्षणादेरभावे सिद्धे संयोगपृथक्त्वात्। कर्माङ्गत्वमप्यवगम्यते। एवं च तदतिक्रमे कर्मैव निष्फलं भवति। अतश्चौषधार्थमपि मांसं न भक्षयितव्यमिति गम्यते।।८।।

अनु०—मांस का भक्षण अति निषिद्ध है। स्त्री संसर्ग, आसन, चारपाई आदि पर बैठना मना है। सच बोले।

पयो भक्ष इति प्रथमः कल्पः।। ९।।

निगदव्याख्यातमेतत्।। ९।।

अनु०—दूध का सेवन करना उत्कृष्ट विधि है।

यावकं वोपयुञ्जानः कृच्छ्रद्वादशरात्रं चरेद्भिक्षेद्वा तद्विधेषु यवागूं राजन्यो वैश्य आमिक्षाम्।। १०।।

उपयुञ्जानो जुहुयादिति शेषः। तप्ते पयसि दधन्यानीते यद्घनं सा आमिक्षा भवति।। १०।।

अनु०—अथवा भोजन निमित्त केवल यवागू खाए। बारह दिन तक कृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करे। या भिक्षाटन से समय बिताए। इस अवस्था में क्षत्रिय और वैश्य क्रमशः यवागू और आमिक्षाग्रहण करे।

पूर्वाह्णे पाकयज्ञिकधर्मेणाऽग्निमुपसमाधाय सम्परिस्तीर्याऽऽग्निमुखात्कृत्वा। [1]"यद्देवा देवहेलनम्"।

---

१. यद्देवा देवहेलनन्देवासश्चकृमा वयम्। आदित्यास्तस्मान्मा मुञ्चतर्तस्यर्तेन मामित।१। देवा जीवनकाम्या यद्वाचाऽनृतमूदिम। तस्मान्न इह मुञ्चत विश्वे देवास्सजोषसः।२। ऋतेन द्यावापृथिवी ऋतेन त्वꣳसरस्वति। कृतान्नः पाह्येनसो यत्किञ्चाऽनृतमूदिम।३। इन्द्राग्नी मित्रावरुणो सोमो धाता बृहस्पतिः। तेनो मुञ्चन्त्वेनसो यदन्यकृतमारिम।४। सजातशꣳसादुतजामिश साज्ज्यायसश्शꣳसादुत वा कनीयसः। अनाधृष्टन्देवकृतं यदेनस्तस्मात्त्वमस्माज्जातवेदो मुमुग्धि।५। यद्वाचा यन्मनसा बाहुभ्यामूरुभ्यामष्ठीवद्भ्याꣳशिश्नैर्यदनृतं चकृमा वयम्। अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु चकृम यानि दुष्कृता।६। येन त्रितो अर्णवान्निर्बभूव येन सूर्यन्तमसो निर्मुमोच। येनेन्द्रो विश्वा अजहादरातीस्तेनाहं ज्योतिषा ज्योतिरानशान आक्षि।७। यत्कुसीदमप्रतीतं मयेह येन यमस्य निधिना चरामि। एतत्तदग्ने अनृणो भवामि जीवन्नेव प्रतितत्ते दधामि।८। यन्मयि माता गर्भे सत्यमेनश्चकार यत्पिता। अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि

²यददीव्यन्नृणमहं बभूव'। ³आयुष्टे विश्वतो दध, दित्येतैस्त्रिदित्यनुवाकैः

चकृम करोतु मामनेनसम् ।६। यदा पिपेष मातरं पितरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्। अहिꣳसितौ पितरौ मया तत्तदग्ने अर्नणो भवामि ।१०। यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहि सिम। अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ।११। यदाशसा निशसा यत्पराशसा यदेनश्चकृमा नूतनं यत्पुराणम्। अन्निर्मा. मनेनसम् ।१२। अतिक्रामासिमदुरितं यदेनो जहामि रिप्रं परमे सधस्थे। यत्र यन्ति सुकृतो नाऽपि दुष्कृतस्तमारोहामि सुकृतान्नु लोकम् ।१३। त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एतन्मनुष्येषु मामृजे। ततो मा यदि किञ्वदानशेऽग्निर्मा तस्मादेनसो. मनेनसम् ।१४। दिवि जाता अप्सु जाता या जाता ओषधीभ्यः। अथो या अग्निजा आपस्तानश्शुन्धन्तु शुन्धनीः ।१५। यदापो नक्तं दुरितं चराम यद्वा दिवा नूतनं यत्पुराणम्। हिरण्यवर्णास्तत् उत्पुनीत नः ।१६। इर्मं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वाम चस्युचराचके ।१७। तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानौ हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्रमोर्षीः ।१८। त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमश्शोशुचानौ विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ।१६। स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो वयुष्टौ अव यक्ष्व नो वरुणꣳरराणो वीहि मृळीकꣳसुहवो न एधि ।२०। त्वमग्ने अयास्ययासन् मनसा हितः। अयासन् हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजम् ।२१। (तै.आ. २/३.)

२. ग्ददीव्यन्तणमहं वभूव दिसन्वासञ्जगर जनेभ्यः। अग्निर्मा तस्मादिन्द्रश्च संविदानौ प्रमुञ्चताम् ।२२। यद्धस्ताभ्याञ्चकर किल्बिषाण्यक्षाणां वग्नुमुपजिघ्नमानः। उग्रं पश्या च राष्ट्रभृच्च तान्यप्सरसावनुदत्तामृणानि ।२३। उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्किल्विषाणि यदक्षवृत्तमनुदत्तमेतत्। नेन्न ऋणानृणव इथ्समानो यमस्य लोके अधि रज्जुराय ।२४। अव ते हेळः ।२५। उदुत्तमं ।२६। इमं मे वरुण ।२७। तत्वा यामि ।२८। त्वन्नो अग्ने ।२६। स त्वन्नो अग्ने ।३०। संकुसुको विकुसुको निर्ऋथो यश्च निस्वनः। तेऽस्मद्यक्ष्ममनागसो दूराद् दूरमचीचतम् ।३१। निर्यक्ष्ममचीचते कृत्यान्निर्ऋतिञ्च। तेनान्यो१ऽस्मथ्समृच्छातै तमस्मै प्रसुवामसि ।३१। दुश्शꣳसानुशꣳसाभ्यां घणेनानुघणेन च। तेनान्यो१ऽस्मथ्समृच्छाते तमस्मै प्रसुवामसि ।३२। संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन। त्वष्टा नो अत्र विदधातु रायोऽनुमार्ष्टुं तन्वो १ यद्विलिष्टम् ।३३। (तै. आ. २.४)

३. आयुष्टे विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः। पुनस्ते प्राण आयाति परा यक्ष्मꣳसुवामि ते ।३४। आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमम् ।३५। इममग्न आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण सꣳशिशाधि। मातेवाऽस्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसत् ।३६। अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषञ्च नः। आरेबाधस्व दुच्छुनाम् ।३७। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चस्सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम् ।३८। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् ।३८। अग्ने जातान् प्रणुदानस्सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व। अस्मे दीदिहि सुमना अहेलञ्छर्मन्ते स्याम त्रिवरूथ उद्भौ ।४०। सहसा जातान् प्रणुदानस्सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व। अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳस्याम प्रणुदानस्सपत्नान् ।४१। अग्ने यो नोऽभितो जनो वृको वारोजिघाꣳसति। ताꣳस्त्वं वृत्रहञ्जहि वस्वस्मभ्यमाभर ।४३। अग्ने यो नोऽभिदासति समानोयश्चनिष्ट्यः। तं व समिधं कृत्वा यꣳतुभ्यमग्नेऽपि दध्मसि ।४३। यो नश्शपादशपतो यश्च

प्रत्यृचमाज्यस्य हुत्वा ⁴'सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकावि' ति चतस्रस्स्रुवाहुतीः जुहोति। ⁵'अग्नेऽभ्यावर्तिन्। अग्ने अङ्गिरः। पुनरूर्जा। सह रय्ये' ति चतस्रोऽभ्यावर्तिनीर्हुत्वा समित्पाणिर्यजमानलोकेऽवस्थाय ⁶'वैश्वानराय प्रतिवेदयाम' इति द्वादशर्चेन सूक्तेनोपस्थाय 'यन्मे मनसा वाचा कृतमेनः कदाचन। 'सर्वस्मान्मेळितो मोग्धि त्वं हि वेत्थ

नश्शपतश्शपात्। उपाश्च तस्मै निभ्रुन्च सर्वं पापꣳसमूहताम्।४४। यो नस्स पत्नो यो रणो मर्तोऽभिदासति देवः। इध्मस्येव प्रक्षायतो मातस्योच्छेपि किञ्चन।४५। यो माँ द्वेष्टि जातवेदो यञ्चाहं द्वेष्मि यश्च माम्। सर्वाꣳस्तानग्ने सन्दह याꣳश्चाहं द्वेष्मि ये च माम्।४६। यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः। निन्दाद्यो अस्मादिप्साच्च सर्वाꣳस्तान्मष्मषा कुरु।४७। सꣳशितं मे ब्रह्मसꣳशितं वीर्या१वलम्। सꣳशितंक्षत्रं मे जिष्णु यस्याऽहमस्मि पुरोहितः।४८। उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथोवलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्यामि स्वां'अहम्।४६। पुनर्मनः पुनरायुर्म आगात् पुनश्चक्षुः पुनश्श्रात्रम्म आगात् पुनः प्राणः पुनराकूतं म आगात्पुनश्चित्तं पुनराधीतं म आगात्। वैश्वानरोऽदव्धस्तनूपा अव बाधतां दुरितानि विश्वा।५०। (तै.आ. २/५)

४. सिꣳहे व्याघ्र उत या पृदाकौ। त्विपिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या। इन्द्रं या देवी सुभगा जजान। सा न आगन् वर्चसा संविदाना।१। या राजन्ये दुन्दुभावायतायाम्। अश्वस्य क्रन्द्ये पुरुषस्य मायौ। इन्द्रं या देवी सुभगा जजान। सा न आगन् वर्चसा सम्विदाना।२। या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये। त्विषिरश्वेषु पुरुषेषु गोषु। इन्द्रं या देवी सुभगा जजान। सा न आगन् वर्चसा सम्विदाना।३। रथे अक्षेषु वृषभस्य वाजे। वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे। इन्द्रं या देवी सुभगा जजान। सा न आगन् वर्चसा सम्विदाना।४। (तै.सं. २/७/७)

५. अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि न आवर्तस्वाऽऽयुषा वर्चसा सन्या मेधया धनेन।१। अग्ने अङ्गिरश्शतं ते सन्त्वावृतस्सहसस्रन्त उपावृतः। तासां पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमा कृधि पुनर्नो रयिमा कृधि।२। पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषाऽऽयुषा। पुनर्नः पाहि विश्वतः।३। सहरय्या निवर्तस्वाऽग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वाप्स्निया विश्वतस्परि।४। (तै.सं. ४/२/१)

६. वैश्वानराय प्रतिवेदयामो यदीनृणꣳसङ्गरो देवतासु। स एतान् पाशान् प्रमुचन् प्रवेद स नो मुञ्चातु दुरितादवद्यात्।१। वैश्वानरः पवयान्नः पवित्रैर्यत्सङ्गरमभिधावाम्याशाम्। अनाजानन् मनसा याचमानो यदत्रैनो अव तत्सुवामि।२। अमी ये सुभगे दिवि विचृतौ नाम तारके। प्रेहामृतस्य यच्छतामेतद्बद्धकमोचनम्।३। विजिहीर्ष्व लोकान् कृधि बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्। योनेरिव प्रच्युतो गर्भस्सर्वान् पथो अनुष्व।४। स प्रजानन् प्रतिगृभ्णीत विद्वान् प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य। अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनुसञ्चरेम।५। ततं तन्तुमन्वेके अनुसञ्चरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनवत्। अवन्ध्वेके ददतः प्रयच्छाद्दातुं चेच्छक्नवाꣳस स्वर्ग एषाम्।६। आरभेथामनुसꣳरभेथाꣳसमानं पन्थामवथो घृतेन। यद्वां पूर्तं परिविष्टं यदग्नौ तस्मै गोत्रायेह जायापती सꣳरभेथाम्।७। यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिꣳसिम। अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्य उन्नोनेषद्दुरिता यानि चकृम।८। भूमिर्माताऽदितिर्नो जनित्रं भ्राताऽन्तरिक्षमभि शस्त एनः। द्यौर्नः पिता पितृयाच्छं भवासि जामिमित्वा मा विवित्सि लोकान।६। यत्र सुहार्दꣳसुकृतो मदन्ते विहाय रोगं तन्वाꣳस्वायाम्। अश्लोणाङ्गै रहुतास्वर्गे तत्र पश्येम पितरं च पुत्रम्।१०। यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत वा करिष्यन्। यद्देवानां चक्षुष्यागो अस्ति यदेव किञ्च प्रतिजग्राहमग्निर्मा तस्मादनृणं कृणोतु।११। यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं वासो हिरण्यमुत गामजामविम्। यद्देवानां चक्षुष्यागो अस्ति यदेव किञ्च प्रतिजग्राहमग्निर्मातस्मादनृणं कृणोतु।१२।

यथातथᳬस्वाहे' ति समिधमाधाय वरं ददाति।।११।।

पाकयज्ञधर्मग्रहणादाहवनीयो निवर्तते। आग्निमुखात्कृत्वा अनाम्नातया पक्वहोमं कृत्वा सौविष्टकृतं च। यद्देवादय उपहोमाः। यजमानलोके दक्षिणतोऽग्नेः। अन्यत्राऽप्युपस्थानचोदनायां समित्पाणिता समिदभ्याधानं च द्रष्टव्यम्। यन्मे मनसेत्यस्य वामदेवर्षिः कण्वर्षिर्वा। अनुष्टुप्छन्दः। अग्निर्देवता यद्वाङ्मनसाभ्यां कृतमेनः कस्यांचिदवस्थायां तस्मात् सर्वस्मात् मा मां ईळितः स्तुतः त्वं मोग्धिं मोचय, हि यस्मात् वेत्थ त्वमेव सर्वं यथातथं वेत्सि परितः। वरः वरिष्ठा गौः।।११।।

अनु०—पूर्वाह्न में पाकयज्ञ के अनुसार अग्नि जलाए। उसके चारों तरफ कुश बिछाए। अग्निमुख तक की क्रियाएं पूरी करे। यद्देवा देवावहेद्वनम्, 'यददीव्यन्नृणमहं बभूव' 'आयुष्टे विश्वतो दधत्' जैसे अनुवाकों से प्रत्येक ऋचा का उच्चारण करते हुए घी से यज्ञ करे। 'सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ' आदि से चमस द्वारा चार आहुतियां अर्पित करे। फिर 'अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि न आवर्तस्वाऽऽयुषा वर्चसा सन्या मेधया प्रजया धनेन। अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभिन, अग्ने अङ्गिरश्शतं, पुनरूर्जा' से चार अभ्यावर्तिनी अग्नि में चार आहुतियां दे। यजमान के आसन पर बैठे। हाथ में समिधाएं ले। 'वैश्वानराय प्रतिवेदयाम्' आदि बारह मन्त्रों से अग्नि की अर्चना करे। 'यन्मे मनसा' मन्त्र से अग्नि पर समिधा रखे। श्रेष्ठ गाय दक्षिणा में दे।

जयप्रभृति सिद्धमा धेनुवरप्रदानात्।।१२।।

अनु०—मन्त्रों को जपने से लेकर दक्षिणा में गौ को दान देने तक की विधि प्रसिद्ध है।

एक एवाऽग्नौ परिचर्यायाम्।।१३।।

येयमग्नौ परिचर्या उक्ता, तस्यामेक एव स्वयं कर्ता स्यात् नाऽन्यं कर्तारं वृणीते। तस्मादन्यत्र पापक्षपणेषु परकर्तृकताऽपि भवतीति गम्यते। अग्नावित्येकवचननिर्देशाच्चाऽस्मिन्नेतत्स्वयं कर्तव्यम्, न त्वाहवनीयेऽपि। तत्र ह्यनादिष्टेऽध्वर्युणैव होतव्यमित्येतदेव।।१३।।

अनु०—मात्र एक आदमी अग्नि की परिचर्या करे।

अग्न्याधेये यद्देवोदेवमहेनम्। यददीव्यन्नृणमहं बभूव। आयुष्टे विश्वतो दधदिति पूर्णाहुतिम्।।१४।।

जुहुयादिति शेषः।।१४।।

अनु०—'यद्देवो देवहेनम्' आदि मंत्र से यज्ञ सम्पन्न करे।

हुत्वाऽग्निहोत्रमारप्स्यमानो दशहोत्रा हुत्वा दर्शपूर्णमासावारप्स्यमानश्चतुर्होत्रा

हुत्वा चातुर्मास्यान्यारप्स्यमानः पञ्चहोत्रा हुत्वा पशुवन्धे षढ्ढोत्रा सोमे सप्तहोत्रा।। १५।।

दशहोता 'चित्तिस्स्रुक्' इत्यनुवाकः 'पृथिवी होता चतुर्होता'। 'अग्निर्होता' पञ्चहोता। 'वाग्घोता' षढ्ढोता व्याख्यानेषु प्रायणीयायां च 'सूर्यं ते'। 'महाहविः' सप्तहोता। एते कूष्माण्डप्रदेशाः।। १५।।

अनु०—इस हवन को पूरा कर लेने पर अग्निहोत्री चित्तिस्स्रुक् आदि अनुवाक् से दशहोत्र मन्त्रों से पूजा करे। इसके पश्चात् दर्शपूर्णमास यज्ञ का अनुष्ठाता पृथिवी होता, आदि चतुर्होतृ मन्त्रों से पूजा करे। फिर चातुर्मास यज्ञ का आरम्भ करने वाला अग्निर्होता आदि पञ्चहोतृ.मंत्रों से उपासना करे। फिर पशुबन्ध यज्ञ में करने वाले वाग्घोता आदि षढ्ढोता मन्त्रों से पूजा करे। सोमयज्ञ में 'महाहविः' सप्तहोतृ मन्त्र से पूजा करनी चाहिए।

विज्ञायते कर्मादिष्वेतैर्जुहुयात् पूतो देवलोकान् समश्नुते इति हि ब्राह्मणमिति हि ब्राह्मणम्।। १६।।

ब्राह्मणग्रहणं तु कर्मादिषु ब्राह्मणोक्तमेव कर्तव्यम्। अतश्चाऽग्निमुखस्य वरदानादेश्च निवृत्तिः।। १६।।

अनु०—वेद में वताया गया है कि कर्मों के प्रारम्भ में कूष्माण्ड मन्त्रों से अग्निहोत्र करे। इससे यजमान पवित्र होता है। वह देवलोक में जाता है। ऐसा ब्राह्मण का वचन है।

(अध्याय-सात, खण्ड-सात सम्पूर्ण)

अध्याय-आठ : खण्ड-आठ

अथाऽतश्चान्द्रायणकल्पं व्याख्यास्यामः।। १।।

चन्द्रस्यायनं गमनं यथा वृद्धिह्रासाभ्यां युक्तं भवति तद्वत् ग्रासवृद्धिह्रासवशाच्चरतीति चान्द्रायणम्।। १।।

अनु०—अव चान्द्रायण व्रत के अनुष्ठान की विधि की चर्चा होगी।

शुक्लचतुर्दशीमुपवसेत्।। २।।

केशादीनि वापयित्वोपवसेदिति क्रमः। उपवसेदिति वचनात् औपवसथ्यमेतदहरिति गम्यते। अत उत्तरेद्युर्होमः। तथा च लिङ्गम्-'पञ्चदश ग्रासान्' इति।। २।।

अनु०—शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को निराहार रहे।

केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वा अपि वा श्मश्रूण्येव।। ३।।

तथा च गौतमः-'कृच्छ्रे वपनं व्रतं चरेत्' इति।।३।।

अनु०–सिर के बाल, दाढ़ी, मूंछ, रोम और नख कटवाए। या फिर दाढ़ी-मूंछ ही कटवाए।

अहतं वासो वसानः सत्यं ब्रुवन्नावसथमभ्युपेयात्।।४।।

अहतं वस्त्रं नवं केशादिरहितं प्रक्षालितोपवातं च। सत्यवचनमपि चान्द्रायणाङ्गमेव। आवसथो होमस्थानम्।।४।।

अनु०–नए कपड़े पहने। सत्य बोले। वह उस जगह जाए, जहां यज्ञ की अग्नि रखी हुई हो।

तस्मिन्नस्य सकृत्प्रणीतोऽग्निररण्योर्निर्मन्थ्यो वा।।५।।

लौकिक एवाऽग्निः कर्मान्तरार्थं प्रणीतो यथा न नश्येत् तथा धार्य इत्येवमर्थं सकृद्ग्रहणम्। यावच्चान्द्रायणं नित्यं धारणमित्यर्थः। तदसम्भवेऽरण्योस्समारोपणम्। चान्द्रायणापवर्गे करिष्यमाणाय होमाय मन्थनं च। यस्य पुनररणी न स्तस्तस्याऽपि यस्मात्कस्माच्चित् काष्ठद्वयात् निर्मन्थ्योऽग्निः।।५।।

अनु०–एक बार जो अग्नि किसी उद्देश्य से लाई गई हो, उसे प्रतिष्ठित करे। या दो अरणियों को जपकर अग्नि को प्रज्जवलित करे।

ब्रह्मचारी सुहृत्प्रैषायोपकल्पी स्यात्।।६।।

ब्रह्मचारी अनृतौ। सुहृत् शोभनं हृदयं यस्य स तथोक्तः। असहायेन न हि शक्यते एतावन्महत्कर्म कर्तुमित्यात्मनः प्रैषकरणायाऽन्यमुपकल्पयते इत्युपकल्पी। उक्तं च–

'अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्। विशेषतोऽसहायेन' इति। योऽसावन्यः प्रेषितार्थकरणायोपकल्पितः असावृत्विग्धर्मेति। केचिदाहुः। अन्ये लौकिकार्थधर्माऽसाविति। तत्पुनर्युक्तायुक्ततया विचारणीयम्।।६।।

अनु०–शुद्ध अन्तःकरण वाला ब्रह्मचारी अग्नि की रक्षा के लिए और उसके निर्देशों का पालन करने के निमित्त उसके पास ही रहे।

हविष्यं च व्रतोपायनम्।।७।।

हविष्यमक्षारलवणं व्रतोपायनं प्रधानद्रव्यम्। यथाऽन्नादिद्रव्यम्, नोपदंशादि।।७।।

अनु०–व्रत के पालन की अवधि में व्रती यज्ञ की हवि कां भोजन रूप में ग्रहण करें।

अग्निमुपसमाधाय सम्परिस्तीर्याऽऽग्निमुखात्कृत्वा पक्वाज्जुहोति।।८।।

अवदानधर्मेणाऽदायेति शेषः।।८।।

अनु०—अग्नि पर समिधा रखे और अग्नि को प्रज्ज्वलित करे। उसके चारों तरफ कुश बिछाए। अग्नि मुख तक की क्रियाएं पूरी करे। पके हुए अन्न में से अन्न ग्रहण कर ले, उससे ही यज्ञ में आहुतियां दे।

अग्नये या तिथिस्स्यान्नक्षत्राय सदैवताय 'अत्राह गोरमञ्चते' ति चान्द्रमसीं पञ्चमीं द्यावापृथीवीभ्यां षष्ठीमहोरात्राभ्यां सप्तमीं रौद्रीमष्टमीं सौरीं नवमीं वारुणीं दशमीमैन्द्रीमेकादशीं वैश्वदेवीं द्वादशीमीति।।६।।

एते द्वादशहोमा एतस्मादेव चरोरवदाय कर्तव्याः। तत्र 'अग्नये स्वाहा' इति प्रथमाऽऽहुतिः। या तिथिस्स्यात् या तदानीं वर्तमाना तिथिस्स्यात् तस्यै द्वितीया। प्रतिपच्चेद्वर्तते 'प्रतिपदे स्वाहा' इति, द्वितीया चेत् द्वितीयस्यै, तृतीया चेत्तृतीयस्यै, इत्यादि। तस्यै द्वितीयेति सूत्रयितव्ये या तिथिरिति वचनं यतिशिशुचान्द्रायणे यथाकथंचिदित्येतस्मिंश्चैतद्विधानमस्तीति दर्शयति। नक्षत्राय तृतीया। यच्च नक्षत्रं कृत्तिकादि वर्तते तस्यैव तृतीयाऽऽहुतिः कृत्तिकाभ्यस्स्वाहा रोहिण्यै स्वाहेति। सदैवताय यस्य नक्षत्रस्य या देवता स्यादिन्द्रादिका तस्यै चतुर्थ्याहुतिः अग्नये स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, सोमाय स्वाहेत्यादि। चान्द्रमसीति 'सास्य देवते' ति तद्धितः। एवं रौद्रीमित्यादिषु द्रष्टव्यम्। षष्ठीप्रभृतिष्वपि तद्दवेत्याभिः ऋग्भिर्होम इति केचित्। अपरे विधिशब्दैरेव मन्त्रभूतैरिति। वयं तु ब्रूमः षष्ठीसप्तम्यावाहुती चतुर्थीचोदिते सत्यौ विधिशब्दमन्त्रके। अष्टम्याद्यास्तद्धितोदिताः ऋङ्मन्त्रका इति। एवं च सति सूत्रवैचित्र्यं साभिप्रायमुपपादितं भवति।।६।।

अनु०—पहली आहुति अग्नि को समर्पित करे। दूसरी आहुति उस तिथि के लिए होती है। तीसरी औरं चौथी आहुतियां क्रमशः नक्षत्र और उसके देवता को अर्पित की जाती हैं। पांचवीं, छठीं, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं आहुतियां क्रमशः चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, दिन और रात, रुद्र, सूर्य, वरुण, इन्द्र और विश्वेदवा को दे। 'अत्राह गौरमन्वत त्वष्टुरपीच्यम् आदि का उच्चारण करते हुए उपर्युक्त आहुतियां दी जाती हैं।

अथाऽपरास्समामनन्ति-दिभ्यश्च सदैवताभ्यः उरोरन्तरिक्षाय सदैवताय नवो नवो भवति जायमानो"[1] इति।।१०।।

एता एकादश। दिग्भ्यः चतसृभ्यः। 'प्राच्यै दिशे स्वाहा, दक्षिणायै दिशे' इत्यादि मन्त्रकल्पना। कुत एतत् चतसृभ्य एव दिग्भ्य इति? नन्वष्टदिक्पाला इति प्रसिद्धिरस्ति,

१. नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे। भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्रचन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः। तै. सं. २/४/१४/१

तथा क्वचिद्दश दिश इति। सत्यम् तथापि 'दिग्भ्यः स्वाहाऽवान्तरदिशाभ्यस्स्वाहा' इति व्यपदेशभेदाच्चतस्र एव दिग्ग्रहणेन गृह्यन्ते। देवताभ्योऽपि तावतीभ्यः 'इन्द्राय स्वाहा, यमाये' इत्यादि। अथ वा 'प्राची दिगग्निर्देवता' इत्यादि दर्शनात् 'अग्नय, इन्द्राय' इत्यादि द्रष्टव्यम्। उरोरिति चतुर्थ्यन्तस्य ग्रहणम्, अन्तरिक्षविशेषणत्वात्। ततश्च 'उरवेऽन्तरिक्षाय स्वाहा' इति मन्त्रः। अन्तरिक्षदेवता तु वायुः 'वायुरन्तरिक्षस्याऽधिपतिः' इति दर्शनात्। आत्मेत्यन्ते। उत्तमः प्रसिद्धः।। १०।।

अनु०—अन्य आहुतियों की चर्चा करते हैं-ये आहुतियां चार दिशा और उनके देवताओं को देते हैं। इसके साथ ही अन्तरिक्ष के मध्य भाग और उसके देवता को भी आहुतियां दी जानी चाहिए।

सौविष्टकृतीं हुत्वाऽथैतद्धविरुच्छिष्टं कंसे वा चमसे वा व्युद्धृत्य हविष्यैर्व्यञ्जनैरुपसिच्य पञ्चदश पिण्डान् प्रकृतिस्थान् प्राश्नाति।। ११।।

हविरुच्छिष्टं हुतशेषं हविष्याणि व्यञ्जनानि क्षीरादीनि, शाकफलादीनि च क्षारलवणरहितानि। अत्र व्यञ्जनशब्दप्रयोगात् 'हविष्यं च व्रतोपायनम्' इत्यत्र प्रधानद्रव्यमेव गृह्यते। तथैव च व्याख्यातमस्माभिः। आस्यविकाराकारिणः पञ्चदशग्रासा अपि। एतदपि लिङ्गं पर्वणि होमस्य तत्र पञ्चदश ग्रासास्समन्त्रकाः। तूष्णीका इतरे। तत्रैते मन्त्रा नित्यानां विकारकाः।। ११।।

अनु०—स्विष्टकृत अग्नि के निमित्त यज्ञ करे। जो हवि बचे, उसको कंस या चमस् में रखे। सामान्य मात्रा के पन्द्रह ग्रास बनाते हुए उसे खाए।

प्राणाय त्वेति प्रथमम्। अपानाय त्वेति द्वितीयम्। व्यानाय त्वेति तृतीयम्। उदानाय त्वेति चतुर्थम्। समानाय त्वेति पञ्चमम्।। १२।।

प्राश्नातीति सम्बन्धः। एवमेकैकस्य ग्रासस्यैकैको मन्त्रः संख्याने भवति।। १२।।

अनु०—पहले पिण्ड को खाने से पहले प्राणायाम करे। दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें ग्रास को खाते समय क्रमशः अपानवायु त्वा, व्यानाय त्वा, उदानाय त्वा और समानाय त्वा का उच्चारण करे।

यदा चत्वारो द्वाभ्यां पूर्वम्।। १३।।

यदा चत्वारो ग्रासाः प्राशितव्यास्तदा प्रथमो ग्रासो द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम्, ग्रसनीयः तदुत्तरेषामेकैकेनैकैकः।। १३।।

अनुं०—केवल चार ग्रास भोजन ग्रहण करना हो, तो दो मन्त्रों से पहले ग्रास को खाए।

यदा त्रयो द्वाभ्यां द्वाभ्यां पूर्वौ।। १४।।

यदा तु त्रयाणां ग्रसनं तदा द्वौ द्वाभ्यां द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां ग्रसनीयौ। तृतीयस्तु पञ्चमेन।। १४।।

अनु०—सिर्फ तीन ग्रास खाने हो, तो पहले दो ग्रास को दो-दो मन्त्रों को बोलते हुए खाए।

यदा द्वौ द्वाभ्यां पूर्वं त्रिभिरुत्तरम्।। १५।।

अनु०—दो ग्रास होने पर दो मन्त्र से पहले और तीन मन्त्रों से दूसरे ग्रास को खाए।

एकं सर्वैः।।१६।।

ऋज्वर्थे सूत्रे।। १५-१६।।

अनु०—एक हो तो समस्त मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उसे ग्रहण करना चाहिए।

'निग्राभ्यास्स्थे'[1] त्यपः पीत्वाऽथाज्याहुतीरुपजुहोति।।१७।।

'निग्राभ्यास्स्थ देवश्रुतः' इत्यादि 'गणा मे मा वितृषन्' इत्यन्तमेकं यजुः।।१७।।

अनु०—'निग्राभ्यास्स्थ देवश्रुत आयुर्मे तर्पयतः', आदि मन्त्र बोलते हुए जल को पिए। नीचे लिखे सात अनुवाकों से घी की आहुतियां दे।

प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुद्ध्यन्त्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳस्वाहा। [2]वाङ्मनः [3]शिरः पाणि [4]त्वक्चर्म [5]शब्दस्पर्श [6]पृथिवी [7]अन्नमयप्राणमय इत्येतैस्सप्तभिरनुवाकैः।। १८।।

प्रत्यनुवाकं होमः।। १८।।

---

१. निग्राभ्यास्थ देवश्रुत आर्युमे तर्पयत प्राणं मे तर्पंयताऽपानं मे तर्पयत व्यानं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयत मनो मे तपर्यत वाचं मे तर्पयताऽऽत्मानं मे तर्पयताऽङ्गानि मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत गृहान्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत सर्वगणं मा तर्पयत तर्पयत मा गणा मे मा वितृषन्।। तै. सं. ३/१/८/१

२. वाङ्मनश्चक्षुश्श्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुध्याकृतिसङ्कल्पा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपात्मा भूयाꣳस्वाहा।

३. शिरः पाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरजङ्घाशिश्नोपस्थपायवो मे० स्वाहा।।

४. त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोस्थिमज्जा मे शुध्यन्तां० स्वाहा।।

५. शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्तां० स्वाहा।।

६. पृथिव्याप्तेजोवाय्वाकाशा मे० शुध्यन्तां स्वाहा।।

७. अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमया मे शुध्यन्तां० स्वाहा। द्रष्टव्य तै.आ. १०. (तैत्तिरीयोपनिषद, द्वितीयप्रश्न) अ. ५१—५६.

अनु०–'प्राणापानव्यानोदान समाना मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासम्', 'वाङ्मनः', 'शिरःपाणि', 'त्वक्चर्म', 'शब्द स्पर्श', 'पृथिवी', 'अन्नमय प्राणमय' इनसे क्रमशः एक-एक करके सात आहुतियां दे।

जयप्रभृति सिद्धमा धेनुवरप्रदानात्।।१९।।

उत्तरं दार्विहोमिकं तन्त्रं प्रसिद्धम्।।१९।।

अनु०–जप से लेकर दक्षिणा में उत्कृष्ट गाय दिए जाने तक की समस्त क्रियाएं प्रसिद्ध हैं।

सौरीभिरादित्यमुपतिष्ठते चान्द्रमसीभिश्चन्द्रमसम्।।२०।।

सौर्यः-'उद्वयं तमसस्परि, उदुत्यं, चित्रम् इति तिस्र ऋचः। चान्द्रमस्यः 'नवो नवो भवति, सचित्र चित्रम्, अत्राह गोरमन्वत' इति च।।२०।।

अनु०–सूर्य और चन्द्रमा की क्रमशः तीन-तीन मन्त्रों से उद्वयं तमसस्परि', उदुत्यं', चित्रम् और 'नवो नवो', सचित्र चित्रम्, 'अत्राह गौरमन्वत से उनकी अर्चना करे।

'अग्ने त्वꣳ सुजागृही' ति संविशन् जपति। 'त्वमग्ने व्रतपा असी' ति प्रबुद्धः।।२१।।

संविशन् शयानः। प्रबुद्धः उज्जिहानः। आचम्येति शेषः।।२१।।

अनु०–'अग्ने त्वं सुजागृही' का पाठ सोते समय करे। सोकर उठे तो त्वमग्ने व्रतपा असि...' आदि को जपे।

स्त्रीशूद्रैर्नाऽभिभाषेत मूत्रपुरीषे नाऽवेक्षेत।।२२।।

अभिभाषणं पूर्वभाषणम्।।२२।।

अनु०–स्त्री, शूद्रों से वार्तालाप करना पड़ जाए तो अपनी तरफ से पहल न करे। मल-मूत्र आदि की तरफ न देखे।

अमेध्यं दृष्ट्वा जपत्य 'बद्धं मनो द्ररिद्रं चक्षुस्सूर्योज्योतिषाꣳश्रेष्ठो दीक्षे मा मा हासी' रिति।। अथ यद्येनमभिवर्ष 'त्युन्दतीर्बलं धत्ते' ति।।२३।।

व्याख्यातो मन्त्रः 'उत्तरत उपचारः' इत्यत्र। एते नियमा आ परिसमाप्तेश्चान्द्रायण-स्याऽनुसरणीयाः।।२३।।

अनु०–अपवित्र-अशुद्ध कारक वस्तु पर दृष्टि पड़ जाए तो 'अवद्धं मनो दरिद्रं चक्षुस्सूर्यो ज्योतिषाꣳ श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हासीः' मंत्र पढ़े। 'उन्दतीर्बलं धत्ते' का पाठ अपने ऊपर वर्षा की बूंदें गिरने पर करे।

प्रथमायामपरपक्षस्य चतुर्दश ग्रासान्।। २४।।

प्राश्नातीत्यनुवर्तते। अपरपक्षस्य च प्रतिपदि चतुर्दश ग्रासा ग्रसनीया इत्यर्थः।।२४।।

अनु०—उत्तरपक्ष के पहले दिन चौदह ग्रास भोजन ग्रहण करना चाहिए।

एवमेकापचयेनाऽमावास्यायाः।। २५।।

एव द्वितीयाप्रभृतिषु एकैको ग्रासोऽपचीयते। द्वितीयस्यां त्रयोदश तृतीयस्यां द्वादश इत्यादि।। २५।।

अनु०—इसी क्रम से एक-एक ग्रास अमावस्या तक घटाता रहे।

अमावास्यायां ग्रासो न विद्यते।। २६।।

अतस्तस्यामुपवास एव।। २६।।

अनु०—अमावस्या तक एक भी ग्रास नहीं बचता।

प्रथमायां पूर्वपक्षस्यैकः।। २७।।

अनु०—पूर्व पक्ष की प्रतिपदा को एक ग्रास खाना चाहिए।

द्वौ द्वितीयस्याम्।। २८।।

एते अप्यृज्वर्थे।। २७-२८।।

अनु०—द्वितीय को दो ग्रास भक्षण करे।

एवमेकोपचयेनाऽऽपौर्णमास्याः।। २९।।

उपचयो वृद्धिः। एवमा पौर्णमास्या नीयमाने चतुर्दश्यां चतुर्दश भवन्ति।। २९।।

अनु०—यह क्रम पूर्णमासी पर्यंत एक-एक ग्रास बढ़ाए।

पौर्णमास्यां स्थालीपाकस्य जुहोति।। ३०।।

अप्राणिनष्षष्ठ्येषा तृतीयार्थे पञ्चम्यर्थे वा द्रष्टव्या। अग्निमुपसमाधायेत्यादि प्रतिपद्यते।। ३०।।

अनु०—स्थालीपाक का हवन पूर्णिमा के दिन करे।

अग्नये या तिथिस्यात्।। ३१।।

व्याख्यातमेतत्।। ३१।।

अनु०—उस तिथि के लिए आहुति दे।

नक्षत्रेभ्यश्च सदैवतेभ्यः।। ३२।।

अत्र बहुवचनश्रवणात् सर्वेभ्यो नक्षत्रेभ्यः कृत्तिकादिभ्यो होतव्यमिति, तथा नक्षत्रदेवताभ्योऽपि सर्वाभ्यः। तत्र मन्त्राः नक्षत्रेष्टिषूपहोमत्वेनाऽऽम्नाता वेदितव्याः।। ३२।।

अनु०—नक्षत्र और उनसे सम्बद्ध देवताओं के लिए हवन करे।

पुरस्ताच्छ्रोणाया अभिजितस्सदैवतस्य हुत्वा गां ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्[1] ।। ३३ ।।

अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टादषाढानामधस्ताच्छ्रोणाया अस्ति। तस्य ब्रह्मा देवता। अन्यत्सर्वं प्रथमहोमवत्। अत्राऽपि पञ्चदश ग्रासा ग्रसनीयाः। तथा च सति तिस्रो नीतयस्सम्पद्यन्ते पर एव तस्यास्संख्याया नियमात्। यच्च पिपीलिकायवमध्ययोः पञ्चविंशत्युत्तरशतद्वयमिति न चैतद्युक्तम्, चान्द्रायणान्तरे पक्षयोश्च द्वावुपवासौ कृतौ भवतः।।३३।।

अनु०—श्रोणा के समक्ष यदि अभिजित नामक नक्षत्र आ जाए तो उसके और उसे देवता को आहुतियां दे। ब्राह्मणों को गाय दान करे।

तदेतच्चान्द्रायणं पिपीलिकामध्यम्।। ३४।।

संव्यवहारार्थं संज्ञाकरणम्। लुप्तोपमेयम् पिपीलिका हि तनुमध्योभयतः स्थूला भवति तद्वदेतदपि।।३४।।

अनु०—यह चान्द्रायण व्रत का एक प्रकार है। इसे पिपीलिकामध्यं चान्द्रायण कहते हैं।

विपरीतं यवमध्यम्।। ३५।।

अमावास्योपक्रममामावास्यान्तमित्यर्थः। अत्र हि पक्षयोश्चोपवासयोः क्रियमाणयोश्चन्द्रगतिरप्युपसृता भवति।। ३५।।

अनु०—इसका विपरीत होता है यवमध्य चान्द्रायण।

अतोऽन्यतरच्चरित्वा सर्वेभ्यः पातकेभ्यः पापकृच्छुद्धो भवति।। ३६।।

मुक्तो भवतीत्युक्तं भवति।। ३६।।

अनु०—इन दोनों में से जो व्यक्ति एक व्रत भी कर लेता है, उसके समस्त पाप छूट जाते हैं। वह शुद्ध, पवित्र हो जाता है।

कामाय कामायैतदाहार्यमित्याचक्षते।। ३७।।

अत्रैकः कामशब्दः कर्मवचनः। अपरो भाववचनः। काम्यमानाय फलायेत्यर्थः। यद्वा वीप्सावचनमेतत्। अतश्च सर्वाभिप्रायकमेतदित्युक्तं भवति।।३७।।

---

१. तै. आ. १/५/२/३

अनु०—इस चान्द्रायण व्रत के अनुष्ठान से समस्त कामनाएं पूरी होती हैं। यह कहा जाता है।

यं कामं कामयते तमेतेनाऽऽप्नोति।।३८।।

नाऽत्र तिरोहितमस्ति किञ्चित्।।३८।।

अनु०—चान्द्रायण व्रत से मनुष्य के समस्त मनोरथ पूरे हो जाते हैं।

एतेन वा ऋषय आत्मानं शोधयित्वा पुरा कर्माण्यसाधयन्।।३६।।

कर्माण्यग्न्याधेयादीनि। उक्तं चैतत्-अग्नीनाधास्यमानः प्राज्यमात्मानं कुर्वीतेति। किमर्थमेतत्? इदानींतना अपि कथं रोचयेरन्, ततोऽनुतिष्ठेयुरिति।।३६।।

अनु०—प्राचीन काल में ऋषि-महात्माओं ने चान्द्रायण व्रत का पालन किया। इससे वे शुद्ध-पवित्र हो गए। इससे उनकी समस्त मनोकामनाएं पूर्ण हो गईं।

तदेतद्धन्यं पुण्यं पुत्र्यं पौत्र्यं पशव्यमायुष्यं स्वर्ग्यं यशस्यं सार्वकामिकम्।।४०।।

'तस्मै हितम्' इति तद्धितान्तानां विग्रहः।।४०।।

अनु०—इस व्रत से धन की प्राप्ति होती है। पुत्र, पौत्र, पशु, दीर्घ जीवन, स्वर्ग, यश और समस्त कामनाओं की पूर्ति इस व्रत से होती है।

नक्षत्राणां द्युतिं सूर्याचन्द्रमसोस्सायुज्यं सलोकतामाप्नोति।।४१।।

फलार्थवादोऽयम्।।४१।।

अनु०—इस व्रत का अध्ययन करने वाला नक्षत्रों की ज्योति और सूर्य-चन्द्रमा का सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

य उचैनदधीते य उचैनदधीते।।४२।।

विद्वत्प्रशंसैषा।।४२।।

अनु०—वह सूर्य-चन्द्रमा के धाम में रहने लगता है।

(अध्याय—आठ, खण्ड-आठ सम्पूर्ण)

अध्याय-नौ : खण्ड-नौ

अथातोऽनश्नत्परायणविधिं व्याख्यास्यामः।।१।।

वेदस्य पारं पर्यन्तं निष्ठामयन्ते गच्छन्तीति पारायणम्। तच्चाऽनश्नता कर्तव्यमित्यनश्नत्पारायणम्।।१।।

अनु०—यहां से आगे अनश्नत्पारायण विधि की चर्चा कर रहे हैं।

शुचिवासाः स्याच्चीरवासा वा।।२।।

चीरं चिरकालिकं जीर्णमित्यर्थः। न चैताघतोपभुक्तं वासोऽभ्यनुज्ञातं भवति। 'अहतं वाससां शुचिः' इति नियमात्। समुच्चयार्थो वाशब्दः पूर्वस्मिन्। उत्तरत्र तु विकल्पार्थः।।२।।

अनु०—स्वच्छ, पवित्र वस्त्र धारण करे या वृक्ष के वल्कल पहने।

हविष्यमन्नमिच्छेदपः फलानि वा।।३।।

हविष्यमक्षारलवणम्। यदि मन्येतोपवस्यामीति तदेतद्वेदितव्यम्। इतरथाऽनश्नतत्त्वविरोधात्।।३।।

अनु०—वह यज्ञ के योग्य अन्न प्राप्त करने की इच्छा करे। अथवा उसे जल या फलों का आहार करने की इच्छा करनी चाहिए।

ग्रामात्प्राचीं वोदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य गोमयेन गोचर्ममात्रं चतुरश्रं स्थण्डिलमुपलिप्य प्रोक्ष्य लक्षणमुल्लिख्याऽद्भिरभ्युक्ष्याऽग्निमुपसमाधाय सम्परिस्तीर्यैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात्।।४।।

उपनिष्क्रम्य शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्ते प्रोक्ष्य लक्षणमुल्लिख्य स्थण्डिलं कृत्वेत्यर्थः। सम्परिस्तीर्याऽऽज्यं विलाप्योत्पूय। नाऽत्र दार्विहोमिकं तन्त्रं विद्यते।।४।।

अनु०—गांव से निकले। उसे पूर्व या उत्तर दिशा में जाना चाहिए। गोचर्म के नाप की भूमि को गोबर से लिपे। उस पर जल का छिड़काव करे। उसे चिह्न से सजाए। और उस पर जल छिड़के। अग्नि का आधान करे। अग्नि के चारों तरफ कुश बिछाए। फिर निम्नलिखित देवों के निमित्त अग्निहोत्र करे।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वयम्भुव ऋग्भ्यो यजुर्भ्यो सामभ्यो ऽथर्वभ्यश्श्रद्धायै प्रज्ञायै मेधायै श्रियै ह्रियै सवित्रे सावित्र्यै सदसस्पतयेऽनुमतये च व्याहरेन्न चाऽन्तरा विरमेत्।।५।।

व्याहरणमवैदिकशब्दोच्चारणम्। विरामोऽवसानम्। अन्तरा स्वाध्यायमध्ये। सन्ततविधानादेव सिद्धे अन्तरा विरमणनिषेधात् नैमित्तिकेऽनध्यायेऽग्न्युत्पातादावध्ययने दोषो नास्तीति गम्यते। नित्याध्ययनानां सन्ध्योपासनादीनां च पूर्वमेवाऽवगन्तुं शक्यत्वात् तत्परिहरणेनाऽपि सङ्कल्प उपपद्यते।।५।।

अनु०—अग्नि, सोम, प्रजापति, समस्त देव, स्वयम्भू, ऋक्, यजुस्, साम, अथर्वन्, श्रद्धा, प्रज्ञा, मेधा, श्री, सवितृ सावित्री, सदस्पति, अनुमति के निमित्त यज्ञ करे। वेद के प्रारम्भ से लगातार मन्त्र पाठ करे। यज्ञ के मध्य किसी से वार्तालाप करना मना है। न ही उसे बीच में मन्त्र पाठ को विराम देना चाहिए।

अथाऽन्तरा व्याहरेदथाऽन्तरा विरमेत्त्रीन् प्राणानायम्य वृत्तान्तादेवाऽऽरभेत।।६।।

अथ यदीत्यर्थः। आयमनमातमनम्। वृत्तान्तात् स्थितादुत्तरतः।।६।।

अनु०–फिर भी मध्य में कोई वार्तालाप करे या मन्त्र पाठ रोक देना पड़े तो तीन बार प्राणायाम करे। फिर वहीं से मन्त्रों को पढ़ना शुरू करे, जहां मन्त्र को विराम दिया था।

अप्रतिभायां यावता कालेन न वेद तावन्तं कालं तदधीयीत स यज्जानीयात्।।७।।

व्यवहितमपि यत्प्रत्यभात्तदधीयीतेत्यर्थः।।७।।

अनु०–वेदपाठ करते समय कुछ विस्मृत हो जाए, तो उसका पाठ तब तक करता रहे जब तक कि अगला अंश याद न आ जाए।

ऋक्तो यजुष्टस्सामत इति।।८।।

विजानीयादिति शेषः। ऋच्यप्रतिभातायामृगन्तरमधीयीतेत्यर्थः। एवं यजुषि, साम्नि च।।८।।

अनु०–ऋचा के भूलने पर ऋग्वेद का मंत्र पढ़े। यजुस् के लिए यजुर्वेद का मन्त्र और साम के लिए सामवेद के मंत्र का पाठ करना चाहिए।

तद्ब्राह्मणं तच्छन्दसं तद्दैवतमधीयीत।।६।।

ऋचश्चेन्न प्रतिभान्ति तद्ब्राह्मणमधीयीत। तत्प्रतिभायां पुनर्मन्त्रमेव। तच्छन्दसं तद्दैवतं तत्तदार्षमधीयीत।।६।।

अनु०–या विस्मृत हुए अंश से सम्बद्ध ब्राह्मण भाग को जपे। उसके याद न आने पर छन्द और देवता को जपे।

द्वादश वेदसंहिता अधीयीत यदनेनाऽनध्यायेऽधीयीत यद्गुरवः कोपिता यान्यकार्याणि भवन्ति, ताभिः पुनीते शुद्धमस्य पूतं ब्रह्म भवति।।१०।।

द्वादशेत्यत्र ऋग्यजुषेष्वित्यध्याहार्थम्। संहिताग्रहणं च पदक्रमनिवृत्यर्थम्। तथा च शौनकः-'अथैके प्राहुरनुसंहितं तत्पारायणं प्रवचनं प्रशस्तम्' इति। ताभिस्संहिताभिर्द्वादशभिः द्वादशकृत्वोऽभ्यस्ताभिः पुनीते। कस्मात्? अनध्यायाध्ययननिमित्तात् गुरुकोपनिमित्तादकार्यकरणनिमित्ताच्च।।१०।।

अनु०–वर्जित समय में वेद पढ़ने से गुरु को क्रोध आ जाए, कोई वर्जित कर्म कर दिया हो तो उन सबकी मुक्ति के लिए अपने लिए निर्दिष्ट वेद को बारह वार पढ़ना चाहिए। इससे उसका ज्ञान और भी अधिक पवित्र होता है।

अत ऊर्ध्वं सञ्चयः।।११।।

ब्रह्मभिर्हि द्वादशभिः पारायणैः पूते सञ्चयः निश्श्रेयसस्य भवति।।११।।

अनु०–बारह बार से अधिक वेद का अध्ययन करने से पुण्य के फलों में वृद्धि होती है।

अपरा द्वादश वेदसंहिता अधीत्य ताभिरुशनसो लोकमवाप्नोति।।१२।।

अनु०–बारह बार वेद का स्वाध्याय करने वाले को उसनस् धाम की प्राप्ति होती है।

अपरा द्वादश वेदसंहिता अधीत्य ताभिर्बृहस्पतेर्लोकमवाप्नोति।।१३।।

अनु०–इसके बाद जो बारह बार वेद पढ़े तो वह बृहस्पति लोक में वास करता है।

अपरा द्वादश वेदसंहिता अधीत्य ताभिः प्रजापतेर्लोकमवाप्नोति।।१४।।

अनु०–चौबीस बार वेदों के अध्ययन करने पर बारह बार वेद और पढ़े तो उसे प्रजापति लोक की प्राप्ति होती है।

अनश्नन्संहितासहस्रमधीत्य ब्रह्मभूतो विराजो ब्रह्म भवति।।१५।।

संहितासहस्रं सहस्रकृत्व इत्यर्थः।।१२-१५।।

संवत्सरं भैक्षं प्रयुञ्जानो दिव्यं चक्षुर्लभते।।१६।।

भैक्षमिति क्रियाविशेषणम्। प्रयुञ्जानः पारायणमिति शेषः। दिव्यं चक्षुदूर्रदर्शनम्।।१६।।

वह वेदाध्यायी ब्रह्म से एकत्व स्थापित कर लेता है जो निराहार रहकर हजार बार वेद पढ़ता है। वह ब्रह्म के प्रकाश से भासित होता है। वह स्वयं ब्रह्म की भांति हो जाता है।

षण्मासान्यावकभक्षश्चतुरो मासानुदकसक्तुभक्षो द्वौ मासौ फलभक्षो मासमब्भक्षो द्वादशरात्रं वाऽप्राश्नन् क्षिप्रमन्तर्धीयते ज्ञातीन्पुनाति सप्ताऽवरान्सप्त पूर्वानात्मानं पञ्चदशं पंक्तिं च पुनाति।।१७।।

प्राश्नन्नित्यत्राऽकारप्रश्लेषः कर्तव्यः अप्राश्नन्निति। पराचीनं वा पारायणं प्रयुञ्ज्येत्यर्थः।।१७।।

अनु०–छह महीने यवागू खाए। चार महीने जल और सक्तू पर निर्भर रहे। दे महीने फल खाए। एक मास बिना जल के रहे। या बारह दिन कुछ न खाए। इससे जल्दी ही अदृश्य होने की शक्ति मिल जाती है। इससे निकट सम्बन्धी,

बन्धु-बान्धव पवित्र होते हैं। इससे व्यक्ति अपने से पूर्व की सात और बाद की सात पीढ़ियों के साथ-साथ वह स्वयं भी पवित्र हो जाता है। वह व्यक्ति जहां भी ब्राह्मणों की पंक्ति में प्रविष्ट होता है, वह पंक्ति शुद्ध हो जाती है।

तामेतां देवनिश्श्रयणीत्याचक्षते।। १८।।

निश्श्रयणी निश्श्रेयसहेतुः। निश्श्रेयसस्य संश्रयः सोपानमिति यावत्।। १८।।

अनु०–यह देवताओं तक के पहुंचने की सीढ़ी कहलाती है।

एतया वै देवा देवत्वमगच्छन्नृषय ऋषित्वम्।। १९।।

अथेदानीमनश्नत्पारायणारम्भकालत्वेनाऽहारावयवानाह–

अनु०–इसी सीढ़ी के सहारे देवताओं को देवत्व मिला और ऋषियों ने ऋषित्व प्राप्त किया।

तस्य ह वा एतस्य यज्ञस्य त्रिविध एवाऽऽरम्भकालः–प्रातस्सवने माध्यन्दिने सवने, ब्राह्मे वाऽपररात्रे।। २०।।

अतश्च होमा एतेष्वेव कालेषु कर्तव्याः।। २०।।

अनु०–यह यज्ञ तीन समय में शुरू किया जाता है। वे हैं-प्रातः का सवन काल, माध्यन्दिन का सवन काल और रात का अंतिम अंश, उसे ब्राह्ममुहूर्त भी कहते हैं।

तं वा एतं प्रजापतिस्सप्तऋषिभ्यःप्रोवाच सप्तर्षयो महाजज्ञवे महाजज्ञुर्ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः।। २१।।

यस्मान्महाजज्ञुः ब्राह्मणेभ्यः एतमनश्नत्पारायणविधिं प्रोवाच तस्मात्तेषामेवाऽत्राऽधिकारो न क्षत्रियवैश्ययोरिति।।२१।।

अनु०–प्रजापति ने इन यज्ञों का उपदेश सात ऋषियों को दिया था। महाजज्ञु ने यह उपदेश सात ऋषियों से प्राप्त किया। फिर ब्राह्मणों ने महाजज्ञु से इसे अधिगत किया।

(अध्याय-नौ, खण्ड-नौ सम्पूर्ण)

अध्याय-दस : खण्ड-दस

उक्तो वर्णधर्मश्चाऽऽश्रमधर्मश्च।। १।।

अनु०–वर्ण और आश्रम पर चर्चाएं हो चुकी हैं।

अथ खल्वयं पुरुषो याप्येन कर्मणा।। २।।

लिप्यत इति शेषः। अयमिति प्रत्यक्षं शरीरिणं क्षेत्रज्ञं व्यपदिशति। अतश्च परमात्मा न लिप्यते। पुरुषः पुरि शयः पूरयतेर्वा। तस्मात् स्त्रियोऽपि लिप्यन्ते।। १-२।।

अनु०—दुष्कर्मों से उत्पन्न हुए पापों में मनुष्य यहां रहते हुए लिप्त होता है।

मिथ्या वा चरत्ययाज्यं वा याजयत्यप्रतिग्राह्यस्य वा प्रतिगृह्णात्यनाश्यान्नस्य वाऽन्नमश्नात्यचरणीयेन वा चरति।। ३।।

प्रदर्शनमेतदन्येषामपि पापानाम्। मिथ्या अयथादृष्टार्थस्य कर्मणः आत्मनो लाभपूजार्थं चरणमित्यादि। अचरणीयमकर्तव्यं प्रतिषिद्धमित्यर्थः। यदत्र पुनरुक्तमिव लक्ष्यते तत् दृढार्थम्, स्वाभावो ह्येष आचार्यस्य। अथ वा—आपद्विषयेऽनुज्ञातस्याऽप्ययाज्जयाजनादेः प्रायश्चित्तप्राप्त्यर्थम्। तत्राऽपि प्रथमकल्पितचतुर्भागः कर्तव्यः, उशनसो वचनात्। आपद्विहितैः कर्मभिरापादयन्तीत्यापदस्तेषां प्रायश्चित्तचतुर्भागं कुर्यात्' इति।। ३।।

अनु०—झूठा आचरण करने वाला, जिसका यज्ञ नहीं कराना चाहिए, उसके लिए यज्ञ करने वाला, न लेने योग्य दाता का दान लेने वाला, जो अन्न सदा अभक्षणीय है, उसको खाने वाला और वर्जित आचरण करने वाला पाप कर्मों में धंसता है।

तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति।। ४।।

मीमांसन्ते इति शेषः। तत्र पूर्वपक्षो न कुर्यादिति।। ४।।

अनु०—इनका प्रायश्चित्त करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए, इस विषय पर कोई पक्की राय नहीं है।

न हि कर्म क्षीयते इति।। ५।।

इतिशब्दो हेतौ। फलप्रदानमन्तरेण पापस्य कर्मणः क्षयाभावादित्यर्थः। आत्मसंस्थत्वात्कर्मणो जलसंस्थस्येव लवणस्य नाशो नाऽस्तीति।।५।।

अनु०—कुछ लोगों का मानना है कि प्रायश्चित्त कर्म न करे। क्योंकि कर्म नष्ट नहीं होते।

कुर्यात्त्वेव।। ६।।

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति। कथं कर्मणः क्षय इति चेत्, प्रायश्चित्तेन कर्म क्षीयत इति वदामः। यथा सर्पदंशनलक्षणस्य कर्मणो मरणपर्यन्तस्य मन्त्रौषधादिना विनाशो दृश्यते, तद्वदस्याऽपि प्रायश्चित्तेनेत्यभिप्रायः, आगमगम्यत्वादुत्पत्तेस्तन्नाशस्य च। किञ्च तत्फलभोग एवाऽयम्, यदिदं तपः। अल्पकालपरिसमाप्तमित्येतावत्। यथा दीर्घकालोपभोग्यस्य व्याधेरल्पदुःखानुभवरूपेण भेषजादिना क्षयो भवत्येवमस्याऽऽ-

प्यागमगम्यत्वादेव। तस्मात्कुर्यादेव प्रायश्चितम्। तत्र शुष्कतर्को न कर्तव्य इत्यभिप्रायः।। ६।।

अनु०–परन्तु सिद्धांत तो यही है कि पापों का प्रायश्चित्त करे।

पुनस्तोमेन यजेत पुनस्सवनमायन्तीति विज्ञायते।।७।।

अनु०–वेद के अनुसार पापी को पुनस्तोम करना चाहिए। यह करने वाला पुनः सोम के सवनों में अंश ग्रहण करने वाला बनकर आता है।

सर्वं पाप्मानं तरति, तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजत इति।।८।।

अनु०–इस सम्वन्ध में प्रमाण देते हैं–

अश्वमेध करने से व्यक्ति समस्त पापों से दूर हो जाता है। यहां तक कि ब्रह्महत्या जन्य पाप से भी वह मुक्त हो जाता है।

अग्निष्टुता वाऽभिशस्यमानो यजेतेति च।।६।।

विषयव्याप्त्यर्थमनेकोदाहरणम्। पुनस्सवनं पुनर्यागः। नष्टाधिकारतत्समाधाने सत्येतदुपपाद्यते। सर्वग्रहणाद्विहिताकरणप्रतिषिद्धसेवानिमित्तस्याऽपि। तरणं क्षपणम्। विज्ञायते प्रतीयते। उभयाभावेऽपि जन्मान्तरकृतपापप्रदर्शनार्थमभिशस्यमान इत्युक्तम्।।७-६।।

अनु०–जिस पर किसी भयानक पाप कर्म का दोष लगा दिया जाए तो उसे अग्निष्टुत यज्ञ के द्वारा पाप से मुक्त हो जाना चाहिए।

तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानम्।।१०।।

निष्क्रयणं शोधनं याप्यस्य कर्मणः। यथा कंसादिगतस्य मलस्य भस्मादि। जपो मानसो वाचिकश्च। स च वक्ष्यमाणस्योपनिषदादेर्मन्त्रगणस्य। तपश्चाऽहिंसादि यद्वक्ष्यते। होम आत्मीयद्रव्यस्य देवतोद्देशपूर्वकोऽग्नौ प्रक्षेपः। उपवास इन्द्रियसंयमः। दानमात्मीयस्य द्रव्यस्य पात्रेषु प्रतिपादनम्।।१०।।

अनु०–वेद जाप, तपश्चर्या, यज्ञ, निराहार और दान से वह पाप के दोष को हटा देता है।

उपनिषदो वेदादयो वेदान्ताः सर्वच्छन्दस्सु संहिता मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी वृहद्रथन्तरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसाम्नामन्यतमं बहिष्पवमानं कूष्माण्ड्यः पावमान्यः सावित्री चेति पावनानि।।११।।

उपनिषदा वेदसंहितारहस्यानि। वेदादयः ऋग्यजुषयोरनुवाकादिः। साम्नां सामवर्गादिः। वेदान्ता रहस्यमन्त्राश्च ब्राह्म ाानि च। सर्वच्छन्दस्सु सर्वप्रवचनेषु संहिताः, न पदानि क्रमो वा। मधूनि 'मधु वाता' इति मधुशब्दयुक्तानि यजूंषि। अघमर्षणं "ऋतं' इति तृचम्। अथर्वशिरोऽथर्वणं प्रसिद्धम्। रुद्राः नमस्ते रुद्र' इति प्रश्नः। पुरुषसूक्तं प्रसिद्धम्। राजनरौहिणे सामनी 'इन्द्रं नरः' इत्यस्यामृचि गीते। बृहत् 'त्वामिद्धि' इत्यस्याम्। रथन्तरं 'अभि त्वा' इति। पुरुषगतिः 'अहमस्मि' इत्यस्याम्। महानाम्न्यो 'विदामघवन्' इत्येता ऋचः। आसूत्पन्नानि वा सामानि। महावैराजं 'पिबा सोमम्' इत्यस्याम्। महादिवाकीर्त्य 'विभ्राट् बृहत्पिबतु इत्यस्याम्। ज्येष्ठसामानि 'शं नो देवीः' 'चित्रं देवानाम्' इत्यनयोः। बहिष्पवमानम् 'उपास्मै' इत्यासु। कूष्माण्ड्या 'यद्देवाः' आच्छिद्रकोऽनुवाकः। पावमान्यः 'स्वादिष्ठ्या' इत्यृचः। सावित्री तु प्रसिद्धा। चशब्दाच्छुद्धवत्यादि। इतिशब्देन प्रकारवाचिना खिलेषु पठितं शिवसङ्कल्पादि गृह्यते।। ११।।

अनु०—उपनिषद् वेदमन्त्र, वेदांत, वेदों की संहिताएं, मधु अनुवाक्, अघमर्षण सूक्त, अथर्वशिरस् और रुद्र अनुवाक्, पुरुष सूक्त, राजन और रोहिण साम बृहत् और रथन्तर साम, पुरुष गति, महानाम्नी, महावैराज, महादिवाकीर्त्य साम, कोई भी ज्येष्ठ साम, बहिष्पवमान, साम, कूष्माण्डी, सावित्री मन्त्र इन सबसे व्यक्ति पवित्र होता है।

उपसन्न्यायेन पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता मूलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति मेध्यानि।। १२।।

उपसन्न्यायः आराग्रा, परोवरीयसी वा। प्रसृतयावको व्याख्यातः। इतिकरणेनैवंप्रकारं पञ्चगव्यादि परिगृह्यते।। १२।।

अनु०—मात्र दूध पर रहना, शाक, फल, मूल, एक मुट्ठी जौ का बना यावक खाकर दिन बिताना, सुवर्ण का भक्षण (भस्म) करना, घी का सेवन और सोम का पात्र करना ये जीविकाएं मनुष्य को पवित्र करती हैं। इनमें से प्रत्येक अपने से पहले वाली जीविका अधिक शुद्धदायक होती है।

सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवन्त्यः सरितः पुण्याह्रदास्तीर्थाण्यृषिनिकेतनानि गोष्ठक्षेत्रपरिष्कन्दा इति देशाः।। १३।।

शिलोच्चयाः शिलानामुच्चयाः पर्वता इत्यर्थः। स्रवन्त्यो नद्यः। ह्रदा ह्रादतेश्शब्दकर्मणः ह्रादतेर्वा शीतभावकर्मणः। अच् पृषोदरादिः। श्रीपुष्करादयः। इतः प्रभृति पुण्यानुसन्धानात्। पूर्वत्राऽपुण्या अपि पर्वतादयोऽभ्यनुज्ञायन्ते। ऋषिनिकेतनानि ऋषिनिवासाः ऋष्याश्रमाः।

क्षेत्रं कुरुक्षेत्रम्। परिष्कन्दा देवालयाः गुह्यावासप्रदेशाः। इति शब्दादग्न्यगारादयः।।१३।।

अनु०—पर्वत, नदी, तालाब, ऋषि, आश्रम, गोष्ठ, खेत, देवालय और गुफाओं में जाने से पाप दूर हो जाता है।

अहिंसा सत्यमस्तैन्यं सवनेषूदकोपस्पर्शनं गुरुशुश्रूषा ब्रह्मचर्यमधश्शयन-मेकवस्त्रताऽनाशक इतिं तपांसि।। १४।।

तपांसि तपोहेतवः। सवनं पूर्वाह्णमध्यन्दिनापराह्णः। इतिशब्दो देवद्विजपूजार्थः।।१४।।

अनु०—मन, कर्म, वाणी से किसी को कष्ट न पहुंचाने वाले व्रत का पालन करना, चोरी न करना, सवन काल में नहाना, गुरु की सेवा करना, ब्रह्मचर्य धारण करना, सिर्फ एक वस्त्र पहनना और भोजन को त्याग देना ये तप कहे गए हैं।

हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिला घृतमन्नमिति देयानि।। १५।।

एतानि प्रसिद्धानि। इतिशब्दाद्रजतोपानच्छत्राण्यपि गृह्यन्ते।। १५।।

अनु०—सोना, गाय, कपड़ा, घोड़ा, भूमि, तिल, और अनाज का दान करना चाहिए।

संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहष्षड-हस्त्र्यहोऽहोरात्रमकाह इति कालाः।। १६।।

एकं च तदहः एकाहः केवलम्। इतिशब्दात् केवलाऽपि रात्रिः।। १६।।

अनु०—एक साल, छह, चार, तीन, एक मास, चौबीस, छह, तीन दिन और एक रात-दिन और एक दिन को तप का काल कहते हैं।

एतान्यनादेशे क्रियेरन्नेनस्सु गुरुषु गुरुणि लघुषु लघूनि।। १७।।

विकल्पेनेति वाक्यशेषः। एतानि जपादीन्यनादेशे यानि प्रायश्चित्तान्यन्यतोऽ-नुपदिष्टानि। यथाऽऽह—

'अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः' इति।

तत्र विकल्पेन तानि कर्तव्यानि-क्वचिज्जपः, क्वचित्तपः, क्वचिद्दानं क्वचित्सर्वा-णीति। गुरुत्वं चैनसोऽभिसन्ध्याद्यपेक्षया। आह चाऽऽपस्तम्बः—'यः प्रमत्तो हन्ति प्राप्तं दोषफलम्, सह सङ्कल्पेन भूयः, एवमन्येष्वपि दोषवत्सु कर्मसु' इत्यादि।।१७।।

अनु०—किसी विशिष्ट तप का विधान न होने पर उपर्युक्त तप करे। पाप बड़ा है, तो बड़ा तप करे। पाप छोटा है, तो छोटा तप करे।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तिः सर्वप्रायश्चित्तिः।। १८।।

अनादेश इत्यनुवर्तत इति केचित्। इतिकरणात्पराकोऽपि। पापगुरुलघुत्वापेक्षया एतेषां व्यस्तसमस्तकल्पना।। १८।।

अनु०–समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा चाहिए, तो कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत करे।

(प्रश्न तीन, अध्याय-दस, खण्ड-दस सम्पूर्ण)

प्रश्न-चार

अध्याय-एक : खण्ड-एक

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो नानार्थानि पृथक्पृथक्।
तेषु तेषु च दोषेषु गरीयांसि लघूनि च।।१।।

नानार्थानि नानाप्रयोजनानि पृथक्पृथगनुष्ठातव्यानि न पुनर्देशकालादितन्त्रतया तन्त्रेणेति। न केवलं प्रयोजननानात्वेन पृथगनुष्ठानम्। किं तर्हि गरीयस्सु गरीयांसि, न हि त्रिरापोपवासेनेव एकरात्रोपवासेन नश्यति। सोऽपि त्रिरात्रोपवासेनैव नाशयितव्य इत्यभिप्रायः।।१।।

अनु०–तरह-तरह के पापों के अनुसार बड़े-छोटे प्रायश्चित्त अनुष्ठानों की अलग-अलग चर्चा करेंगे।

यद्यत्र हि भवेद्युक्तं तद्धि तत्रैव निर्दिशेत्।
भूयो भूयो गरीयस्सु लघुष्वल्पीयसस्तथा।।२।।

यद्यत्रेति देशकालवयश्शक्त्यादीनपेक्ष्य क्वचिन्नानार्थानां गुरुलघूनामपि तन्त्रता भवतीत्येतदनेन कथ्यते।।२।।

अनु०–जिस दोष के निमित्त जो प्रायश्चित्त बताया गया है, उसी को ही करना चाहिए। अपराध गम्भीर हों, बड़े हों तो अधिक से अधिक प्रायश्चित्त करे। अपराध छोटे हों, तो प्रायश्चित्त अनुष्ठान भी छोटा करे।

विधिना शास्त्रदृष्टेन प्राणायामान् समाचरेत्।।३।।

श्रुतिस्मृतिशिष्टागमादि शास्त्रं तत्र दृष्टो विधिः, स च प्राणायामेषु प्रतीक्षितव्य इत्यर्थः।।३।।

अनु०–प्राणायाम शास्त्र की विधि से करे।

यदुपस्थकृतं पापं पद्भ्यां वा यत्कृतं भवेत्।
बाहुभ्यां मनसा वाचा श्रोत्रत्वग्घ्राणचक्षुषा।।४।।

एतेषु समसंख्याकानेव प्राणायामान् चरेदित्यध्याहारः ।। ४ ।।

अनु०—जननेन्द्रिय से पापकर्म हुआ हो या पैरों से बुरा काम हुआ हो, हाथ, मन, वाणी, कान, त्वचा, नाक या नेत्रों से हुआ हो उन सबका शास्त्र में बताए हुए निर्देशों के अनुसार प्राणायाम कर प्रायश्चित्त करना चाहिए।

अथ वाचा चक्षुश्श्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमेषु त्रिभिः प्राणायामैश्शुद्ध्यति ।।५।।

एतेषु त्रिभिरितिवचनादुपस्थादिष्वाधिक्यं गम्यते। प्राणायामप्रवृत्तेनाऽपि पयोव्रतत्तादयो नियमा अनुसरणीयाः ।।५।।

अनु०—या आंख, कान, त्वचा, नाक और मन से किए गए पापकर्मों का प्रायश्चित्त करने के लिए तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। इससे पाप छूट जाते हैं।

शूद्रान्नस्त्रीगमनभोजनेषु केवलेषु पृथक्पृथक् सप्ताहं सप्त सप्त प्राणायामान् धारयेत् ।। ६ ।।

शूद्रान्नभोजने शूद्रस्त्रीगमने इति पदयोजना। शूद्रान्नशब्दश्शूद्राहृतस्य शूद्रस्पृष्टस्यान्नस्य चोपलक्षणार्थः। एवं च सति शूद्रस्त्रीगम भोजनेन सह बहुवचनोपपत्तिः केवलग्रहणात् प्रत्येकं प्रायश्चित्तम्। पृथग्ग्रहणादेकस्मिन्नपि प्रतिकर्माभ्यासः। ननु 'शूद्रान्नस्त्रीगमनभोजनेष्वब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिरप उपस्पृशेत्' इत्युक्तम्। नैष दोषः, आतिदेशिकविषयत्वात्तस्य। किं तदातिदेशिकं शूद्रत्वम्? इदं तत्—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।। इति।।

'अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयश्शूद्रसधर्माणो भवन्ति' इति च। तस्माददोषः ।। ६ ।।

अनु०—शूद्र के घर जाने या उसका भोजन करने या शूद्रा से शारीरिक सम्पर्क करने पर सात दिन पर्यन्त सात-सात बार प्राणायाम करने का विधान है।

अभक्ष्याभोज्यापेयानाद्यप्राशनेषु तथाऽपण्यविक्रयेषु मधुमांसघृतैलक्षारलवणावरान्नवर्जेषु यच्चान्यदप्येवं युक्तं द्वादशाहं द्वादश द्वादश प्राणायामान् धारयेत् ।।७।।

अत्राऽनाद्यशब्दो व्रात्यीये अनग्नीये वा द्रष्टव्यः। यथाश्रुतार्थग्रहणे सत्यभक्ष्यशब्देन पुनरुक्तिप्रसङ्गात्। अपण्यान्यश्वादीनि मधुमांसादिवर्जितानि। घृतग्रहणं क्षीरादेरपि पर्युदासप्राप्त्यर्थम्। एतेषु हि दोषगरिमा विद्यते।

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ।।

इति वसिष्ठवचनात्। यच्चाऽन्यदित्यप्रतिग्राह्यप्रतिग्रहादेरुपलक्षणार्थम्। एवंयुक्तं एवंविधमित्यर्थः।। ७।।

अनु०—अभक्ष्य भोजन ग्रहण करना, वर्जित और न पीने योग्य पदार्थ को पीना, शहद, मांस, घी, तेल, मसाला, नमक और निकृष्ट अन्न को छोड़ जिनको बेचना मना है, उनको बेचना और इसी तरह के अन्य पाप कर्मों के लिए बारह दिन तक बारह-बारह बार प्राणायाम करना चाहिए।

पातकपतनीयोपपातकवर्जेषु यच्चाऽन्यदप्येवंयुक्तमर्धमासं द्वादश द्वादश प्राणायामान् धारयेत्।।८।।

अनु०—पातक, पतनीय और उपपातकों के अलावा अन्य दोषों के लिए पन्द्रह दिन तक बारह-बारह प्राणायाम करने का विधान है।

पातकपतनीयवर्जेषु यच्चाऽन्यदप्येवं युक्तं द्वादश द्वादशाहान् द्वादश द्वादश प्राणायामान् धारयेत्।। ६।।

पातकं ब्रह्महत्यादि पतनीयं तत्समानमुपपातकं गोवधादि तद्वर्जितेषु जातिभ्रन्शकरादिषु एतत्प्रायश्चित्तम्।। ८, ६।।

अनु०--पातक और पतनीय अपराधों को छोड़कर जो दूसरे प्रकार के पाप दूषित कर्म हों, उनके लिए बारह दिन की बारह अवधि पर्यंत बारह-बारह प्राणायाम करे।

पातकवर्जेषु यच्चाऽन्यदप्येवं युक्तं द्वादशाऽर्धमासान् द्वादश द्वादश प्राणायामान् धारयेत्।। १०।।

यच्चाऽन्यदपीत्यनृतुगमनाभ्यासो गृह्यते। तच्च महापातकातिदेशिकं कर्म। द्वादशाऽर्धमासाः षण्मासाः। सर्वत्र गुरुलघुनोस्सहोपादाने गुरुलघुनोरभ्यासापेक्षयैव मतिपूर्वाद्यपेक्षया वा निमित्तं द्रष्टव्यम्। अन्यथा विषमसमीकरणप्रसङ्गात्।। १०।।

अनु०—पातक अपराधों के अलावा दूसरे पापों के लिए आधे महीने की बारह अवधि पर्यंत हर रोज बारह-बारह प्राणायाम करने का विधान है।

अथ पातकेषु संवत्सरं द्वादश द्वादश प्राणायामान् धारयेत्।। ११।।

योगनिष्ठस्याऽमात्यान्तनिर्गुणब्राह्मणवधादादेव महापातकानि प्रसक्तानि। तेष्वेव भ्रूणहत्याऽप्यन्तर्भवति।। ११।।

अनु०—पातक पापों के करने पर एक साल पर्यंत बारह प्राणायाम करे।

दद्याद् गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे।
अपि वा गुणहीनाय नोपरुन्ध्याद्रजस्वलाम्।। १२।।

गुणवते विद्याचारित्रबन्धुशीलसम्पन्नाय नग्निका वस्त्रपरिधानाभावेऽपि लज्जाशून्या, गुणहीनाय सर्वगुणाभावेऽपि कतिपयगुणसंपन्नाय, नोपरुन्ध्यादिति रजोदर्शनात्प्रागेव दद्यादित्यर्थः।। १२।।

अनु०—जब कन्या विवाह योग्य हो, तब उसका विवाह कर देना चाहिए। उसका विवाह गुणी ब्रह्मचारी से करे। अथवा गुण रहित से भी विवाह कर सकते हैं। परन्तु रजस्वला होने वाली कन्या को अपने घर में रखना वर्जित है।

त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यः कन्यां न प्रयच्छति।
स तुल्यं भ्रूणहत्यायै दोषमृच्छत्यसंशयम्।। १३।।

यतश्चैतदेवं तत ऋतुमत्त्यायाः प्रागेव दद्यादित्यभिप्रायः।। १३।।

अनु०—जो पिता रजोदर्शन वाली पुत्री का तीन साल के अन्दर विवाह नहीं करता, उसे निस्सन्देह भ्रूणहत्या के समान पाप लगता है।

न याचते चेदेवं स्याद्याचते चेत्पृथक् पृथक्।
एकैकस्मिन्नृतौ दोष पातकं मनुरब्रवीत्।। १४।।

न याचते न प्रार्थयते चेत् कश्चिदपि।। १४।।

अनु०—इस तरह यदि कोई आदमी उस कन्या को विवाह के निमित्त न मांगे या मांगे तो भी पिता उसी दोष से दूषित होता है। मनु का मानना है कि अविवाहिता कन्या का हर ऋतुकाल पिता के लिए पातक उत्पन्न करने वाला होता है।

त्रीणि वर्षाण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम्।
ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम्[1]।। १५।।

सादृश्यं जातिगुणादिभिः।। १५।।

अनु०—रजोमती कन्या को तीन साल तक पिता के आज्ञा की बाट जोहनी चाहिए। फिर भी पिता द्वारा उसका विवाह न हो सके, तो वह स्वयं अपने गुणों के अनुकूल पति का चुनाव कर ले।

अविद्यमाने सदृशे गुणहीनमपि श्रयेत्।। १६।।

गुणा अभिजनादयो न जातिः।। १६।।

अनु०—जाति और गुण में एक समान पति न मिले तो कन्या किसी गुणहीन से भी विवाह कर सकती है।

---

१. मनु. ६/६०

वलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा।। १७।।

प्रहरणं मैथुनार्थमाकर्षणम्। न तु क्षतयोनित्वापादनम्, तथा च सति संस्कार एव नाऽस्ति।। १७।।

अनु०–किसी कन्या का अपहरण हो गया हो, पर उसके साथ वेदोक्त रीति से विवाह न किया गया हो, तो उसका विवाह दूसरे आदमी के साथ करने में कोई निषेध नहीं है। क्योंकि इस स्थिति में भी वह कुमारी कन्या की तरह ही बताई गई है।

निसृष्टायां हुते वाऽपि यस्यै भर्ता म्रियेत सः।
सा चेदक्षतयोनिस्स्याद्गतप्रत्यागता सती।।
पौनर्भवेन विधिना पुनस्संस्कारमर्हति।। १८।।

निसृष्टा उदकपूर्वं प्रत्ता। हुते वाऽपि होमेऽपि निर्वृत्ते भर्ता वोढा यदि म्रियते, सा चेत् भार्या अक्षतयोनिः अस्पृष्ट मैथुना स्यात् गतप्रत्यागता।।१८।।

अनु०–कन्या का संकल्पपूर्वक विवाह में दान और विधि से विवाह हो गया हो, मगर उसके पति का निधन हो जाए और कन्या का पति से शारीरिक संबंध न हुआ हो, तो पति के घर जाने पर भी वह पिता के घर आ सकती है। उसका पुनर्भू विधि से विवाह कर सकते हैं।

त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यो भार्यां नाऽधिगच्छति।
स तुल्यं भ्रूणहत्यायै दोषमृच्छत्यसंशयम्।।१६।।

यथा गर्भप्रध्वंसने भ्रूणहत्या भवति तथा तत्प्रागभावेऽपि, अविशेषादित्यभिप्रायः।। १६।।

अनु०–जो आदमी रजस्वला पत्नी से तीन साल तक शारीरिक सम्बंध नहीं करता, तो निश्चय ही उसे भ्रूण हत्या के समान पाप लगता है।

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन् रजसि शेरते।। २०।।

ऋतुगमनातिक्रमनिन्दैषा।। २०।।

अनु०–ऋतुस्नाता पत्नी के साथ सोते हुए भी जो आदमी यौन सम्बंध नहीं बनाता, तो उसके पूर्वज उस महीने में उसकी पत्नी के रजस्राव में ही रहते हैं।

ऋतौ नोपैति यो भार्यामनृतौ यश्च गच्छति।
तुल्यमाहुस्तयोर्दोषमयोनौ यश्च सिञ्चति।। २१।।

त्रयाणामपि भ्रूणहत्यादोषस्तुल्यः सत्पुत्रोत्पत्तिनिरोधात् ।। २१।।

अनु०—जो गृहस्थ ऋतुकाल में पत्नी से सहवास नहीं करता, ऋतुकाल न होने पर पत्नी से संभोग करता है और जो पत्नी की योनि से अन्यत्र, अप्राकृतिक मैथुन से वीर्य स्खलित करता है। ये सभी दोष घोर पाप वाले कहे जाते हैं।

भर्तुः प्रतिनिवेशेन या भार्या स्कन्दयेद्दृतुम् ।
तां ग्राममध्ये विख्याप्य भ्रूणघ्नीं निर्धमेद्गृहात् ।। २२ ।।

प्रतिनिवेशः प्रतिकूलता अनिच्छा वा। स्कन्दयेत् गमयेत् शोषयेद्वा भर्तृद्वेषाद्रज औषधादिभिश्शोषयन्तीमित्यर्थः। ग्राममध्ये जनसन्निधौ निर्धमेत् प्रस्थापयेत् त्यजेत्। ऋत्वतिक्रमे भर्तुर्यथा भ्रूणहत्या तथाऽस्या अपीति निन्दैषा।।२२।।

अनु०—जब पति मैथुन करना चाहे, पर पत्नी मना कर दे और रजोकाल की हानि करे, सन्तान उत्पत्ति मे अवरोध खड़ा करे तो गांववाले उसे भ्रूणघ्नी समझ कर घर से भगा दे।

ऋतुस्नातां न चेद् गच्छेन्नियतां धर्मचारिणीम् ।
नियमातिक्रमे तस्य प्राणायामशतं स्मृतम् ।। २३ ।।

नियमातिक्रमः ऋतुगमनातिक्रमः। ऋत्वतिक्रमो वा। ऋज्वन्यत् ।। २३ ।।

अनु०—मासिक धर्म होने के बाद स्नान करने वाली, धर्मपूर्वक जीवन बिताने वाली पत्नी से संभोग करते समय कोई आदमी किसी नियम का उल्लंघन कर दे तो उसे सौ बार प्राणायाम करना चाहिए।

प्राणायामान् पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा ।
पवित्रपाणिरासीनो ब्रह्म नैत्यकमभ्यसेत् ।। २४ ।।

पवित्राणि पुरुषसूक्तादीनि। शरीरस्याऽहर्निशं पापसंचयोऽवश्यं भवतीति मत्वा नैत्यकं ब्रह्माऽभ्यसेदित्युक्तम् ।। २४ ।।

अनु०—पुरुष सूक्त और पवित्र करने वाले मन्त्रों को पढ़े। व्याहृतियां, प्रणव और वेद के अंश का पाठ प्रतिदिन करे। हाथ में कुश लेकर बैठे। जप करे और प्राणायाम करे।

आवर्तयेत्सदा युक्तः प्राणायामान् पुनः पुनः ।
आकेशान्तान्नखाग्राच्च तपस्तप्यत उत्तमम् ।।
निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निश्च जायते ।
तापेनाऽऽपोऽधिजायन्ते ततोऽन्तश्शुद्ध्यते त्रिभिः ।। २५ ।।

कोष्ठे वायुर्जायते। वायोरग्निः। अग्नेरापः तैस्त्रिभिरन्तस्सूक्ष्मशरीरं शुद्ध्यति।।२५।।

अनु०—योग का अभ्यास करे। बार-बार प्राणायाम करे। इससे वह केश पर्यंत तक और नखों के अगले भाग पर्यंत श्रेष्ठ तप के आचरण से युक्त होता है। प्राणवायु के रुक जाने पर वायु पैदा होता है। वायु से अग्नि और अग्नि से जल की उत्पत्ति होती है। तब उनसे सूक्ष्म शरीर या अन्तरात्मा पवित्र हो जाता है।

योगेनाऽऽवाप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम्।
योगमूला गुणास्सर्वे तस्माद्युक्तस्सदा भवेत्।। २६।।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, तथोक्तम्—
प्राणायामास्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते।। इति।।
स एव धर्मस्य लक्षणं हेतुः धर्मोऽपूर्वम्। योगमूलाः योगकारणकाः गुणरूपादयः।। २६।।

अनु०—तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए। धर्म का सार योग में मिहित है। समस्त गुणों की उत्पत्ति योग से होती है। इसलिए हमेशा योग से अभ्यास के लिप्त रहना चाहिए।

प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः।
प्रणवो व्याहृतयश्चैव नित्यं ब्रह्म सनातनम्।।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु।
त्रिपदायां च गायत्र्यां न भयं विद्यते क्वचित्।। २७।।

पर्यवस्थिताः परिसमाप्ताः व्याहृतयस्सप्त।। २७।।

अनु०—वेद का प्रारम्भ प्रणव से कहा गया है। और उसकी समप्ति भी प्रणव से बताई गई है। प्रणव तथा व्याहृतियों को नित्य और सदा रहने वाला ब्रह्म कहा जाता है। जो व्यक्ति प्रतिदिन ओंकार, सात व्याहृती और त्रिपदा गायत्री को जपता है, वह निडर हो जाता है।

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामस्स उच्यते।। २८।।

अनु०—प्राणवायु रोके। व्याहृतियां, ओंकार और शिरस् के सहित गायत्री मन्त्र को तीन बार जपे, ऐसा करने से वह एक प्राणायाम पूरा करता है।

सव्याहृतिकास्सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः।। २९।।

अनु०–प्रतिदिन सात व्याहृतियां और ओंकर के सहित सोलह प्राणायाम, महीना भर करने से व्यक्ति चाहे उसने विद्वान ब्राह्मण की हत्या भी कर दी हो, वह इस पाप से छूट जाता है।

एतदाद्यं तपश्श्रेष्ठमेतद्धर्मस्य लक्षणम्। सर्वदोषोपघातार्थमेतदेव विशिष्यते एतदेव विशिष्यत इति।। ३०।।

दोषाः पापानि।। २९-३०।।

अनु०–यह श्रेष्ठतम तप है। यही उत्तम धर्म का लक्षण है। समस्त पापों को क्षीण करने के लिए प्राणायाम ही विशेष रूप से शुद्ध पवित्र करने वाला है।

(अध्याय-एक, खण्ड-एक सम्पूर्ण)

अध्याय-दो : खण्ड-दो

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामो नानार्थानि पृथक्पृथक्।
तेषु तेषु च दोषेषु गरीयांसि लघूनि च।।१।।

अनु०–हम भिन्न भिन्न दोषों से सम्बन्धित प्रायश्चित्तों का दोषों के अनुसार बड़े और छोटे प्रायश्चित्त अनुष्ठानों का अलग-अलग विश्लेषण कर रहे हैं।

यद्यत्र हि भवेद्युक्तं तद्धि तत्रैव निर्दिशेत्।
भूयो भूयो गरीयस्सु लघुष्वल्पीयसस्तथा।।२।।

अनु०–जैसा दोष हो, उसी के अनुसार छोटा-बड़ा प्रायश्चित्त करे। बड़े दोष के लिए बड़ा और छोटे पाप के लिए छोटा प्रायश्चित्त करे।

विधिना शास्त्रदृष्टेन प्रायश्चित्तानि निर्दिशेत्।
प्रतिग्रहीष्यमाणस्तु प्रतिगृह्य तथैव च।।३।।

अनु०–शास्त्र में वर्णित विधि के अनुकूल प्रायश्चित्त करना चाहिए।

ऋचस्तरत्समन्यस्तु चतस्रः परिवर्तयेत्।।४।।

अनु०–जो दान ले या दे, उसे तरत्समन्द्य नाम की ऋचाओं का अनेक वार जाप करनी चाहिए।

अभोज्यानां तु सर्वेषामभोज्यान्नस्य भोजने।
ऋग्भिस्तरत्समन्दीयैर्मार्जनं पापशोधनम्।।५।।

पागशिनन्नो भगो विधिना व्याख्यानमेतत। पनर्वचनप्रयोजनम पर्वाध्यायनिर्दिष्टेष

प्रायश्चित्तेष्विह वक्ष्यमाणेषु यानि समानि तान्यविरोधीनि समुच्चीयन्ते, विरोधीनि तु विकल्पयन्ते। प्रतिग्रहीष्यमाणस्त्विति अप्रतिग्राह्यमिति शेषः। परिवर्तनमावर्तनम्। ऋचः तरत्समन्द्योऽप्सि' तिं केचित्पठन्ति। तरत्समन्दीत्यादिभिरेव मार्जनं उदकाञ्जलिना शिरस्यभिषेकः।। १-५।।

अनु०–वर्जित अन्न ग्रहण करने वाला और जिनके घर का अन्न खाने योग्य निषिद्ध है, उस घर का भोजन करने वाला, तरत्समन्दीय ऋचाओं को जपे, तो पाप से मुक्त हो जाता है।

भ्रूणहत्याविधिस्त्वन्यः तं तु वक्ष्याम्यतः परम्।
विधिना येन मुच्यन्ते पातकेभ्योऽपि सर्वशः।। ६।।

अयमन्यो भ्रूणहत्याविधिरित्यर्थः। तमावेष्टयति विधिना येनेति।। ६।।

अनु०–यहां से आगे वेदविद् ब्राह्मण की हत्या करने पर जो पाप लगता है, उसके प्रायश्चित्त के वारे में वता रहे हैं। इस उपाय से पापी मनुष्य समस्त पापों से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

प्राणायामान् पवित्राणि व्याहृतीः प्रणवं तथा।
जपेदघमर्षणं युक्तः पयसा द्वादश क्षपाः।। ७।।

जपेदिति प्राणायामादिषु प्रत्येकं संबध्यते। अत एव न तेषां समुच्चयः। युक्तो ब्रह्मचर्यादिभिः, योगयुक्तो वा। पयसा वर्तमानः द्वादशरात्रीर्नैरन्तर्येण जपेत्।। ७।।

अनु०–प्राणायाम, पवित्र कारक मन्त्र आदि, व्याहृतियां, ओंकार और अघमर्षण सूक्त के मन्त्रों का पाठ बारह रात्रियों तक करे। योग का अभ्यास करना चाहिए। दुग्ध का सेवन करते हुए मन्त्र जपे।

त्रिरात्रं वायुभक्षो वा क्लिन्नवासाऽऽप्लुतश्शुचिः।। ८।।

क्लिन्नावासाः आर्द्रवासाः। एवंभूतो वा पूर्वोक्तानामन्यतमं जपेत्। शक्त्यपेक्षश्चाऽसौ विकल्पः।। ८।।

अनु०–या तीन रात गीले वस्त्र धारण करे। कुछ न खाए। पानी पीकर जीवित रहे। इस तरह से पापी शुद्ध हो जाता है।

प्रतिषिद्धांस्तयाऽऽचारानध्यस्याऽपि पुनः पुनः।
वारुणीभिरुपस्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते।। ९।।

अध्यस्य निश्चित्य। अपिशब्दात् कृत्वा च। प्रतिषिद्धाचाराः भस्मकेशादिव्यवस्थानादायः। उपस्पर्शनमुदकाञ्जलिना शिरस्यभिषेकः।। ९।।

अनु०—यदि कोई बार-बार वर्जित कर्मों को करे तो वह वारुणी मन्त्रों से उपासना करे। इससे वह पापों से छूट जाता है।

अथाऽवकीर्ण्यमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय दार्विहोमिकीं परिचेष्टां कृत्वा द्वे आज्याहुती जुहोति 'कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि काम कामाय स्वाहा। कामाभिद्रुग्धोऽस्म्यभिद्रुग्धाऽस्मि काम कामाय स्वाहे' ति।। १०।।

अनु०—ब्रह्मचर्य व्रत का उल्लंघन हो जाए, तो ब्रह्मचारी अमावस्या की रात में अग्नि करे। दार्विक यज्ञ की क्रियाएं 'कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि काम कामाय स्वाहा। कामाभिद्रुग्धोऽस्म्यभिद्रुग्धो काम कामाय स्वाहा।' का उच्चारण करके घी की दो आहुतियां अग्नि को समर्पित करे।

हुत्वा प्रयताञ्जलिः कवातिर्यङ्ङग्निमुपतिष्ठेत-'सं मा सिञ्चन्तु मरुतस्समिन्द्रस्सं बृहस्पतिः। सं माऽयमग्निस्सिञ्चत्वायुषा च बलेन चाऽऽयुष्मन्तं करोतु मे' ति। प्रति हाऽस्मै मरुतः प्राणान् दधाति प्रतीन्द्रो बलं प्रति बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसं प्रत्यग्निरितरत्सर्वं सर्वतनुर्भूत्वा सर्वमायुरेति। त्रिरभिमन्त्रयेत। त्रिषत्या हि देवा इति विज्ञायते।। ११।।

दार्विहोमिकीमित्यत्राऽऽज्यसंस्कारमात्रं न पुनस्स्थालीपाकप्रयोगोऽपि। प्रयताञ्जलिः सम्पुटिताञ्जलिः कवातिर्यङ्ङ्नाऽत्यन्ताभिमुखो नाऽपि पृष्ठतः कुर्वन्। उक्तमेतत् 'कवातिर्यङ्ङिवोपतिष्ठेत् नैनं प्रत्यङ् न पराङ्' इति। अभिमन्त्रणमभिवीक्ष्याऽभिवदनं, त्रिषत्या हि देवा इति विज्ञायते।। १०,११।।

अनु०—हवन करे। अंजलि बांधे। तिरछा होकर बैठे। उपर्युक्त मन्त्रों से अग्नि की पूजा करे। उसमें समस्त प्राणों को निहित करते हैं। उसे इन्द्र बल देते हैं। ब्रह्म का तेज उसे बृहस्पति से मिलता है। और सभी चीजें अग्नि देता है। इस तरह उसका पूरा शरीर बन जाता है। उसे पूर्ण जीवन की प्राप्ति होती है। इसकी तीन बार आवृत्ति करनी चाहिए। देवों की उपासना करे। क्योंकि तीन बार कहने पर देवता उसे सच के रूप में स्वीकार करते हैं। यह वेद में बताया गया है।

योऽपूत इव मन्येत आत्मानमुपपातकैः।
स हुत्वैतेन विधिना सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।। १२।।

उपपातकप्रायश्चित्ते कृतेऽपि मनसो यद्यलाघवं भवति तदाऽनेन प्रायश्चित्तेनाऽधिक्रियते एतेनैव विधिना सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते। विधिनेत्यभिमन्त्रणान्तरमाह। वरोऽपि दक्षिणेति।। १२।।

अनु०—स्वयं को उपपातकी अनुभव करने वाला यदि इस प्रकार हवन करता है, तो उसे समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है।

अपि वाऽनाद्यापेयप्रतिषिद्धभोजनेषु दोषवच्च कर्म कृत्वाऽपि सन्धिपूर्व मनभिसन्धिपूर्वं वा शूद्रायां च रेतस्सिक्त्वाऽयोनौ वाऽब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिश्चोपस्पृश्य प्रयतो भवति।। १३।।

अनाद्यं केशकीटादिभिरुपहतम्। अपेयं मद्यम्, मद्यभाण्डस्थितोदकादि। प्रतिषिद्धभोजनं चिकित्सकादिभोजनम्, दोषवत्कर्म अभिचारादि। शूद्रायां योढा द्विजातिभिः। चशब्मत्सवर्णायामपि चलितायाम्। अयोनिः खट्वादि। चशब्दाद्रोगाद्युपहतायां स्वभार्यायामपि। पर्वणि केचिदिच्छन्ति। एतेषु निमित्तेषु पूर्वोक्तं प्रायश्चित्तम्।। १३।।

अनु०—अखाद्य खा लेने पर, अपेय को पीने पर, कोई पाप जानते हुए या न जानते हुए किया गया हो, शूद्रा से संभोग किया हो, अथवा अप्राकृतिक मैथुन कर्म द्वारा वीर्य स्खलित किया हो, तो वह नहाए। अब्लिङ्ग और वरुण देवता विषयक मन्त्रों को जपे। इससे उसकी शुद्धि हो जाती है।

अथाऽप्युदाहरन्ति—

अनाद्यप्राशनापेयप्रतिषिद्धभोजनेऽविशुद्धधर्माचरिते च कर्मणि।
मतिप्रवृत्तेऽपि च पातकोपमैः विशुद्ध्यतेऽथाऽपि च सर्वपातकैः।। १४।।

अविशुद्धधर्माचरिते इति पदच्छेदः। छद्मना चरित इत्यर्थः। पातकोपमानि 'अनृतं च समुत्कर्षवति' इत्येवमादीन्येकविंशतिः। सर्वपातकैरिति प्रशंसार्थमुक्तम्। न पुनः प्रायश्चित्तमेतत्।। १४।।

अनु०—यह उद्धरण प्रकट करते हैं—

अभक्ष्य का भक्षण करने पर, अपेय द्रव्य पी लेने पर, या वर्जित अन्न खा लेने पर, वर्जित कर्म करने पर, निषिद्ध क्रियाएं करने पर और जान-बूझकर पातकों की तरह दोषों से और समस्त पातकों से भी शुद्ध हो जाता है।

त्रिरात्रं वाऽप्युपवसन् त्रिरह्नोऽभ्युपेयादपः।
प्राणानात्मनि संयम्य त्रिः पठेदघमर्षणम्।। १५।।

अनन्तरोक्तेन विकल्पः। त्रिरात्रं त्रिषवणं स्नानम्।। १५।।

अनु०—तीन दिवस और रात्रि तक उपवास रखे। दिन में तीन समय नहाए। प्राणवायु को रोके। तीन बार अघमर्षण मन्त्रों को जपे।

यथाऽश्वमेधावभृथ एवं तन्मनुरब्रवीत।। १६।।

अनु०—अश्वमेध की समाप्ति पर नहाने का जितना महत्त्व है, उतना ही प्राणायाम और अघमर्पण मन्त्र का महत्त्वपूर्ण होता है।

चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि।
तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेमेति।।१७।।

चरणं चलनं पापस्य पवित्रं पवनहेतुः विततं वीस्तीर्णं सर्वशास्त्रेषु पुराणं पुरातनं तदेतदघमर्षणसूक्तम्। तदावेष्टयति येन सूक्तेन पूतो मनुष्यस्तरति दुष्कृतानि पापानि। वयमपि तेन पूताः पाप्मानं शत्रुमतितरमेति प्रार्थना।।१६।।१७।।

अनु०—यह पता है-अघमर्षण सूक्तों के मन्त्रों से पाप दूर होते हैं। यह सूक्त पवित्र करता है। यह पुराने समय से चला आ रहा है। ऐसे शुद्ध और पवित्र करने वाले इस सूक्त से शुद्ध होकर हम समस्त शत्रु रूपी पापों को अपने वश मे कर सकते हैं।

(अध्याय-दो, खण्ड-दो सम्पूर्ण)

अध्याय-तीन : खण्ड-तीन

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामोऽविख्यातानि विशेषतः।
समाहितानां युक्तानां प्रमादेषु कथं भवेत्।।१।।

अविख्यातानि अविख्यातदोषाणि। यावता विना यत्पापं कर्तुं न शक्यते तद्व्यतिरिक्तमविख्यातदोषमुच्यते। यद्वा अविख्यातानि अन्यैर्धर्मशास्त्रकारैरदृष्टानि। अथवा प्रायश्चित्तान्येव अविख्यातानि अन्यैः पुरुषैः। आत्मन इवाऽस्मिन् पुरुषे निमित्ते सत्येतत्प्रायश्चित्तमित्यनवगतानि। अत एव विशेषतः विशिष्टपुरुषाणां विदुषामित्यर्थः। तानेव विशिनष्टि-समाहितानामिति। समाहिता अविक्षिप्तचित्ताः, युक्ताश्शास्त्रचोदितेषु कर्मसु निरताः। प्रमादेषु अबुद्धिपूर्वकृतेषु। तथा च वसिष्ठः—

आहिताग्नेर्विनीतस्य वृद्धस्य विदुषश्च यत्।
रहस्योक्तं प्रायश्चित्तं पूर्वोक्तमितरस्य तु।।
कथं भवेदित्याशङ्कायां वक्ष्याम इति शेष।।१।।

अनु०—अब हम कम चर्चित प्रायश्चित्त अनुष्ठानों की चर्चा करेंगे। इसके साथ ही यह भी बताएंगे कि अपने कर्त्तव्य में लीन रहने वाला व्यक्ति अपने प्रमाद का कैसे प्रायश्चित्त करे।

ओं पूर्वाभिर्व्याहृतीभिस्सर्वाभिस्सर्वपातकेष्वाचामेत्।।२।।

प्रतिव्याहृति प्रणवसम्बन्धः कर्तव्यः। एकैकया वा आचमनम्। ततः परिमार्जनं चक्षुंराद्युपस्पर्शनं च।।२।।

अनु०—सर्वप्रथम ओंकार का उच्चारण करे। व्याहृतियों का उच्चारण करे।

समस्त पातकों से छुटकारा पाने के लिए आचमन करे।

यत्प्रथममाचामति तेनर्ग्वेदं प्रीणाति, यद्द्वितीयं तेन यजुर्वेदं, यत्तृतीयं तेन सामवेदम्।।३।।

अनु०—पहले आचमन से ऋग्वेद को प्रसन्न होते हैं। दूसरे और तीसरे आचमन से क्रमशः यजुर्वेद और सामवेद प्रसन्न होते हैं।

यत्प्रथमं परिमाष्टि तेनृऽथर्ववेदं यद्द्वितीयं तेनेतिहासपुराणम्।।४।।

अनु०—पहली बार ओंठों को पोंछने से अथर्ववेद प्रसन्न होता है। दूसरी बार से इतिहास-पुराण को प्रसन्न करते हैं।

यत्सव्यं पाणिं प्रोक्षति पादौ शिरो हृदयं नासिके चक्षुषी श्रोत्रे नाभिं चोपस्पृशति तेनौषधिवनस्पतयः सर्वाश्च देवताः प्रीणाति तस्मादाचमनादेव सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।।५।।

इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् इति श्रुतिः। ऋग्वेदाद्यभिनानिन्यो देवताः प्रीता भवन्त्याचमननेनैवाप्नोति ताः देवताः। ननु कथमेतदाचमनं भवति? नाऽयं पर्यनुयोगस्य विषयः, न हि वचनस्याऽतिभारोऽस्तीत्युक्तत्वात्। यथाऽऽस्यगतेन सुराबिन्दुना पतितः, न पयोबिन्दुना, तदपि हि वचनावगम्यमेव, तस्माददोषः।।५।।

अनु०—वाएं हाथ के पोंछने पर पैर, सिर, हृदय, नाक, नेत्र, कान प्रसन्न होते हैं। औषधि, वनस्पति और समस्त देव खुश होते हैं। अतः आचमन करने से ही व्यक्ति के समस्त पाप-दोष दूर हो जाते हैं।

अष्टौ व समिध आदध्यात् 'देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। यद्दिवा च नक्तं चैनश्चकृम तस्याऽवयजनमसि स्वाहा। यत्स्वपन्तश्च जाग्रतश्चैनश्चकृम तस्याऽवयजनमसि स्वाहा। यद्विद्वांसश्चाविद्वांसश्चैनश्चकृम तस्याऽवयजनमसि स्वाहा। एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहे' ति।।६।।

अनु०—या इन मन्त्रों से अग्नि पर आठ समिधाएं रखे। तुम देवताओं के समस्त पापों को भगाने वाले हो स्वाहा। मनुष्य द्वारा किए गए दोषों को दूर करते हो, स्वाहा। पितरों द्वारा किए गए पापों से युक्त करते हो, स्वाहा। मेरे द्वारा दिन या रात में जो पाप कर्म किए गए हैं, उनसे तुम मुझे मुक्त करते हो, स्वाहा। जानते हुए और न जानते हुए मुझसे जो पापकर्म हो जाते हैं, उन पापों को दूर करते हो, स्वाहा। तुम सभी प्रकार के पापों से हमें छुड़ाते हो, स्वाहा।

एतैरष्टाभिर्हुत्वा सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।।७।।

श्रवयजनं निरसनम्।।६,७।।

अनु०-इन मन्त्रों को पढ़ते हुए आहुतियां देने से हम लोग हर प्रकार के पापों से दूर हो जाते हैं।

अथाऽप्युदाहरन्ति-

अघमर्षणं देवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः। कूष्माण्ड्यः पावमान्यश्च विरजा मृत्युलाङ्गलम्। दुर्गा व्याहृतयो रुद्रा महादोषविनशना महादोषविनाशना इति।। ८।।

अघमर्षणं 'ऋतं च सत्यं च' इत्यादि। विरजाः 'प्राणापान' इत्यादिविरजा-शब्दवन्तोऽष्टावनुवाकाः। मृत्युलाङ्गलं 'वेदाहमेतम्' इति द्वितीयः पाठः। दुर्गा 'जातवेदसे इत्येषा। 'कात्यायनाय' इति च। रुद्राः 'नमस्ते रुद्र' इत्येकादशाऽनुवाकाः। अन्यत्प्रसिद्धम्। महादोषाः महापातकानि।।८।।

अनु०-यह उद्धरण देते हैं-

अघमर्षण, शुद्धवती, तरत्समा, कूष्माण्डी, पावमानी, विरजा, मृत्युलाङ्गल, दुर्गा, व्याहृतियां, नमस्ते रुद्र आदि ग्यारह अनुवाक् जपने से बड़े से बड़े दोष नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय-तीन, खण्ड-तीन सम्पूर्ण)

अध्याय-चार : खण्ड-चार

प्रायश्चित्तानि वक्ष्यामोऽविख्यातानि विशेषतः।
समाहितानां युक्तानां प्रमादेषु कथं भवेत्।।१।।

व्याख्यातश्श्लोकः। पुनःपाठः पूर्वोक्तानामन्यतमेनेह वक्ष्यमाणानामन्यतमस्य समुच्चयार्थः।।१।।

अनु०-यहां से आगे कम चर्चित प्रायश्चित्तों की चर्चा करेंगे। यह भी बताया जा रहा है कि कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए, यदि कोई प्रमाद कर बैठे, तो उसका कैसे प्रायश्चित्त करना चाहिए।

'ऋतं च सत्यं चे' त्येतदघमर्षणं त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।। २।।

यथाविध्यधीयीत ऋष्यादिज्ञानपूर्वकमिति, तथोत्तरेष्वपि मन्त्रेषु द्रष्टव्यम्। अघमर्षणानामानुष्टुभं वृत्तम्।।२।।

अनु०-जल में खड़ा हो जाए। 'ऋतं च सत्यं च' आदि मन्त्रों का पढ़े। ऐसा

करने से समस्त पाप भाग जाते हैं।

[१]"आयं गौः पृश्निरक्रमी' दित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पा पात्प्रमुच्यते।। ३।।

सर्पराजार्षं गायत्रं सूर्य आत्मा देवता।।३।।

अनु०—जल में खड़ा होकर 'आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुनः। पितरं च प्रयन्त्सुवः।' का पाठ करने वाला व्यक्ति समस्त पापों से छूट जाता है।

'द्रुपदादिवेन्मुमुचान' इत्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।।४।।

वामदेवः काण्डर्षिर्वा अनुष्टुप्छन्दः आपो देवता।।४।।

अनु०—जल में खड़ा होकर 'द्रुपदादिवेन्मुमुचानः' का पाठ करे तो उसकी पापों से मुक्ति हो जाती है।

'हꣳ सश्शुचिष दि' त्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।।५।।

वामदेवजगतीसूर्या ऋषिच्छन्दोदेवताः।।५।।

अनु०— जल में खड़े रहते हुए 'हꣳसश्शुचिष' का पाठ करे, तो हर प्रकार से छूट जाता है।

अपि वा सावित्रीं गायत्रीं पच्छोऽर्द्धर्चशस्ततः समस्तामित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।।६।।

विश्वामित्रार्षं गायत्रीच्छन्दस्सविता देवता।।६।।

अनु०—जल में खड़ा हो जाए और सावित्री देवता के गायत्री मन्त्र का प्रत्येक चरण अलग-अलग आधी-आधी ऋचाएं और पूरा मन्त्र तीन बार पढ़े तो उसे समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है।

अपि वा व्याहृतीर्व्यस्ताः समस्ताश्चेति त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पा-पात्प्रमुच्यते।।७।।

अनु०—यदि व्यक्ति जल में खड़े होकर तीन व्याहृतियों का अलग-अलग और एक साथ पाठ करे, तो उसके सभी पाप दूर भाग जाएंगे।

अपि वा प्रणवमेव त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते।।८।।

विवृते एते च सूत्रे।।७, ८।।

अनु०—जल में खड़ा हो जाए और ओंकार का ही तीन बार उच्चारण करे

---

१. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुनः। पितरं च प्रयन्त्सुवः।। तै. सं. १/५/३

तो उसके समस्त पाप दूर जाते हैं।

तदेतद्धर्मशास्त्रं नाऽभक्ताय नाऽपुत्राय नाऽशिष्याय नाऽसंवत्सरोषिताय दद्यात्।।९।।

स तु शिष्यो भवति यमुपनीय वेदमध्यापयति। अन्योऽपि पुत्रात् शिष्यः यो धर्मशास्त्रसङ्ग्राहर्थं संवत्सरावमं शुश्रूषापुरस्सरमुषितवान् स संवत्सरोषितः तस्मै।।९।।

अनु०-यह धर्मशास्त्र श्रद्धारहित आदमी को न पढ़ावे, न उपदेश दे। पुत्र, शिष्य से भिन्न व्यक्ति को इसका उपदेश न दे। न ही उस व्यक्ति को एक वर्ष से न्यून समय तक साथ रहा हो, उसको भी धर्मशास्त्र न पढ़ाए।

सहस्रं दक्षिणा ऋषभैकादशं गुरुप्रसादो वा गुरुप्रसादो।।१०।।

धर्मशास्त्रोपदेष्ट्रे सहस्रं शतस्वर्णं वा ऋषभैकादशं वेत्यध्याहारः। ऋषभ एकादशो भवति यस्य गोगणस्येति विग्रहः। विनयापेक्षया शक्त्यपेक्षया वा विकल्पः। गुरुप्रसादो वा अकस्मादेव यस्मिश्चित्तप्रसादो भवति दद्यादेव तस्मै।।१०।।

अनु०-इस धर्मशास्त्र की दक्षिणा एक हजार पण है। या एक उस गाय और एक सांड है। या फिर गुरु की तन-मन-धन से सेवा करना ही दक्षिणा वताई गई है।

(अध्याय-चार, खण्ड-चार सम्पूर्ण)

अध्याय-पांच : खण्ड-पांच

अथाऽतस्संप्रवक्ष्यामि सामर्ग्यजुरथर्वणाम्।
कर्मभिर्यैरवाप्नोति क्षिप्रं कामान् मनोगतान्।।१।।

अनु०-अव मैं सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से सम्वद्ध उन कार्यों की चर्चा करूंगा जिन कार्यों से मनुष्य की मनोकामनाएं यथाशीघ्र पूरी हो जाती है।

जपहोमेष्टियन्त्राद्यैः शोधयित्वा स्वविग्रहम्।
साधयेत्सर्वकर्माणि नाऽन्यथा सिद्धिमश्नुते।।२।।

अथशब्द आनन्तर्ये प्रकाशरहस्यप्रायश्चित्तानन्तरम्। यद्वा मङ्गलार्थवाची, यस्मान्मङ्गलवाक्यानि जपादीनि अतस्तानि सम्प्रवक्ष्यामि। तानि विशिनष्टि यैः जपादिभिश्शुद्धोऽनुष्ठितैः सामवेदादिविहितैः कर्मभिर्मनोगतानभिप्रेतान् कामान् फलान्यवाप्नोतीति।।१, २।।

अनु०-जप, हवन, इष्टि और संयम की पुनरावृत्ति से अपने शरीर को शुद्ध,

पवित्र करना चाहिए। और समस्त कर्मों को करना चाहिए। इस रास्ते को छोड़ने से अपने लक्ष्यों की पूर्ति नहीं हो सकती।

जपहोमेष्टियन्त्राणि करिष्यन्नादितो द्विजः।
शुक्लपुण्यदिनर्क्षेषु केशश्मश्रूणि वापयेत्।।३।।

अनु०—यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का आदमी जप, होम, इष्टि और इन्द्रियादि को वश में करने का इच्छुक हो, तो वह शुक्ल पक्ष में किसी भी शुभ दिन और नक्षत्र में केश, दाढ़ी, मूंछ कटाए।

स्नायात्त्रिषवणं पायादात्मानं क्रोधतोऽनृतात्।
स्त्रीशूद्रैर्नाऽभिभाषेत ब्रह्मचारी हविर्व्रतः।।४।।

अनु०—ऐसा आदमी सुबह, दोपहर और सांयकाल तीन बार नहाए। क्रोध और मिथ्या बोलने से बचे। स्त्री और शूद्रों से वार्ता के निमित्त सम्बन्ध न करे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। होम के योग्य हवि के अन्न को भोजन रूप में स्वीकार करे।

गोविप्रपितृदेवेभ्यो नमस्कुर्वन् दिवाऽस्वपन्।
जपहोमेष्टियन्त्रस्थो दिवास्थानो निशासनः।।५।।

जपो रुद्रेकादशिन्यादेः। होमो गणहोमादिः इष्टिः मृगारादिका। यन्त्राणि यमनादिन्द्रियाणां कृच्छ्रादीन्युच्यन्ते। करिष्यन् कर्तुमध्यवसितः। द्विजग्रहणं यन्त्राध्यायनिर्दिष्टेषु शूद्रपर्युदासार्थम्। शुक्ले पक्षे पुण्यदिने द्वितीयादिषु च तिथिषु पुण्येषु च ऋक्षेषु रोहिण्यादिषु। श्मश्रुग्रहणं लोमनखानामपि प्रदर्शनार्थम्। वपनं च शिखावर्जं 'एवं भ्वक्षिशिखावर्जम्' इति पर्युदासात्। यत्र पुनश्शृङ्गग्राहिकया विधीयते यथा गोघ्नप्रायश्चित्ते 'सशिखं वपनं कृत्वा' इति, तत्र भवति। न च शिखावपनात्कथमाचमनादि कर्तव्यमित्याशङ्कनीयम्। तस्य शास्त्रार्थत्वात्, शिरःकपालधारणवत्। त्रिषवणं प्रातर्मध्यन्दिने सायम्। क्रोधादनृताच्चाऽऽत्मानं पायाद्रक्षेत् वर्जयेदित्यर्थः। क्रोधग्रहणं हर्षलोभमोहादीनामन्येषामपि भूतदाहीयानां प्रदर्शनार्थम्, अनृतग्रहणं च पैशुन्यात्मस्तवनादीनाम्। अभिभाषण अन्यत्र यथार्थमन्तर्भवत्येवं संवादेषु सम्भाषेत (?) ब्रह्मचारी अप्रस्कन्दितरेताः अन्यत्र स्वप्नात्। तत्राऽपि च—

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजश्शुक्रमकामतः।
स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत्।।

इति द्रष्टव्यम्। हविर्व्रतः यदत्रैकैकं ग्रासम्' इत्यादि, तद्धविष्यं क्षारलवणवर्जं व्रतयेत्। पितृग्रहणं दण्डापूपिकान्यायेन मातुरप्युपलक्षणार्थम्। नमस्कारश्च कायप्रणतिपूर्वकम्। दिवाऽस्वप्न् निद्रामकुर्वन् दिवास्थानः तिष्ठेदहनि। निशासनः रात्रावासीत।।५।।

अनु०—उसे चाहिए कि वह गाय, ब्राह्मण, पितर और देवताओं का अभिवादन आदर-सत्कार करे। उसके लिए दिन में सोना निषिद्ध है। होम, जप, इष्टि और संयम की पुनरावृत्ति की अवधि में दिन में न बैठे और रात में सोए नहीं। वह बैठकर रात व्यतीत करे।

प्राजापत्यो भवेत्कृच्छ्रो दिवा रात्रावयाचितम्।
क्रमशो वायुभक्षश्च द्वादशाहं त्र्यहं त्र्यहम्।।६।।

प्राजापत्यस्तद्देवत्यस्तेन आचरितो वा। स कथं भवेदित्याह—द्वादशाहं चतुर्धा कृत्वा त्र्यहं त्र्यहं सम्पाद्य आद्ये त्र्यहे दिवाऽश्नीयात्। द्वितीये रात्रौ, तृतीये अयाचितम्, चतुर्थे वायुभक्ष इति अयाचितमिति याच्ञाप्रतिषेधः। एवं प्राजापत्यः कृच्छ्रः क्लेशात्मको नियमेन स्मृत्यन्तरोक्तेतिकर्तव्यताको नाऽत्र ग्राह्यः। यथा गौतमेन प्राजापत्येऽभिहितं 'रौरवयौधाजये नित्यं प्रयुञ्जीत' इत्यादि। तद्यदि सर्वं, नित्यताध्येतृच्छन्दोग-व्यतिरिक्तानामधिकारी न स्यात्। न ह्यन्यस्य सामानि सन्ति। न च प्रायश्चित्तार्थेन ग्रहणं युक्तम् प्रतिषेधात्। स्त्रीबालादेरप्यधिकारार्थं सकलधर्मशास्त्रोक्तत्रिवर्णसाधारणलक्षण एव विधिर्द्रष्टव्यः।।६।।

अनु०—तीन-तीन दिन केवल दिन में भोजन ग्रहण करना, रात में अयाचित भोजन खाना और निराहार रहना, यह प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत कहलाता है। उसकी अवधि बारह दिन की होती है।

अहरेकं तथा नक्तमज्ञातं वायुभक्षणम्।
त्रिवृदेष परावृत्तो बालानां कृच्छ्र उच्यते।।७।।

अयमपि प्राजापत्यविशेष एव।।७।।

अनु०—दिन में एक बार भोजन खाना, दूसरे दिन की रात में भोजन करना, तीसरे दिन अयाचित अन्न ग्रहण करना, चौथे दिन केवल वायु का आहार करना, यह बालकों के निमित्त कृच्छ्र व्रत होता है। इसी क्रम से तीन बार करने से यह बारह दिनों मे पूरा होता है।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्पूर्वोक्तेन त्र्यहं त्र्यहम्।
वायुभक्षस्त्र्यहं चाऽन्यदतिकृच्छ्रस्स उच्यते।।८।।

शिख्यण्डपरिमितान्नो ग्रासः पाणिपूरान्नो वा पूर्वोक्तेन 'दिवा रात्रौ' इत्यादिना। अन्यदिति प्रायश्चित्तविशेषणत्वान्नपुंसकलिङ्गमदोषः। 'अतिकृच्छ्रोऽम्बुनाऽशनः' इति यदा पाठस्तदोदकपानमात्रमभ्युपगच्छतीति गम्यते।।८।।

अनु०—उपर्युक्त क्रम के अनुसार तीन-तीन दिन क्रमशः दिन, रात को अयाचित

भोजन में से एक ग्रास ग्रहण करना और अन्त में तीन दिन केवल वायु पीकर रहना, यह अतिकृच्छ्र नामक दूसरा व्रत कहलाता है।

अम्बुभक्षस्त्र्यहानेतान्वायुभक्षस्ततः परम्।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्तृतीयो विज्ञेयस्सोऽतिपावनः।। ९।।

अम्बुमयवचनादशनधर्मेणोदकपानमिष्यते। एवमन्त्ये त्र्यहे तदपि नाऽस्तीति वायुभक्ष इत्युक्तम्। तृतीयत्वमस्य निर्देशापेक्षया' 'षष्ठीं चितिम्' इति यथा। प्रत्येकमेव शुद्धिहेतुत्वात्।। ९।।

अनु०–तीन-तीन दिन पहले तीन कालों में सिर्फ जल पीकर रहना और उसके बाद अंतिम तीन दिन सिर्फ वायु पर निर्भर रहना, यह कृच्छ्रातिकृच्छ्र नामक तीसरा व्रत होता है। यह परम पवित्र व्रत होता है।

त्र्यहं त्र्यहं पिबेदुष्णं पयस्सर्पिः कुशोदकम्।
वायुभक्षस्त्र्यहं चाऽन्यत् तप्तकृच्छ्रस्स उच्यते।। १०।।

उष्णशब्दः पय आदिभिस्त्रिभिः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। प्रतित्र्यहं पय आदीनि क्रमेण भवेयुः। अत्र सकृदेव स्नानम्। कुत एतत्? मनुवचनात्–

ताप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः।।१०।।

अनु०–यदि तीन-तीन दिन क्रम से गर्म दूध, घी और कुश मिश्रित उबले हुए पानी का सेवन करा जाए और अंतिम दिन वायु का सेवन करे तो उसे तप्तकृच्छ्र व्रत कहते हैं।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम्।। ११।।

साप्ताहिकोऽयं सान्तपनः। एकैकस्मिन्नहनि गोमूत्रादीनि क्रमेण भवेयुः तेषु च दधिव्यतिरिक्तानि कथितानि कार्याणि।। ११।।

अनु०–एक-एक दिन क्रमशः गोमूत्र, उसका गोबर, दूध, दही, घी और कुश मिश्रित जल का सेवन करना और एक दिन-रात उपवास करना सान्तपन कृच्छ्र कहलाता है।

गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं[1] गन्धद्वारेति गोमयम्।

---

1. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।

[1]आप्यायस्वेति च क्षीरं [2]दधिक्राव्णेति वै दधि।।
[3]शुक्रमसि ज्योतिरसीत्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकमिति।। १२।।

अनु०–गोमूत्र को ग्रहण करते समय गायत्री मन्त्र जपे। गोबर ग्रहण करना हो तो 'गन्धद्वारेति' का पाठ करे। 'आप्यायस्व' से दूध और 'द्रधिक्राव्णेति' से दही का सेवन करे। 'शुक्रमसि ज्योतिरसि' मन्त्र पढ़कर घी खाए। 'देवस्य त्वा सवितुः' से कुशोदक स्वीकार करे।

गोमूत्रभागस्तस्याऽर्धं शकृत्क्षीरस्य तयम्।
द्वयं दध्नो घृतस्येकः एकश्च कुशवारिणः।
एवं सान्तपनः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत्।। १३।।

एतदुक्तं भवति-घृतं कुशोदकं च तुल्यपरिमाणम्। घृताद्द्विगुणं दधि, तस्मादेव त्रिगुणं क्षीरम्। तस्मादेव चतुर्गुणः शकृत्। पञ्चगुणं गोमूत्रमिति। गमूत्रादिषट्कमेकीकृत्यैकस्मिन्नेवाऽहनि पीत्वाऽपरेद्युरुपवासः। एवं द्विरात्रस्सान्तपनो भवति। आह च याज्ञवल्क्यः—
कुशोदकं दधि क्षीरं गोमूत्रं गोशकृद्घृतम्।
प्राश्याऽपरेऽह्न्युपवसेतकृच्छ्रं सान्तपनं चरन्।।१३।।

अनु०–गाय के मूत्र का जितना भाग हो, उससे आधा भाग गोबर, तीन अंश दूध, दो भाग दही, एक अंश घी और एक हिस्सा कुशोदक मिलाए। यह सान्तपन नामक व्रत है। इससे चाण्डाल तक भी पवित्र हो जाते है।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
पञ्चरात्रं तदाहारः पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। १४।।

पञ्चगव्यविधानेनेति शेषः।। १४।।

अनु०–गोमूत्र, उसका गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक का पांच दिन सेवन करते हैं, तो दिन-रात भोजन करने वाला व्यक्ति इस पञ्चगव्य से शुद्ध हो जाता है।

---

१. आप्यायस्व समेतु ते विश्वतस्तोम वृष्णियम्।
भवा वाजस्य सङ्गथे।। तै.सं. ३/२/५
२. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखाकरत्प्रण आयूꣳषि तारिषत्। तै. सं. १/५/११
३. शुक्रमसि ज्योतिरसि तेजोऽसि। तै. सं. १/१/१०

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणाशनः।। १५।।

यतात्मा नियतेन्द्रियः आस्तिकः। स्त्रीणां रजोदर्शने च व्रतानिवृत्तिः। तथादर्शने पूर्वसमाप्तिप्रग्रसङ्गात्। तथा सत्युपेदशानार्थक्यमिति।।१५।।

अनु०—इन्द्रियों को अपने वश में रखे। बारह दिन तक निराहार रहे। इसे पराक नामक कृच्छ्र कहते हैं। इससे समस्त पाप दूर हो जाते हैं। इसमें प्रमाद नहीं करना चाहिए।

गोमूत्रादिरभिरभ्यस्तमेकैकं तं त्रिसप्तकम्।
महासान्तपनं कृच्छ्रं वदन्ति ब्राह्मवादिनः।। १६।।

सान्तपनस्सप्तरात्रपरिसमाप्य उक्तः। स दण्डकलितदावृत्त्या त्रिरभ्यस्त एकविंशतिरात्रो महासान्तपनो नाम भवति।। १६।।

अनु०—गाय का मूत्र, आदि उपर्युक्त सात पदार्थों में एक-एक पदार्थ का सेवन करे। इस तरह सात दिन तक की तीन अवधि तक अनुष्ठान करे। ब्रह्मविदों ने इसे महासान्तपन कृच्छ्र व्रत कहा है।

एकवृद्ध्या सिते पिण्डे एकहान्याऽसिते ततः।
पक्षयोरुपवासौ द्वौ तद्धि चान्द्रायणं स्मृतम्।। १७।।

चान्द्रायणाध्योक्तस्याऽनुवादोऽयम्।। १७।।

अनु०—शुक्ल पक्ष में हर दिन एक-एक ग्रास का भोजन बढ़ाए। कृष्ण पक्ष में हर दिन एक-एक ग्रास न्यून करे। दोनों पक्षों में दो दिन निराहार रहे। यह चान्द्रायण व्रत कहलाता है।

चतुरः प्रातरश्नीयात्पिन्डान्विप्रस्समाहितः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम्।। १८।।

अनु०—विप्र मन को एकाग्र करे। चार ग्रास भोजन करे। शाम को सूर्य के अस्त होते ही चार ग्रास भोजन ग्रहण करे। इसे शिशुचान्द्रायण व्रत कहते हैं।

अष्टावष्टौ मासमेकं पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरेत्।। १६।।

अनु०—एक महीना तक हर रोज सिर्फ मध्याह्न में यज्ञ के योग्य हवि का आठ ग्रास भोजन रूप में ग्रहण करे। इन्द्रियों को वश में करे। इसे यतिचान्द्रायण व्रत कहते हैं।

यथाकथंचित्पिण्डानां द्विजस्तिस्रस्त्वशीतयः।
मासेनाऽश्नन् हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम्।। २०।।

चत्वरिंशदधिकशतपिण्डान्यथाकथञ्चित् मासेनाऽश्नीयात् तिस्रोऽशीतय इति द्वितीयार्थे प्रथमा। तदैन्दवं नाम चान्द्रायणम्।। १८-२०।।

अनु०—यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य एक महीना पर्यंत यज्ञ के योग्य अन्न का अस्सी के तीन गुने का ग्रास भोजन ग्रहण करे। इससे चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है।

यथोद्यंश्चन्द्रमा हन्ति जगतस्तमसो भयम्।
तथा पापाद्भयं हन्ति द्विजश्चान्द्रायणं चरन्।। २१।।

सर्वप्रकारस्याऽपि चान्द्रायणस्य प्रशंसैषा।। २१।।

अनु०—जैसे उदय होता हुआ चन्द्रमा संसार को प्रकाशित करता है और अंधेरे का नाश करता है, उसी तरह चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठाता ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य वर्ण वाला आदमी दुष्कर्मों से उत्पन्न होने वाले डर को क्षीण कर देता है।

कणपिण्याकतक्राणि तथा चाऽपोऽनिलाशनः।
एकत्रिपञ्चसप्तेति पापघ्नोऽयं तुलापुमान्।। २२।।

एकस्मिन्नहनि कणान् भक्षयेत्। त्रिषु पिण्याकमित्यादि। भक्षद्रव्यप्रमाणं च शरीरस्थितिनिबन्धनम्। एवं च सप्तदशाह्निकस्सम्पद्यते। महतीमपि तुलामारूढः पापस्य पुरुषश्शुद्ध्यतीति तुलापुमान्। तथा च पञ्चदशाह्निकः कोऽपि तुलापुरुषो विद्यते। तथा याज्ञवल्क्येन—

पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तनां प्रतिवासरम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रसौम्योछ्ऽयमुच्यते।। इत्यभिहितम्।
एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकं प्रत्यहं पिबेत्।
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाह्निकः।। इति।।

अनु०—एक दिन चावल कण का खाना, तीन दिन तिल का पिण्याक खाना, पांच दिन मट्ठा पीना, सात दिन जलाहार करना और एक दिन मात्र वायु का भक्षण करना यह तुलापुमान नामक व्रत होता है। इससे पाप नष्ट हो जाते हैं।

यावकस्सप्तरात्रेण वृजिनं हन्ति देहिनाम्।
सप्तरात्रोपवासो वा दृष्टमेतन्मनीषिभिः।। २३।।

यावक इति कस्यचित्कृच्छ्रस्याऽन्वर्थसंज्ञा। सप्तरात्रं यवान्नता। तावन्तं कालमुपवासो वा। वृजिनं वर्जनीयं पापमित्यर्थः।। २३।।

अनु०—चिन्तनशीलों का विचार है कि सात दिन तक यावक ग्रहण करने से मनुष्यों के पाप दूर हो जाते हैं। इसी तरह सात दिन निराहार रहे तो पाप नष्ट हो जाते हैं।

पौषभाद्रपदज्येष्ठा आर्द्राकाशातपाश्रयात्।
त्रीन् शुक्लान्मुच्यते पापात्पतनीयादृते द्विजः।। २४।।

पुष्यस्तिष्यो नक्षत्रम्, तेन युक्तश्चन्द्रमा यस्मिन्मासि पौर्णमास्यां भवति स पौषमासः। भाद्रपदं प्रोष्ठपादानक्षत्रं तेन सह पौर्णमास्यां यस्मिन्मासि वर्तते स मासो भाद्रपदो नाम। तथा ज्येष्ठया वर्तत इति ज्येष्ठोऽपि मास एव। पौषभाद्रपदज्येष्ठा इति निर्देशः प्रथमान्तः। तेषु यथाक्रमं आर्द्राकाशातपाश्रयात्। आश्रयशब्दः आर्द्रादिषु प्रत्येकं सम्बध्यते। आर्द्राश्रियत्वं आर्द्रवासस्त्वम्। आकाशाश्रयत्वमातपाश्रयत्वं चाऽप्रावरणता। त्रयाणां तस्मिन् तस्मिन्मासे तत्तत् सर्वदा कर्तव्यम्? नेत्याह त्रीन् शुक्लान पक्षानिति शेषः। तत्र शुक्लपक्ष इत्यर्थः। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया। अतश्चाऽहर्निशमिति गम्यते। किमेवं कृते सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते? नः पतनीयादृते। तस्य हि प्रायश्चित्तान्तरेण भवितव्यम्। द्विजग्रहणमनुवादः। 'जपहोमेष्टियन्त्राणि करिष्यन्नादितो द्विजः' इत्यधीतत्वात्।।२४।।

अनु०—क्रम के अनुसार पूष, भादो और जेठ महीनों के शुक्ल पक्षों में तदनुसार गीले वस्त्र पहनने, खुले आसमान में रहने, सूर्य की धूप मे रहने से द्विज पतनीय दोषों को छोड़ समस्त दोषों से रहित हो जाता है।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
यवाचामेन संयुक्तो ब्रह्मकूर्चोऽतिपावनः।। २५।।

यवानां आचामो यवागूः। यद्वा आचमनं आचामः। एषः ब्रह्मकूर्चो नाम कृच्छ्रः। अस्य विधिः स्मृत्यन्तराद्वेदितव्यः। यथा हि—

पालाशं पद्मपत्रं वा ताम्रं वाऽथ हिरण्मयम्।
गृहीत्वाऽवहितो भूत्वा त्रिराचामेद्द्विजोत्तमः।।
गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि।।
तथा शुक्रमसीत्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
चतुर्दशीमुपोष्याऽथ पौर्णमास्यां समारभेत्।।
गोमयाद्द्विगुणं मूत्रं शकृद्दद्याच्चतुर्गुणम्।
क्षीरमष्टगुणं देयं तथा दशगुणं दधि।
स्थापयित्वाऽथ दर्भेषु पालाशैः पत्रकैरथ।

तत्समुद्धृत्य होतव्यं देवताभ्यो यथाक्रमम्।।
अग्नये चैव सोमाय सावित्र्यै च तथैव च।
प्रणवेन तथा कृत्वा ततश्च स्विष्टकृत्स्मृतः।।
एवं हुत्वा ततश्शेषं पापं ध्यात्वा समाहितः।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्मन्थ्य प्रणवेन तु।।
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन च।।
एवं ब्रह्मकृतं कूर्च मासि मासि चरन् द्विजः।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोकं स गच्छति।। इत्यादि।।२५।।

अनु०–गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक, जौ से बने यवागू में मिश्रित करे इसे ब्रह्मकूर्च कहते हैं। यह परम पावक होता है।

अमावास्यां निराहारः पौर्णमास्यां तिलाशनः।
शुक्लकृष्णकृतात्पापान्मुच्यतेऽब्दस्य पर्वभिः।। २६।।

सांवत्सरिकमेतद्व्रतम्, तस्मादब्दस्य पर्वभिस्सम्बन्धः। न पुनश्शुक्लकृष्णकृतमिति। एवं च तस्मिन् सम्वत्सरे मधुमांसवर्जनमधश्शयनमित्यादि द्रष्टव्यम्।।२६।।

अनु०–अमावस्या को उपवास रखे। पूर्णमासी को तिल पर निर्भर रहे, तो वह एक साल में शुक्ल और कृष्ण पक्षों में किए गए पापों से छूट जाता है।

भौक्षाहारोऽग्निहोत्रिभ्यो मासेनैकेन शुद्ध्यति।
यायावरवनस्थेभ्यो दशभिः पञ्चभिर्दिनैः।। २७।।

यायावरेभ्यो भौक्षाहारो दशभिर्दिनैः, वनस्थेभ्यः पञ्चभिर्दिनैः इति योजना। अन्यच्च व्याख्यातम्। एतेऽपि च त्रयः कृच्छ्राः।।२७।।

अनु०–यज्ञ करने वाले घरों से जो भिक्षा मिले, उसका सेवन करने से व्यक्ति एक महीने में शुद्ध हो जाता है। जो यायावर गृहस्थ के घर से भिक्षा लेता है, उसकी दस दिन में शुद्धि हो जाती है। वानप्रस्थ से जो भिक्षा मांगी जाए उससे पांच दिन में शुद्धि होती है।

एकाहं धनिनोऽन्नेन दिनेनैकेन शुद्ध्यति।
कापोतवृत्तिनिष्ठस्य पीत्वाऽपश्शुद्ध्यते द्विजः।। २८।।

एतावपि च द्वौ कृच्छ्रौ।।२८।।

अनु०–जो व्यक्ति सिर्फ एक दिन का भोजन ही अपने पास रखे, ऐसे व्यक्ति से अन्न ग्रहण करते हैं, उससे एक दिन में शुद्धि हो जाती है। कपोतवृति से जीवन यापन करने वाले आदमी से प्राप्त जल से द्विज पवित्र हो जाता है।

ऋग्यजुस्सामवेदानां वेदस्याऽन्यतमस्य वा।
पारायणं त्रिरभ्यस्येदनश्नन् सोऽतिपावनः।। २६।।

अन्यतमवेदपक्षे त्रिः। इतरथा सकृदेव।। २६।।

अनु०—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथवा किसी एक ही वेद का अध्येता तीन बार वेद का पारायंण करता है तो वह अतिपवित्र हो जाता है।

अथ चेत्त्वरते कर्तुं दिवसे मारुताशनः।
रात्रौ जले स्थितो व्युष्टः प्राजापत्येन तत्समम्।। ३०।।

अनु०—यदि आदमी शीघ्र शुद्ध-पवित्र होना चाहे तो वह दिन में वायु का ही सेवन करे। जल में खड़े रहकर रात बिताए। और सवेरा हो जाने दे। यह व्रत प्राजापत्य कृच्छ्र के समान ही फलदायक होता है।

गायत्र्याऽष्टसहस्रं तु जपं कृत्वोत्थिते रवौ।
मुच्यते सार्वपापेभ्यो यदि न भ्रूणहा भवेत्।। ३१।।

त्वरते कर्तुं कर्मै सामर्ग्यजुरथर्वणामिति शेषः। प्राणायामविशेषेण जानुद्वयसजलस्थितस्याऽपि शास्त्रार्थास्सिद्ध्यतीति मन्तव्यम्। व्युष्टः उषोन्तरितः। श्वोभूते अष्टौ च सहस्रं सवित्र्या जपं कुर्यात्। अत्र प्राजापत्येन तत्सममिति वचनादिदमन्यत् स्मृत्यन्तराद्वेदितव्यम्, प्राजापत्यादौ प्रवृत्तस्याशक्तस्य विप्रभोजनेनाऽपि तत्सिद्धिर्भवतीति। प्राजापत्ये तावदशक्यदिनेषु प्रतिदिनं विप्रान् पञ्चावरान् शुद्धान् भोजयेत्। एवं विधानेनैवाऽतिकृच्छ्रे पञ्चदशावरानशक्यदिनेषु प्रतिदिनं वा विप्रमेकम्। एतत्सर्वत्र समानम्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रे त्रिंशतम्, तप्तकृच्छ्रेषु चत्वारिंशतम्, पराकनिर्णये पञ्चाशतम्, चान्द्रायणे षडिंवशतिम्, तुलापुंसि तु त्रयोविंशतिम्, महासान्तपने षड्विंशतिम्, तथैकाहोपवासे पञ्च। त्रिरात्रे प्रत्यह दशदशेत्यादि।। ३०-३१।।

अनु०—यदि वेदविद् ब्राह्मण की हत्या न की हो तो सूर्य के उदय होते ही एक हजार और आठ बार गायत्री मन्त्र जपे। वह समस्त पापों से छूट जाता है।

योऽन्नदस्सत्यवादी च भूतेषु कृपया स्थितः।
पूर्वोक्तयन्त्रशुद्धेभ्यस्सर्वेभ्यस्सोऽतिरिच्यते।। ३२।।

एवंविधवृत्तस्थ इत्यभिप्रायः।। ३२।।

अनु०—अन्न दान करने वाला, सत्यवक्ता और जो प्राणियों पर दया करता है, वह उपर्युक्त व्रतों से शुद्ध हुए लोगों से भी अतिपवित्र होता है।

(अध्याय-पांच, खण्ड-पांच सम्पूर्ण)

अध्याय-छह : खण्ड-छह

समाधुच्छन्दसा रुद्रा गायत्री प्रणवान्विता।
सप्तव्याहृतयश्चैव जाप्याः पापविनाशनाः।।१।।

मधुच्छन्दा यासामृचामृषिः। ताश्च सकलसंहिताया आदितो दशसूक्तानि। ताभिस्सह रुद्राः 'नमस्ते रुद्र' इति एकादशाऽनुवाकाः। अन्यत्प्रसिद्धम्। जपादिभिः प्रतिपूरणे कर्तव्ये सति एभिः प्रतिपूरणं वेदितव्यम् स्वातन्त्र्येण चैषामुपयोगः। तत्र कालगणना मन्त्रावृत्तिगणना च विशेषापेक्षया विज्ञेया।।१।।

अनु०—मधुच्छन्दा ऋषि द्वारा साक्षात्कार किए सूक्तों के साथ 'नमस्ते रुद्र' इत्यादि ग्यारह अनुवाक्, ओंकार सहित गायत्री और सात व्याहृतियों को जपने से पाप भाग जाते हैं।

मृगारेष्टिः पवित्रेष्टिस्त्रिहविः पावमान्यपि।
इष्टयः पापनाशिन्यो वैश्वानर्या समन्विताः।।२।।

मृगारं 'अग्नयेऽंहोमुचेऽष्टाकपालः' इति दशहविरिष्टिः। तथा पवित्रेष्टिरपि 'अग्नये पवमानाय' इति दशहविरेव। त्रिहविस्सवनेष्टिः। पावमानी पावमानेष्टिः वैश्वानरो द्वादशकपालो वैश्वानरी। तथा समन्विता एताः पापनाशिन्यः नैकैकशः।।२।।

अनु०—मृगारेष्टि, पवित्रेष्टि, त्रिहवि, पावमानी और वैश्वानरी इष्टियों से पाप नष्ट होते हैं।

इदं चैवाऽपरं गुह्यमुच्यमानं निबोधत।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महतः पातकादृते।।३।।

अनु०—अब हम दूसरी गुप्त विधि बता रहे हैं। इसे एकाग्र होकर समझना चाहिए। इस उपाय से बड़े पातकों को छोड़ समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है।

पवित्रैर्मार्जनं कुर्वन् रुद्रैकादशिकां जपन्।
पवित्राणि घृतैर्जुह्वत् प्रयच्छन् हेमगोतिलान्।।४।।

अनु०—जल से मार्जन करे। रुद्र एकादश अनुवाक् पवित्र मन्त्रों के साथ घी की आहुतियां दे। स्वर्ण, गाय और तिल का दान करे। बड़े पातकों के पापों को छोड़, अन्य समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

अल्पप्रयासेन बहुपापक्षयलाभात् गुह्यमित्युक्तम्। प्रथमस्सर्वशब्द एकैकस्मिन् पापाभ्यासार्थः। द्वितीयः पापभेदापेक्षः। पवित्राणि 'सुरभिमत्यादयो मन्त्राः। रुद्रैकादशिका 'नमस्ते रुद्र' इत्येकादशाऽनुवाकाः। पूर्वं जपन् जुह्वत् प्रयच्छन् मुच्यत इति सम्बन्धः। अत्राऽपि वक्ष्यमाणस्सप्तरात्रः कालो भवति।।३-४।।

योऽश्नीयाद्यावकं पक्वं गोमूत्रे सशकृद्रसे।
सदधिक्षीरसर्पिष्के मुच्यते सोंऽहसः क्षणात्।।५।।

अनु०—जो आदमी गोमूत्र, गोबर का रस, दही, दूध घी से युक्त पके हुए चावल का सेवन करता है, उसे यथाशीघ्र पापों से छुटकारा मिल जाता है।

प्रसूतो यश्च शूद्रायां येनाऽगम्या च लङ्घिता।
सप्तरात्रात्प्रमुच्येते विधिनैतेन तावुभौ।।६।।

यावकं पक्वं यवौदनो यवागूर्वा। शकृद्रसोऽपि गोरेव। तत्सहिते गोमूत्रे पक्वमित्यर्थः। तदेव दध्ना क्षीरेण सर्पिषा च संयुक्तं भवति। प्रसङ्गात्पापं तद्वक्ष्यमाणम्-प्रसूतो यश्चेत्यादि। सप्तरात्रादिति कालनिर्देशविरोधात् क्षणादित्ययमर्थवादः। सप्तरात्राभिप्रायो वा। 'क्षणः क्षणोतेः प्रक्ष्णतः कालः' इति निर्वचनात्। क्रमौढायामपि शूद्रायामपत्योत्पादनं यः करोति येन वाऽगम्या पैतृष्वसेय्यादिका लंघिता भवति, लंघनं गमनम्, तावुभावनेन पूर्वोक्तेन विधिना मुच्येते।।५-६।।

अनु०—यदि कोई आदमी शूद्रा और निषिद्ध स्त्री से मैथुन करे, ऐसे दोषियों को उपर्युक्त तरह से निर्दिष्ट प्रायश्चित्त करना चाहिए। इससे वह सात दिन में ही पाप से छूट जाता है।

रेतोमूत्रपुरीषाणां प्राशनेऽभोज्यभोजने।
पर्याधानेज्ययोरेतत् परिवित्ते च भेषजम्।।७।।

अभोज्यानां परिग्रहदुष्टानां स्वभावदुष्टानां च भोजने। पर्याधानं ज्यायसि तिष्ठत्यनाहिताग्नौ कनीयस आधानम्। आह च—

दाराग्निहोत्रसंयोगे कुरुते योऽग्रजे स्थिते।
परिवेत्ता सविज्ञेयः परिवित्तस्तु पूर्वजः।। इति

अत्राऽग्रजशब्दस्याऽयमर्थः—अग्र एव यस्मिन् जाते सत्यात्मनो जननं सम्भवति स तं प्रत्यग्रजः। एवं च सति पितर्यनाहिताग्नौ सति पुत्रेण नाऽऽधातव्यमिति भवति। परीज्यायामपि एतदेव पूर्वोक्तं भेषजम्। इज्या यागः नित्येज्या ऐष्टिकपाशुकसौमिकाः, न नैमित्तिकाः काम्याश्च। ते पितरं ज्येष्ठं वोल्लङ्घ्य न कर्तव्याः' यदि कुर्यात्तत्राऽपि एतदेव प्रायश्चित्तं—'योऽश्नीयाद्यावकं पक्वम्' इत्यादि।।७।।

अनु०—वीर्य, मल, मूत्र खाने पर, जिन व्यक्तियों से प्राप्त भोजन वर्जित है, उनका अन्न-ग्रहण करने पर बड़े भाई से पूर्व छोटे भाई द्वारा अग्नि का आधान करने पर श्रौत यज्ञ रचाने और विवाह कर लेने पर जो पाप होता है, उसको दूर करने के लिए उपर्युक्त व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए।

अपातकानि कर्माणि कृत्वैव सुबहून्यपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्य इत्येद्वचनं सताम्।।८।।

पूर्वोक्तेन प्रायश्चित्तेनेति शेषः। सतां मन्वादीनाम्।।८।।

अनु०–ऐसा सज्जनों का कथन है कि पातक कर्मों के अतिरिक्त जो पाप करता है। वह भी पापों से छूट जाता है।

मन्त्रमार्गप्रमाणं तु विधाने समुदीरितम्।
भरद्वाजादयो येन ब्रह्मणस्समतां गताः।।९।।

मन्त्राणां मार्गो मन्त्रमार्गः पाठः स एव प्रमाणं यस्य विधानस्य तदुदीरितं पाठमूलत्वं स्यात्तादृशानामपि धर्माणामुक्तं तत्, प्रजापत्यादेरपि यन्त्रस्य। विधानं मन्त्रादेर्मूलमिति। अयं किलाऽऽचार्यो मन्त्रप्रमाणक इव लक्ष्यते—'पञ्चतयेन कल्पमवेक्षते 'तच्छन्दसा ब्राह्मणेन' इति तच्छन्दसो मन्त्रात्मकस्य प्रथमनिर्देशं ब्रुवन्नन्यत्र छन्दसा न शक्नुयात् कर्तुमित्यपवाददौर्बल्यमभ्यनुजानश्च। ब्रह्मणस्समानमिति वचनादभ्युदयार्थ-मित्येतद्विधानमिति गम्यते।। ९।।

अनु०–यहां जिन नियम, निर्देशों की चर्चा हुई है, उनका आधार मन्त्र हैं। इस नियमों के पालन से ही भारद्वाज जैसे मुनियों ने ब्रह्म के समान प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

प्रसन्नहृदयो विप्रः प्रयोगादस्य कर्मणः।
कामांस्तांस्तानवाप्नोति ये ये कामा हृदि स्थिताः।।१०।।

क्रियते इति कर्म। तच्च मन्त्रपाठप्रमाणं विधानम्। तस्यैषा प्रशंसा।।१०।।

अनु०–प्रसन्न हृदय वाला ब्राह्मण इन कर्मों का आचरण करके अपनी समस्त इच्छाएं पूरी कर लेता है। जो भी उसके मन में कामनाएं हैं, उन सबकी पूर्ति हो जाती है।

(अध्याय-छह, खण्ड-छह सम्पूर्ण)

अध्याय-सात : खण्ड-सात

निवृत्तः पापकर्मभ्यः प्रवृत्तः पुण्यकर्मसु।
यो विप्रस्तस्य सिध्यन्ति विना यन्त्रैरपि क्रियाः।।१।।

प्रतिषिद्धवर्जनस्य विहितानुष्ठानस्य च प्रशंसैषा। यदेवंविधस्य पुरुषस्य पूर्वोक्तयन्त्राभावेऽपि सामग्र्यजुरथर्वणां कर्मण्यधिकारोऽस्तीति दर्शयति। तस्याऽपि वक्ष्यमाणो गणहोमो भवत्येव।।१।।

अनु०—पाप कर्मों से विरत है, पुण्यकर्मों में रमा हुआ है, ऐसा जो ब्राह्मण है, वह क्रिया, कर्म, व्रत का आचरण किए बिना ही शुद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणा ऋजवस्तस्माद्यद्यदिच्छन्ति चेतसा।
तत्तदा साधयन्त्याशु संशुद्धा ऋजुकर्मभिः।।२।।

ऋजुकर्माणि विहितकरणप्रतिषिद्धवर्जनलक्षणानि।।२।।

अनु०—शुद्ध पवित्र कर्मों वाला, सरल हृदय वाला, धर्म-कर्म वाला ब्राह्मण जिस काम की मन से इच्छा करता है, वह शीघ्र पूरा हो जाता है।

एवमेतानि यन्त्राणि तावत्कार्याणि धीमता।
कालेन यावतोपैति विग्रहं शुद्धिमात्मनः।।३।।

कालेन कालपरिमितेन यन्त्रेण विग्रहं शरीरम्। उपैतिर्नयत्यर्थे। ततश्च द्विकर्मत्वाद्विग्रहमिति द्वितीयोपपत्तिः। एनस्सु गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनीत्ययमर्थोऽन्यत्र दर्शितः। आह—

यस्मिन् कर्मण्यस्य कृते मनसस्स्यादलाघवम्।
तस्मिन् तावतत्तः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत्।। इति।।३।।

अनु०—बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह इन व्रत, अनुष्ठानों को उतना ही करे, जिससे शरीर शुद्ध, पवित्र हो जाए।

एभिर्यन्त्रैर्विशुद्धात्मा त्रिरात्रोपोषितस्ततः।
तदारभेत येनर्द्धिं कर्मणा प्राप्तुमिच्छति।।४।।

गणहोमादर्वागेवोपसंहाराभिधानं तस्याऽपि त्रिरात्रोपवासाङ्गत्वज्ञापनाय।।४।।

अनु०—जिसने इन व्रतों से अपने को शुद्ध, पवित्र बना लिया है, वह तीन दिन-रात निराहार रहे। तत्पश्चात् अभीष्ट इच्छा वाला हवि कर्म प्रारम्भ करे।

क्षापवित्रं सहस्राक्षो मृगारोंऽहोमुचौ गणौ।
पावमान्यश्च कूष्माण्ड्यो वैश्वानर्यं ऋचश्च याः।।५।।

क्षापवित्रं क्षाशब्दवत् पवित्रं च, तच्च तैत्तिरीयाणां सूक्तपाठे 'अग्ने नय' इत्यादिषड्ृचम्। अयमेको मन्त्रगणः तैत्तिरीयकपाठसिद्धो गृहीतव्यः। सहस्राक्षस्तावत्पुरुषसूक्तं, तच्चाऽष्टादशर्चम्। मृगारो मृगाराया इष्टेर्याज्यानुवाक्या द्वाविंशतिर्ऋचः 'अग्नेर्मन्वे' इत्यनुवाकः। अंहोमुचो तच्छब्दवन्तौ गणौ। तयोः 'या वामिंद्रावरुणा' इत्येकः चत्वारो मन्त्रास्सानुषङ्गाः। अपरो 'यो वामिन्द्रावरुणा' इत्यष्टौ। अत्र तादृश एव सामशब्दोंऽहोमुचवचनः। पावमान्योऽपि तच्छब्दवत्यः ऋचस्सप्तदश। ताश्च 'पवमानस्सुवर्जनः' इत्यनुवाकः। कूष्माण्ड्यः 'यद्देवाः' इत्याद्या एकविंशतिर्ऋचः।

वैश्वानर्य 'वैश्वानरो न ऊत्या' इत्यष्टो। एतेऽष्टौ मन्त्रगणाः प्रायशो विश्वेदेवार्षाः। सहस्राक्षस्तु नारायणर्षिः। तत्राऽनुक्तच्छन्दसः त्रैष्टुभा वेदितव्याः। 'सहस्रशीर्षा इत्याद्याः पञ्च अनुष्टुभः। मृगारयाज्यासु 'अनु नोऽद्यानुमतिः, अन्विदनुमते त्वम्' 'ये अप्रथेताम्, ऊर्वी रोदसी' इत्येता अनुष्टुभः। 'वैश्वानरो नः ङते गायत्री। यदिदं बृहती। अंहोमुचौ तु यजुषी एव ततश्छन्दोविशेषानादरः यद्यजुषाऽऽज्यं यजुषाऽप उत्पुनीयात्, छन्दसाऽप उत्पुनाति' इति यजुश्छन्दसोर्भेदनिर्देशात्। पावमानीषु पुनः प्रथमाद्वितीयाचतुर्थीपञ्चम्यष्टम्यो गायत्र्यः। तृतीया नवम्याद्या अन्त्यवर्जाश्चाऽनुष्टुभः। कूष्माण्डीषु प्रथमाऽनुष्टुप् द्वितीयाऽतिजगती तृतीया चतुर्थ्यौ जगत्यौ, पञ्चम्यतिशक्वरी सप्तमी शक्वरी अष्टमी जगती, नवमी पंक्तिः दशस्तेकादश्यौ शक्वर्यौ, त्रयोदश्यत्यष्टिः, चतुर्दश्यनुष्टुप्। ततो गायत्र्यौ। सर्वलिङ्गोक्तदेवताः। सहस्राक्षस्तु पौरुषः।।५।।

अनु०—वह क्षापवित्र, सहस्राक्ष, मृगार, अंहोमुच के गण और पावमानी, कूष्माण्डी, वैश्वानरी ऋचाओं का जाप करे।

घृतौदनेन ता जुस्वत्सप्ताहं सवनत्रयम्।
मौनव्रती हविष्याशी निगृहीतेन्द्रियक्रियः।।६।।

घृताप्लुतेनौदनेन ताः प्रतिमन्त्रं हस्तेन दर्व्या वा परिभाषासिद्धया 'दर्व्याऽन्नस्य जुहोति' इति। 'सप्ताहमिमानि व्रतान्यनुकर्षेन्मौनव्रती' इत्यादीनि।।६।।

अनु०—हर मन्त्र को पढ़ते हुए घी और ओदन का सुबह, मध्याह्न और सायं काल सेवन करे। इन्द्रिय और क्रिया कलापों को नियंत्रित रखे।

'सिंहे मे' इत्यपां पूर्णे पात्रेऽवेक्ष्य चतुष्पथे।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महतः पातकादपि।।७।।

उदपात्रमादाय चतुष्पथं गत्वा प्राङ्मुख? उपस्थं कृत्वा तस्मिन्नेव उदपात्रेऽवेक्षमाणः पापं ध्यायन् विनयितॄन् ब्रूयात्। 'सिंहे मे मन्युः' इत्यन्तमेतमनुवाकं निगद्य निनीयाऽपो नैर्ऋत्यां दिशि परास्थ पात्रमनवेक्षमाणो हस्तपादान् प्रक्षाल्य तेनेव मार्गेण यथैतमेत्य। तदेतदुक्तम्—'सिंहे म इत्यपां पूर्णे' इति। अत्राऽपरे याज्ञिकाः प्रयोगज्ञंमन्यमाना दार्विहोमिकीं परिचेष्टां कुर्वते, आनाम्नातया च पक्वहोमवत्ते च स्विष्टकृदुपहोमा गणहोमा (?) इति वदन्तः। तत्तु युक्तायुक्ततया विचारणीयम्।।७।।

अनु०—चौराहे पर जल पूरित पात्र हो। उसे 'सिंहे मे' आदि मन्त्र को पढ़ते हुए कोई देखे तो उसे सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। वड़े पापकर्म भी छूट जाते हैं।

वृद्धत्वे यौवने बाल्ये यः कृतः पापसञ्चयः।
पूर्वजन्मसु वाऽज्ञानात्तस्मादपि व मुच्यते।।८।।

फलविधिः फलार्थवादो वायम्।।८।।

अनु०–वृद्ध, युवा और बाल्यावस्था में ही नहीं, अपितु पूर्वजन्म में अज्ञानता के कारण किए गए पापों के समूह से उसे मुक्ति मिल जाती है।

भोजयित्वा द्विजानन्ते पायसेन सुसर्पिषा।
गोभूमितिलहेमानि भुक्तवद्भ्यः प्रदाय च।।६।।

अनु०–सात दिनों के वाद ब्राह्मण को घी मिश्रित खीर खिलाए। भोजन करने के वाद ब्राह्मणों को गाय, भूमि, तिल और सोना दान में दे।

विप्रो भवति पूतात्मा निर्दग्ध वृजिनेन्धनः।
काम्यानां कर्मणां योग्यः तथाऽऽधानादिकर्मणाम्।।१०।।

अन्ते सप्ताहस्य। ततस्सप्तम एवाऽहन्यापराह्णीकप्रयोगानन्तरं भोजनादि गम्यते। द्विजास्यवराः। गवादीनां समुच्चयः। स च मुक्तवद्भ्यः प्रत्येकं भवति। विप्रग्रहणं द्विजातिप्रदर्शनार्थम्। वृजिनं पापम्, तदेवेन्धनम्, तन्निर्दग्धं येनेति विवाहः। योग्यः अधिकारी। अन्यथाऽनधिकारीति गम्यते। एषा तावद्गणहोमक्रिया ह्यात्मन एव प्रयोक्तव्या नाऽन्यस्य।।६-१०।।

अनु०–उपर्युक्त विधि से ब्राह्मण पाप रूपी ईंधन के नष्ट हो जाने के कारण शुद्ध हो जाता है। और वह अग्नि का आधान और समस्त यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं को सम्पादित करने योग्य बन जाता है।

(अध्याय-सात, खण्ड-सात सम्पूर्ण)

अध्याय आठ : खण्ड-आठ

अतिलोभात्प्रमादाद्वा यः करोति क्रियामिमाम्।
अन्यस्य सोंऽहसाऽऽविष्टो गरगीरिव सीदति।।१।।

गोभूम्यादिषु अतिलोभात् स्नेहात्प्रमादाद्वा योऽन्यस्य वृत्यर्थं गणहोमक्रियां करोति स तेनांऽहसाऽऽविष्टः सीदति गरगीः विषभुगिव विषण्णो भवति।।१।।

अनु०–अति लालच या लापरवाही से दूसरों के लिए होम करने वाला जो क्रियाएं करता है, उसे पाप लगता है। उसे विपभक्षक की भांति पीड़ा होती है।

आचार्यस्य पितुर्मातुरात्मनश्च क्रियामिमाम्।
कुर्वन्भात्यर्कवद्विप्रस्सा कार्येषामतः क्रिया।।२।।

यस्मादेतेषां क्रियां कुर्वन्नादित्यवद्भाति तस्मादेतेषाम्। मातुः पृथग्ग्रहणात्

पितरि मृते पितुर्मातुरेनोनिवृत्त्यर्थमेषा पुत्रेण कर्तव्येति गम्यते। आत्मग्रहणं दृष्टार्थम्। पितृग्रहणं पुनः पुत्रस्याऽपि प्रदर्शनार्थम्।। २।।

अनु०–यदि ब्राह्मण आचार्य, पिता, माता और खुद के लिए याज्ञिक क्रियाएं करता है, तो वह सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है। अतः उसे इन लोगों के निमित्त यज्ञ करा देना चाहिए।

> क एतेन सहस्राक्षं पवित्रेणाऽकरोच्छुचिम्।
> अग्निं वायुं रविं सोमं यमादींश्च सुरेश्वरान्।। ३।।

कः प्रजापतिः, तस्य पुत्राः सहस्राक्षाग्न्यादयः। पवित्रेण गणहोमेन।।३।।

अनु०–इस प्रकार के पवित्र कर्मों के द्वारा प्रजापति ने अपने सहजातक पुत्रों को पवित्र किया। इतना ही नहीं उन्होंने इन कर्मों से अग्नि, वायु, रवि, सोम, यम आदि देवों, स्वामियों को पवित्र कर दिया।

> यत्किञ्चित्पुण्यानामेह त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
> विप्रादि तत्कृतं केन पवित्रक्रिययाऽनया।। ४।।

तादृशं फलमवाप्यते। उत्तमजातिप्राप्त्युपायोऽयमित्यभिप्रायः।।४।।

अनु०–पवित्र नाम वाला तीनों लोकों में जो प्रसिद्ध है, जैसे ब्राह्मण आदि, उन सबको प्रजापति ने उन्हीं शुभ कर्मों द्वारा रचा।

> प्रजापत्यमिदं गुह्यं पापघ्नं प्रथमोद्भवम्।
> समुत्पन्नान्यतः पश्चात्पवित्राणि सहस्रशः।। ५।।

इदमष्टगणहोमकर्म प्रजापत्यं प्रजापतेस्सकाशात् प्रथमोद्भूतम्। अन्यानि तु यन्त्राण्यतः पश्चादुत्पन्नानि।। ५।।

अनु०–प्रजापति द्वारा पाप का नाश करने वाले इस गूढ़ तथ्य की उत्पत्ति हुई। फिर अनेक प्रकार की पवित्र करने वाली क्रियाओं ने जन्म लिया।

> योऽब्दायनर्तुपक्षाहान् जुहोत्यष्टौ गणानिमान्।
> पुनाति चाऽऽत्मनो वंश्यान् दश पूर्वान् दशाऽपरान्।। ६।।

कर्तुस्तु कालाभिनियमात् फलविशेषः कल्प्यते। अब्दस्संवत्सरः। अयनं तदर्धः आदित्यस्य दक्षिणोत्तरायणगमनेन। ऋतुः अब्दषडभागो वसन्तादिः। तदर्धः मासः। तदर्धः पक्षः शुक्लः कृष्णो वा। अहस्तु प्रसिद्धम्। एतदब्दादिभिरेव सम्बध्यत इति केचित्। कल्पान्तरमित्यपरे।।६।।

अनु०–वर्ष, अयन, ऋतु और पक्ष के प्रथम दिनों में उपर्युक्त गणयज्ञों को

करता है, तो वह अपने वंश के दस पहले और दस बाद की पीढ़ी वाले लोगों को पापमुक्त करता है।

एतानष्टौ गणान् होतुं न शक्नोति यदि द्विजः।
एकोऽपि तेन होतव्यो रजस्तेनाऽस्य नश्यति।। ७।।

अनु०—यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय ,वैश्य वर्ण वाला इन आठ गणहोमों को करने में असमर्थ है, तो एक गणहोम भी कर सकता है। इससे ही उसके पाप विकार दूर हो जाएंगे।

सूनवो यस्य शिष्या वा जुह्वत्यष्टौ गणानिमान्।
अध्यापनपरिक्रीतैरंहसस्सोऽपि मुच्यते।। ८।।

अध्यापनपरिक्रीतैः तेनैवाऽध्ययनादिना।। ८।।

अनु०—जिसका बेटा या शिष्य इन गणहोमों को करता है, वह भी उनको पढ़ाकर उस द्रव्य को ग्रहण कर लेता है और पापों से दूर हो जाता है।

धनेनाऽपि परिक्रीतैरात्मपापजिघांसया।
हावनीया ह्यशक्तेन नाऽवसाद्यश्शरीधृक्।। ६।।

हावनीयाः होमं कारयितव्याः। अन्येनाऽपि कारयितव्यत्वे हेतुर्नावसाद्य इति। नाऽवसाद्यो न क्लेशनीयः। धने विद्यमाने किमित्यात्मनश्शरीरशोषणं हविष्यादिभिः क्रियेतेत्यभिप्रायः। एवं च मौनव्रतान्यपि कर्तुरेव, न कारयितुः नाऽवसाद्य इति वचनात्। 'गरगिरिव सीदति' इति दोषोऽपि कर्तुरेव न कारयितुः उपरागे वर्तमाने श्राद्धभोजनवत्।।६।।

अनु०—जो अपने पापों को नष्ट करना चाहता है, पर इन गणहोमों को करने में असमर्थ है ऐसा व्यक्ति धन से क्रय कर इन्हें सम्पन्न कर सकता है। उसे शारीरिक कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं होती।

धनस्य क्रियते त्यागः कर्मणां सुकृतामपि।
पुंसोऽनृणस्य पापस्य विमोक्षः क्रियते क्वचित्।। १०।।

अनृणस्याऽपि पुंसो ऽयं धर्मतस्त्यागः क्वचित्क्रियत इत्युच्यते। किमर्थमुक्तम्? पुण्यानामपि कर्मणां सिद्धये। गणहोमार्थं पुनर्धनत्यागे क्रियमाणे पापस्यैव विमोक्षः क्रियते न धनस्येत्यभिप्रायः।। १०।।

अनु०—पुण्य कर्मों की पूर्ति के लिए धन छोड़ा जा सकता है। कभी-कभी ऋणमुक्त व्यक्ति भी अपने पाप से छूट जाता है।

मुक्तो यो विधिनैतेन सर्वपापार्णसागरात्।
आत्मानं मन्यते शुद्धं समर्थं कर्मसाधने।। ११।।

सर्वपापसमुद्राच्चोत्तीर्णमात्मानं कर्मयोग्यं मन्यते।। ११।।

अनु०—इस उपाय से वह पाप और ऋण के सागर से बाहर आकर वह स्वयं को शुद्ध, पवित्र अनुभव करता है। वह धार्मिक कार्यों को सम्पादित करने में समर्थ समझा जाता है।

ज्ञायते चाऽमरैः द्युस्स्थैः पुण्यकर्मेति भूस्थितः।
देववन्मोदते भूयस्स्वर्गलोकेऽपि पुण्यकृत्।। १२।।

द्युस्स्थैर्देवेभूमिष्ठोऽपि पुण्यकर्मेति ज्ञायते। तथा च श्रुतिः यथा वृक्षस्य सम्पुष्पितस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति' इति।।१२।।

अनु०—ऐसा व्यक्ति भले ही पृथ्वी पर रहे, मगर स्वर्गस्थ देवता उसे पुण्य कर्मवाला के रूप में देखते हैं, जानते और मानते हैं। वह पुण्य करने वाला पुनः स्वर्ग लोक के देवों की तरह सुख प्राप्त करता है।

सर्वपापार्णमुक्तात्मा क्रिया आरभते तु याः।
अयत्नेनैव तास्सिद्धिं यान्ति शुद्धशरीरिणः।। १३।।

अनु०—पाप और ऋण मुक्त आदमी जो भी क्रियाएं करे, उस शुद्ध शरीर वाले की समस्त क्रियाएं आसानी से हो जाती हैं।

प्रजापत्यमिदं पुण्यमृषीणां समुदीरितम्।
इदमध्यापयेन्नित्यं धारयेच्छृणुतेऽपि वा।। १४।।

अनु०—इसे प्रजापति का पवित्र धर्मशास्त्र भाग कहा जाता है। दूसरा उपदेश ऋषियों ने दिया है। इसे नित्य-प्रतिदिन पढ़ना-पढ़ाना चाहिए। इसको याद करना चाहिए। इसके श्रवण से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं। उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो जाती है।

इदमिति धर्मशास्त्रमुच्यते। गणहोममात्रमेव वेत्यर्थः। अत्राऽध्यापनधारणश्रवणानां पूर्वं पूर्वं गरीयः।। १३-१४।।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोके महीयते।।
यान् सिषाधयिषुर्मन्त्रान् द्वादशाऽहानि तान् जपेत्।। १५।।

द्वादशाऽहानि सकृत्सकृत्प्राश्य जपेदिति सम्बन्धः। स च 'मुखं व्यादाय स्वपिति' इतिवत् द्रष्टव्यः। सिषाधयिषुः साधयितुमिच्छन्। घृतेनेति घृतान्नेनेत्यभिप्रायः।। १५।।

अनु०—जिन मन्त्रों के द्वारा उसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना हो, उन मन्त्रों को बारह दिन तक जपे। रात में केवल एक बार घी, दूध या दही खाएं।

ऋग्यजुस्सामवेदानामथर्वाङ्गिरसामापि ।
दशावरं तथा होमः सर्पिषा सवनत्रयम्।।१६।।

अनु०—ऋग्, यजुस्, साम और अथर्वाङ्गिरस से सम्पन्न सुबह, दोपहर और शाम को हवन करें।

पूर्वसेवा भवेदेषा मन्त्राणां कर्मसाधने।
मन्त्राणां कर्मसाधन इति।।१७।।

वेदसम्बन्धिन्या मन्त्रसंबन्धिन्यसाश्च षष्ठ्या 'वैश्वानर्यः' इत्यनेन सम्बन्धः स च वैदिकानामेव मन्त्राणामेषा पूर्वसेवा पुरश्चरण, नेतरदिति ज्ञापनार्थम्। मन्त्राणां कर्मसाधन इति। मन्त्रैरिष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारसिद्धावित्यर्थः। तथा च शौनकः—

'पुरश्चरणमादौ तु मन्त्राणां सिद्धिकारणम्' इति।।१७।।

अनु०—मन्त्रों से अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए यही प्रारम्भिक पूजन की विधि है।

(प्रश्न-चार, अध्याय-आठ, खण्ड-आठ, बौधायन धर्मसूत्र सम्पूर्ण)

सूत्रस्थ नाम एवं विषय गत सूची

अक्षर (ओम्), १६१
अगम्या, १४२
अग्नि, १४१, २६८,
वैश्वानर, २०६, २३५, २४७
उपसमाधान, २५८
अग्निहोत्र २०६, २३१ में धर्मोच्छिष्ट के
७४ मन्त्र, २०६, २३१
अग्निहोत्री, १६३, २६०
अग्न्याधेय, १४५
अघमर्षण, २३६, २६३, २८०
अङ्ग, ६, २७७, २८०
अतिकृच्छ्र, ११०, १२८, १३६, १४२,
२६६, २८४
अथर्ववेद, २७६, २८२
अथर्वशिरस्, २६३
अथर्वाङ्गिरस्, ३०१
अधोवीत, ३३
अनश्नत्पारायण, २५७
अन्तर्वास, २४
अन्वाहार्यपचन, २१५
अपचमानक, २३०
अपविद्धपुत्र, १३३, १३४
अभिजित, २५६
अभ्युक्षण, ४६
अम्बष्ठ, ८४
अरणी, २५०
अर्घ्य, १५८
अलाबु, ७५
अवकीर्णी, ११५
अवन्ति, ६
अवभृथ, १०६, २३७, २७७
अश्व, २६५
अश्वमेध, १०६, २३७, २७७, २६३
अश्विन् देव, २०१
अष्टका होम, २००
आग्नीध्र, ८२
आचमन, ३४, १५८, १६६, १६०, १६६,
२१६
आचार्य, २६७
आत्मयज्ञ, २१५
आत्मयाजी, १८७
आत्रेयी, ६३, ११०, का वध, ६४
आदित्य, १६६
आमिक्षा, ७६, २४५
आयोगव, ८४
आरट्ठ प्रदेश, ६
आर्यावर्त, ८
आर्ष, तीर्थ, ३४, विवाह, ६७

आवसथ्य अग्नि, २१५
आसुर, विवाह, ६६, २०८, २०६, २१५, २२३
आहवनीय, ८१
इन्द्र
इन्द्रकील, १५३
उग्र, ८५
उत्तरीय, २४, १५८
उत्सर्पिणामयन
उदयनीय, २२
उन्मज्जक, २३२
उपनयन, ११२
उपनिषद्, २६३
उपवास, १६४
उपाकर्म, ६७
उपावृत्
उशनस्, १४६, २६०
ऋक्, २८१, ३०१
ऋग्वेद, २७४, २६१
ऋण, २०२
ऋतुमती, २७०, कन्या पत्नी, २७१
ऋत्विज, ११
ऐडादध, ७३
ऐष्टिक यज्ञ, १७६
ओंकार, २७३, २७५, २७८, २६२
औपजंघनि, १३५
औरस पुत्र, १३१
कन्या अपहरण, २७१
कपिञ्जल, ६५
कमण्डलु, २४ आदि,
कलिङ्ग, ६
कश्यप, १०१
कात्य, २०
कानीन, अविवाहिता का पुत्र, १३४
कापोता वृत्ति, २२२, २२६, २६०
कारस्कर प्रदेश, ६
कारु, ४२, ५१
कुक्कुट, ८५, ८७
कुण्डयायिनायन, ७३
कुम्भीधान्य, २
कुलुङ्ग, ६५
कुशीलक, ५१
कुशोदक, २८६
कुसीद, २२
कूष्माण्ड, ६७, १२५, २६३, २८०, २६५
कृच्छ्र, ११०, ११२, ११३, १२५, १३६, १४२, २४५
कृच्छ्रातिकृच्छ्र, १२७, २८५
कृत्रिम पुत्र, १३२
कौद्दाली वृत्ति, २२२, २२६
क्षत्ता, ८४, ८७
क्षत्रिय १२ का वध दण्ड ६२ उपनयन वर्ण से ८३ कमण्डलु २८ पत्नियाँ ८३ का पुत्र ८६ कर्त्तव्य आपत्काल में, १४४
क्षेत्रज, १३१
खुर, ६६
गङ्गा, ८
गणिका, २४१
गान्धर्व, ६८, १००
गायत्री, १३, १६२, २७३, २८१, २६१, २६२
गार्हपत्य अग्नि, ८२, २१५, २२३
गूढ, १३३

गोमय, २८५, २८६
गोमूत्र, २८५, २८६, २६३
गौ, दान, २३६, २५४
गौतम, ७, १४४
ग्रीष्म, १२
चक्रचर, २२१
चण्डाल, ८४, ८६, १४३
चतुश्चक्र, ७३
चमस, ३१, ४०
चान्द्रायण, ६४, ११०, १३८, १४२, १४६, २४६, २६६, २८७
चारण की पत्नी, १४०
चिलिचिम, मत्स्य, ६५
जगती, १३
जघन्यसंवेशी, १५
जनक, १३५
तक्र, २८८
तप्तकृच्छ्र, १२६
तरत्समन्दीय, १४८, २७४
तित्तिर, ६५
तिल, २६५, २६२, २६७
तीर्थ, १६०, २६४
तुलापुमान, २८८
तोयाहार, २३३
त्रिष्टुप्, १३
त्रैधातवीय, २२३
दक्षिणापथ, ६
दण्ड, २१३
दत्तपुत्र, १३२
दधिधर्म, ७३
दर्श पूर्णमास, २४, २२४
दाक्षायण, ७३
दार्वीहोम, १७६, २७६
दीक्षणीया इष्टि, ५५
दीर्घसत्र, २१
दुर्गा, २८०
देवयज्ञ, १७६
दैव तीर्थ, ३४, विवाह, ६८, धर्म, के द्वारा ४ न्याय व्यवहार में ६५
आपत्कालीन १४३, १७८ चार भेद
ध्रुवा वृत्ति, २२२, २२७
नर्तकी, १४०
नास्तिक, ५१
नियोग, १४२
निर्ऋति, ७८, ११५
निवीत, ३३
निषाद्, ८५
नृत्य, १५
पञ्चगव्य, २८६
पतनीय, २६६
पंचमानक, २३०
पञ्चनख, ६५
पत्नी यजमान की, ७६ गुरु की, १११ की रक्षा, १३५
पतित्याग, १४१
परिघा, १५६
परिवित्त, २६३
परिषत्, ३
पर्यग्निकरण, २६
पर्व, २५
पवमान, ७७
पवित्रेष्टि, १०, २६२
पशु विक्रय, ६ ग्राम्य, ६४ हत्या का प्रायश्चित्त, ६४ यज्ञ, १७६

पाकयज्ञ, २५
पात्र, मिट्टी के ३८ बांस के, ७५
पारशव, शूद्रा का पुत्र, ८६
पालनी वृत्ति, २२२, २२८
पावमानी, २६३, २८०, २६२, २६५
पिण्डोदक, ५६
पिण्याक, २१७
पिपीलिकामध्य चान्द्रायण, २५६
पितृयज्ञ, १७७
पित्र्य तीर्थ, ३४
पिशाच, १६६
पुण्ड्र प्रदेश, ६
पुत्र, अयोनिज, ५६, पुत्रिकापुत्र, १३१, क्रीत, १३३, स्वयंदत्त, १३४, निषाद, १३४, पारशव, १३४, पौनर्भव, १३३, भरण-पोषण, १३६
पुनर्भू, २७१
पुनस्तोम, ६, २६३
पुरुषसूक्त, २६३
पुरोहित, ८६
पुल्कस, ८५, ८७
पैशाच विवाह, ६६
प्रजापति, १८८, २६१, २६८, ३००
परमेष्ठी, २६
प्रणव, १६३, १७१, २०७, २२०
प्रवृत्ताशिन्, २३२
प्रह्लाद, १८३
प्राजापत्य, ६८, २८४, २६१
प्राण, १८७
प्राणाग्नि, १६४
प्राणायाम, १६२, १६३, २५६, २६७, २६६, २७२
प्रानून, ६
प्रायणीय, २२
पृष्ठ्या, २०६
प्रेष्य, ५१
बलि, १४६
वहिष्पवमान, २६३
बृहच्छिरस्, ६५
बृहस्पति, २६०
बौधायन, २६, २६, ३१, २३८, २४३
ब्रह्मकूर्च, २८६
ब्रह्मचर्य, १३६
ब्रह्मयज्ञ, १७१, १७७
ब्रह्मलोक
ब्रह्महत्या, २६३
ब्रह्महृदय, १६३
ब्रह्मा, का स्थान, ८१
ब्रह्मान्वधान, २०८
ब्रह्मोदन, ७३
ब्राह्म तीर्थ, ३४, मुहूर्त्त, २६१, विवाह, ६७
ब्राह्मण, १८४, अवध्य, ६१, उपनयन, १२, ब्राह्मण, का धन, ५७, दो नाम, १०४, कृषिकर्म, १४४, दण्ड, ६२, वाणिज्य, १२४
पंक्तिपावन, १६५, २६०
वध का दण्ड, ६२, संख्या, २००, की हत्या, २७४, २७५, विद्यारहित, ५२, श्राद्धभोजन, १६६, का वध, २३२, २४४
भक्ष्य, ६५
भरद्वाज, २६४
भाल्लविन्, ६

भिक्षा, २४५
भूतयज्ञ, १७७
भूतात्मा, ३२
भ्रूणघ्नी, २७२
भ्रूणहत्या, २७०, २७१
भ्रूणहा, १०८, २६१
मगध, ६
मत्स्य, ६५
मधु, २६८
मधुच्छन्दा, २६४
मधूदक, ७६
मनुष्य यज्ञ, १७७
मयूर, ६५
महाव्याहृति, १८८
महासान्तपन, २८७
मांस, १०५, १५२, २३५, २४५, २६८
मागध, ८४, ८६
मार्जन, २६२
मार्जालीय, ७४
मित्र, १६४, १६६, २१८
मृगारेष्टि, २६२
मृत्युलाङ्गल, २८०
मौञ्जीबन्धन, १२
मौद्गल्य, १४१
यजुर्वेद, २७६, २८२, २६१
यजुस्, ३०१
यज्ञोपवीत, २४
यतिचान्द्रायण, २८७
यम, ११५, २६८
यमुना, ८
यवागू, २३६, २४०, २४५
यातुधान, १६६
यायावर, १८७, २०५, २१४, २२१
यावकभक्षण, २६४, २८८, २२३, २६०
योग, २७३
रक्षोदेवता, ११५
रजस्वला, ६२
रथकार, २५, ८६
राक्षस, ६६
राजीव, ६५
रुद्र, ७८, २६३, २६२
रोमशकरि, ६५
रोहित, ६५
वंग, ६
वरुण, २८, १६३, १६६, २११, २१८
वर्मी, ६५
वल्कल, ७०
वसन्त, १२
वस्त्र, रेशमी, ४०, ७०, वृक्ष की छाल, ७०, यज्ञ का, ६६, उत्तरीय, १५८
काषाय, १८१, १६६, २२६
संन्यासी का, २१३, २६५, नवीन, २५०, वृक्ष की छाल, २५८
वान्या, २३०
वायु, २६८, वायुभक्ष, २३२, २३३
वारुणी, ११३
वार्ध्राणस, ६५
वार्धुषिक, ५१
वास्तोष्पतीय, २२३
विकल्पी, ३
विधवा, १४१
विधुर, २०५
विरजा मन्त्र, २८०
विवाह, २६६, अनियमितता, ११७, कन्या,

की अवस्था, २६६
वृत्ति, २२१
वेद, २६३
वेदान्त, २६३
वेश्या, २४१
वैण, ८५, ८७
वैतुषिक, २३१
वैदेहक, ८६, ८७
वैश्य, १२, वर्ण, ८३, से कमण्डलु, २८, पत्नियां, ८४, का पुत्र, ८६, कर्त्तव्य, ८८, के वध का दण्ड, ६३, आपत्काल में, १४४
वैश्वदेव, १४६, २१४
वैश्वानरी, ६, २२३, २६२, २६५
व्याहृति, २७, १६३, १७१, १८७, २०७, २११, २१३, २२०, २७३, २७५, २७८, २८०, २८१, २६२
व्रत, २६२
व्रतपती, १०
व्रात्य, ८७
शंखपुष्पी, ११३
शरद्, १२
शालीन, २०५, २१४, २२१
शिक्य, २०६
शिशु आङ्गिरस, २०
शिशु चान्द्रायण, २८७
शिष्ट, २, परम्परा, ८
शूद्र, अतिथि, १४६, अन्न, २६८
स्त्री, २६३, की सेवा ११८, से कमण्डलु, २८
से व्यभिचार, १३८, का अन्न, २४१, शूद्र से बात नहीं, २५४
शूद्रा, २६८, २६३, से विवाह, १५७, से मैथुन, २७७
श्मशान, १०८
श्रोणा, २५६
श्रोत्रिय, १५०, १५१
श्वपाक, ८७
षण्णिवर्तनी, २२२, २२६
सङ्कीर्णयोनि, ६
सकुल्य, ५७
सन्दर्शनी, २२७
सन्ध्योपासन, १६०
सपिण्ड, ५५
सप्तर्षि, २६१
समिदाहरण, २१
समूहा, २२२, २२८
सम्प्रक्षालनी, २२२, २२८
सर्वपृष्ठा, ६
सर्वारण्यका, २३१
सवन, २६१, २६६, ३०१
सवर्ण, १३०
सहस्त्रदंष्ट्र, ६५
सहस्राक्ष, २६८
सहोढ, १३३
सान्तपन, २८५
सामवेद, २७६, २८२, २६१, ३०१
सामुद्र शुल्क, ६१
सावित्री, १७१, २०७, २१२, २६३
सिद्धेच्छा, २२२, २२६
सिन्धु, ६
सिलोञ्छा, २२२, २२८
सुरभिमती, २११
सुराष्ट्र, ६

सुवर्ण, २६५, का दान, २६७
सूत, ८७
सूर्मि, १११
सूर्य, २५४, २६८
सोम, १४१, १६८, का पान, २६४, सोमयज्ञ, १७६
सौवीर, ६
स्त्री, ऋतुमती, २७१, की पवित्रता, १४०, की परतन्त्रता, १३७, की प्रतिमा, १११, के साथ भोजन, ६, पिण्डोदक क्रिया नहीं, ५६, पुनर्भू, से २७१, बात नहीं २५४, २८३
स्नातक, २३
स्वधा, १७७
स्वयंभू, ३०
स्वाध्याय, १७७, २०२, २१६
स्वाहा, १७६
हारीत, १२२
होता, ८१

नरेन्द्र कुमार

जन्मस्थान : पो. बढ़नी, जि. सिद्धार्थ नगर।

जन्मतिथि : 4 अप्रैल, 1960 ई.

शिक्षा : साहित्याचार्य, एम.ए., पी-एच.डी., साहित्य रत्न, योगडिप्लोमा।

मौलिक प्रकाशित रचनाएँ : माँ का वचन, अंगु करामात, राणा की तलवार, सरल कथाएँ कहानियों की लगभग पच्चीस पुस्तकें।

अनुवाद : पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, श्रीमद्भग बौधायन धर्मसूत्रम् आदि।

सम्पर्क : सम्पादकीय विभाग नंदन, हिन्दुस्तान हाउस, नई दिल्ली-1, दूरभाष-3361234/287

आवास : सपना ई-120 डी, प्रताप विहार, गाजिय दूरभाष-741241।